आत्म-साक्षात्कार का विज्ञान

कृष्णकृपाश्रीमूर्ति श्रीमद् भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

द्वारा विरचित वैदिक-ग्रन्थ-रत्न—

श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप

श्रीमद्भागवत स्कन्ध १-१० (५०-खण्ड)

श्रीचैतन्य चरितामृत (१७-खण्ड)

श्रीचैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत

भक्तिरसामृतसिन्धु

उपदेशामृत

श्री ईशोपनिषद्

अन्य लोको की सुगम यात्रा

कृष्णभावना परमयोग

भगवान् श्रीकृष्ण का लीलामृत (३-खण्ड)

पारमार्थिक प्रश्नोत्तर

वैदिक आलोक मे पाश्चात्य दर्शन (२-खण्ड)

देवहूतिनन्दन भगवान् कपिल का शिक्षामृत

प्रह्लाद महाराज की भागवत-शिक्षा

रसराज श्रीकृष्ण

जीवन का स्रोत चेतन है

योग की पूर्णता

जन्म-मृत्यु से परे

श्रीकृष्ण की ओर

कृष्णभावना अनुपम भेट

गीतार गान (बगाली)

राजविद्या

कृष्णभावना की प्राप्ति

भगवत्-दर्शन पत्रिका (सस्थापक)

अधिक जानकारी तथा सूचीपत्र के लिए लिखे:

अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत संघ

हरे कृष्ण लैण्ड, गाधी ग्राम रोड, जुहू, बम्बई—४०० ०४९

आत्म-साक्षात्कार का विज्ञान

कृष्णकृपाश्रीमूर्ति

श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत संघ

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट

बम्बई, न्यूयॉर्क, लंदन, लॉस एंजिलिस, पेरिस

समर्पण

भौतिक दृष्टि से हमारे परम पूज्य गुरु महाराज, मार्गदर्शक एव आध्यात्मिक पिता कृष्णकृपाश्रीमूर्ति अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी श्रील प्रभुपाद इस जगत् से कार्तिक शुक्ल चतुर्थी तदनुसार १४ नवम्बर १९७७ मे श्रीधाम् वृन्दावन मे तिरोहित हो चुके हैं, परन्तु वास्तव मे वे अभी भी उपस्थित हैं। जैसे श्रील प्रभुपाद ने प्राय यह सकेत किया था कि गुरुदेव के सग-लाभ करने के दो मार्ग हैं वपु शारीरिक उपस्थिति के द्वारा एव उनकी वाणी के द्वारा। कभी-कभी हम अपने गुरु महाराज से वपु के माध्यम से सग कर भी सकते हैं और कभी-कभी नही भी, परन्तु हम उनकी वाणी के माध्यम से सदैव उनका सग-लाभ प्राप्त कर मकते हैं।

— सम्पादक मडल

प्राक्कथन प्रस्तावना
श्रील प्रभुपाद के कार्य की प्रशस्तियाँ

मैं श्रील प्रभुपाद का हार्दिक ॠणी हूँ और यह एक ऐसा ॠण है जिसको उॠण करने मे मैं समर्थ न हो सकूँगा। परन्तु मैं उनके अन्य अनुयायियों के साथ उनके ग्रन्थो के प्रकाशन और वितरण के द्वारा जो श्रील प्रभुपाद की आन्तरिक इच्छा थी—को पूर्ण करके अपनी कृतज्ञता का किंचित मात्र प्रदर्शन कर सकता हूँ।

"मेरी मृत्यु कदापि नही होगी," श्रील प्रभुपाद ने एक बार कहा था। "मैं अपने ग्रन्थो में निरन्तर जीवित रहूँगा।" भौतिक दृष्टि से श्रील प्रभुपाद इस जगत् से १४ नवम्बर १९७७ को अप्रकट हो गए, परन्तु निश्चय ही वे शाश्वत रूप से जीवित रहेगे।

माइकेल ग्रांट
(मुकुन्द दास गोस्वामी)

लेखक-परिचय

कृष्णकृपाश्रीमूर्ति श्रीमद् ए सी भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद का जन्म १८९६ ई० मे भारत के कलकत्ता नगर मे हुआ था। अपने गुरु महाराज श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी से १९२२ मे कलकत्ते मे उनकी प्रथम भेट हुई। एक सुप्रसिद्ध धर्म तत्ववेत्ता, अनुपम प्रचारक, विद्वान्-भक्त, आचार्य एव चौसठ गौडीय मठो के सस्थापक श्रील भक्ति-सिद्धान्त सरस्वती को ये सुशिक्षित नवयुवक प्रिय लगे और उन्होने वैदिक ज्ञान के प्रचार के लिए अपना जीवन उत्सर्ग करने की इनको प्रेरणा दी। श्रील प्रभुपाद उनके छात्र बने और ग्यारह वर्ष बाद (१९३३ ई०) मे प्रयाग (इलाहाबाद) मे विधिवत् उनके दीक्षा-प्राप्त शिष्य हो गए।

अपनी प्रथम भेट, १९२२ मे ही श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने श्रील प्रभुपाद से निवेदन किया था कि वे अग्रेजी भाषा के माध्यम से वैदिक ज्ञान का प्रसार करे। आगामी वर्षो मे श्रील प्रभुपाद ने श्रीमद्भगवदगीता पर एक टीका लिखी, गौडीय मठ के कार्य मे सहयोग दिया तथा १९४४ मे बिना किसी की सहायता के एक अग्रेजी पाक्षिक पत्रिका आरम्भ की, स्वय ही उसका सम्पादन, पाण्डुलिपि का टकण (टाइपिग) और मुद्रण सामग्री को देखा। उन्होने एक-एक प्रति नि शुल्क बॉटकर भी उसके प्रकाशन को अस्तित्त्व-मान रखने के लिए सघर्ष किया। एक बार आरम्भ होकर फिर वह पत्रिका कभी बन्द नही हुई, अब वह उनके शिष्यो द्वारा पश्चिमी देशो मे भी चलाई जा रही है।

श्रील प्रभुपाद के दार्शनिक ज्ञान एव भक्ति की महत्ता पहचान कर "गौडीय वैष्णव समाज" ने १९४७ ई० मे उन्हे 'भक्तिवेदान्त' की उपाधि से सम्मानित किया। १९५० ई० मे चौवन वर्ष की अवस्था मे श्रील प्रभुपाद ने गृहस्थ जीवन से अवकाश लिया और चार वर्ष बाद वानप्रस्थ ले लिया, जिससे वे अपने अध्ययन और लेखन के लिए अधिक समय दे सके। श्रील प्रभुपाद ने तदनन्तर श्रीवृन्दावन धाम की यात्रा की, जहाँ वे बडी ही सात्त्विक परिस्थितियो मे मध्यकालीन ऐतिहासिक श्रीराधा दामोदर मन्दिर मे रहे। वहाँ वे अनेक वर्षों तक गम्भीर अध्ययन एव लेखन मे सलग्न रहे। १९५९ मे उन्होने सन्यास ग्रहण कर लिया। श्रीराधा दामोदर मन्दिर मे ही श्रील प्रभुपाद ने अपने जीवन के सबसे श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण ग्रन्थ का आरम्भ किया था। वह ग्रन्थ था अठारह हजार श्लोक सख्या के श्रीमद्भागवत पुराण का अनेक खण्डो मे अग्रेजी मे अनुवाद और व्याख्या। वही उन्होने "अन्य लोको की सुगम यात्रा" नामक पुस्तिका भी लिखी थी।

श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ के तीन खण्ड प्रकाशित करने के बाद श्रील प्रभुपाद १९६५ ई० मे अपने गुरुदेव का धर्मानुष्ठान पूरा करने के लिए सयुक्त राज्य अमेरिका गए।

अन्तत श्रील प्रभुपाद ने भारतवर्ष के श्रेष्ठ दार्शनिक और धार्मिक ग्रन्थो के प्रामाणिक अनुवाद, टीकाएँ एव सक्षिप्त अध्ययन-सार के रूप मे साठ से अधिक ग्रन्थ-रत्न प्रस्तुत किए।

१९६५ ई० मे जब श्रील प्रभुपाद एक मालवाहक जलयान के द्वारा प्रथम बार न्युयॉर्क पहुँचे तो उनके पास एक पैसा भी नही था। इसके पश्चात् कठिनाई भरे लगभग एक वर्ष के बाद जुलाई १९६६ ई० मे उन्होने "अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत सघ" की स्थापना की। १४ नवम्बर १९७७ ई० को, कृष्ण-बलराम मन्दिर, श्रीवृन्दावन धाम मे अप्रकट होने के पूर्व तक श्रील प्रभुपाद ने अपने कुशल मार्ग-निर्देशन के कारण इस संघ को, विश्व भर मे सौ से अधिक मन्दिरो, आश्रमो, विद्यालयो, सस्थाओ और कृषि-क्षेत्रो का बृहद् सगठन बना दिया।

१९६८ ई० मे श्रील प्रभुपाद ने प्रयोग के रूप मे, वैदिक समाज के आधार पर पश्चिमी वर्जीनिया की पहाडियो मे नव वृन्दावन की स्थापना की। एक हजार एकड से भी अधिक के इस समृद्ध नव-वृन्दावन के कृषि-क्षेत्र से प्रोत्साहित होकर उनके शिष्यो ने सयुक्त राज्य अमेरिका तथा अन्य देशो मे भी ऐसे अनेक समुदायो की स्थापना की।

१९७२ ई० मे श्रील प्रभुपाद ने डल्लास, टेक्सास मे गुरुकुल विद्यालय की स्थापना द्वारा पश्चिमी देशो मे प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा की वैदिक प्रणाली का सूत्रपात किया। तब से, उनके निर्देशन के अनुसार श्रील प्रभुपाद के शिष्यो ने सम्पूर्ण विश्व मे दस से अधिक गुरुकुल खोले है। भक्तिवेदान्त स्वामी गुरुकुल एव श्रीवृन्दावन धाम इनमे सर्वप्रमुख है।

श्रील प्रभुपाद ने श्रीधाम-मायापुर, पश्चिम बगाल मे एक विशाल अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र के निर्माण की प्रेरणा दी है। यही पर वैदिक साहित्य के अध्ययनार्थ सुनियोजित सस्थान की योजना है, जो अगले दस वर्षो मे पूर्ण हो जाएगी। इसी प्रकार श्रीवृन्दावन धाम मे भव्य कृष्ण-बलराम मन्दिर और अन्तर्राष्ट्रीय अतिथि भवन का निर्माण हुआ है। ये वे केन्द्र है, जहाँ पाश्चात्य लोग वैदिक सस्कृति का मूल रूप से प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त कर सकते है। बम्बई मे भी श्रीराधारासबिहारीजी मन्दिर के रूप मे एक विशाल सास्कृतिक एव शैक्षणिक केन्द्र का विकास हो चुका है। इसके अतिरिक्त भारत मे बारह अन्य महत्वपूर्ण स्थानो पर हरे कृष्ण मन्दिर खोलने की योजना कार्याधीन है।

किन्तु, श्रील प्रभुपाद का सबसे बडा योगदान उनके ग्रन्थ है। ये ग्रन्थ विद्वानो द्वारा, अपनी प्रमाणिकता, गम्भीरता और स्पष्टता के कारण मान्य है और अनेक महाविद्यालयो मे उच्चस्तरीय पाठ्य-ग्रन्थो के रूप मे प्रयुक्त होते है। श्रील प्रभुपाद की रचनाएँ अट्ठाईस भाषाओ मे अनूदित है। १९७२ ई० मे केवल श्रील प्रभुपाद के ग्रन्थो के प्रकाशन के लिए स्थापित भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, भारतीय धर्म और दर्शन के क्षेत्र मे, विश्व का सबसे बडा प्रकाशक बन गया है। इस ट्रस्ट का एक अत्यधिक आकर्षक प्रकाशन, श्रील प्रभुपाद द्वारा केवल अठारह मास मे पूर्ण की गई उनकी एक अभिनव कृति है, जो बगाली महाग्रन्थ श्रीचैतन्यचरितामृत का, सत्तरह खण्डो मे, अनुवाद और टीका है।

बारह वर्षो मे, अपनी वृद्धावस्था की चिन्ता न करते हुए व्याख्यान-पर्यटन के रूप मे श्रील प्रभुपाद ने विश्व के छहो महाद्वीपो की चौदह परिक्रमाएँ की। इतने व्यस्त कार्यक्रम के रहते हुए भी श्रील प्रभुपाद की उर्वरा लेखनी अविरत चलती थी। उनकी रचनाएँ वैदिक-दर्शन, धर्म, साहित्य और संस्कृति के एक यथार्थ पुस्तकालय का निर्माण करती है।

विषय-सूची

पहला संस्करण, १९८४/ ५००० प्रतियाँ
दूसरा संस्करण, १९८५/ ५००० प्रतियाँ
तीसरा संस्करण, १९८६/ ३७०० प्रतियाँ

Printed by Jalco Press Pvt Ltd at A to Z Industrial Estate Unit No 44 G K Marg, Lower Parel Bombay 400 013 Tel 492 16 29/14 55

प्राक्कथन

कृष्णकृपाश्रीमूर्ति ए सी भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के सम्बन्ध मे मुझे ज्ञात था कि वे अत्यधिक असाधारण व्यक्ति थे। सन् १९६६ की ग्रीष्म मे मैने स्वामीजी का दर्शन न्युयॉर्क नगर मे किया था। एक मित्र ने मुझे "एक वृद्ध भारतीय स्वामी द्वारा लोअर मेनहट्टन की बाउरी मे प्रवचन का श्रवन करने के लिए निमन्त्रित किया था। एक स्वामी ऐसे निम्न स्तर के क्षेत्र मे प्रवचन कर रहे है, इस उत्सुकता से परिपूर्ण मै वहाँ गया और काले रग से पुती एक सीढी से ऊपर चढा। जैसे-जैसे मै ऊपर चढता गया एक घण्टी के समान मीठी लय-युक्त ध्वनि तेज और स्पष्ट होती गई। अन्ततः मैने चौथी मजिल पर पहुँच कर द्वार खोला, वहाँ स्वामी जी विराजमान थे।

मैं जिस स्थान पर खडा हुआ था, वहाँ पर लगभग पचास फीट दूर लम्बे एव अंधकार युक्त कक्ष के दूसरे कोने मे एक छोटे से मच पर स्वामी जी बैठे थे। क्षीण प्रकाश मे भी गेरुआ वस्त्र एवं उनका मुख आभामय और तेजोमय दीख रहा था। वे मुझे अवस्था मे साठ वर्ष के लगे। उनमे बडप्पन था, वे पल्थी मारे उर्ध्वासन की भव्य मुद्रा मे बैठे थे। स्वामी जी का मुण्डित सिर, उनका तेजस्वी मुखमण्डल और लाल चौड़े फ्रेम के चश्मे के कारण वे एक गहन अध्ययन करने वाले तपस्वी साधु दृष्टिगोचर हो रहे थे। वे अपने नेत्र बन्द कर मन्द स्वर मे ढोलक बजाते हुए सरल संस्कृत मे प्रार्थना कर रहे थे। श्रोताओ की संख्या कम थी, परन्तु वे श्रवण और कीर्त्तन की विधि के अनुसार स्वामी जी के साथ मे समयान्तर से कीर्त्तन मे सम्मिलित हो जाते थे। कुछ श्रोतागण करताल बजा रहे थे जो मुझे घण्टी की ध्वनि के सदृश प्रतीत हो रहा था। मै चुपचाप जा कर पीछे बैठ गया और कीर्त्तन मे भाग लेने का प्रयत्न करने लगा।

कुछ क्षणो के पश्चात स्वामी जी ने सामने खुले हुए एक विशाल सस्कृत ग्रन्थ से अंग्रेजी मे प्रवचन देना आरम्भ किया। प्रायः वे उस ग्रन्थ से उद्धरण देते थे, परन्तु अधिकांशतः उन्हे ग्रन्थ देखने की आवश्यकता नही पड़ती थी और वे अपनी स्मृति के आधार पर श्लोक उद्धृत करते थे। उनकी भाषा की ध्वनि आकर्षक थी और प्रत्येक श्लोक के पश्चात् वे अत्यन्त सावधानीपूर्वक विस्तृत व्याख्या कर रहे थे।

वे एक विद्वान् के समान प्रवचन दे रहे थे, उनकी शब्दावली दार्शनिक शब्दो एवं कहावतों से युक्त थी। हाथो की सुचारु मुद्राएँ और मुख पर के सजीव भाव उनके प्रवचन को प्रभावशाली बना रहे थे। प्रवचन का विषय अत्यन्त गम्भीर था। "मैं यह शरीर नही हूँ, मैं भारतीय नही हूँ...आप लोग अमेरिकन नही है...हम सब आत्मा है...।"

प्रवचन के पश्चात् किसी ने मुझको भारत मे मुद्रित एक ग्रन्थ दिया। उस पर एक चित्र था जिसमें स्वामी जी तत्कालीन भारतीय प्रधानमन्त्री श्री लाल-बहादुर शास्त्री को अपने तीन ग्रन्थ भेंट कर रहे थे। शीर्षक मे शास्त्रीजी का उद्धरण था कि सभी भारतीय शासन के पुस्तकालय इन ग्रन्थो को मँगावे।" "श्री-कृष्णकृपाश्रीमूर्ति ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद एक महान् कार्य कर रहे है।" प्रधान मन्त्री ने एक अन्य गद्याश मे आगे कहा, "और उनके ग्रन्थ मानवता के परित्राण मे महत्वपूर्ण योगदान है।" मैंने ग्रन्थ की प्रतियो को खरीद लिया जिसके सम्बन्ध मे मुझे ज्ञात हुआ कि स्वामीजी इनको भारत से लाए थे। ग्रन्थ के आवरण पृष्ठ, लघु पुस्तिका और अन्य अनेक साहित्य के अध्ययन के पश्चात् मुझे अनुभव होने लगा कि मेरी भारत के परम आदरणीय आध्यात्मिक सन्तो मे से एक के साथ अभी भेंट हुई है।

परन्तु मैं नही समझ सका कि ऐसे विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण सज्जन बाउरी (अमेरिका का झोपडपट्टी क्षेत्र) मे ही क्यो निवास कर रहे है। निश्चय ही वे सुशिक्षित और सभी दृष्टिकोणों से कुलीन भारतीय परिवार मे जन्म ग्रहण किए प्रतीत हो रहे थे। तब वे इतनी निर्धनता मे क्यो निवास कर रहे है और किस कारण के वशीभूत हो कर वे यहाँ आए है। इन सबको ज्ञात करने के लिए, कुछ दिनो पश्चात् दोपहर को मै उनसे भेंट करने चला गया।

मेरे आश्चर्य की सीमा न रही कि श्रील प्रभुपाद (जैसा कि बाद मे मैं श्री स्वामीजी को इसी नाम से सम्बोधित करने लगा) को मेरे साथ चर्चा करने के लिए पूर्ण अवकाश था। वास्तव मे मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि वे मेरे साथ सारे दिन चर्चा करने को तैयार थे। उनका व्यवहार अत्यन्त प्रेमपूर्ण और मित्रवत् था। उन्होने बताया कि १९५९ मे भारत मे उन्होने संन्यास आश्रम ग्रहण किया। संन्यासी होने के कारण अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओ के लिए धन साथ मे रखने अथवा जीविका निर्वाह के लिए धनोपार्जन की अनुमति नही थी। उन्होने कई वर्ष पूर्व कलकत्ता विश्वविद्यालय से अपना अध्ययन पूर्ण किया था। उनका एक परिवार भी था। प्राचीन वैदिक संस्कृति के अनुसार श्रील प्रभुपाद ने अपने ज्येष्ठ पुत्र पर परिवार एवं उद्योग-धंधे के भार को सौप दिया था। संन्यास लेने के पश्चात् एक वृद्ध पारिवारिक सदस्य मित्र के माध्यम से उनको एक भारतीय मालवाहक जलयान (सिंधिया स्टीम शिप कम्पनी का "**जलदूत**") पर नि.शुल्क टिकट की व्यवस्था कर दी गई थी। सितम्बर सन् १९६५ मे श्रील प्रभुपाद ने बम्बई से बोस्टन के लिए जलयान से प्रस्थान किया। उनके पास केवल सात डॉलर के बराबर मूल्य के रुपये थे, ग्रन्थों से भरा एक सन्दूक एवं कुछ वस्त्र थे। उनके आध्यात्मिक गुरुदेव श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने उनको यह भार सौपा था कि वे भारतीय वैदिक

शिक्षाओं को अंग्रेजी भाषी विश्व के समक्ष प्रस्तुत करे। यही कारण है कि वे उनहत्तर वर्ष की अवस्था मे अमेरिका आए थे। श्रील प्रभुपाद ने मुझसे कहा कि वे अमेरिकन लोगों को भारतीय सगीत, भोजन बनाना, भाषा एवं विभिन्न प्रकार की कलाओ के विषय मे शिक्षित करना चाहते है। उनकी चर्चा सुनकर मुझे कुछ अचरज लग रहा था।

मैंने देखा के श्रील प्रभुपाद एक छोटी सी चटाई पर शयन करते थे, और उनके वस्त्र कक्ष के पिछले भाग में ग्रीष्म ऋतु की दोपहरी में सूखने के लिए टगे हुए थे। वे अपने वस्त्र स्वय धोते थे और अपना भोजन भी एक विशेष पात्र मे जिसको उन्होने भारत मे बनाया था, पकाते थे। उस चार डिब्बे वाले पात्र मे वे एक ही साथ चार प्रकार के भोजन पका लेते थे। श्रील प्रभुपाद के पास प्राचीन दिखने वाले पोर्टेबल टाइपराइटर के चारो ओर कक्ष के दूसरे भाग मे असख्य पाण्डुलिपियो का अम्बार लगा हुआ था। मुझे ज्ञात हुआ कि वे चौबीस घण्टे में लगभग बीस घण्टे श्रीमद्भागवत की पाण्डुलिपियो का अनुवाद करने मे व्यतीत करते थे। श्रील प्रभुपाद श्रीमद्भागवत को साठ खण्डो मे पूर्ण करने वाले थे। (जिसके मैंने अब तक तीन खण्ड खरीदे थे) और यथार्थ मे यह ग्रन्थ आध्यात्मिक जीवन का विश्वकोश था। मैंने प्रकाशन हेतु अपनी शुभकामनाएँ व्यक्त की और उन्होने मुझे शनिवार की संस्कृत कक्षाओ एवं सोमवार, बुधवार और शुक्रवार को सायंकाल होने वाले अपने प्रवचनो मे पधारने का निमन्त्रण दिया। मैने वह निमन्त्रण स्वीकार कर लिया, उनको धन्यवाद दिया और उनके दृढ़ सकल्प पर विस्मित होते हुए वहाँ से चल पड़ा।

कुछ सप्ताह उपरान्त जुलाई १९६६ मे मुझे श्रील प्रभुपाद के लिए कुछ अधिक सभ्य क्षेत्र मे आवास ढूंढ़ने मे सहायता करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ वह निवास स्थान सेकेन्ड एवन्यू पर था। कुछ मित्र और मैंने किराए पर एक भूतल कक्ष (स्टोर-फ्रन्ट) एवं उसी भवन के पिछले भाग मे स्थित एक और कक्ष को किराए पर ले लिया। प्रवचन और कीर्त्तन निरन्तर होते रहे और दो सप्ताह मे ही इस धार्मिक आयोजन की तेजी से वृद्धि हुई और वह कक्ष, एक मन्दिर के रूप में परिणत हो गया और द्वितीय तल के कक्ष के लिए आय भी प्राप्त होने लगी। अब श्रील प्रभुपाद अपने अनुयायियो को हरे कृष्ण विज्ञप्ति के मुद्रण और वितरण का निर्देश दे रहे थे और रेकॉर्ड कम्पनी के स्वामी ने हरे कृष्ण कीर्त्तन का लाग प्ले रिकार्ड का निर्माण करने के लिए आमन्त्रित किया था। श्रील प्रभुपाद के हरे कृष्ण कीर्त्तन का रिकार्ड बनाया गया और वह एक अत्यन्त लोकप्रिय एवं सफल रिकार्ड सिद्ध हुआ। अपने नवीन निवास मे श्रील प्रभुपाद भगवन्नाम कीर्त्तन, वैदिक दर्शन, सगीत, हरे कृष्ण जप, ललित कलाएँ एव भोजन बनाने की शिक्षा दे रहे थे। सर्वप्रथम श्रील प्रभुपाद ने स्वयं भोजन पकाया। उन्होंने सदा ही अपने

उदाहरण द्वारा शिक्षा दी। और उसका परिणाम यह था कि मैने अपने जीवन में सर्वाधिक अद्भुत शाकाहारी भोजन का आस्वादन किया। श्रील प्रभुपाद स्वयं ही कृष्ण प्रसाद का वितरण करते थे। श्रीकृष्ण प्रसाद में चावल, सब्जी, रोटी एवं दाल सम्मिलित होते थे। भोजन मे मसाला डालना, पकाने का माध्यम घी अथवा शुद्धिकृत मक्खन, कृष्ण-प्रसाद बनाते समय तापक्रम का अत्यन्त ध्यान रखना एव अन्य दूसरी सावधानियो के फलस्वरूप मुझे कृष्ण-प्रसाद में ऐसा स्वाद प्राप्त होता जैसा पूर्व मे कभी न हुआ था। इस कृष्ण-प्रसाद (भगवान् श्रीकृष्ण की दया) के सम्बन्ध मे सभी लोग मुझसे पूर्ण रूपेण सहमत थे। एक शान्ति सेना का कार्यकर्त्ता जो चीनी भाषा का विद्वान् भी था, वह श्रील प्रभुपाद से प्राचीन भारतीय शैली में चित्रकारी सीख रहा था। चित्रकारी के विषय मे उसके इस ज्ञान पर मै मुग्ध था। अपने दार्शनिक वादविवाद एव तर्क मे श्रील प्रभुपाद अपराजित रहते तथा थकान का अनुभव नही करते थे। वे अपने अनुवाद कार्य को रोक करके भी कृष्ण चर्चा आठ-आठ घण्टे किया करते थे। कभी-कभी सात अथवा आठ व्यक्ति उस छोटे से भली-भाँति स्वच्छ किए गए कक्ष मे ठसाठस भर जाते थे। उसी कक्ष मे वे कार्य करते थे, कृष्ण-प्रसाद (भोजन) ग्रहण करते थे और दो इंच मोटी गद्दी पर शयन करते थे। श्रील प्रभुपाद निरन्तर ही "सादा जीवन उच्च विचार" पर बल देते थे और इस सम्बन्ध मे वे अपना स्वय का उदाहरण प्रस्तुत करते। उन्होने बतलाया कि आध्यात्मिक जीवन एक विज्ञान है जिसे तर्क और कारण देकर सिद्ध किया जा सकता है, यह केवल भावुकता और अन्धविश्वास पर आधारित नही है। श्रील प्रभुपाद ने एक मासिक पत्रिका का आरम्भ किया और १९६६ की बसन्त ऋतु में न्युयार्क टाइम्स नामक समाचार पत्र ने उनके और उनके अनुयायियो के विषय में एक अनुकूल चित्रकथा प्रकाशित की। उसके कुछ समय पश्चात् ही दूरदर्शन (टेलीविजन) का एक दल आया और उन्होने हरे कृष्ण भक्तो पर एक रूपक समाचार कथा का निर्माण किया।

श्रील प्रभुपाद अद्भुत प्रेरणा देने वाले व्यक्ति थे। चाहे योग और कीर्त्तन द्वारा लाभ उठाने की मेरी व्यक्तिगत इच्छा रही हो अथवा श्रील प्रभुपाद के प्रति मेरा आरम्भिक आकर्षण, मुझे यह ज्ञात था कि मैं उनकी उन्नति का पग-पग पर अनुसरण करना चाहता हूँ। श्रीकृष्ण भावनामृत के प्रसार सम्बन्धी उनकी योजनाएँ बड़ी साहसिक दृढ विश्वास से परिपूर्ण थी और ये योजनाएँ सदैव पूर्ण सफल रही। उनकी आयु लगभग सत्तर की हो चुकी थी। अमेरिका मे वे अपरिचित व्यक्ति थे, और व्यवहारिक दृष्टि से अपने साथ कुछ भी लेकर नही आए थे। फिर भी कुछ ही महीनो मे श्रील प्रभुपाद ने अकेले ही श्रीकृष्णभावनामृत का अभियान आरम्भ कर दिया। सचमुच यह एक बुद्धि से परे की बात लगती थी।

अगस्त माह के एक सुबह सेकेण्ड एवेन्यु के स्टोर-फ्रंट मन्दिर में श्रील प्रभुपाद ने हम लोगो से कहा, "आज भगवान् श्रीकृष्ण का अविर्भाव दिवस है।" भक्तो ने चौबिस घण्टे का उपवास किया और मन्दिर के भीतर ही रहकर वह दिन व्यतीत किया। सायकाल भारत से कुछ अतिथि वहाँ आए। उनमे से एक, विश्व के दूसरे कोने में भारत की इस प्रामाणिक छवि को देखकर, अश्रुपूर्ण नेत्रो से अपने अपार हर्ष को प्रदर्शित कर रहे थे। अपने स्वप्न मे भी वे ऐसी कल्पना नही कर सकते थे। उन्होने श्रील प्रभुपाद की प्रशंसा की, उन्होने हार्दिक धन्यवाद दिया, मन्दिर मे दान दिया और उनके चरणो मे प्रणाम किया। इस दृश्य पर हम सभी भक्त आत्म विभोर हो रहे थे। तत्पश्चात् श्रील प्रभुपाद ने उन अतिथि से हिन्दी मे वार्ता की। मे केवल श्रील प्रभुपाद के भावो का अवलोकन कर रहा था। उनकी एक-एक भाव-मुद्राएँ मनुष्य मात्र के अन्तःकरण को स्पर्श कर लेती थी।

इस वर्ष के उत्तरार्ध मे मैने सेनफ्रान्सिस्को से श्रील प्रभुपाद के लिए प्रथम वायुयान का टिकट भेजा और वे न्युयार्क से वायुयान द्वारा आए। हवाई अड्डे पर हमलोगो ने अच्छी सख्या मे उनका हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्त्तन द्वारा स्वागत किया। इसके पश्चात् हम उनको गोल्डन गेट पार्क के पूर्वी छोर पर स्थित किराये के एक नए घर और स्टोरफ्रन्ट मन्दिर मे मोटर द्वारा ले गए। वहाँ का भी प्रबन्ध न्युयार्क के मन्दिर के समान ही था। हमने एक प्रतिरूप की स्थापना की थी। यह देख श्रील प्रभुपाद भाव विह्वल थे।

कुछ सप्ताह के उपरान्त सेनफ्रान्सिस्को मे भारत मे भेजा गया प्रथम मृदंग पहुँचा। मै श्रील प्रभुपाद के कक्ष मे ऊपर गया और उनको इसकी सूचना दी। उनके नेत्र हर्ष और आश्चर्य से खिल उठे तथा उन्होने उत्तेजित वाणी मे मुझे शीघ्र ही नीचे जाकर उस लकडी के सन्दूक को खोलने के लिये कहा। मै लिफ्ट द्वारा भूमितल पर पहुँचा और मुख्य द्वार की ओर उन्मुख हो ही रहा था कि श्रील प्रभुपाद प्रगट हो गए। वे मृदग को देखने के लिए इतने उत्सुक थे कि सीढियो से ही नीचे उतर आए और लिफ्ट को पराजित कर दिया। श्रील प्रभुपाद ने हमलोगो को उस सन्दूक को खोलने के लिए कहा और अपने पहने हुए गेरुए रग के कपड़े से एक कपड़ा फाड कर मृदग को बाँध दिया। मृदग का केवल अन्तिम भाग खुला था। उन्होने आदेश दिया कि वहाँ बँधा कपडा कभी भी अलग न किया जाय। तब उन्होने मृदग बजाने की विधि बताई और उचित देखभाल करने को कहा।

सन् १९६७ मे सेनफ्रान्सिस्को मे ही श्रील प्रभुपाद ने श्री जगन्नाथ देव की रथ यात्रा का उद्घाटन किया। यह रथ यात्रा उत्सव अब अनेकानेक उत्सवो मे से एक है जिसको अब सम्पूर्ण विश्व के लोग जानते है। ऐसे उत्सवो के लिए सम्पूर्ण

विश्व श्रील प्रभुपाद का आभारी है। भारत मे जगन्नाथ पुरी (उडीसा) मे तो यह रथ यात्रा लगभग दो हजार वर्षों से आयोजित की जा रही है और १९७५ तक यह उत्सव सेनफ्रान्सिस्को के निवासियो के मध्य इतना लोकप्रिय हो गया कि नगर के मेयर ने "सेनफ्रान्सिस्को मे रथयात्रा दिवस" के सार्वजनिक अवकाश की घोषणा कर दी।

सन् १९६६ के उत्तरार्ध से श्रील प्रभुपाद ने शिष्य स्वीकार करना आरम्भ कर दिया था। उन्होने सभी लोगो को अति शीघ्र ही संकेत किया कि वे लोग उनको भगवान् नही, वरन् भगवान् का दास समझे और उन्होने उन स्वयंघोषित गुरुओ की आलोचना की जो स्वयं अपने को गुरु घोषित करके अपने शिष्यो से भगवान् के रूप मे पूजन करने की अनुमति देते है। ऐसे ढोगी गुरु अत्यन्त तुच्छ हैं। एक दिन किसी ने उनसे प्रश्न किया, "क्या आप भगवान् है।" श्रील प्रभुपाद ने उत्तर दिया, "जी नही, मै भगवान् नही हूँ, मैं भगवान् का दास हूँ।" तत्पश्चात् एक क्षण के लिए चिन्तन किया और आगे कहा, "मै भगवान का दास भी नही हूँ। मै उनका दास बनने का प्रयत्न कर रहा हूँ। भगवान् का दास बनना कोई साधारण बात नही है।"

सन् १९७० के मध्य काल मे श्रील प्रभुपाद ने अनुवाद एवं प्रकाशन मे नाटकीय ढग से प्रचुर मात्रा मे वृद्धि की। सम्पूर्ण विश्व के कई विद्वानों ने उनके ग्रन्थो पर अनुकूल सम्मतियो की वर्षा की और अमेरिका के समस्त विश्वविद्यालयो ने उन ग्रन्थो को उच्चस्तर ग्रन्थो के रूप मे स्वीकार किया। सब मिलाकर उन्होने अस्सी ग्रन्थ प्रस्तुत किए जो उनके शिष्यो द्वारा पच्चीस भाषाओ मे अनूदित करके दस करोड से अधिक प्रतियाँ वितरित की गई। श्रील प्रभुपाद ने सम्पूर्ण विश्व मे १०८ मन्दिरो को स्थापना की। उनके लगभग १०,००० दीक्षा प्राप्त शिष्य है और लाखो की सख्या मे अनुयायी है। अपने इक्यासी वर्ष के जीवन काल तक श्रील प्रभुपाद लेखन और अनुवाद करते रहे।

श्रील प्रभुपाद न केवल एक महान् विद्वान्, गुरु, योगी, योग शिक्षक अथवा ध्यान कराने वाले शिक्षक थे वरन् वे सम्पूर्ण संस्कृति के मूर्तिमान स्वरूप थे और उन्होने उस संस्कृति को पश्चिमी जगत् मे स्थापित किया। मेरी दृष्टि मे और अनेक व्यक्तियो की दृष्टि मे वे अकेले ऐसे महापुरुष थे जिन्होने दूसरो की भलाई के लिए अपनी स्वयं की सुविधा और सुख का बलिदान कर दिया। वे अपने लिए जीवित न थे वरन् दूसरो के लिए जीते थे। उन्होने अनेक व्यक्तियो को अध्यात्मिक ज्ञान, कला, भाषा, वैदिक जीवन, स्वास्थ्य रक्षा, पोषण तत्व, औषधि विज्ञान, शिष्टाचार, गृह विज्ञान, कृषि, सामाजिक सगठन, शिक्षण पद्धति, अर्थशास्त्र इत्यादि की शिक्षा दी। मेरे लिए तो वे मेरे स्वामी, पिता और मेरे परम शुभचिन्तक थे।

प्रस्तावना।

श्रील प्रभुपाद कौन हैं ? प्राय: यह प्रश्न किया जाता है और ऐसे प्रश्न का उत्तर देना सदैव कठिन कार्य होता है। इसका कारण यह था कि श्रील प्रभुपाद सदैव अभिसामयिक उपाधियो से मुक्त रहे। भिन्न-भिन्न अवसरों पर लोगो ने उनको एक विद्वान्, एक दार्शनिक, एक सांस्कृतिक राजदूत, एक सफल लेखक, एक धार्मिक नेता, एक प्रामाणिक गुरु, एक सामाजिक आलोचक और एक पवित्र सन्त की उपाधियो से सम्बोधित किया। सत्य तो यह है कि उनमें उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त और भी कुछ था। निश्चय ही किसी ने उनको "आधुनिक ढोंगी गुरु" जैसा नही समझा, ऐसे गुरु जो पूर्व के आध्यात्मिकता के थोथे एवं अप्रमाणिक सस्करणो के साथ पाश्चात्य देशो मे पधारे। इसके पीछे उन तथाकथित गुरु वर्ग का उद्देश्य था हमारी तात्कालिक माँग को सन्तुष्ट करना एवं आध्यात्मिक जीवन से अनभिज्ञ लोगो का शोषण करना। किन्तु श्रील प्रभुपाद गहन बौद्धिक स्तर एवं आध्यात्मिक संवेदनशीलता से युक्त एक सच्चे साधु थे। उनके मन मे इस वर्त्तमान समाज के प्रति जिसमें आध्यात्मिक दृष्टिकोण का पूर्णतया अभाव है, अत्यधिक संवेदना एवं दया का भाव था।

मानव समाज को प्रकाश प्रदान करने हेतु, श्रील प्रभुपाद ने भारत के महान् आध्यात्मिक प्राचीन ग्रन्थो के अनुवाद एवं संक्षिप्त अध्ययन-सार के रूप मे लगभग अस्सी ग्रन्थो की रचना की। उनकी साहित्यिक रचनाओं का अंग्रेजी और अनेक विदेशी भाषाओ में मुद्रण किया जा चुका है। इतना ही नही सन् १९४४ मे श्रील प्रभुपाद ने अकेले ही अग्रेजी पत्रिका "बैक टू गॉड हेड" का प्रकाशन आरम्भ किया, जिसकी केवल अंग्रेजी भाषा मे ही प्रति माह पाँच लाख से अधिक प्रतियाँ वितरित की जाती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के पृष्ठो मे भी श्रील प्रभुपाद उसी सन्देश को प्रस्तुत करते हैं, जिसे महर्षि व्यासदेव ने हजारो वर्ष पूर्व लिपिबद्ध किया था और जो प्राचीन भारत के वैदिक साहित्य का सन्देश है। जैसा कि हम स्वय अवलोकन करेंगे कि प्रस्तुत ग्रन्थ मे श्रील प्रभुपाद श्रीमद्‌भगवद्‌गीता, श्रीमद्‌भागवत एव अन्य पुरातन वैदिक साहित्य से ही निर्बाध रूप से प्राय: उद्धरण देते है। वे हिन्दी भाषा के माध्यम से भी उसी चिरस्थायी शाश्वत ज्ञान का प्रसारण करते है, जिसे अन्य महान् सिद्ध आचार्यों द्वारा लाखो वर्षों से किया जा रहा है। यह ऐसा ज्ञान है जो हमारे भीतर स्थित आत्मा के रहस्य, प्रकृति और ब्रह्माण्ड के रहस्य और बाहर एवं हृदय मे स्थित परमात्मा रूपी श्रीमद्‌भागवत् कें रहस्यो का उद्‌घाटन करता है। श्रील प्रभुपाद

अत्यन्त स्पष्टता, सरलता एवं स्वीकारोक्ति ढग से अपने विषय की चर्चा करते है कि हमारे आधुनिक जगत् और हमारे स्वयं के जीवन मे आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान कितना युक्त-सगत है ।

इस विशिष्ट ग्रन्थ के लिए चयन किए गए छत्तीस विषयो के अन्तर्गत हम अमेरिका मे पदार्पण करने पर श्रील प्रभुपाद द्वारा रचित भावपूर्ण कविता का आस्वादन करते है । प्रख्यात हृदय रोग विशेषज्ञ (कार्डियोलॉजिस्ट) के साथ "आत्मा का अनुसधान" पर उनके विचार, लन्दन ब्रॉडकास्टिंग कम्पनी के साथ एक साक्षात्कार मे पुनर्जन्म का रहस्योद्घाटन और यथार्थ एव मिथ्या गुरु लोगो पर लन्दन टाइम्स के समक्ष प्रस्तुन की गई सजीव टिप्पणियो का लाभ उठाते है । श्रील प्रभुपाद और जर्मन क्रिश्चयन सन्त के मध्य श्रीकृष्ण एव क्राइस्ट के सम्बन्ध मे हुई वार्ता, पराचेतना और कर्म-बन्धन नियम सम्बन्धी उनकी अन्तर्दृष्टि, प्रमुख रूसी विद्वान् के साथ आध्यात्मिक साम्यवाद पर चर्चा और आधुनिक विज्ञान के पाखण्ड पर उनके शिष्यो के साथ हुई उनकी अन्तरंग चर्चा का भी इस ग्रन्थ मे समावेश है ।

अपनी इच्छानुसार चाहे आप इन लेखो को क्रमानुसार अध्ययन करे, अथवा अपनी रुचि के अनुरूप किसी भी एक विषय से ग्रन्थ का अध्ययन आरम्भ करे । आत्म-साक्षात्कार का विज्ञान आपको चुनौती देगा एव आप मे प्रेरणा एव प्रकाश-पुज का अविरल स्रोत उत्पन्न करेगा ।

—प्रकाशक की ओर से

श्रील प्रभुपाद के कार्य की प्रशस्तियाँ

वर्षों से अनेक लोगों ने श्रील प्रभुपाद के कार्य के प्रति सम्मान के भाव प्रकट किये है—वह कार्य जिसने भारत के कालातीत आत्म-साक्षात्कार के विज्ञान को पश्चिम में पहुँचा दिया।

* * *

"कृष्णकृपाश्रीमूर्ति ए० सी० भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद मूल्यवान् कार्य कर रहे हैं, और उनकी पुस्तकें मानव-जाति की मुक्ति की दिशा मे महत्त्वपूर्ण योगदान है।"

स्व० श्रीलाल बहादुर शास्त्री

भूतपूर्व प्रधान मन्त्री, भारत

"श्रील स्वामी भक्तिवेदान्त ने पाश्चात्य जगत् मे एक हितकारी स्मृति पत्र इस रूप मे प्रस्तुत किया है कि हमारी कर्मोद्युक्त एकागी सस्कृति का सामना सकटापन्न स्थिति से हो गया है और जो आत्मघाती हो सकती है, क्योकि इसमे प्रामाणिक आत्म-विषयक ज्ञान का अभाव है। चेतना की इस गम्भीरता के विना हमारे नैतिक तथा राजनैतिक प्रत्याखान शब्दप्रपच मात्र है।"

थॉमस मर्टन, थियोलॉजियन

"भारतीय योगियो द्वारा प्रतिपादित भगवत्प्राप्ति के अनेक मार्गो मे से श्रीचैतन्य महाप्रभु की परम्परा के दसवे गुरु श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा प्रदर्शित श्रीकृष्णभावनामृत का मार्ग बहुत महत्त्वपूर्ण है। देखने से ही विस्मय होता है कि श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी ने किस प्रकार दस वर्षो से भी कम समय मे अपनी व्यक्तिगत भक्ति, कार्य के प्रति अनन्य समर्पण, अथक शक्ति और सक्षम निर्देशन के द्वारा श्रीकृष्णभावनामृत का सगठन, हजारो भक्तो के पथ प्रदर्शन, ससार के प्रमुख नगरों मे श्रीराधाकृष्ण के मन्दिरो की स्थापना तथा भगवान् श्रीकृष्ण एव श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रतिपादित बहुसख्यक ग्रन्थो की रचना मे सफलता प्राप्त की है।"

प्रोफेसर महेश मेहता

प्रोफेसर आफ इण्डियन स्टडिज

यूनिवर्सिटी ऑफ विण्डसॅर, ओन्टेरियो, कॅनाडा

"श्रील ए० सी० भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद प्रतिष्ठापूर्ण गुरु तथा महान् परम्परा के उत्तराधिकारी है।"

जोसेफ जीन लेंजो डेल वास्तो

प्रमुख फ्रांसीसी दार्शनिक व लेखक

श्रील प्रभुपाद को महत्त्वपूर्ण रचनाओं में व्यक्त भक्ति तथा दर्शन की पराकाष्ठा का वर्णन करने को मेरे पास शब्द नही है। श्रील प्रभुपाद के सद्प्रयत्नों के कारण हमारी आने वाली पीढ़ियो को रहने के लिए निश्चय ही एक उत्तम संसार मिलेगा। वे (श्रील प्रभुपाद) अन्तर्राष्ट्रीय बन्धुत्व और मानव मात्र की आध्यात्मिक एकता के लिए कटिबद्ध है। भारत के बाहर का साहित्यिक ससार विशेषकर पश्चिम के देश श्रील प्रभुपाद के कृतज्ञ रहेगे, जिन्होने भारतीय श्रीकृष्णभावना के सम्वन्ध में उनको अत्यन्त वैज्ञानिक ढंग से ज्ञान दिया।

श्रीविश्वनाथ शुक्ल पी-एच० डी०

प्रोफेसर (हिन्दी), मुस्लिम विश्वविद्यालय,

अलीगढ़, यू० पी० (भारत)

"जन्मजात भारतीय होकर पश्चिम मे रहते हुए, यह देख कर मुझे वहुत कष्ट हुआ कि मेरे देश के इतने अधिक व्यक्ति गुरु तथा आध्यात्मिक नेता की भूमिका में पश्चिम मे आते है। जिस तरह पश्चिम का कोई भी साधारण व्यक्ति जन्म से ईसाई सस्कृति की भावना का ज्ञाता हो जाता है उसी प्रकार भारत का कोई भी साधारण व्यक्ति ध्यान तथा योग के सिद्धान्तो से जन्म से ही परिचित हो जाता है। दुर्भाग्यवश भारत से वहुत से अनैतिक व्यक्ति आ जाते है, योग के अपने अपूर्ण तथा साधारण ज्ञान को प्रदर्शित करते है, अपनी सामग्रियो से, जिनमे मन्त्र होते है लोगों को धोखा देते है, और अपने को ईश्वर के अवतार के रूप मे प्रस्तुत करते है। इस प्रकार वहुत अधिक ठग आ गये है और अपने मूर्ख अनुयायियो को विश्वास दिलाते हैं कि उन्हे वह भगवान् माने, इस प्रकार वे लोग जो वास्तव मे भारतीय संस्कृति के विद्वान् के अच्छे ज्ञाता है, चिन्तित व उद्विग्न है। इस कारण से श्रील ए० सी० भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के प्रकाशनो को देख कर प्रसन्नता से मैं वहुत उत्तेजित हूँ। ये प्रकाशन अनाधिकृत गुरुओ व योगियो द्वारा भयंकर ठगी को रोकने मे सहायक होगे, और सभी लोगो को प्राच्य संस्कृति को समझने के लिए अवसर प्रदान करेगे।

डॉ० कैलाश बाजपेयी

डायरेक्टर ऑफ इण्डियन स्टडिज

सेन्टर फॉर ओरियण्टल स्टडिज,

व यूनिवर्सिटि ऑफ मेक्सिको

"श्रील ए० सी० भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद की पुस्तके सुन्दर ही नही है बल्कि हमारे समय के लिए प्रासगिक भी है, क्योंकि एक राष्ट्र के तौर पर हम अपने जीवन के ढंग के लिए नये सांस्कृतिक प्रतिमान ढूंढ़ रहे है।

डॉ० सी० एल० स्प्रेडबरी

समाज विज्ञान के प्राध्यापक,

स्टीफेन एफ० ऑस्टीन स्टेट यूनिवर्सिटि

"यह मेरे लिए आदर की वात है कि मुझे भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट के प्रकाशनो के आनन्दपूर्ण परीक्षण का अवसर मिला। ये पुस्तके मुझे शिक्षा सस्थाओ तथा पुस्तकालयों के प्रयोग हेतु विशेष उपयोगी प्रतीत होती है। मै भारतीय दर्शन एवं सस्कृति के सभी प्राध्यापको और विद्यार्थियो को प्रयोग हेतु प्राचीन उत्कृष्ट ग्रन्थ श्रीमद्भागवतम् की विशेष सस्तुति करता हूँ। विद्वान् लेखक कृष्णकृपाश्रीमूर्ति ए० सी० भक्तिवेदान्त स्वामी ससार प्रसिद्ध सन्त और वर्तमान ससार मे वैदिक दर्शन के व्यावहारिक प्रयोग के पण्डित है। विश्वभर मे इन्होने शताधिक आध्यात्मिक आश्रम, वैदिक ज्ञान एवं आचरण हेतु स्थापित किया है। विश्व के सभी देशो मे सनातन धर्म तथा वैदिक जोवन की स्थापना का यह प्रयत्न यथार्थ मे अतुलनीय है। निश्चय ही मै वहुत ही आभारी हूँ कि भागवत का सन्देश ससार के लाभ हेतु स्वामी भक्तिवेदान्त ऐसे योग्य व्यक्ति द्वारा प्रसारित किया जा रहा है।"

डॉ० आर कालिया

अध्यक्ष, भारतीय पुस्तकालय संघ

"अपने अँग्रेजी अनुवाद तथा टिप्पणियो के द्वारा श्रील स्वामी भक्तिवेदान्त ने भगवद्-भक्तो की आशीर्वादात्मक सेवा की है। आजकल के चुनौतीपूर्ण समय मे, इन सच्चाइयों का विश्वजनीन प्रयोग आशीर्वाद की प्रतिज्ञा करता है, क्योकि इसका प्रयोग अन्धेरे को प्रकाश से दीप्त कर देगा, सत्य ही उन सभी इच्छुक आत्माओ के लिए प्रेरक लेखन कार्य है जो जीवन का क्यो, कहाँ से और कहाँ । जानने के जिज्ञासु हैं।"

डॉ० यूजिन एम० टाइबर्ग

संस्थापक तथा निदेशक

ईस्ट-वेस्ट कल्चरल सेंटर लॉस एंजिलिस, कैलीफोर्निया

". श्रीचैतन्य महाप्रभु की सीधी गुरु-परम्परा मे उत्तराधिकारी होने के फलस्वरूप, भारतीय रीति के अनुसार लेखक, कृष्णकृपाश्रीमूर्ति की गौरवपूर्ण उपाधि के अधिकारी है। स्वामी प्रभुपाद महोदय का सस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार

है। हम लोगो मे उनके द्वारा प्रतिपादित गीता के पढने की उत्कट इच्छा जागने का कारण यह है कि यह श्रीचैतन्य महाप्रभु के सिद्धान्तो का अधिकाधिक अर्थ देती है। एक ईसाई दार्शनिक एव भारतीय विद्या के विद्वान् से प्राप्त यह प्रशस्ति सच्ची मित्रता का प्रदर्शन है।"

ओलिवियर लेकॉम्बे

प्रोफेसर आनेररी, यूनिवर्सिटी दा पेरिस सॉरबॉने

भूतपूर्व निदेशक, इन्स्टिट्यूट ऑफ इण्डियन सिविलाइजेसन, पेरिस

"मैने श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी की पुस्तको को अत्यन्त सावधानी, ध्यान एवं गहरी रुचि से पढा है और मैंने उन्हे किसी भी भारतीय संस्कृति की सम्पत्ति के विषय की जिज्ञासा के लिए अगणनीय लाभप्रद पाया है। इन पुस्तको का लेखक प्रत्येक पृष्ठ पर प्रतिपाद्य विषयो का आश्चर्यजनक पाण्डित्य, दुर्ग्राह्य भावो की समझ एवं उनके प्रतिपादन मे सफलता का प्रदर्शन करता है। ये भाव उस व्यक्ति के दुर्लभ उपहार है जो वैष्णव दर्शन के सिद्धान्तो मे दृढता से पोषित हुआ है, उन सिद्धान्तो को इस पूर्णता से अपनाया है कि ऐसा प्रतीत होता है कि वह आध्यात्मिक प्रकाश के सर्वोच्च स्थान पर पहुँच चुका है जिसे सौभाग्ययुक्त अत्यल्प आत्माएँ प्राप्त करती हैं।"

डॉ० एच० वी० कुलकर्णी

अँग्रेजी व दर्शन के प्राध्यापक

ऊटा स्टेट यूनिवर्सिटी, लोगन, ऊटा

"निस्सन्देह स्वामीजी का लेखनकार्य आज के विश्व के अशान्त समाज के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान है।"

डॉ० सूद एल० भट्ट

भारतीय भाषाओ के प्राध्यापक

वोस्टन विश्वविद्यालय, वोस्टन, मेसाचुसेट्स

"कृष्णदास कविराज गोस्वामी की पुस्तक श्रीचैतन्यचरितामृत का श्रील ए० सी० भक्तिवेदान्त स्वामी द्वारा अनूदित अँग्रेजी अनुवाद का प्रकाशन उन दोनो प्रकार के लोगो के लिए आनन्द का कारण है, जो भारतीय विद्याओ के विद्वान् है तथा ऐसे साधारण-जन जो भारतीय आध्यात्मिक ज्ञान के जिज्ञासु है।

" जो भी व्यक्ति भाष्य को तन्मयता से पढता है उसे अनुभव होगा कि अन्य ग्रन्थो की भाँति यहाँ भी श्रील भक्तिवेदान्त ने भक्त के सुरुचिपूर्ण ज्ञान, उत्कट भक्ति तथा विद्वान् की पाठविषयक बौद्धिक कठोरता का मधुर मिश्रण प्रदान किया है।

" ये उत्कृष्टतापूर्ण रचनाएँ उन सभी लोगो के पुस्तकालयो द्वारा स्वागत की जायेगी, जो भारतीय धार्मिक तथा आध्यात्मिक साहित्य के अध्ययन के लिए प्रतिबद्ध हैं।"

डॉ० जे० ब्रूस लॉग

एशियन अध्ययन विभाग, कार्नेल विश्वविद्यालय

एक

आत्मा के विज्ञान की शिक्षा

मानव जीवन का लक्ष्य

"वर्त्तमान काल मे नेताओ द्वारा मानव समाज भ्रामक दिशा की ओर उन्मुख है। ये नेतागण अन्धे हैं, क्योकि इनको मानव जीवन के लक्ष्य— आत्म-साक्षात्कार एव भगवान् के साथ स्वय के विस्मृत सम्बन्ध को पुन स्थापित करना है। श्रीकृष्णभावनामृत अभियान मानव ममाज को इस महत्वपर्ण विषय पर प्रकाश डालने का प्रयास कर रहा है।"

अत्यधिक महत्वपूर्ण यह श्रीकृष्णभावनामृत अभियान मानवसमाज की आध्यात्मिक मृत्यु से रक्षा करने के लिये चलाया गया है। वर्त्तमान काल मे नेताओ द्वारा मानव समाज भ्रामक दिशा की ओर उन्मुख है। ये नेतागण अन्धे है, क्योकि इनको मानव जीवन के लक्ष्य का ही ज्ञान नही है। मानव जीवन का लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार एवं भगवान् के साथ स्वय के विस्मृत सम्बन्ध को पुन: स्थापित करना है। यही जीवन का अपूर्ण अंग है। श्रीकृष्णभावनामृत अभियान मानव समाज को इस महत्वपूर्ण विषय पर प्रकाश डालने का प्रयास कर रहा है।

वैदिक सभ्यता के अनुसार, श्रीकृष्ण अर्थात् भगवान् के साथ स्वयं के सम्बन्ध का साक्षात्कार कर लेना ही जीवन की सिद्धि है। श्रीमद्भगवद्गीता के दिव्य विज्ञान को समस्त महाजनो के द्वारा सम्पूर्ण वैदिक ज्ञान के आधार के रूप मे स्वीकार किया गया है। इस ग्रन्थ से यह हम समझते है कि न केवल मनुष्य, वरन् समस्त जीव भगवान् के भिन्न अंश है। अंश, अंशी के सेवार्थ बने है, जैसे मुख, हाथ, उंगलियाँ इत्यादि सम्पूर्ण शरीर की सेवा के लिए बनाए गए है। हम जीवात्मा, भगवान् के विभिन्न अंश होने के कारण भगवत्सेवा करने के लिए कर्त्तव्यबद्ध है।

वास्तव मे हमारी स्थिति तो यह है कि हम सदैव किसी न किसी की सेवा करते है, चाहे वह हमारे परिवार की हो अथवा देश या समाज की हो। यदि हमारे सामने सेवा करने के लिए कोई ऐसा व्यक्ति नही है, जिसकी सेवा की जाय तो कभी-कभी हम बिल्ली या कुत्ता पाल कर उसकी सेवा किया करते है। ये समस्त तत्त्व सिद्ध करते है कि हम वैज्ञानिक रूप से सेवा करने के लिए ही बनाए गए है, यद्यपि अपनी सामर्थ के अनुसार सर्वोत्तम सेवा करने पर भी हम सन्तुष्ट

नही हैं। न ही वह व्यक्ति सन्तुष्ट है जिसकी हम इतनी सेवा कर रहे है। भौतिक स्तर पर प्रत्येक व्यक्ति निराशा से परिपूर्ण है। इस निराशा का कारण यही है कि उचित पात्र की सेवा नहीं की जा रही है। उदाहरण के लिए, यदि एक वृक्ष की सेवा करना चाहते हैं तो अवश्य ही हमें उसकी जड़ मे जल देना होगा। यदि हम पत्तियों, शाखाओं आदि पर जल डालें तो नाममात्र का ही लाभ होगा। यदि भगवान् की सेवा की जाय तो अन्य सभी स्वतः सन्तुष्ट हो जाएँगे। फलस्वरूप, भगवान् की सेवा करने से समस्त कल्याणकारी कार्य तथा समाज, परिवार एवं देश की सेवा अपने आप ही हो जाती है।

यह प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य है कि वह भगवान् के साथ अपनी वास्तविक स्थिति को समझे और फिर उस सम्बन्ध के अनुसार कार्य करे। यदि ऐसा सम्भव हो जाय तो हमारा जीवन सफल है। किन्तु, कभी-कभी हम चुनौती देते हुए कहते हैं, कि "भगवान् है ही नहीं, अथवा "मैं भगवान् हूँ" या "मैं भगवान् की परवाह नही करता।" परन्तु यह चुनौतीपूर्ण भाव वास्तव मे हमारी रक्षा नही कर पाएगा। भगवान् हैं और प्रत्येक पल हम उनको देख सकते है। यदि हम अपने जीवन में, भगवान् को देखना अस्वीकार कर दे तो वे हमारे सामने क्रूर मृत्यु के रूप मे उपस्थित रहेगे। हम उनको यदि एक रूप में नही देखते तो हम उनको दूसरे रूप में देखेंगे। भगवान् के विविध रूप है वे समस्त ब्रह्माण्ड के आदि कारण हैं। एक दृष्टि से, उनसे बच पाना हमारे लिए सम्भव ही नही है।

यह श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन न तो अन्ध धार्मिक उन्माद है और न ही कुछ आधुनिक व्यक्तियो का विद्रोह, परन्तु परम भोक्ता, अद्वय भगवान् से सम्बन्धित हमारी शाश्वत आवश्यकता की पूर्ति का यह एक प्रामाणिक एवं वैज्ञानिक दृटिकोण है।

श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति का अर्थ यही है कि भगवान् के साथ अपना नित्य सम्बन्ध स्थापित कर उनके प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करना। इस प्रकार, कृष्ण-भक्ति हमे वर्तमान मनुष्य जीवन की सर्वोच्च सिद्धि को प्राप्त कर लेने मे समर्थ बनाती है।

हम सदैव स्मरण रखें कि आत्मा के द्वारा लाखो वर्ष तक चक्कर काटने के पश्चात् हमे यह विशेष मानव शरीर प्राप्त हुआ है। पशु जैसे निम्न जीवन की तुलना मे ऐसे विशेष जीवन में, आर्थिक प्रश्न सहज मे हल हो जाते है। सूअर कुत्ते, ऊँट और गधो इत्यादि की भी आर्थिक समस्याओ की आवश्कताएँ उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी कि हमारी। परन्तु जहाँ इन पशुओ तथा अन्य प्राणियों के आर्थिक प्रश्न प्राथमिक अवस्थाओ मे ही हल हो जाते है वही दूसरी ओर, प्रकृति के नियमो के द्वारा मनुष्यो को एक सुविधाजनक जीवन व्यातीत करने की सभी सुविधाएँ दी गई है।

शूकर अथवा अन्य पशुओ की तुलना में जीवन व्यतीत करने का विशेष श्रेष्ठ अवसर मनुष्य को क्यों दिया जाता है ? क्यो उच्च श्रेणी के शासन अधिकारी को साधारण से व्यक्ति की तुलना मे कही अधिक आरामदायक जीवन की विशेष सुविधाएँ दी जाती है ? इसका उत्तर अत्यन्त साधारण है। उस महत्वपूर्ण अधिकारी को एक सामान्य क्लर्क (लिपिक) की तुलना मे अधिक दायित्व वाले कर्त्तव्यो का पालन करना पडता है। उसी प्रकार, मनुष्यो का कर्त्तव्य पशुओ से श्रेष्ठ है, जो सदा ही अपने भूखे पेट को भरने मे लगे रहते हैं। परन्तु प्रकृति के नियमो के कारण, सभ्यता के आनुनिक पाशविक स्तर ने पेट भरने की समस्याओ मे केवल वृद्धि की है। जब हम इन परिष्कृत, पशु रूपी मनुष्यो मे से कुछ के पास पारमार्थिक जीवन व्यतीत करने का आग्रह ले कर जाते है कि आप पारमार्थिक जीवन का आश्रय ले तो ऐसे लोग कहते है कि वे केवल अपने पेट के सन्तोष के लिए ही कार्य करना चाहते है और उन्हे भगवान् के विषय मे जिज्ञासा करने की कोई भी आवश्यकता नही है। ऐसे लोगो में कठोर परिश्रम करने की उत्कण्ठा होने पर भी सदैव बेकारी की समस्या रहती है तथा प्रकृति के नियमो के कारण प्राप्त होने वाली अनेक विघ्न-बाधाओ का प्रश्न भी सदैव उनके सामने खडा रहता है। इतना सब होने के पश्चात् भी ऐसे व्यक्ति भगवान् को नही मानते है।

हमे यह जीवन शूकर अथवा श्वान के समान केवल कठिन परिश्रम करने के लिए नही, वरन् जीवन की चरम सिद्धि प्राप्त करने के लिए दिया गया है। यदि हम यह चरम सिद्धि (पूर्णता) नही चाहते है, तो हमे अत्यन्त कठोर परिश्रम करना ही पड़ेगा, क्योकि प्रकृति के नियमों के द्वारा हम ऐसा करने के लिए बाध्य किए जाएँगे। कलियुग अर्थात् वर्त्तमान युग के अन्त में ऐसा समय आने वाला है कि मनुष्यो को रोटी के टुकडे के लिए गधो के समान कठोर परिश्रम करना पडेगा। हम देखते है कि इस दशा का आरम्भ पहले से ही हो चुका है। आगामी प्रत्येक वर्ष मे कार्य अधिक करना पडेगा और उसके स्थान पर वेतन कम मिलता जाएगा। किन्तु इतना सब कुछ होने पर भी, मनुष्य पशुओ के समान कठोर परिश्रम करने के लिए नही बनाए गए है और यदि मनुष्य, मनुष्य के रूप मे अपने कर्त्तव्य का पालन करने मे असफल रहता है तो उसे प्रकृति के नियमो के द्वारा जीवन की निम्न योनियो मे जन्म लेने के लिए बाध्य किया जाएगा। भगवद्गीता बहुत ही स्पष्ट रूप से वर्णन करती है कि कैसे प्रकृति के नियम वश जीवात्मा जन्म ग्रहण करती है एव उसे किस प्रकार संसार मे जड पदार्थ का उपभोग करने की उपयुक्त देह तथा इन्द्रियाँ प्राप्त होती है।

श्रीमद्भागवद्गीता मे यह भी कहा गया है कि कुछ लोग भगवद्-प्राप्ति के मार्ग से चलने का प्रयत्न तो करते है, परन्तु उसे पूर्ण नही कर पाते। दूसरे शब्दो

में, ऐसे व्यक्ति कृष्ण-भक्ति मे पूर्ण सिद्धि प्राप्त करने मे असफल रह जाते है। ऐसे असफल जीवो को आध्यात्मिक रूप से उन्नत परिवार मे या सम्पन्न वैश्य परिवार मे जन्म लेने का अवसर दिया जाता है। यदि योग-भ्रष्ट व्यक्तियो को कुलीन परिवार मे जन्म मिलता है, तो फिर उन जीवो के विषय मे तो कहना ही क्या है, जो वास्तव मे कृष्ण-भक्ति की सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर लेते है ? अत: भगवान् के धाम मे जाने का प्रयास, चाहे वह आधा ही पूर्ण हुआ हो, अगले जीवन मे उत्तम जन्म प्राप्त करने का निश्चित आश्वासन देता है। आध्यात्मिक और आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न इन दोनो प्रकार के व्यक्तियो को पारमार्थिक उन्नति लाभ दायक है।

ऐसे परिवारो मे मनुष्य उस स्थान से भक्ति मे आगे उन्नति करने का अवसर प्राप्त होता है; जिस स्थान पर पूर्व जन्म मे उसने भक्ति छोडी थी। उत्तम परिवार मे जन्म लेने के कारण आध्यात्मिक उन्नति करने मे परिवार का वातावरण अनुकूल सिद्ध होता है। श्रीमद्भगवद्गीता ऐसे सौभाग्यशाली परिवार मे उत्पन्न व्यक्तियो को स्मरण दिलाती है कि उनका यह सौभाग्य, पूर्व जन्म मे की गई भक्ति के कारण ही है। दुर्भाग्यवश, ऐसे परिवारो मे उत्पन्न बालक भी माया से भ्रमित हो जाने के कारण गीता का अध्ययन नही करते।

सम्पन्न परिवार मे प्राप्त हुआ जन्म, जीवन काल के आरम्भ से ही पर्याप्त भोजन प्राप्त करने की समस्या हल कर देता है और बाद मे अन्य परिवारो की तुलना मे वह व्यक्ति सरल तथा अधिक सुविधाजनक ढंग से जीवन व्यतीत कर सकता है। ऐसी स्थिति प्राप्त करने पर, आध्यात्मिक साक्षात्कार मे उन्नति करने का एक सुअवसर प्राप्त हो जाता है। परन्तु यह दुर्भाग्य नही तो और क्या है ! वर्तमान कलियुग (जो यन्त्रो एव यन्त्रो जैसे स्वाभाव वाले लोगो से परिपूर्ण है) के प्रभाव के कारण धनी परिवार के पुत्र विषय-भोग की ओर मार्गभ्रष्ट हो जाते है। इस प्रकार आध्यत्मिक प्रकाश के लिए प्राप्त हुए इस अवसर को वे भूल जाते है। अतएव प्रकृति अपने नियमो के माध्यम से इन सुनहले घरो मे आग लगा रही है। असुर रावण की सोने की लंका ही तो थी जो पल भर मे भस्म हो गई। प्रकृति का यही नियम है।

श्रीमद्भगवद्गीता, **श्रीकृष्णभावनामृत** अर्थात् कृष्ण-भक्ति के दिव्य इन्द्रियातीत विज्ञान का प्रामाणिक अध्ययन है और सभी उत्तरदायी राष्ट्राध्यक्षों का यह कर्त्तव्य है कि वे अपने आर्थिक एवं अन्य कार्यक्रमो की रूपरेखा भगवद्गीता के आधार पर बनाएँ। जीवन के आर्थिक प्रश्नो को एक अस्थिर कार्यक्रम के आधार पर सन्तुलित करने के लिए हम नही बनाए गए है, वरन् हम प्रकृति के नियमो से उत्पन्न होने वाली जीवन की आत्यन्तिक (चरम) समस्याओ को हल करने के लिए बनाए गए है। वह सभ्यता निष्क्रिय है, निर्जीव है, जिसमें पारमार्थिक

आन्दोलन के लिए कोई स्थान नही है । आत्मा शरीर को चलाती है और चेतनायुक्त शरीर से सम्पूर्ण विश्व चलायमान है । हम देह के विषय मे तो अत्यधिक चिन्तित है, परन्तु हमें उस आत्मा का कोई ज्ञान ही नही है, जो इस देह को चला रही है । आत्मा के बिना शरीर निष्क्रिय या मृत है ।

यह मानव शरीर एक अत्यधिक उत्तम वाहन है जिसके द्वारा हम शाश्वत जीवन तक पहुँच सकते है । यह अज्ञान रूपी भवरोग के सागर को पार करने के लिए एक दुर्लभ एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण नाव है । इस नाव पर एक कुशल नाविक के रूप में गुरु महाराज की निःशुल्क सेवा रहती है । गुरु-कृष्ण कृपा के द्वारा नाव, जल के ऊपर अनुकूल दिशा को प्राप्त करती है । इन सब मंगलमय साधनो के एक ही साथ मिल जाने पर ऐसा कौन व्यक्ति होगा, जो इस अवसर का लाभ न उठाए ? यदि कोई इस सुन्दर अवसर की अपेक्षा करता है तो यह जानना चाहिए कि वह जानबूझ कर आत्महत्या कर रहा है ।

निश्चय ही रेल के प्रथम श्रेणी के डिब्बे मे प्रचुर सुविधाएँ रहती है, परन्तु रेलगाडी अपने गन्तव्य की ओर यदि न बढे, तो उस वातानुकूलित डिब्बे का लाभ ही क्या है ? आजकल की सभ्यता इस भौतिक शरीर को अधिकाधिक सुविधा प्रदान करने के लिए अत्यन्त चिन्तित है । जीवन के वास्तविक गन्तव्य की किसी को कोई जानकारी ही नही है । जीवन का वास्तविक गन्तव्य तो भगवान् के धाम मे लौटना है, हमे एक सुविधाजनक डिब्बे मे केवल बैठे ही नही रहना चाहिए, वरन् यह भी देखना चाहिए कि हमारा वाहन अपने सच्चे गन्तव्य की ओर बढ़ भी रहा है अथवा नही । यदि हम जीवन की प्राथमिक आवश्यकता अर्थात् आध्यात्मिक स्वरूप की पुनः प्राप्ति को भूल कर केवल अपने भौतिक शरीर को सुखसुविधा देते रहे तो इससे परम लाभ न हो सकेगा । मानव जीवन रूपी नाव की रचना ही इस प्रकार हुई कि इसे परमार्थिक गन्तव्य की ओर अवश्य बढ़ाना चाहिए । दुर्भाग्य से यह शरीर भौतिक चेतना की पाँच शृ खलाओ से बँधा हुआ है . (१) आध्यात्मिक तथ्यो की अज्ञानता के कारण इस भौतिक देह के प्रति आसक्ति रखना, (२) शरीर का सम्बन्ध होने के कारण स्वजनो मे आसक्ति रखना, (३) जन्मभूमि, घर, घर की वस्तुएँ, भूमि सम्पत्ति, व्यापारिक कागजातो इत्यादि के प्रति आसक्ति रखना, (४) भौतिक विज्ञान के प्रति आसक्ति रखना, जो सदा ही आध्यात्मिक प्रकाश के अभाव के कारण रहस्यमय बना रहता है और (५) भगवान् तथा उनके भक्तो को जाने बिना ही धार्मिक विधियो एव तीर्थ स्थानो मे आसक्ति रखना । (वास्तव में भगवान् एवं उनके भक्तो की उपस्थिति के कारण ही तीर्थस्थान पवित्र होते है) । भगवद्गीता के पन्द्रहवे अध्याय मे मानव शरीर रूपी नाव को बाँधे रखने वाली इन आसक्तियों की विस्तार से व्याख्या की गई है । वहाँ इन आसक्ति रूपी शृंखलाओ की तुलना

गहरी जड़ों वाले एक पीपल के वृक्ष से की गई है। इसकी जड़ो का सम्बन्ध भूमि के साथ नित्य ही बढ़ता जाता है। ऐसे बलवान् पीपल के वृक्ष को उखाड़ फेंकना अत्यधिक कठिन कार्य है, परन्तु भगवान् इसके लिए निम्नलिखित विधि की सलाह देते हैं, "इस वृक्ष के असली रूप की प्रतीति इस ससार मे नही हो सकती। इसके आदि, अन्त अथवा आधार को ही कोई नही जान सकता। परन्तु इस संसार-वृक्ष को दृढ़ निश्चय के साथ वैराग्य रूपी शस्त्र के द्वारा काट कर, फिर उस परम पद को खोजना चाहिए, जिसे प्राप्त होकर ससार मे पुनः नही आना पड़ता। वहाँ उस परम धाम में आदि पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण की शरण ली जाती है, जिससे प्रत्येक वस्तु का आरम्भ हुआ है और अनादि काल से जिसमे प्रत्येक वस्तु विश्वास कर रही है।" [गीता १५-३-४]

न तो वैज्ञानिक और न ही शुष्क दार्शनिक, ब्रह्माण्ड की स्थिति के सम्बन्ध में अभी तक किसी भी निष्कर्ष पर पहुचने मे सफल हुए है। उन्होने अब तक किया ही क्या है? इस सम्बन्ध मे केवल विभिन्न सिद्धान्तो की स्थापना। उनमे से कुछ कहते हैं कि संसार सत्य है, कुछ कहते है कि स्वप्न है और कुछ यह भी कहते है कि यह नित्य है। इस प्रकार प्राकृत विद्वानो के द्वारा विभिन्न विचारधाराएँ प्रस्तुत की जाती हैं, परन्तु तथ्य तो यह है कि ब्रह्माण्ड के आरम्भ या इसकी सीमाओ की किसी भी प्राकृत वैज्ञानिक या शुष्क दार्शनिक के द्वारा खोज नही की गई है। कोई भी यह नही कह सकता कि ब्रह्माण्ड का आरम्भ कैसे हुआ अथवा यह अन्तरिक्ष में किस प्रकार से तैर रहा है। वे सिद्धान्त की दृष्टि से कुछ नियमों का प्रस्ताव रखते हैं जैसे गुरुत्वाकर्षण का नियम, परन्तु वास्तव मे वे इस नियम का कोई व्यवहारिक उपयोग नही कर सकते। सत्य के वास्तविक ज्ञान के अभाव के कारण ही प्रत्येक व्यक्ति कुछ प्रसिद्धि पाने के उद्देश्य से अपने स्वय के सिद्धान्त को आगे बढ़ाने के लिए उत्सुक रहते है। परन्तु वास्तविकता तो यह है कि यह ससार दु.खो से भरा पड़ा है और कोई भी व्यक्ति इस विषय पर केवल कुछ सिद्धान्त प्रस्तुत करने मात्र से इन दु:खो के ऊपर विजय नही प्राप्त कर सकता। भगवान् का एक विशेष लक्षग है कि वे **'स्वराट्'** हैं अर्थात् उनको सृष्टि की प्रत्येक वस्तु का पूर्ग रूप से ज्ञान है। वे 'स्वराट्' भगवान् हमे जानकारी देते है कि हमारा परम कल्याण इसी मे है कि हम इस दु:खालय रूपी ससार से मुक्ति पाने की इच्छा करे। हमे ऐसी सभी वस्तुओ से अनासक्त होना है, जो प्राकृत है। इस खराब सौदे का सबसे अच्छा उपयोग करने के लिए यह परमावश्यक है कि हमारा भौतिक जीवन शत-प्रतिशत परमार्थ में संलग्न हो जाए। लोहा अग्नि नही है, परन्तु अग्नि के निरन्तर सम्पर्क मे रहने के कारण इसे भी अग्नि मे परिवर्तित किया जा सकता है। उसी प्रकार प्राकृत क्रियाओ के प्रति अपनी अनासक्ति को अप्राकृत कर्मों मे संलग्न रहने के द्वारा प्रभावशाली

बनाया जा सकता है, प्राकृत रूप से जड़ बन जाने के द्वारा नही। प्राकृत जड़ता, प्राकृत कार्यों का एक नकारात्मक लक्ष्य है, परन्तु अप्राकृत कर्म न केवल प्राकृत कार्यो को रोक देते है, वरन् हमको वास्तविक जीवन के कार्यों के प्रति क्रियाशील भी कर देते है। हमे शाश्वत जीवन अर्थात् सच्चिदानन्दमय, परब्रह्म भगवान् के संग की खोज करने के लिए अवश्य ही उत्सुक रहना चाहिए। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण के उस परम धाम का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि उनके नित्य लोक मे चले जाने पर फिर कोई वहाँ से वापस नही लौटता। भगवान् के धाम की विशेषता तो यही है।

हमारा वर्तमान सासारिक जीवन कब आरम्भ हुआ इसकी खोज नही की जा सकती और न ही हमारे लिए यह जानना आवश्यक है कि हम इस संसार से किस प्रकार बँध गए है। हमे केवल इतना जानने से सन्तुष्ट होना पड़ेगा कि किसी न किसी प्रकार से यह सासारिक जीवन अनादि काल से चल रहा है। अब हमारा कर्त्तव्य परम-ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण की शरण लेना है, जो सब कारणो के आदि कारण है। भगवद्गीता [१५ ५] मे भगवान् के धाम में लौटने की प्राथमिक योग्यता की जानकारी दी गई है, "जो मोह, मिथ्या मान और असत्सग से मुक्त हैं, जिनको भगवान् के स्वरूप का नित्य ज्ञान रहता है, जिनकी सम्पूर्ण प्राकृत कामनाएँ नष्ट हो चुकी है, जो सुख-दुख के द्वन्द्वो से मुक्त है और उन परम पुरुष भगवान् की शरण लेना जानते है, वे ज्ञानीजन उस अविनाशी नित्य धाम को प्राप्त होते हैं।"

अमूढ़ (ज्ञानी) व्यक्तियो के कुछ लक्षण इस प्रकार है : (१) उनको आध्यात्मिक स्वरूप का ज्ञान है, उनकी उस स्वरूप मे निष्ठा जाग्रत हो चुकी है और वे भवरोग से मुक्त हो चुके है। (२) मोह से मुक्त है। एवं प्रकृति के गुणो के परे जा चुके है। (३) वे आध्यात्म तत्त्व को समझने मे पूर्ण सलग्न है और उन्होने अपने को इन्द्रिय-भोग से पूर्ण रूपेग अलग कर लिया है। ऐसे व्यक्ति ही भगवान् के धाम मे प्रवेश कर सकते है। अमूढ और मूढ़ (मूर्ख तथा अज्ञानी) व्यक्तियो मे अन्तर यही है कि अमूढ़ लोग सुख-दु ख के द्वन्द्वो से मुक्त है।

भगवान् के धाम का स्वरूप कैसा है? उसका वर्णन भगवद्गीता [१५ ६] में इस प्रकार हुआ है, "मेरा वह स्वय प्रकाशित धाम न सूर्य, न चन्द्रमा और न अग्नि द्वारा ही प्रकाशित होता है। उस ससार को प्राप्त कर जीव पुनः इस संसार मे नही आता।" यद्यपि इस सृष्टि का प्रत्येक स्थान भगवान् के धाम के भीतर ही है, क्योकि भगवान् ही समस्त लोको के परम स्वामी है तथापि भगवान् का एक व्यक्तिगत धाम है। वह लोक "परम धाम" कहलाता है। जिस ब्रह्माण्ड मे हम अभी निवास कर रहे है, वह उस "परम धाम" से पूर्ण भिन्न है। इस पृथ्वी पर ही कई देश है जहाँ जीवन का स्तर उच्च है और कुछ देश है जहाँ स्तर निम्न है। पृथ्वी के अतिरिक्त

भी इस ब्रह्माण्ड में असंख्य लोक बिखरे पडे हुए है। उनमे से कुछ इस पृथ्वी से श्रेष्ठ हैं तथा कुछ निम्न स्तर के हैं। इस ब्रह्माण्ड के सभी लोक बहिरंगा शक्ति अर्थात् प्राकृत-शक्ति के कार्य क्षेत्र मे आते है। इन सभी लोको को अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए सूर्य अथवा अग्नि के प्रकाश की आवश्यकता होती है, क्योकि प्राकृत ब्रह्माण्ड अन्धकार के क्षेत्र मे ही स्थित है। इस क्षेत्र के परे, एक वैकुण्ठ धाम है, जो भगवान् की परा प्रकृति के द्वारा क्रियाशील है। उस क्षेत्र का उपनिषदो मे इस प्रकार वर्णन किया गया है, "वहाँ सूर्य, चन्द्रमा अथवा तारो की आवश्यकता नहीं है और न ही वह धाम अग्नि के किसी रूप से प्रकाशित होता है। उस दिव्य प्रकाश के परावर्तन के कारण ही ये प्राकृत ब्रह्माण्ड प्रकाशित होते है और वह परा प्रकृति सदैव स्वयं प्रकाशित है। अतः हम रात्रि के गहन अन्धकार मे भी मन्द प्रकाश का अनुभव कर सकते है।" "हरिवंश" नामक ग्रन्थ मे भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं अपनी परा (अप्राकृत) प्रकृति का इस प्रकार वर्णन किया है, "निर्विशेष (निराकार) ब्रह्म का देदीप्यमान् प्रकाश भौतिक जगत् एवं वैकुण्ठ जगत् दोनो को ही प्रकाशित करता है। परन्तु हे भारत! तुम यह निश्चय ही समझ लो कि यह ब्रह्म प्रकाश मेरे अंग की कान्ति है।" इस निष्कर्ष को ब्रह्म संहिता मे भी प्रमाणित किया गया है। हम यह न सोचे कि हम उस परम धाम को अन्तरिक्ष यान जैसे किसी भी भौतिक साधन के द्वारा प्राप्त कर सकते है, परन्तु हमे यह निश्चित ही याद रहे कि जो भी कृष्ण-लोक की प्राप्ति करता है, वह सच्चिदानन्द जीवन का निरन्तर रसास्वादन कर सकता है। अधोन्मुख जीव होने के कारण, हमारे अस्तित्व के दो पक्ष है। एक भौतिक अस्तित्व है, जो जन्म, मृत्यु, जरा एवं व्याधि के दुखो से परिपूर्ण है। दूसरा हमारा आध्यात्मिक अस्तित्व है जिसमे निर्बाध सच्चिदानन्द जीवन की प्राप्ति होती हैं। भौतिक अस्तित्व मे हम देह एव मन की प्राकृत धारणा द्वारा शासित किए जाते है। परन्तु आध्यात्मिक अस्तित्व मे हम भगवान् के परमानन्दमय दिव्य सम्पर्क का सदैव रसास्वादन कर सकते है। आध्यात्मिक अस्तित्व मे भगवान् हमारी दृष्टि से कभी भी ओझल नही होते।

श्रीकृष्णभावनामृत का यह अभियान समस्त मानव-जाति को उस आध्यात्मिक अस्तित्व पर लाने का प्रयास कर रहा है। हम अपनी वर्त्तमान भौतिक भावना के कारण जीवन की भौतिक धारणाओ मे आसक्त है। वह धारणा स्थूल इन्द्रियो से सम्बन्धित है। परन्तु कृष्ण-भक्ति अर्थात् श्रीकृष्णभावनामृत के द्वारा वह धारणा तत्काल ही दूर की जा सकती है। यदि हम भक्ति के सिद्धान्तो का पालन करे, तो जीवन की भौतिक धारणाओ का लंघन कर सकते है। विविध भौतिक कार्य-कलापों मे संलग्न रहने पर भी हम सतोगुण, रजोगुण एवं तमोगुण से मुक्त हो सकते है। भौतिक कार्यों मे लिप्त कोई भी व्यक्ति इस श्रीकृष्णभावनामृत अभियान के साहित्य

के द्वारा परम लाभ प्राप्त कर सकता है। ये ग्रन्थ संसार रूपी पीपल के दुर्जेय वृक्ष की जडो को छिन्न-भिन्न करने में लोगो की सहायता करते है। ये प्रामाणिक साहित्य हमे जीवन की भौतिक धारणा से सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु का त्याग एवं पग-पग पर आध्यात्मिक रसामृत का आस्वादन करने का प्रशिक्षण देते है। यह अवस्था केवल भक्ति से प्राप्त की जा सकती है और अन्य किसी भी साधन से नही। ऐसी दिव्य प्रेममयी सेवा के द्वारा इस वर्तमान जीवन में ही तत्काल मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। अधिकाश आध्यात्मिक प्रयासो मे भी भौतिकतावाद का पुट लगा रहता है, परन्तु विशुद्ध भक्ति भौतिक कलुष से परे है। जिनको भगवद्-धाम में लौटने की कामना है उनके लिए आवश्यक केवल इतना ही है कि वे इस श्रीकृष्णभावनामृत अभियान के सिद्धान्तो का पालन करें तथा परम ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के चरणारविन्द के मधुपान हेतु अपनी चेतना को मधुकर बना लें।

"श्रीकृष्णभावनामृत ही आपकी मौलिक चेतना है"

"श्रील प्रभुपाद फ्रीलांस के सवाददाता सैंडी निक्सन से कहते हैं, अभी आपकी चेतना अनेकानेक अवाछनीय उपाधियो से आवृत्त है। आपको इसे स्वच्छ करना पडेगा और यह स्वच्छ होते ही— श्रीकृष्णभावनामृत मे परिणत हो जाएगी। हमारी चेतना जल के समान है। जल स्वभाव से ही स्वच्छ एव पारदर्शी है, परन्तु कभी-कभी वह कीचयुक्त हो जाता है यदि आप जल से सम्पूर्ण कीच को छान दे, तो पुन वह अपनी मौलिक स्वच्छ और पारदर्शी अवस्था को प्राप्त कर लेता है।"

निक्सन—मेरा प्रथम प्रश्न अत्यन्त मूलभूत है, श्रीकृष्णभावनामृत क्या है ?

श्रील प्रभुपाद—'श्रीकृष्ण' का अर्थ है भगवान्। हमारा भगवान् के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है, क्योंकि वे हमारे मूल पिता है। परन्तु हमें इस सम्बन्ध का विस्मरण हो गया है। जब हमारी रुचि यह जानने मे हो जाती है कि "श्रीभगवान् के साथ मेरा क्या सम्बन्ध है ? जीवन का लक्ष्य क्या है ?" तब हमें कृष्णभावना भावित (कृष्ण-भक्त) कहा जाता है।

निक्सन—साधक में श्रीकृष्णभावनामृत का विकास किस प्रकार होता है ?

श्रील प्रभुपाद—श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-प्रेम प्रत्येक जीवमात्र के हृदय में पहले से ही विद्यमान है। किन्तु हम अपने भौतिक (बद्ध) जीवन के कारण इसका विस्मरण कर चुके है। हरे कृष्ण महामन्त्र अर्थात्—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे॥

का कीर्त्तन (पहले से ही हमारे हृदय में विद्यमान) श्रीकृष्णभावनामृत को जाग्रत कर देता है। उदाहरण के लिए देखिए—कुछ मास पूर्व इन अमेरिकन एव युरोपियन युवको तथा युवतियो को श्रीकृष्ण के विषय मे कुछ पता तक न था, परन्तु कल ही हम लोगो ने देखा कि ये लोग श्रीजगन्नाथजी की रथयात्रा-महोत्सव मे किस प्रकार हरे कृष्ण कीर्त्तन के साथ रास्ते भर भावपूर्ण नृत्य कर रहे थे (श्रीजगन्नाथ पुरी में ममाया जाने वाला श्रीजगन्नाथजी का रथयात्रा-महोत्सव अब हरे कृष्ण सघ के माध्यम से विश्व के समस्त बड़े-बड़े नगरो में अत्यन्त भव्यतापूर्वक मनाया जाता है)।

क्या आप सोचते है कि वह सब कृत्रिम था ? जी नही। कृत्रिम भाव से कोई भी लगातार घण्टों तक कीर्त्तन एवं नृत्य नही कर सकता। एक प्रामाणिक विधि का पालन करके इन लोगो ने वास्तव मे अपनी श्रीकृष्णभावनामृत को अर्थात् कृष्ण-प्रेम को जाग्रत कर लिया है। इसको श्रीचैतन्यचरितामृत मे समझाया गया है [मध्य २२. १०७]:

नित्य सिद्ध कृष्ण प्रेम 'साध्य' कभु नय ।
श्रवणादि-शुद्ध-चित्ते करये उदय ॥

सभी के हृदय में कृष्ण-भक्ति सुप्त अवस्था में विद्यमान है और जब मनुष्य भक्तो के सम्पर्क मे आता है, तब यह भक्ति जाग्रत हो जाती है। श्रीकृष्णभावनामृत कोई कृत्रिम वस्तु नही है। जिस प्रकार से एक युवक एक युवती के प्रति अपने स्वाभाविक आकर्षण को युवती के संग रहकर जाग्रत कर लेता है, उसी प्रकार यदि हम भक्तों के साथ रहकर कृष्ण-कथा सुने, तो अपने सुप्त कृष्ण-प्रेम को जाग्रत कर सकते है।

निक्सन—श्रीकृष्णभावनामृत और क्राइस्टभावना में क्या अन्तर है ?

श्रील प्रभुपाद—क्राइस्टभावना भी श्रीकृष्णभावनामृत ही है, परन्तु आजकल लोग क्रिश्चियानिटी के विधि-विधान अर्थात् जीसस क्राइस्ट के आदेशो का पालन नही करते, इसीलिए वे भगवद्-भावनामृत के स्तर तक नही आ पाते।

निक्सन—समस्त धर्मो के मध्य कृष्ण-भक्ति की क्या विशेषता है ?

श्रील प्रभुपाद—प्राथमिक रूप से धर्म का अर्थ है भगवान् को जानना और उनसे प्रेम करना है। यह धर्म है। आजकल प्रशिक्षण के अभाव मे कोई भी भगवान् को नही जानता, तो फिर उनसे प्रेम करने का प्रश्न ही कहाँ उठता है। लोग मन्दिर, मस्जिद एवं चर्च (गिरजाघर) मे जाकर यह प्रार्थना करके सन्तुष्ट हो जाते हैं, "हे भगवन्, हमे आप हमारा दैनिक भोजन दीजिए।" श्रीमद्भागवत मे (इमे) **कैतव** अर्थात् धोखे वाला धर्म कहा गया है, क्योकि इसका लक्ष्य भगवान् को जानना और उनसे प्रेम करना नही, वरन् कुछ व्यक्तिगत लाभ उठाना है। दूसरे शब्दो में, यदि मैं किसी धर्म-विशेष को पालन करने का दावा करता हूँ, परन्तु मुझे यही ज्ञात नही कि भगवान् कौन हैं, अथवा उनसे किस प्रकार प्रेम करना है, तो मैं एक **कैतव धर्म** का ही अभ्यास कर रहा हूँ। जहाँ तक क्रिश्चयन (ईसाई) धर्म का सम्बन्ध है, भगवान् को समझने के लिए उसमे पर्याप्त अवसर दिया गया है, परन्तु कोई उस अवसर का लाभ नही उठा रहा है। उदाहरण के लिए बाइबिल मे आदेश है, "तुमको हत्या नही करनी चाहिए," परन्तु ईसाई लोगो ने विश्व के सर्वोत्तम कसाईखाने बनवाए है। वे भगवद्भावित हो ही कैसे सकते है, यदि वे लॉर्ड जीसस क्राइस्ट की अवज्ञा करे ? और ऐसा केवल ईसाई धर्म में नही वरन् प्रत्येक धर्म में हो रहा है। हिन्दू, मुस्लिम या 'क्रिश्चयन' नाम केवल एक रबर की मोहर है।

४

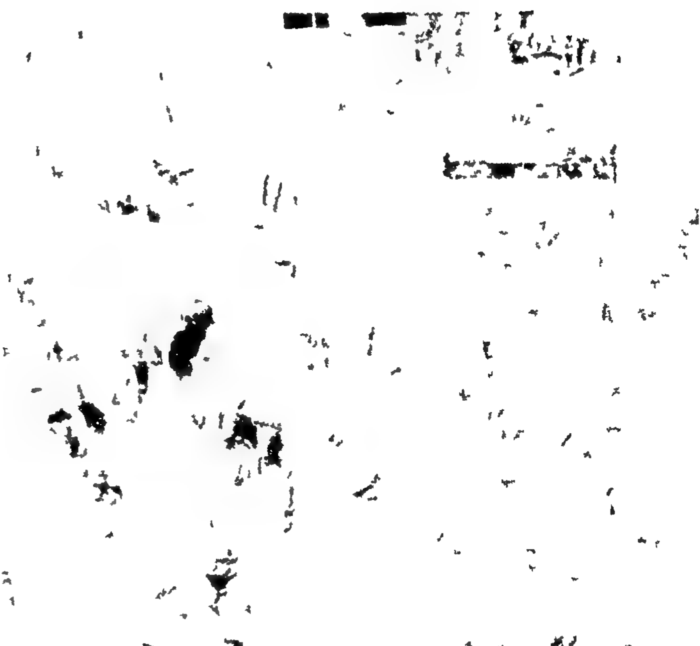
५



२





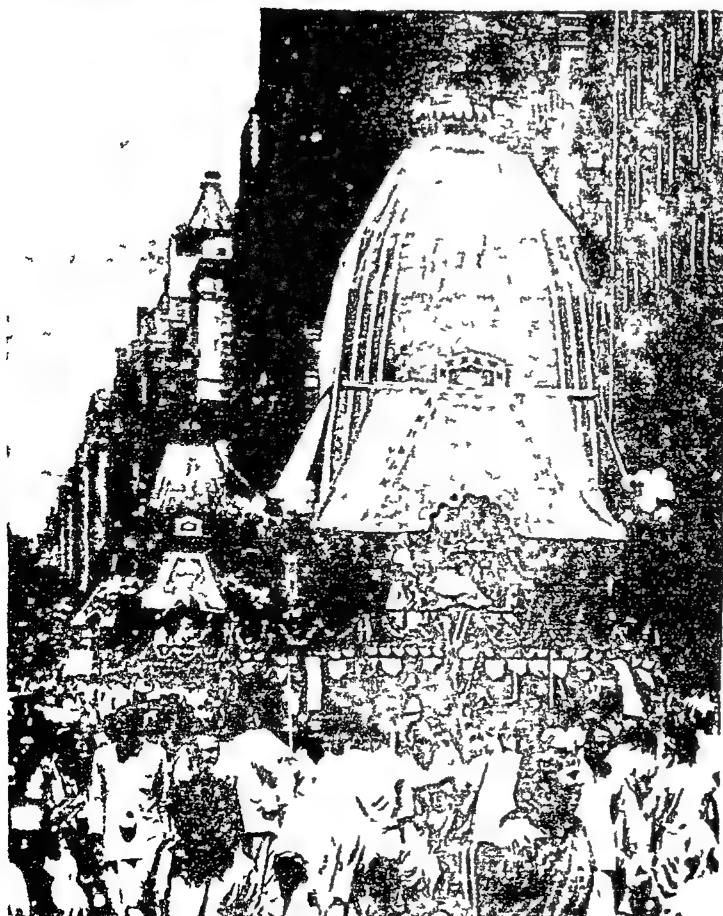




४ श्रीकृष्णभावनामृत अभियान की निश्चित सफलता के लिए, श्रील प्रभुपाद ने उदारतापूर्वक आरम्भ से ही इसका व्यक्तिगत रूप से मार्गदर्शन किया। उन्होने अपने पत्रो मे विस्तारपूर्वक आदेश लिखे (१), उन्होने हजारो शिष्यो को स्वीकार किया (२), उन्होने आत्मसाक्षात्कार के विज्ञान पर अथक प्रवचन दिए (३), तथा वे अपने शिष्यो के सभी प्रश्नो का उत्तर देकर प्रसन्नता का अनुभव करते थे (४)। श्रील प्रभुपाद का उनके श्रीगुरुदेव के विषय मे कथन – "वे अपने दिव्य उपदेशो के रूप मे नित्य उपस्थित है" – श्रील प्रभुपाद के विषय मे भी सत्य प्रमाणित होता है।

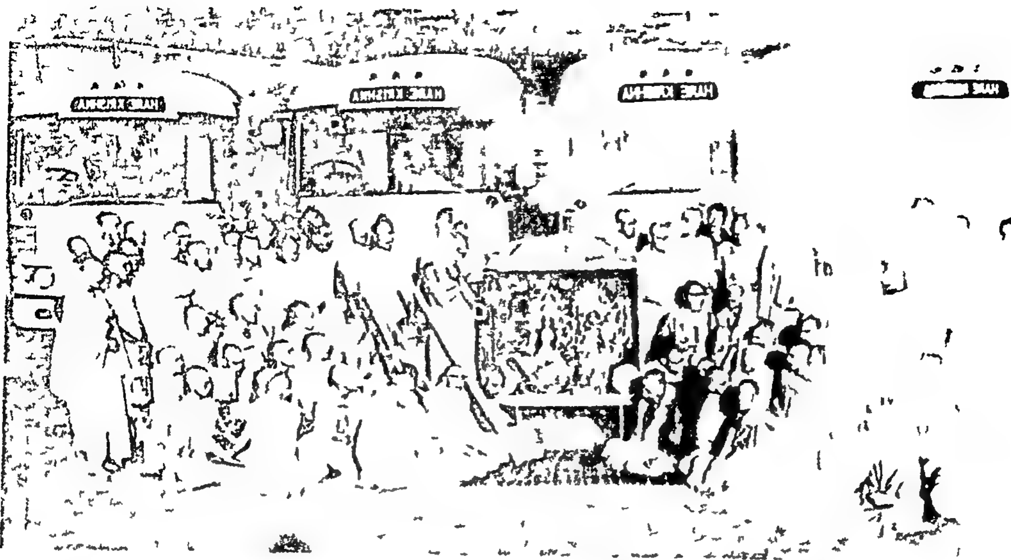
४

६





५





२



३

श्रील प्रभुपाद ने श्रीकृष्णभावनामृत को प्रस्तुत करने के लिए विविध कार्यक्रम विकसित किए। जैसे (१) ग्रन्थ-वितरण के लिये तथा महाविद्यालयो मे प्रवचन देने के लिये बसयात्री दल, (२) शाकाहारी भोजनालय जहाँ प्रत्येक व्यक्ति भगवान् श्रीकृष्ण को अर्पित स्वादिष्ट भारतीय व्यञ्जनो का आस्वादन कर सकता है, (३) भगवान् श्रीकृष्ण के श्रीविग्रह की आराधना की प्राचीन वैदिक पद्धति, (४) आत्मसाक्षात्कार के विज्ञान को प्रदर्शित करने के लिये रगबिरगी मूर्तियो की प्रदर्शनी-परियोजना तथा आत्मसाक्षात्कार के लिये पाठशालाओ का विश्वव्यापी सघ-गुरुकुल। १९७५ मे श्रील पभुपाद ने वृदावन की प्रमुख पाठशाला का शिलान्यास किया तथा १९७७ तक इसका निर्माण कार्य समाप्त हआ (५)।



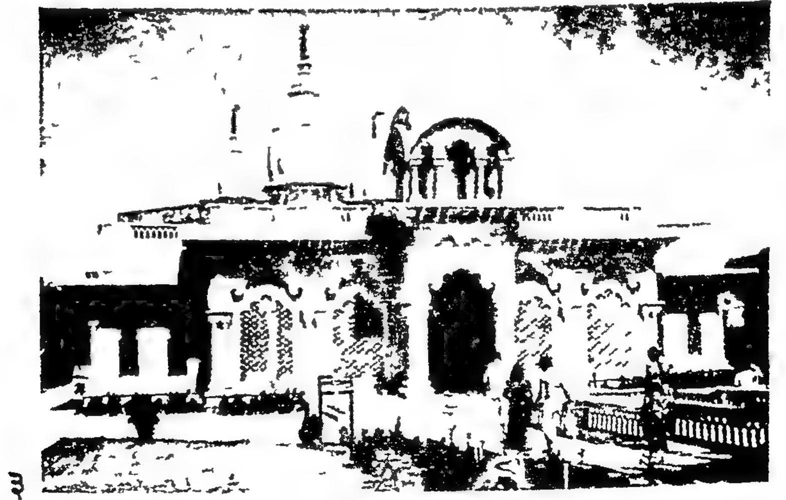
१



२



३



श्रील प्रभुपाद ने विश्व को कवल विचार ही नही आपत सास्कृतिक सस्थाएँ भी दी – इसका उदाहरण है श्रीकृष्णभावनाभावित मंदिर, जहाँ लोग श्रीभगवान् के दिव्य नामा का जप या कीतन कर सकन है उन्ह अपित स्वादिष्ट शाकाहारी व्यजनो का आस्वादन कर सकते है तथा आत्मसाक्षात्कार के विज्ञान की शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। श्रील प्रभुपाद द्वारा तब स्थापित एक-सौ से भी अधिक मंदिरो मे है – (१) लॉस एन्जिलिस मे स्थित इस्कॉन का दक्षिणी अखिल विश्व मुख्यालय (२) लदन के ठीक बाहर स्थित इस्कॉन का यूरापीय मुख्यालय तथा (३) वृदावन, भारत मे स्थित श्रीकृष्ण-बलराम मंदिर तथा अन्तरराष्ट्रीय अतिथिगह। इसके अतिरिक्त श्रील प्रभुपाद ने प्रामाणिक वैदिक उत्सवा का प्रवर्तन किया जिसमे रथयात्रा महात्मव विशेष है। यह दा हजार वर्ष पुरानी घटना वास्तव मे मंदिर को लागा तक ल आती है तथा श्रील प्रभुपाद इसमे भाग लेने के लिय सदैव उत्सुक रहते थे, जैसा कि यहाँ (४) १९६९ में सैन फ्रान्सिसको म (५) १९७३ म लदन मे तथा (६) १९७६


२


३

४


विश्व में सर्वत्र लोग श्रील प्रभुपाद से मिलना चाहते थे। यहाँ हम देखते है – १९६९ मे दिए गए प्रवचन के पश्चात् उन्हे बधाइ देते हुए (१) प्रमुख लन्दनवासी १९७३ मे उन्हे श्रीकृष्ण एव क्राईस्ट (ईसामसीह) के विषय म प्रश्न करती हुई (२) एक ईसाई सन्यासिन (नन), १९७४ में उनका स्वागत करते हुए (३) जेनेवा के राज्यपाल, तथा १९७४ मे ही उनके साथ भ्रमण करते हुए (४) जर्मन लेखक वेगेन डक्हैम।

१

२





३



४



५

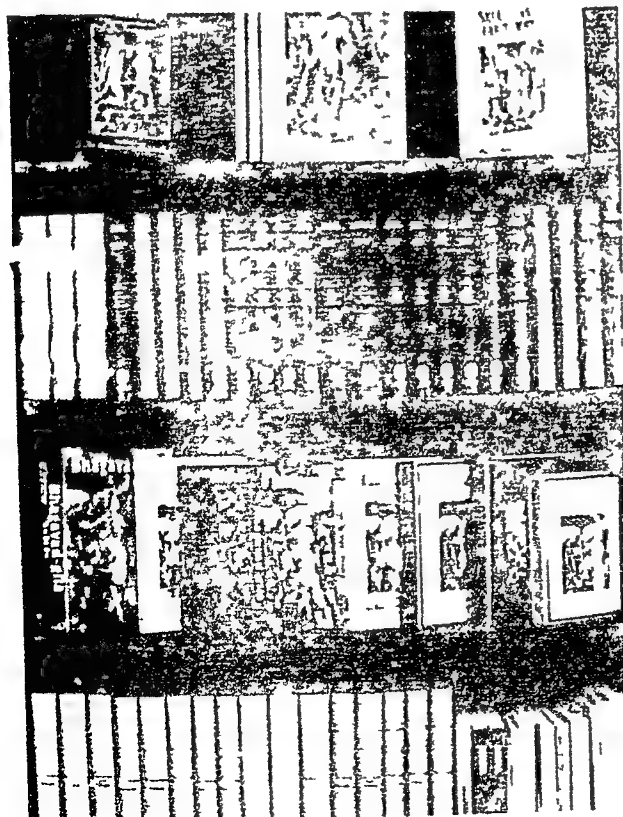
केवल बारह वर्षों मे श्रील प्रभुपाद ने इस पृथ्वी की चौदह बार परिक्रमा की। उनका श्रीकृष्णभावनामृत का प्रचार कार्य उन्हे सर्वत्र ले गया - मेक्सिको (१) से मॉस्को (२), दक्षिण भारत के प्रवचन कार्यक्रमो (३) से स्कैन्डिनेविया के महाविद्यालयो की कक्षाओ मे (४), हम्बुर्ग (५) से हवाई द्वीप (६)। श्रील प्रभुपाद छह महाद्वीपो तथा चालीस से भी अधिक देशो मे श्रीकृष्णभावनामृत ले आए।

६



वैदिक साहित्य का कथन है कि कलह एवं पाखण्ड के इस युग में श्रीभगवान् के दिव्य नामों का उच्चारण आत्मसाक्षात्कार की सरलतम विधि है। सदा की भाँति श्रील प्रभुपाद ने स्वयं आदर्श (१) रखकर उपदेश दिया। श्रीकृष्णभावनामृत के संदेश को रिकॉर्ड, टेप तथा प्रसार के अन्य माध्यमों द्वारा सर्वत्र पहुँचाने के लिए उन्होंने एक चौबीस-ट्रैक के रिकॉर्डिंग स्टूडियो (२) गोल्डन अवतार प्रोडक्शन्स की स्थापना की। दिव्य भगवन्नामों (३) के उच्चारण को शाश्वत बनाने के लिए श्रील प्रभुपाद ने अपने शिष्यों में ही नहीं वरन् उनकी संतानों तथा उनकी संतानों की संतानों में भी आशा की। १९७२ में उन्होंने प्रारंभिक तथा माध्यमिक शिक्षा (४) की वैदिक पद्धति गुरुकुल का प्रवर्तन किया।





६

श्रील प्रभुपाद प्राय कहा करते थे, ''ग्रथ श्रीकृष्णभावनामृत अभियान का आधार है। यहाँ हम उन्हे देखते है (१) श्रीमद्भागवत का अध्ययन करते हुए, नैरोबी १९७५, (२) भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट के प्रारभ के मुद्रण-कक्ष का निरीक्षण करते हुए, न्यूयॉर्क १९७१, (३) श्रीमद्भागवत का अनुवाद करते हुए, न्यूयॉर्क १९७४, (४) बी बी टी कला परिषद का कार्य देखते हुए, न्यूयॉर्क १९७५, (५)हाल मे प्रकाशित श्रीमद्भागवत ग्रथ का परीक्षण करते हुए, लॉस एन्जिलिस १९७६। बारह वर्षो के समय मे श्रील प्रभुपाद विश्व के लिए आत्मसाक्षात्कार के विज्ञान पर अस्सी से भी अधिक ग्रथ छोड गए है। (६) उनके ग्रथो का २५ प्रमुख भाषाओ मे अनुवाद हो चुका है।



WELCOMES
PRAHBUPAD


४

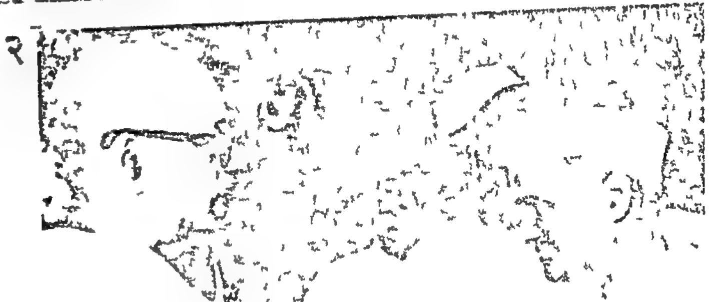

३


२


१









भारत से अमेरिका के लिये प्रस्थान करने के पूर्व, श्रील प्रभुपाद ने भगवान् श्रीकृष्ण की भूमि वृंदावन के ऐतिहासिक श्रीश्रीराधादामोदर मंदिर में स्थित अपने दीन निवास-स्थान (१) मे लगभग दस वर्ष व्यतीत किए। यहाँ उन्होने वैदिक साहित्य का अध्ययन किया तथा उसका अनुवाद करना प्रारभ किया, अपने श्रीगुरुदेव (जिनके चित्र से भीत सुशोभित है) की स्मृति को बनाए रखा तथा उनकी आज्ञा, "समस्त अंगरेजी-भाषी जगत् मे श्रीकृष्णभावनामृत का प्रचार करो" के पालन करने की योजनाएँ बनायी। इस काल मे (२) प्रधान मत्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने कहा, "कृष्णकृपाश्रीमूर्ति श्री श्रीमद् ए सी भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद अत्यन्त महान् कार्य कर रहे हैं तथा उनके ग्रथ मानव जाति की मुक्ति मे एक महत्त्वपूर्ण योगदान है।" १९६५ मे भारत की सबसे बडी पोत-परिवहन (शिपीग) कम्पनी की प्रमुख, श्रीमती सुमति मोरारजी (३) ने, श्रील प्रभुपाद के नि शुल्क अमेरिका जाने की व्यवस्था की।

१





३

२



3

श्रील प्रभुपाद सितम्बर १९६५ में अमेरिका पहुँचे तथा न्यूयॉर्क के अत्यन्त शीतकाल (१) में भी वे लेखन, प्रवचन तथा श्रीकृष्णभावनामृत के प्रचार का आयोजन करते रह। १९६६ के ग्रीष्मकाल मे श्रील प्रभुपाद एव उनके प्रथम शिष्यो ने न्यूयॉर्क के सेकण्ड एवेन्यू पर एक छोटा-सा स्टोरफ्रन्ट (दुकान के स्थान में) मंदिर खोला तथा वे निकट के टॉम्पकिन्स स्कवयर पार्क (२) में हरे कृष्ण का कीर्तन करने लगे। शीघ्र ही वे समाचार पत्रो तथा दूरदर्शन (टेलीविजन) मे चर्चा के विषय बन गए। १९१ ~ तक श्रील प्रभुपाद कई अन्य केंद्र खोल चुके थे जिनमे सैन फ्रान्सिसको, लॉस एन्जिलिस, मॉन्ट्रियल तथा पश्चिमी वर्जीनिया (३) के नव-वदावन का कृषक-समाज भी सम्मिलित है। आज नव-वदावन का समाज समृद्ध हो रहा है तथा उनके कुल एक हजार एकड से भी अधिक क्षेत्रफल के छह खेत हैं। श्रील प्रभुपाद के समर्पण तथा दयाभाव ने अधिकाधिक शिष्यो को आकर्षित किया तथा उन्होने उन सबको प्राचीन वैदिक परपरा (४) के अनुसार विधिवत् दीक्षित किया। यहाँ पर दिखाया गया यज्ञ १९६९ मे न्यूयॉर्क केन्द्र में सपन्न हुआ था। जैसा कि हम बोस्टन के लोगन हवाई अड्डे (५) के इस दिसम्बर १९६९ के दृश्य मे देखते है, श्रील प्रभुपाद जहाँ कही भी जाते, वहाँ उनके शिष्य उनका हार्दिक स्वागत करते।

इनमें से एक भी यह नही जानता कि भगवान् कौन है और उनसे किस प्रकार प्रेम करना चाहिए।

निक्सन—ढोंगी गुरु लोगों के बीच में से एक प्रामाणिक गुरु को किस प्रकार पहचाना जा सकता है ?

श्रील प्रभुपाद—जो भी यह शिक्षा दे कि भगवान् को किस प्रकार जाना जाय और उनसे किस प्रकार प्रेम किया जाय...वही एक गुरु है। सारहीन धूर्त, लोगो को मार्गभ्रष्ट करते हैं। "मैं भगवान् हूँ," वे घोषणा करते है, और जिसको यह पता ही नही कि भगवान् क्या है, ऐसे व्यक्ति उन धूर्तों का विश्वास भी कर लेते है। आपको यह समझने के लिए अवश्य ही एक गम्भीर जिज्ञासु होना चाहिए कि भगवान् कौन हैं और उनसे किस प्रकार प्रेम किया जाय। नही तो, आप केवल अपना समय नष्ट करेंगे। तो दूसरे लोगो और हममें यह अन्तर है कि एकमात्र हरे कृष्ण अभियान ऐसा धर्म है, जो मनुष्य को वास्तव मे यह शिक्षा दे सकता है कि भगवान् को किस प्रकार जाना जाय और उनसे किस प्रकार प्रेम किया जाय। हम श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीमद्भागवत के उपदेशो के आचरण के द्वारा यह विज्ञान प्रस्तुत कर रहे कि भगवान् श्रीकृष्ण को किस प्रकार जाना जा सकता है। ये ग्रन्थ हमें सिखाते हैं कि हमारा एकमात्र प्रयोजन भगवान् से प्रेम करना है। भगवान् से अपनी आवश्यकताओ के लिए कुछ कहने का हमारा प्रयोजन नही है। भगवान् तो सभी की आवश्यकताएँ पूर्ण कर ही रहे है—उन लोगो की भी, जिनका कोई भी धर्म नही है। उदाहरण के लिए—कुत्ते-बिल्लियो का कोई धर्म नही होता, फिर भी श्रीकृष्ण उनके जीवन की आवश्यकताओ को पूर्ण करते है। तो हम अपने दैनिक भोजन के लिए श्रीकृष्ण को कष्ट ही क्यो दे ? वे तो पहले से ही इसको दे रहे है। सच्चे धर्म का अर्थ है यह सीखना कि भगवान् से किस प्रकार प्रेम किया जाय। श्रीमद्भागवत के अनुसार [१ २. ६]—

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽत्मा सुप्रसीदति ॥

अर्थात् प्रथम श्रेणी का धर्म हमे यह शिक्षा देता है कि भगवान् से किस प्रकार अहेतुक प्रेम किया जाय। यदि हम किसी लालच के कारण भगवान् की सेवा करते हैं तो वह व्यापार है—प्रेम नही। यथार्थ भगवद्-प्रेम अहेतुक और अप्रतिहत होता है अर्थात् किन्ही प्राकृत कारणो के द्वारा इसको रोका नही जा सकता और इसमे कोई शर्त नही होती। यदि कोई वास्तव मे भगवान् से प्रेम करना चाहता है तो कोई बाधा सामने नही आती। प्रत्येक जीव उनसे प्रेम कर सकता है चाहे वह निर्धन हो या धनी; युवा हो अथवा वृद्ध; काला हो या गोरा।

निक्सन—क्या सभी मार्ग एक स्थान पर पहुँचते है ?

श्रील प्रभुपाद—जी नही। चार प्रकार के मनुष्य है—कर्मी (विषयी), ज्ञानी, योगी और भक्त—और प्रत्येक को भिन्न लक्ष्य की प्राप्ति होती है। कर्मी किसी भौतिक लाभ के लिए परिश्रम करता है। उदाहरण के लिए, नगर मे अनेक व्यक्ति दिन-रात कठोर परिश्रम करते रहते है और उनका उद्देश्य कुछ धन प्राप्त करना ही होता है। इन्हे सकाम कर्मी कहा जाता है। ज्ञानी वह है जो सोचे, "मैं क्यो इतना कठिन परिश्रम कर रहा हूँ? पक्षी, मक्खी, हाथी एव अन्य प्राणियों का कोई व्यवसाय नही है, फिर भी वे भोजन कर रहे हैं। तो मैं अनावश्यक ही क्यो इतना कठोर परिश्रम करूँ? वरन् इसके स्थान पर मुझे जीवन की समस्याएँ—जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और रोग को हल करने की कोशिश करनी चाहिए।" ज्ञानी अविनाशी बनने का प्रयत्न करता है। वह सोचता है कि यदि वह भगवान् में लीन हो जाय तो उसे जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा और बीमारी से छुटकारा मिल जाएगा। योगी चमत्कार दिखाने के उद्देश्य से कुछ यौगिक सिद्धियाँ प्राप्त करने का प्रयास करता है। उदाहरण के लिए देखिए—योगी अत्यन्त लघु रूप धारण कर सकता है। यदि आप उसे एक कमरे में बन्द कर दें तो वह किसी भी छोटे छिद्र से बाहर निकल सकता हैं। इस प्रकार का चमत्कार दिखाने के कारण योगी को तत्काल ही एक अत्यन्त अद्भुत मनुष्य के रूप मे स्वीकार कर लिया जाता है। नि.सन्देह, ऐसा व्यक्ति केवल कुछ शारीरिक व्यायाम (जिमनास्टिक) का ही प्रदर्शन कर सकता है—उसमें कोई वास्तविक योग-शक्ति नही रहती। परन्तु एक योगी के पास कुछ शक्ति होती है जो आध्यात्मिक नही भौतिक है। तो इस प्रकार योगी यौगिक सिद्धियाँ चाहता है, यानी जीवन के दु.खो से मुक्ति चाहता है और कर्मी सांसारिक लाभो की कामना करता है। किन्तु भक्त को स्वयं के लिए किसी भी वस्तु की अभिलाषा नही रहती। वे तो केवल प्रेमवश भगवान् की सेवा करना चाहते है। ठीक उसी प्रकार जैसे एक माँ अपने शिशु की सेवा करती है। अपने शिशु के प्रति माता की सेवा मे लाभ का कोई प्रश्न ही नही उठना। विशुद्ध स्नेह और प्रेमवश ही वह उसका लालन-पालन करती है।

अब आपको भगवान् से प्रेम करने में भी ऐसी ही अवस्था प्राप्त हो जाय तभी जीवन की सिद्धि है। न कर्मी, न ज्ञानी और न योगी भगवान् को जान सकते हैं—केवल भगवद्-भक्त ही भगवान् को जान सकते है। जैसे भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं श्रीमद्भगवद्गीता [१८ ५५] मे कहते है—**भक्त्या मामभिजानाति**—"केवल भक्ति की ही विधि से भगवान् को समझा जा सकता है।" श्रीकृष्ण यह कदापि नही कहते कि हम उनको अन्य विधियो के द्वारा समझ सकते है। जी नही—एकमात्र भक्ति के द्वारा। यदि आपको भगवान् का ज्ञान प्राप्त करने और उनसे प्रेम करने में रुचि है,

तो आप अवश्य ही भक्ति-मार्ग का पालन करें। अन्य कोई भी विधि आपकी सहायता नही करेगी।

निक्सन—इस भक्ति-मार्ग का पालन करने में आपमें किस प्रकार का रूपान्तर (कायापलट) हो जाता है...

श्रील प्रभुपाद—किसी प्रकार का रूपान्तर नही होता—श्रीकृष्णभावनामृत ही आपकी मौलिक चेतना है। अभी आपकी चेतना अनेकानेक अवाछनीय उपाधियो से आवृत्त है। आपको इसे स्वच्छ करना पड़ेगा और यह स्वच्छ होते ही श्रीकृष्ण-भावनामृत में परिणत हो जाएगी। हमारी चेतना जल के समान है। जल स्वभाव से ही स्वच्छ एवं पारदर्शी है, परन्तु कभी-कभी कीचयुक्त हो जाता है। यदि आप जल से सम्पूर्ण कीच को छान दें तो पुनः यह अपनी मौलिक स्वच्छ पारदर्शी अवस्था को प्राप्त कर लेगा।

निक्सन—कृष्ण-भक्त बनकर क्या हम समाज की और अच्छी सेवा कर सकते है ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, आप देख सकते है कि मेरे सभी शिष्य न तो मद्यप (शराबी) है और न ही मासाहारी। तथा वे शारीरिक दृष्टिकोण से भी अत्यधिक स्वच्छ है—भयंकर रोगो का उन पर कदापि आक्रमण नही होगा। वास्तव मे, मास खाना छोड़ देना श्रीकृष्णभावनामृत का नही वरन् सभ्य मानव-जीवन का प्रश्न है। भगवान् ने मानव समाज के लिए भोजनार्थ अनेकानेक वस्तुएँ दी है—सुन्दर फल, शाक-सब्जियाँ, अन्न और दूध (जो चमत्कारी भोजन है)। दूध से सैकड़ो पौष्टिक खाद्य सामग्रियाँ बनाई जा सकती है, किन्तु लोगो को इस कला का ज्ञान ही नही है। ऐसा करने के स्थान पर वे बड़े-बड़े कसाईखाने चलाते है और मास खाते है। मासाहारी मनुष्य सभ्य ही नही है—वे तो सभ्यता से कोसो दूर है। जब तक मनुष्य असभ्य रहता है, तभी तक वह निरीह पशुओ को मार कर उनको खाता है।

सभ्य मनुष्य दूध से विविध पौष्टिक भोजन-निर्माण की कला जानते हैं। उदाहरण के लिए देखिए—पश्चिमी वर्जीनिया (अमेरिका) मे स्थित हमारे नव वृन्दावन मन्दिर में हम दूध से सैकड़ो प्रकार के अत्यत्त स्वादिष्ट व्यजन तैयार करते है। जब भी दर्शनार्थी आते है, तो वे आश्चर्यचकित रह जाते है कि दूध से इतने सुस्वादु व्यजन भी बनाए जा सकते है। गाय का रक्त पौष्टिक होता है परन्तु सभ्य मनुष्य उसका दूध के रूप मे प्रयोग करते है, दूध, गाय का रूपान्तरित हुआ रक्त ही है। आप दूध से अनेक खाद्य-पदार्थ बना सकते है– दही, छाछ, मक्खन, खीर, एव तरह-तरह की मिठाइयाँ इत्यादि। दूध से बने इन पदार्थो को अन्न, फल और शाक-सब्जियो के साथ मिलाकर आप सैकडो प्रकार के व्यजन तैयार कर सकते है। सभ्य जीवन तो यही है कि पशु का वध कर मास न खाया जाय। बेचारी गाय केवल घास खाती है जो भगवान् ने उसे दी है, और वह आपको दूध देती है जिससे आप

अपना जीवन-निर्वाह कर सकते है। क्या आप सोचते है कि गायों का गला काटने वाले और उनका मास खाने वाले मनुष्य सभ्य है ?

निक्सन—जी नही, मैं आपसे शत-प्रतिशत सहमत हूँ—परन्तु मुझे एक विषय पर घोर जिज्ञासा हो रही है। क्या वेद प्रतीकात्मक रूप के साथ ही साथ अक्षरशः भी स्वीकार किये जा सकते हैं ?

श्रील प्रभुपाद—जी नही, वेदो को यथानुरूप ही ग्रहण करना आवश्यक है, प्रतीक के रूप में नहीं। इसी कारण से ही तो हम श्रीमद्भगवद्गीता-यथानुरूप प्रस्तुत कर रहे हैं।

निक्सन—क्या आप पश्चिम में प्राचीन भारतीय जाति व्यवस्था को पुनः जाग्रत करने का प्रयत्न कर रहे है ? गीता में तो जाति व्यवस्था का वर्णन आता है...

श्रील प्रभुपाद—जरा बताइए तो सही कि भगवद्गीता में जाति-व्यवस्था का कहाँ वर्णन आया है ? भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—**चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः** "मैंने मनुष्यो के गुण और कर्म के अनुसार चार वर्णों की सृष्टि की है।" [गीता ४.१३] उदाहरण के लिए, आप यह तो समझ सकते है कि समाज में अभियन्ता (इन्जीनियर) और चिकित्सक (डॉक्टर) दोनों ही है। क्या आप कहते हैं कि वे विभिन्न जातियो के हैं—अर्थात् कुछ लोग यन्त्रियों की जाति के है और कुछ चिकित्सको की ? जी नही।

यदि मनुष्य ने स्वयं को चिकित्सा महाविद्यालय (मेडिकल कॉलेज) में योग्य बनाया है तो आप उसे चिकित्सक के रूप मे स्वीकार करते है और यदि अन्य व्यक्ति के पास अभियन्त्रण (इन्जीनिरिंग) मे उपाधि (डिग्री) है तो आप उसे अभियन्ता मान लेते है। उसी प्रकार, भगवद्गीता समाज के चार वर्णो की परिभाषा देती है: एक श्रेणी अर्थात् वर्ण अत्यधिक बुद्धिमान मनुष्यो का (ब्राह्मण), एक श्रेणी प्रशासको की (क्षत्रिय), एक वर्ण व्यापारी लोगो का (वैश्य) और एक श्रेणी साधारण कार्य करने वालो की (शूद्र) ये श्रेणियाँ स्वाभाविक है। उदाहरण के लिए, एक वर्ण के मनुष्य बहुत बुद्धिमान् है। परन्तु श्रीमद्भगवद्गीता मे वर्णन की गई प्रथम श्रेणी के मनुष्यो की योग्यताएँ, वास्तव मे प्राप्त करने के लिए उन बुद्धिमान् व्यक्तियों को प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है ठीक उसी प्रकार जैसे कि एक बुद्धिमान नवयुवक को योग्य चिकित्सक बनने के लिए महाविद्यालय में प्रशिक्षण पाने की आवश्यकता होती है। तो हम श्रीकृष्णभावनामृत अभियान मे बुद्धिमान् मनुष्यो को यह प्रशिक्षण दे रहे है कि वे अपने मन पर किस प्रकार नियन्त्रण करे, अपनी इन्द्रियों पर कैसे संमय रखे, सत्यनिष्ठ कैसे बने, भीतर और बाहर से किस प्रकार स्वच्छ बनें, यथार्थ ज्ञान किस प्रकार प्राप्त करे, उस ज्ञान का व्यवहारिक जीवन मे कैसे प्रयोग करे और अन्ततः भगवद्भावनाभावित कैसे बने। ये सभी नवयुवक (उपस्थित

शिष्यो की ओर संकेत करते हुए) प्रथम श्रेणी के बुद्धिमान् व्यक्ति है। जब हम इनको ऐसा प्रशिक्षण दे रहे है कि उनकी बुद्धि का समुचित उपयोग हो। हम जाति-प्रणाली का आरम्भ नही कर रहे है, जिसमे ब्राह्मण परिवार में जन्मा कोई भी धूर्त अपने आप ब्राह्मण बन जाता है। उनमे भले ही पंचम वर्ण के मनुष्यो के व्यसन हो, परन्तु उसे प्रथम श्रेणी का मनुष्य स्वीकार किया जाता है, क्योकि उसका जन्म एक ब्राह्मण परिवार मे हुआ है। हम इसे स्वीकार नही करते। हम उसी व्यक्ति को प्रथम श्रेणी का मनुष्य मानते है, जिसे ब्राह्मण के रूप मे प्रशिक्षण मिला है। इससे कुछ अन्तर नही पड़ता कि वह भारतीय, यूरोपियन अथवा अमेरिकन है। निम्न या उच्च वर्ण मे जन्मा है—इससे कुछ अन्तर नही पड़ता। किसी भी बुद्धिमान् मनुष्य को प्रथम श्रेणी की आदतो का आचरण करने के लिए प्रशिक्षण दिया जा सकता है। हम इस निरर्थक विचार को रोकना चाहते है कि लोग यह सोचे कि हम अपने शिष्यो पर भारतीय जाति व्यवस्था थोप रहे है। हम केवल प्रथम श्रेणी की बुद्धि वाले मनुष्यो को चुनकर इनको ऐसा प्रशिक्षण दे रहे है, जिससे प्रत्येक क्षेत्र मे वे प्रथम श्रेणी के मनुष्य बन जाएँ।

निक्सन—स्त्रियो के मुक्ति आन्दोलन के विषय मे आप क्या अनुभव करते है ?

श्रील प्रभुपाद—स्त्रियो के तथाकथित "समान" अधिकारो का अर्थ केवल यह है कि आज पुरुष स्त्रियो को प्रायः छल रहे है। मान लीजिए स्त्री और पुरुष का मिलन होता है, वे प्रेमी बनते है। सग मे रहने के कारण स्त्री गर्भ धारण करती है और अन्त मे पुरुष उसे छोड़कर चला जाता है। स्त्री को शिशु का पालन करना पड़ता है और शासन से भिक्षा के लिए निवेदन करना पडता है। अथवा वह गर्भपात द्वारा शिशु की हत्या ही कर डालती है। तो यह है स्त्रियो की स्वाधीनता! हमारे भारतवर्ष मे एक स्त्री भले ही निर्धन हो, किन्तु वह अपने पति के सरक्षण मे ही सदैव रहती है और पति अपनी पत्नी का उत्तरदायित्व लेता है। गर्भवती होने पर उसे अपने शिशु की हत्या करने पर अथवा भिक्षा के द्वारा उसका पालन करने के लिए बाध्य नही होना पड़ता। इस प्रकार यथार्थ स्वाधीनता क्या है—अपने पति के सरक्षण मे रहना या सभी के माँग की वस्तु बनना ?

निक्सन—आध्यात्मिक जीवन मे स्त्रियो की क्या स्थिति है ? क्या वे भी कृष्ण-भक्ति मे सफल हो सकती है ?

श्रील प्रभुपाद—हम लिंग (सेक्स) के आधार पर कोई भेद नही करते। हम स्त्री एव पुरुष दोनो को ही समान भाव से कृष्ण-भक्ति करने का अवसर देते है। हम लोगो के द्वारा स्त्री, पुरुष, निर्धन एवं धनी—सभी का स्वागत किया जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता [५ १८] मे कहते है·

विद्या विनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ।।

"विनीत पण्डित ज्ञान की दृष्टि के द्वारा विद्या-विनय से युक्त ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल को समान दृष्टि से देखता है ।"

निक्सन—क्या आप हरे कृष्ण मन्त्र का अर्थ समझा सकते है ?

श्रील प्रभुपाद—"हरे कृष्ण" महामन्त्र का अर्थ तो बहुत साधारण है । 'हरे' का अर्थ है, "हे भगवान की शक्ति," "कृष्ण" का अर्थ है, "हे भगवान् कृष्ण ।" जिस प्रकार इस भौतिक-जगत् मे स्त्री एव पुरुष होते है, उसी प्रकार भगवान् आदि पुरुष है एवं उनकी शक्ति (प्रकृति) आदि स्त्री है तो जब हम हरे कृष्ण कीर्त्तन करते हैं तो हम कहते है, "हे भगवान् कृष्ण, हे कृष्ण की शक्ति, दया करके मुझे अपनी सेवा मे सलग्न कर लीजिए ।"

निक्सन—क्या आप कृपा करके मुझे अपने जीवन के विषय मे कुछ और जानकारी दे सकते है ? और हाँ, आपको यह कैसे मालूम पडा था कि आप श्रीकृष्णभावनामृत अभियान के गुरु है ?

श्रील प्रभुपाद—मेरा जीवन साधारण है । जब मेरे गुरु महाराज ने मुझे पश्चिमी देशो मे जाकर श्रीकृष्णभावनामृत के पन्थ का प्रचार करने का आदेश दिया तब मैं पत्नी एव सन्तान वाला एक गृहस्थ था, अब मेरे पौत्र भी है । तो मैने अपने गुरु की आज्ञा पर सब कुछ त्याग दिया, और अब उनकी तथा भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा का पालन करने का प्रयत्न कर रहा हूँ ।

निक्सन—जब उन्होने आपको पश्चिमी देशो मे जाने के लिए कहा था तो उस समय आपकी आयु कितनी थी ?

श्रील प्रभुपाद—हमारी प्रथम भेट मे ही उन्होने मुझे पश्चिमी देशो मे कृष्णभक्ति का प्रचार करने का आदेश दिया । उस समय मे पच्चीस वर्ष का था, मेरा विवाह हो चुका था तथा मेरी दो सन्तान थी । मैने उनकी आज्ञा का पालन करने का सर्वोत्तम प्रयत्न किया और सन् १९४४ मे मैने एक अग्रेजी पत्रिका "बैक टु गॉड हेड" (भगवत्-दर्शन) आरम्भ की । उस समय भी मै गृहस्थ आश्रम मे था । सन् १९५९ मे पारिवारिक जीवन से अवकाश लेकर मैने ग्रन्थ लिखने आरम्भ किए और सन् १९६५ मे अमेरिका आया ।

निक्सन—आप कह चुके है कि आप भगवान् नही है, तथापि एक बाहरी व्यक्ति होने के कारण मुझे अभी भी यही प्रतीत होता है कि आपके शिष्य (भक्त) आपका सम्मान उसी प्रकार करते है जैसे आप भगवान् ही हों ।

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, ऐसा करना उनका धर्म है । गुरु महाराज भगवान् की आज्ञा का पालन कर रहे है, इसीलिए उनका भगवान् के समान आदर किया ही जाना

चाहिए। यह उसी प्रकार है जैसे एक शासकीय अधिकारी को शासन के बराबर ही आदर दिया जाता है, क्योकि वह शासन की आज्ञा का पालन कर रहा है। यहॉ तक कि यदि एक साधारण-सा पुलिस कर्मचारी भी जाता है तो भी आपको उसका सम्मान करना पड़ता है, क्योकि वह शासन का व्यक्ति है। परन्तु इसका यह भी अर्थ नही हुआ कि वह स्वयं शासन है।

साक्षाद्धरित्वेन समस्तशास्त्रैरुक्तस्तथा भाव्यत: एवं सद्‌भि:—"गुरु का परम ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण (हरि) के समान ही आदर किया जाता है, क्योकि वे भगवान् के अत्यन्त अन्तरंग दास है। इस तथ्य को सभी धर्मशास्त्रो मे स्वीकार किया गया है और समस्त महाजन इसका पालन करते है।"

निक्सन—मुझे अभी भी इस विषय पर आश्चर्य होता हैं। आपके शिष्यगग आपके लिए सौन्दर्यमयी अनेक भौतिक वस्तुएँ लाते है। उदाहरण के लिए आप विमान तल (हवाई अड्डे) से एक अत्यन्त सुन्दर एव आकर्षक मोटर मे आए ? मुझे इस पर आश्चर्य होता है क्योकि...

श्रील प्रभुपाद—यह शिष्यो को शिक्षा देने के लिए है कि गुरु का भगवान् के समान किस प्रकार सम्मान करना चाहिए। यदि आप शासन के प्रतिनिधि को शासन के बराबर ही आदर देते है तो आपको वैभवपूर्ण ढंग से उसका स्वागत करना पड़ता है। यदि आप गुरु का भगवान् के समान आदर करते है तो आपको उन्हे वैसी ही सुविधाएँ देनी चाहिए जैसी आप भगवान् को अपर्ण करते है। भगवान् स्वर्ण के रथ पर यात्रा करते है। अतएव यदि शिष्य अपने गुरुदेव को एक साधारण सी मोटर अर्पण करे, तो वह पर्याप्त नही है क्योकि भगवान् के आगमन के समान ही गुरु का स्वागत करना पड़ता है। यदि भगवान् आपके घर आएँ, तो क्या आप उनको साधारण सी मोटर मे लाएँगे—अथवा आप उनके लिए सोने की मोटर की व्यवस्था करेंगे ?

निक्सन—एक बाहरी व्यक्ति के लिए कृष्ण-भक्ति का एक सर्वाधिक कठिन पक्ष मन्दिर मे श्रीमूर्त्ति को स्वीकार करना है—क्या आप इस विषय पर थोड़ा विस्तार से बता सकते है कि श्रीमूर्त्ति श्रीकृष्ण का कैसे प्रतिनिधित्व करती है ?

श्रील प्रभुपाद—जी हॉ। अभी आपको श्रीकृष्ण के दर्शन का प्रशिक्षण नही प्राप्त हुआ है, अतएव वे दयापूर्वक आपके सामने प्रकट होते है जिससे आप उनका दर्शन कर सकें। आप लकड़ी और पत्थर को देख सकते है, परन्तु आध्यात्मिक (चिन्मय) वस्तु को नही देख सकते। कल्पना कीजिए, आपके पिता चिकित्सालय में है और उनकी मृत्यु हो जाती है और आप उनकी शैया के किनारे खड़े क्रन्दन कर रहे हैं, "अब मेरे पिताजी चले गए।" किन्तु आप ऐसा क्यो कहते है कि वे चले गए ? वह वस्तु क्या है, जो चली गई ?

निक्सन—वास्तव मे तो उनकी आत्मा गई है ।

श्रील प्रभुपाद—और क्या आपने उस आत्मा को देखा है ?

निक्सन—जी नही ।

श्रील प्रभुपाद—तो जब आप आत्मा को नही देख सकते, फिर भगवान् तो परमात्मा ठहरे । वास्तव मे वे आत्मा और जड पदार्थ—प्रत्येक वस्तु ही है, परन्तु आप भगवान् को उनके अप्राकृत (दिव्य) स्वरूप मे नही देख सकते । अतएव आपके प्रति अपनी करुणा की वर्षा करने के लिए, भगवान् अपनी अहैतुकी एवं असीमित कृपा के कारण ही लकडी अथवा पत्थर की श्रीमूर्ति मे प्रकट होते है, जिससे आप उनका दर्शन कर सकें ।

निक्सन—आपको हार्दिक धन्यवाद ।

श्रील प्रभुपाद—हरे कृष्ण !

श्रीभगवान् की परिभाषा

"इस श्रीकृष्णभावनामृत अभियान का उद्देश्य है श्रीभगवान् का नाम यश, लीला, सौन्दर्य एव उनके प्रेम का प्रसार करना। मानव समाज को पूर्ण ज्ञान प्रदान करने के लिए ही इस श्रीकृष्णभावनामृत अभियान का आरम्भ किया गया है।"

देवियो और सज्जनो, आप लोगो ने इस श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति के अभियान मे सम्मिलित होने की जो कृपा की है, उसके लिए मै आपका अत्यन्त आभारी हूँ। न्यूयॉर्क मे जब इस सघ का सन् १९६६ मे पजीकरण किया गया तब एक मित्र ने परामर्श दिया था कि इसका नाम 'भगवद्भावनामृत' होना चाहिए। उन्होने सोचा कि 'कृष्ण' नाम साम्प्रदायिक है। शब्दकोश भी यही कहता है कि 'कृष्ण' हिन्दुओ के भगवान् का नाम है। परन्तु वास्तविकता तो यह है कि श्रीभगवान् का यदि कोई नाम हो सकता है तो वह नाम 'कृष्ण' ही है।

वास्तव मे श्रीभगवान् का कोई विशेष नाम नही है। यह कहने का हमारा अभिप्राय (अर्थ) यह है कि कोई यह नही जानता कि उनके कितने नाम है। श्रीभगवान् अनन्त है, अतः उनके नाम भी अनन्त होने चाहिए। इसीलिए हमारा प्रयोजन एक नाम से सिद्ध नही हो सकता। उदाहरण के लिए श्रीकृष्ण को कभी-कभी यशोदानन्दन, देवकीनन्दन, वसुदेवनन्दन अथवा नन्दनन्दन कहा जाता है अर्थात् वे यशोदा मैया, देवकी जी, श्री वसुदेव या नन्द महाराज के पुत्र है। कभी-कभी वे पार्थसारथी कहलाते है जो यह दिखलाता है कि उन्होने अर्जुन के सारथी के रूप मे कार्य किया था। कभी-कभी अर्जुन को पार्थ कहा जाता है अर्थात् पृथा (कुन्ती) के पुत्र।

श्रीभगवान् अपने अनेक भक्तो के साथ अनेकानेक प्रकार का व्यवहार करते है और उन व्यवहारो के अनुसार भी भगवान् का एक विशेष नाम हो जाता है। किन्तु श्रीभगवान् के असख्य भक्तगण है और उन भक्तो के साथ उनके असख्य सम्बन्ध है, अतएव उनके असख्य नाम भी है। इस प्रकार हम किसी एक पर ही अड़े नही रह सकते। परन्तु 'कृष्ण' नाम का अर्थ है, 'सर्व-आकर्षक'। भगवान् सभी को आकर्षित करते है, यही 'श्रीभगवान्' की परिभाषा है। हमने भगवान् श्रीकृष्ण

के अनेकानेक चित्रो के दर्शन किए है और उनमें देखा है कि वे (श्रीकृष्ण) वृन्दावन मे गाय, बछड़े, पशु, पक्षी, वृक्ष तथा यहाँ तक कि जल को भी आकर्षित करते है। गोप-बालक, गोपियाँ, नन्द महाराज, पाण्डव और समस्त मानव समाज ही श्रीकृष्ण के प्रति आकर्षित है। इसीलिए यदि श्रीभगवान् को कोई विशिष्ट नाम दिया जा सकता है तो वह नाम है 'कृष्ण।'

वैदिक साहित्य के रचयिता श्रीव्यासदेव के पिता महर्षि पराशर ने भगवान् की निम्न परिभाषा दी है :

ऐश्वर्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसह श्रियः।
ज्ञानवैराग्योश्चैवषण्णां भग इतींगना ॥

[विष्णु पुराण ६. ५. ४७]

इस प्रकार पराशर मुनि की परिभाषा के अनुसार, 'भगवान्' उन्हे कहा जाता है जो षड 'ऐश्वर्यो' से परिपूर्ण है—जिनके पास पूर्ण बल, यश, श्री (धन), ज्ञान, सौन्दर्य और वैराग्य है। श्रीभगवान् सभी प्रकार की सम्पत्ति के स्वामी है। इस संसार मे अनेक धनवान् व्यक्ति है, परन्तु उनमे से कोई भी यह घोपगा (दावा) नही कर सकता कि उसके पास धन का समस्त भण्डार है। न हीं कोई यह घोषित कर सकता है कि उससे बढ़कर कोई धनवान् नही है।

श्रीमद्‌भागवत से, किन्तु हम यह समझते है कि जब भगवान् श्रीकृष्ण इस पृथ्वी पर उपस्थित थे तो उनके सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियाँ थीं और वे सभी संगमरमर से बने एव रत्नो से जड़े हुए राजमहलो मे निवास करती थी। कमरो मे हाथी-दाँत और स्वर्ण के आसन थे और अतुल वैभव स्थान-स्थान पर बिखरा पडा था। श्रीमद्‌भागवत मे इसका अत्यन्त विस्तार से वर्णन किया गया है। मानव समाज के इतिहास मे हम किसी को भी ऐसा नही पा सकते, जिसके सोलह हजार पत्नियाँ या सोलह हजार राजमहल हो और ऐसा भी नही था कि श्रीकृष्ण एक पत्नी के पास एक दिन और दूसरी पत्नी के पास दूसरे दिन जाते रहे हो। जी नही, वे एक ही साथ व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक राजमहल मे विद्यमान रहते थे। इसका अर्थ यह हुआ कि उन्होने सोलह हजार एक सौ आठ स्वरूपो मे अपना विस्तार किया था। एक साधारण मनुष्य के लिए यह कार्य भले ही असम्भव हो, परन्तु श्रीभगवान् के लिए यह बिल्कुल भी कठिन नही है। यदि भागवान् अनन्त है तो वे अपना अनन्त रूपो में विस्तार कर सकते है, नही तो 'अनन्त' शब्द का कोई अर्थ ही नही रह जाता। श्रीभगवान् सर्वशक्तिमान् है, वे सोलह हजार तो क्या सोलह लाख पत्नियो का निर्वाह कर सकते है, फिर भी उनको कोई कठिनाई नहीं होती, अन्यथा 'सर्वशक्तिमान्' शब्द का कोई अर्थ नही है।

ये सभी वस्तुएँ आकर्षण उत्पन्न करने वाली है। इस भौतिक जगत् में हमें

अनुभव है कि यदि कोई मनुष्य अत्यन्त धनवान् है तो वह आकर्षक भी बन जाता है। उदाहरण के लिए, भारतवर्ष में टाटा और बिड़ला अपनी सम्पत्ति के कारण लोगों के प्रवल आकर्षण के पात्र है। ये लोग आकर्षक है, भले ही ये इस ससार की सम्पूर्ण धन-सम्पत्ति के स्वामी नही है। तब फिर श्रीभवान् कितने अधिक आकर्षक होंगे, जो कि सम्पूर्ण सम्पत्ति के ही स्वामी है।

उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण का बल असीम है। उनमे जन्म के समय से ही वल विद्यमान था। जब श्रीकृष्ण केवल तीन ही माह के थे, तब पूतना नामक एक राक्षसी ने उनको मारने का प्रयत्न किया, परन्तु श्रीकृष्ण द्वारा उसका ही वध (उद्धार) कर दिया गया। यही है भगवान् का लक्षण। आरम्भ से ही वे श्रीभगवान् है। वे किसी ध्यान अथवा यौगिक वल के द्वारा श्रीभगवान् नही बनते। श्रीकृष्ण उस प्रकार के भगवान् नही हैं। अपने प्राकट्य के आरम्भ से ही श्रीकृष्ण भगवान् थे।

भगवान् श्रीकृष्ण का यश भी असीम है। नि.सन्देह, हम कृष्ण-भक्त है, अत: हम उनको जानते हैं और उनका यशोगान करते है, परन्तु हमारे अतिरिक्त इस ससार में लाखो व्यक्ति है जो श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के यश से सुपरिचित है। विश्व के सभी देशो मे दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक और धार्मिक लोगो के द्वारा भगवद्‌गीता का अध्ययन किया जाता है। यह भी सत्य है कि हमारी श्रीमद्‌भगवद्‌गीता यथानुरूप का विक्रय दिन प्रति दिन वढ़ता ही जा रहा है। इसका मुख्य कारण यही है कि यह विशेष संस्करण विशुद्ध स्वर्ण के समान है। भगवद्‌गीता मे अनेकानेक सस्करण हुए है, परन्तु वे शुद्ध नही है। हमारी गीता का अधिक विक्रय इसीलिए हो रहा है, क्योकि हम श्रीमद्‌भगवद्‌गीता—'यथानुरूप' प्रस्तुत कर रहे है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता का यश श्रीकृष्ण का ही यश है।

सौन्दर्य, एक अन्य ऐश्वर्य है जो श्रीकृष्ण मे असीम है। श्रीकृष्ण स्वय तो अत्यन्त सुन्दर है ही, उनके पार्षद-गण भी उतने ही सुन्दर है। जो अपने पूर्व जन्म मे पुण्यात्मा थे। उनको इस भौतिक जगत् मे उत्तम परिवार और राष्ट्र मे जन्म लेने का अवसर प्राप्त होता है। अमेरिकन अत्यन्त धनवान् और सुन्दर है, ये ऐश्वर्य उनके पुण्य कर्मो के परिणाम है। सम्पूर्ण विश्व के लोग अमेरिकनो के प्रति आकर्षित है, क्योकि वे लोग वैज्ञानिक ज्ञान, धन-सम्पत्ति और सुन्दरता इत्यादि मे उन्नत है। इस ब्रह्माण्ड मे पृथ्वी एक नगण्य लोक है, फिर भी पृथ्वी के एक देश—अमेरिका—के पास अनेकानेक आकर्षक वस्तुएँ है। तो हम केवल कल्पना ही कर सकते है कि भगवान् श्रीकृष्ण के पास विविध प्रकार की कितनी आकर्षक वस्तुएँ होगी, जो इस समस्त व्यक्त और अव्यक्त सृष्टि के रचयिता है। वे स्वय कितने सुन्दर होगे जिन्होने इस समस्त सौन्दर्य की सृष्टि की है।

एक व्यक्ति अपनी सुन्दरता के कारण ही नही, वरन् अपने ज्ञान के कारण भी आकर्षक होता है। एक वैज्ञानिक अथवा दार्शनिक भले ही कभी-कभी अपने ज्ञान के कारण आकर्षक लगे, परन्तु श्रीमद्भगवद्‌गीता में भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा दिए गए ज्ञान से श्रेष्ठ कौन-सा ज्ञान है ? सम्पूर्ण जगत् मे इस प्रकार के ज्ञान की कोई तुलना नही है। इन सब ऐश्वर्यो के साथ ही साथ श्रीकृष्ण पूर्ण वैराग्य से भी युक्त है। इस भौतिक, जगत् मे भगवान् श्रीकृष्ण वास्तव मे यहाँ उपस्थित नही है। एक विशाल कारखाने मे कार्य चलता रह सकता है, भले ही चाहे वहाँ स्वामी उपस्थित न भी रहे। उसी प्रकार श्रीकृष्ण की विभिन्न शक्तियाँ उनके सहायक अर्थात् देवताओं के निर्देशन मे कार्य कर रही है। वास्तव मे, स्वय श्रीकृष्ण इस भौतिक जगत् से अलग रहते है। इन सब तथ्यो का वर्णन हमारे शास्त्रो मे आता है।

इसीलिए श्रीभगवान् के कर्मो के अनुसार उनके अनेकानेक नाम है, परन्तु उनके इतने असीम ऐश्वर्य है कि उन ऐश्वर्यो के द्वारा ही श्रीभगवान् सभी को आकर्षित करते है। अतः उनको 'कृष्ण' कहा जाता है। वैदिक साहित्य स्वीकार करता है श्रीभगवान् के अनेक नाम है, परन्तु 'कृष्ण' नाम प्रधान है।

इस श्रीकृष्णभावनामृत अभियान का उद्देश्य है कि श्रीभगवान् का नाम, यश, लीला, सौन्दर्य एव उनके प्रेम का प्रसार करना। इस संसार में अनेक वस्तुएँ है और वे सभी श्रीकृष्ण मे निहित है। इस भौतिक जगत् का सबसे प्रमुख पक्ष 'काम' है और वह भी भगवान् श्रीकृष्ण मे उपस्थित है। हम श्रीराधाकृष्ण की अर्चना कर रहे है और उनके मध्य आकर्षण रहता ही है, परन्तु प्राकृत (भौतिक) आकर्षण मे काम वास्तविक है जबकि इस ससार मे वह अवास्तविक। हमारे सम्पर्क मे आने वाली यहाँ की प्रत्येक वस्तु वैकुण्ठ में है, परन्तु यहाँ इसका कोई वास्तविक मूल्य नही है। यह केवल एक प्रतिबिम्ब है। दुकान की खिडकियो मे हम अनेक पुतले देखते है, परन्तु कोई भी उनकी परवाह नही करता क्योकि सभी को यह ज्ञात है कि वे मिथ्या है। पुतला भले ही अत्यन्त सुन्दर हो, फिर भी वह मिथ्या है। किन्तु जब लोग एक सुन्दर स्त्री को देखते है तो वे उसके प्रति आकर्षित हो जाते है, क्योकि वे सोचते है कि वह स्त्री वास्तविक है। वास्तव मे यह नाममात्र का जीवन मृत है, क्योकि यह शरीर जड पदार्थो का केवल एक पिण्ड है। जैसे ही आत्मा शरीर को त्याग देती है, वैसे ही स्त्रियो के नाममात्र के सुन्दर शरीर की ओर कोई देखने की परवाह तक नही करता। यह एक तथ्य है कि वास्तविक आकर्षण-बल चिन्मय आत्मा है।

भौतिक जगत् मे प्रत्येक वस्तु जड पदार्थो से बनी हुई है। इसीलिए यह केवल एक स्वाग है। वास्तविक वस्तु तो वैकुण्ठ जगत् मे है। जिन्होने श्रीमद्भगवद्-

गीता का अध्ययन किया है। वे समझ सकते हैं कि वैकुण्ठ जगत् कैसा है क्योंकि हम गीता [८.२०] मे उस जगत् का वर्णन पाते हैं :

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति॥

"इस व्यक्त-अव्यक्त होने वाली जड प्रकृति से परे एक अन्य प्रकृति दिव्य और सनातन है। यह परा तथा अविनाशी है। इस जगत् के नष्ट हो जाने पर भी उसका विनाश नही होता है।"

वैज्ञानिकगण इस भौतिक जगत् की लम्बाई और चौडाई की गणना करने का प्रयास कर रहे है, परन्तु वे इस कार्य का आरम्भ तक नही कर सकते। सब से पास स्थित तारे तक जाने मे भी उनको हजारो वर्ष लगेगे। तब फिर वैकुण्ठ जगत् के विषय मे तो कहना ही क्या? जब हम इस भौतिक जगत् को ही नही जान सकते तो हम उस जगत् को कैसे जान सकते है, जो इसके परे है? ध्यान देने योग्य तथ्य तो यह है कि हमे ज्ञान अवश्य ही प्रामाणिक स्रोतो से प्राप्त करना चाहिए।

सर्वाधिक प्रामाणिक स्रोत है भगवान् श्रीकृष्ण, क्योकि वे सम्पूर्ण ज्ञान के भण्डार हैं। श्रीकृष्ण से अधिक न तो कोई बुद्धिमान् है और न ही जानकार। भगवान् श्रीकृष्ण हमे यह जानकारी देते है कि इस भौतिक जगत् के परे एक परव्योम अर्थात् चिद् (आध्यात्मिक) आकाश है जिस मे असंख्य लोक भरे पड़े हुए है। यह भौतिक सृष्टि तो सम्पूर्ण सृष्टि का एक चौथाई अंश ही है। उसी प्रकार इस भौतिक जगत् मे निवास करने वाले जीव सम्पूर्ण सृष्टि मे स्थित जीवो का एक छोटा-सा अश है। इस भौतिक जगत् अर्थात् संसार की तुलना एक कारागार (जेल) से की गई है और जिस प्रकार बन्दी लोग सम्पूर्ण जनसख्या का केवल एक छोटे से अश (प्रतिशत) का प्रतिनिधित्व करते है, उसी प्रकार इस भौतिक जगत् मे रहने वाले जीव सम्पूर्ण जीवों के एक छोटे से अंश मात्र है।

जिसने श्रीभगवान् के विरुद्ध विद्रोह किया है—जो अपराधी है—उसे ही इस भौतिक जगत् मे भेजा जाता है। कभी-कभी अपराधी कहा करते है कि वे शासन की परवाह नही करते, फिर भी उनको बन्दी बनाया जाता है और दण्ड दिया जाता है। उसी प्रकार जो प्राणी श्रीभगवान् के प्रति विद्रोह की घोषणा करता है उसे इस भौतिक जगत् मे रखा जाता है।

मौलिक रूप से सभी जीवात्माएँ श्रीभगवान् के विभिन्न अश है और उससे उसी प्रकार सम्बन्धित है, जिस प्रकार कि पुत्र अपने पिता से। क्रिश्चयन्न (ईसाई) भी भगवान् को परम पिता मानते है। क्रिश्चयन चर्च में जाते है और प्रार्थना करते

है, "हे मेरे पिता, आप स्वर्ग मे है।" श्रीमद्भगवद्गीता [१४ ४] मे भी भगवान् को पिता के रूप में स्वीकार किया गया है :

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥

"हे कुन्तीनन्दन (अर्जुन), सभी योनियो के जीवो का जन्म इस बहिरंगा प्रकृति से होता है अर्थात् प्रकृति माता है और मै बीज का गर्भाधान करने वाला सबका पिता हूँ।"

जलचर, वृक्ष, पक्षी, पशु, कीट और मनुष्य योनियो सहित चौरासी लाख योनियाँ है। मनुष्य योनियो मे अधिकाश असभ्य है और सभ्य मनुष्यो में से कुछ लोग ही धार्मिक जीवन का आश्रय लेते है। तथाकथित अनेक धार्मिकों मे से अधिकाश यह घोषणा करते हुए, "मै हिन्दु हूँ," "मै मुसलमान हूँ," "मै क्रिश्चयन हूँ," इन उपाधियो को ही अपना स्वरूप या परिचय मानते है। कोई परोपकार करता है, कोई निर्धनो को धन देता है तो कोई पाठशाला और चिकित्सालय खोलता है। यह परोपकार की विधि कर्मकाण्ड कहलाती है। ऐसे लाखो कर्मकाण्डियो मे कोई एक ज्ञानी हो सकता है। लाख ज्ञानियो मे एक मुक्त होता है और कोटि-कोटि मुक्त आत्माओ मे से कोई एक श्रीकृष्ण को समझने मे समर्थ होता है। तो यह है, भगवान् श्रीकृष्ण की स्थिति। जैसे श्रीकृष्ण स्वय भगवद्गीता [७. ३] में कहते है .

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥

"हजारो मनुष्यो मे से कोई एक ससिद्धि के लिए यत्न करता है और उन सिद्ध हुए पुरुषो मे भी कोई दुर्लभ मनुष्य ही मुझे तत्त्व से जानता है।"

तो भगवान् श्रीकृष्ण को समझना अत्यन्त ही कठिन है। यद्यपि श्रीभगवान् को समझना एक कठिन विषय है, फिर भगवान् भगवद्गीता मे स्वय को समझाते है। वे कहते है, "मै इस प्रकार हूँ और मै उस प्रकार हूँ। आत्मा का यह स्वरूप है तो परमात्मा का वह स्वरूप।" इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता मे प्रत्येक वस्तुओ का पूर्ण रूप से वर्णन किया गया है। यद्यपि भगवान् को समझना बहुत ही कठिन है, परन्तु जब श्रीभगवान् स्वय अपना ज्ञान देते है तब वह विषय-वस्तु कठिन नही रह जाती। वास्तव मे केवल इसकी विधि के द्वारा हम श्रीभगवान् को समझ सकते है। भगवान् को अपने अनुमान के द्वारा समझना हमारे लिए सम्भव नही है, क्योकि श्रीभगवान् असीम है और हमारा ज्ञान तथा इन्द्रिय-प्रतीति दोनो ही अत्यधिक सीमित है, तव हम कैसे असीम को समझ सकते है? तो यदि हम असीमित के द्वारा दी गई व्याख्या को केवल स्वीकार कर ले तो हम भी उन अनन्त भगवान् को समझ सकते है। उस ज्ञान को समझ लेना ही हमारी सिद्धि है।

भगवान् के विषय में अनुमान के द्वारा प्राप्त किया गया नाम-मात्र का ज्ञान हमें कही का नही रखेगा। यदि एक बालक यह जानना चाहता है कि उसका पिता कौन है तो साधारण-सी विधि है कि वह अपनी माँ से पूछे। तब माँ कहेंगी, "ये तुम्हारे पिताजी है।" पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का यही मार्ग है। निस्सन्देह अपने पिताजी के विषय मे अनेक प्रकार के अनुमान किए जा सकते है, यह आश्चर्य करते हुए कि पिता यह व्यक्ति है या वह व्यक्ति। अथवा सम्पूर्ण नगर मे भटका जा सकता है, यह पूछते हुए, "क्या आप हमारे पिता है ?" क्या आप मेरे पिता है ?" किन्तु ऐसी विधि से प्राप्त हुआ ज्ञान सदैव अपूर्ण बना रहेगा। इस प्रकार से कोई कभी भी अपने पिता को नही पा सकेगा। यह साधारण-सी विधि ही तो है कि किसी अधिकारी (विशेषज्ञ) के पास जाकर ज्ञान ग्रहण किया जाय। इस विशेष प्रश्न के उत्तर के लिए माँ अधिकारी व्यक्ति है। वे केवल इतना भर कह देती है, "प्रिय पुत्र, यह तुम्हारे पिता है।" इस प्रकार ही हमारा ज्ञान पूर्ण होता है। दिव्य या अप्राकृत ज्ञान भी इसी प्रकार है। मै अभी-अभी प्रवचन के आरम्भ मे वैकुण्ठ जगत् के विषय मे कह रहा था, इस वैकुण्ठ जगत् को हम अपने अनुमान के आधार पर नही समझ सकते है। श्रीभगवान् कहते है, "वैकुण्ठ जगत् है और वह जगत् मेरा निवास स्थान है।" तो इसी विधि से हम सर्वोच्च अधिकारी—श्रीकृष्ण—से ज्ञान प्राप्त कर सकते है। हम भले ही पूर्ण न हो, परन्तु हमारा ज्ञान पूर्ण है, क्योकि इसे एक पूर्ण स्रोत से प्राप्त किया जाता है।

यह श्रीकृष्णभावनामृत अभियान मानव समाज को पूर्ण ज्ञान प्रदान करने के लिए है। ऐसे ज्ञान के द्वारा हम समझ सकते है हम कौन है, श्रीभगवान् कौन है और यह ससार क्या है ? हम यहाँ क्यो आए है, हमे यहाँ इतने अधिक कष्ट एव क्लेश क्यो उठाने पडते है एव क्यो मरना पड़ता है। निस्सन्देह, कोई भी मृत्यु को नही चाहता, परन्तु मृत्यु होगी ही कोई, मनुष्य वृद्ध नही बनना चाहता, फिर भी वृद्धावस्था आती है, कोई व्याधि (बीमारी) कष्ट नही पाना चाहता, परन्तु व्याधियाँ निश्चय ही आती है। मानव जीवन की वास्तविक समस्याएँ तो ये है और इनका हल अभी भी नही हो पाया है। हमारी सभ्यता आहार, निद्रा, मैथुन और आत्मरक्षा की विधियो को उन्नत करने का प्रयास कर रही है, परन्तु वास्तविक समस्याएँ ये नही है। मनुष्य निद्रा लेता है और कुत्ता भी सोता है। मनुष्य केवल इसलिए ही अधिक उन्नत तो नही हो गया कि उसके पास एक सुन्दर-सा घर है। दोनो ही अवस्थाओ मे कार्य तो वही है—सोना। मनुष्य ने आत्म-रक्षा करने के लिए परमाणु अस्त्रो की खोज की है, परन्तु कुत्ते के पास दाँत और पंजे है और वह भी अपनी आत्म-रक्षा कर सकता है। दोनो परिस्थितियो मे आत्म-रक्षा की जाती है। मानव यह नही कह सकता है कि उसके पास परमाणु बम है अतएव वह

सम्पूर्ण विश्व अथवा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर विजय प्राप्त कर सकता है। ऐसा सम्भव नही है। मनुष्य के पास, भले ही आत्म-रक्षा की एक विस्तृत विधि हो अथवा आहार, निद्रा या मैथुन की वैभवशाली विधियाँ हो, परन्तु इन सबके द्वारा वह विकसित नही कहा जाता। हम उसकी इस उन्नति को परिष्कृत पशुता कह सकते है और उससे अधिक कुछ भी नही।

वास्तविक उन्नति का अर्थ है श्रीभगवान् का ज्ञान। यदि हमारे पास भगवान् के ज्ञान का अभाव है तब हम वास्तव मे उन्नत नही है। अनेकानेक धूर्त लोग श्रीभगवान् के असितित्व को अस्वीकार करते है, क्योकि यदि भगवान् नाम का कोई परम पुरुष नही है, तो वे धूर्त लोग अपने पाप करते रह सकते है। यह विचार उनके लिए भले ही अत्यन्त सुखकारी हो कि भगवान् है ही नही, परन्तु भगवान् को केवल हमारे अस्वीकार कर देने से ही वे मृत नही हो जाएँगे। श्रीभगवान् और उनका प्रशासन विद्यमान है। उनकी आज्ञा से ही सूर्य और चन्द्रमा उदित हो रहे है, जल मे प्रवाह है एव सागर सीमावद्ध रहता है। इस प्रकार उनकी आज्ञा से ही प्रत्येक वस्तु क्रियाशील है। सभी कार्य इतने सुन्दर ढग से हो रहे है, तव वास्तव मे विवेकी व्यक्ति यह कैसे सोच सकता है कि भगवान् मृत है? यदि अव्यवस्था होती तो हम भले ही कह सकते है कि यह शासन अच्छा नही है, परन्तु यदि सुव्यवस्था है तब भला हम कैसे कह सकते है कि कोई शासन ही नही हे? क्योकि लोग श्रीभगवान् के विषय मे जानते ही नही, अतएव वे कहते है कि भगवान् मृत है, भगवान् नही है अथवा भगवान् का कोई स्वरूप नही है। परन्तु हमे सुदृढ विश्वास है कि श्रीभगवान् है और वह भगवान्—श्रीकृष्ण—है। **कृष्णास्तु भगवान् स्वयम्**—भागवत [१ २ २८]। अतएव हम उनकी अर्चना कर रहे है। श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति की यही विधि है। इसे समझने का प्रयास कीजिए। आपको अनेकानेक धन्यवाद। हरे कृष्ण!

पुनर्जन्म एवं उससे परे

लन्दन ब्राडकास्टिंग कम्पनी की ओर से मि माइक राबिन्सन आत्मा के विज्ञान के सम्बन्ध मे जिज्ञासा करते हैं, क्या हम यहाँ पहले भी थे? क्या हम पुन लौटेगे, अथवा ? श्रील प्रभुपाद युग प्राचीन वैदिक साहित्य से कुछ प्रभावशाली उत्तर देते हैं।

माइक—क्या आप मुझे बता सकते है कि आप किसमे विश्वास करतें है—हरे कृष्ण अभियान का दार्शनिक पक्ष क्या है ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ। श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति विश्वास का प्रश्न नही, वरन् यह तो एक विज्ञान है। उस विज्ञान का प्रथम चरण तो यही ज्ञान प्राप्त करना है कि जीवित एवं मृत देह मे अन्तर है। वह अन्तर क्या है ? वह अन्तर यह है कि जब किसी की मृत्यु होती है, तो आत्मा अर्थात् जीवन-शक्ति देह को त्याग देती है और इसीलिए शरीर "मृत" कहलाता है। तो, दो वस्तुएँ हुई, एक यह देह और दूसरी देह के भीतर रहने वाली आत्मा (जीवन-शक्ति) हम शरीर के भीतर विद्यमान जीवन-शक्ति के विषय मे चर्चा करते है। साधारण भौतिक विज्ञान और श्रीकृष्णभावनामृत-विज्ञान मे यही अन्तर है। कृष्ण-भक्ति का विज्ञान पूर्णतः दिव्य और अप्राकृत है। अतएव आरम्भ में एक साधारण मनुष्य के लिए यह अत्यन्त ही कठिन है कि वह हमारे अभियान का मूल्याकन कर सके। सर्वप्रथम तो यह समझना आवश्यक है कि मैं एक आत्मा हूँ अर्थात् इस शरीर से अलग कोई और दूसरी वस्तु हूँ।

माइक—और हमे यह आत्म-विज्ञान कब प्राप्त होगा ?

श्रील प्रभुपाद—आप इसे किसी पल भी समझ सकते है, परन्तु उसके लिए थोडी-सी बुद्धि की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए, जब शिशु का विकास होता है तो वह बालक बनता है, बालक युवक होता है, युवक एक मध्यम अवस्था वाला व्यक्ति होता है और फिर अधेड़ मनुष्य एक वृद्ध व्यक्ति बन जाता है। तो इस सम्पूर्ण समय के भीतर यद्यपि हमारे शरीर मे, शिशु अवस्था से वृद्ध मनुष्य बनने तक निरन्तर परिवर्त्तन हो रहा है, फिर भी हम सोचते है कि हम वही व्यक्ति है। आप देखिए तो सही : देह परिवर्तित हो रही है, परन्तु देह मे निवास करने वाली

आत्मा वही बनी रहती है तो हमें तर्क की दृष्टि से क्यों न यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि जब हमारा वर्तमान शरीर मृत हो जाता है, तब हम दूसरा शरीर प्राप्त करते है। यह आत्मा का देहान्तर कहलाता है। लोग इसे ही पुनर्जन्म कहते है।

माइक—तो इसका यह अर्थ हुआ कि जब मृत्यु होती है, तब केवल भौतिक शरीर का ही मरण होता है ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ। इस तत्त्व की बहुत विस्तार से श्रीमद्भगवद्गीता [२. २०] मे व्याख्या की गई है। **न जायते म्रियते वा कदाचिन्**……**न हन्यते हन्यमाने शरीरे।**

माइक—क्या आप प्रायः शास्त्रो से उद्धरण दिया करते है ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, हम शास्त्रों से अनेकानेक उद्धरण देते हैं। श्रीकृष्ण-भावनामृत एक गम्भीर शिक्षा है, कोई साधारण धर्म नही। (एक भक्त शिष्य से) श्रीमद्भगक्षद्गीता का यह श्लोक तो ढूंढो।

भक्त—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

"आत्मा किसी भी काल में न तो जन्म लेती है, न मरती है तथा एक बार होकर फिर कभी नष्ट नही होती। यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत तथा पुरातन है। देह का वध होने पर पर भी आत्मा का वध नही होता।"

माइक—उस श्लोक को पढ़वाने के लिए आपको धन्यवाद। तो क्या आप मुझे थोडा और अधिक समझा सकते है, यदि आत्मा अमर है तब मृत्यु होने के पश्चात् क्या सभी आत्माएँ भगवान् के पास जाती है ?

श्रील प्रभुपाद—यह आवश्यक नही है। यदि कोई योग्य है—यदि स्वयं को इस जीवन मे अपने घर, श्रीभगवान् के धाम में जाने के योग्य बना लेता है—तो वह उस परम धाम मे जा सकता है। और यदि वह अपने को योग्य नही बनाता, तब उसे एक अन्य भौतिक शरीर प्राप्त होता है। चौरासी लाख योनियाँ अर्थात् विभिन्न प्रकार की देह है। जीव की इच्छा और कर्मो के अनुसार प्रकृति के नियम उसे एक योग्य शरीर देते है। यह भी उसी प्रकार होता है, जैसे कि मनुष्य का पहले किसी

रोग से संसर्ग होता है और उसके बाद रोग का विकास। क्या यह समझना कठिन है ?

माइक—इस तथ्य के सभी पक्षों को समझ पाना बहुत की कठिन है।

श्रील प्रभुपाद—मान लीजिए कि किसी को चेचक के रोग से संसर्ग हो जाता है, तो सात दिनो के पश्चात् उसमे चेचक के लक्षण दीखने लगते है। उस अवधि को क्या कहते है ?

माइक—उद्‌भवन-अवधि (इन्क्यूबेशन) ?

श्रील प्रभुपाद—उद्‌भवन-अवधि । तो आप उससे बच नही सकते। यदि आपका किसी रोग से सम्पर्क हो गया है, तो प्रकृति के नियम के अनुसार वह रोग बढेगा ही। उसी प्रकार, इस जीवन के अन्तर्गत आप प्रकृति के विभिन्न गुणो का संग करते है और यह उस पर निर्भर करता है कि आपको अगले जन्म मे किस प्रकार का शरीर प्राप्त होने जा रहा है। ऐसा होना पूर्ण रूप से प्रकृति के नियमो के अधीन है। सभी लोग प्रकृति के नियमो द्वारा नियन्त्रित किए जाते है—वे लोग पूर्ण रूप से पराधीन हैं। परन्तु अज्ञानता के कारण ही लोग सोचा करते है कि वे मुक्त है, स्वतन्त्र है, परन्तु वे पूर्ण रूप से प्रकृति के नियमो के अधीन है। तो आपके कर्म (पाप या पुण्य) के अनुसार ही आपका अगला जन्म निश्चित किया जाएगा।

माइक—कृष्णकृपाश्रीमूर्ति, आपके द्वारा कुछ क्षण पूर्व कही गई वस्तु पर क्या हम पुन. विचार कर सकते है ? आपने कहा कि कोई भी स्वाधीन नही है। क्या आप यह कह रहे है कि यदि हम सदाचारी जीवन व्यतीत करे तो इस प्रकार हम अपने लिए उत्तम भविष्य का निर्माण करेंगे ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ।

माइक—जो वस्तु हमारे विश्वास के अनुसार महत्वपूर्ण है उसका (चुनाव) करने मे हम स्वतन्त्र है। धर्म महत्वपूर्ण है, क्योकि हम श्रीभगवान् मे विश्वास करे और सदाचार का जीवन व्यतीत करे...

श्रील प्रभुपाद—यह विश्वास का प्रश्न नही है। इस विषय-वस्तु मे विश्वास का प्रश्न बीच मे मत लाइए। यह तो नियम है। उदाहरण के लिए, शासन का अस्तित्व है। आप उसमे विश्वास करे या नही, यदि आप कानून को भग करते है तो शासन के द्वारा आपको दण्ड दिया जाएगा। उसी प्रकार आप विश्वास करे या न करे, किन्तु श्रीभगवान् विद्यमान है। यदि आप श्रीभगवान् मे विश्वास नही करते और स्वच्छन्दतापूर्वक मनमानी करना चाहते है, तो प्रकृति के नियमो द्वारा आपको दण्ड मिलेगा ही।

माइक—अच्छा। क्या इससे कुछ अन्तर नही पड़ता है कि आप किस धर्म मे विश्वास करते है ? यदि कोई कृष्ण-भक्त है तो...?

श्रील प्रभुपाद—यहाँ धर्म का प्रश्न नही है। यह तो विज्ञान का प्रश्न है। आप एक चिन्मय जीवात्मा है, परन्तु भौतिक जगत् मे बद्ध हो जाने के कारण आप प्रकृति के नियमो के अधीन है। तो आप भले ही क्रिश्चयन धर्म मे विश्वास करे और मैं हिन्दू धर्म मे, परन्तु इसका अर्थ यह तो नही कि आप वृद्ध होगे और मैं नही। हम लोग तो वृद्ध होने के विज्ञान के विषय मे चर्चा कर रहे है। यह प्राकृतिक नियम है। ऐसा नही कि आप क्रिश्चयन है, अत. आप वृद्ध हो रहे है, अथवा क्योकि मै हिन्दू हूँ इसलिए मै वृद्ध नही हो रहा हूँ। सभी लोग वृद्ध हो रहे है। तो उसी प्रकार प्रकृति के सम्पूर्ण नियम सभी के लिए प्रयुक्त होते है। चाहे आप इस धर्म मे विश्वास करे या उस धर्म मे, इससे कुछ अन्तर नही पडता।

माइक—तो, आपका कहना है कि भगवान् केवल एक है जो हम सभी पर नियन्त्रण कर रहे है ?

श्रील प्रभुपाद—भगवान् एक है और प्रकृति के नियम एक है और हम सब उस प्रकृति के नियम के अधीन है। हम परतत्व भगवान् के द्वारा नियन्त्रित किए जाते हैं। तो यदि हम सोचे कि हम स्वाधीन है या हम जो चाहे वह कर सकते है, तो यह हमारी मूर्खता है।

माइक—अच्छा। क्या आप मुझे यह समझा सकते है कि हरे कृष्ण अभियान (आन्दोलन) का सदस्य बन जाने पर हमारे जीवन मे क्या अन्तर आ जाता है ?

श्रील प्रभुपाद—हरे कृष्ण अभियान उन व्यक्तियो के लिए है जो इस विज्ञान को गम्भीरता के साथ समझना चाहते है। हरे कृष्ण भक्त किसी प्रकार का कोई साम्प्रदायिक वर्ग है, इसका तो प्रश्न ही नही उठता। जी नही, कोई भी इस अभियान मे सम्मिलित हो सकता है। महाविद्यालय के विद्यार्थीगण इसमे प्रवेश पा सकने है। आप चाहे क्रिश्चयन हो, हिन्दू हो या मुसलमान हो, इससे कुछ भी अन्तर नही पड़ता। जो भी भगवद्-विज्ञान को समझना चाहता है उसे श्रीकृष्णभावनामृत अभियान स्वीकार कर लेता है।

माइक—लोगो को इससे क्या अन्तर पड़ेगा यदि उन्हें हरे कृष्ण भक्त बनने की शिक्षा दी जाय ?

श्रील प्रभुपाद—व्यक्ति की वास्तविक शिक्षा तभी आरम्भ होती है। सर्वप्रथम तो समझना है हम एक चिन्मय आत्मा है और आत्मा होने के कारण हम

अपना शरीर परिवर्तित कर रहे है। पारमार्थिक ज्ञान का यह क, ख, ग है। तो जब आपका देहान्त होता है, अर्थात् देह का नाश हो जाता है तब आपका अन्त नही होता। आपको दूसरा शरीर प्राप्त हो जाता है, जैसे आप अपने कोट और कुरते को बदल सकते है। यदि आप कल विभिन्न प्रकार का कुरता और विभिन्न प्रकार का कोट पहन कर मुझसे भेंट करने आएँ तो क्या इसका यह अर्थ हुआ कि आप एक भिन्न व्यक्ति है ? जी नही, उसी प्रकार प्रत्येक बार जब आपकी मृत्यु होती है तो आप शरीर-परिवर्त्तन कर लेते है, परन्तु 'आप' अर्थात् शरीर में रहने वाली आत्मा वही रहती है। इस विषय को समझना आवश्यक है, तभी हम श्रीकृष्णभावनामृत के विज्ञान मे आगे प्रगति कर सकते है।

माइक—मैं कुछ-कुछ समझने लगा हूँ। परन्तु मुझे यह समझने मे कठिनाई हो रही है कि इस सिद्धान्त का और ऑक्सफोर्ड स्ट्रीट (लन्दन मे स्थित क्रय-विक्रय की संसार मे सबसे बड़ी स्ट्रीट) पर भक्तो के द्वारा इतनी बड़ी सख्या में हरे कृष्ण साहित्य के वितरण में और इस सिद्धान्त के बीच क्या सम्बन्ध है ?

श्रील प्रभुपाद—यह साहित्य लोगो को इस तथ्य के विषय में प्रतीति (विश्वास) कराने के लिए है कि जीवमात्र को पारमार्थिक जीवन की आवश्यकता है।

माइक—और आपके लिए यह वास्तव मे महत्वपूर्ण नही है कि वे लोग हरे कृष्ण अभियान में सम्मिलित होते है या नही ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, हमे इससे कुछ अन्तर नही पड़ता। हमारा ध्येय उनको शिक्षित करना है। लोग अज्ञानता मे है, वे मायावी-जगत् मे निवास कर रहे है और सोच रहे है कि जब उनका शरीर नष्ट होता है तो प्रत्येक वस्तु का नाश हो जाता है। यह मूर्खता है।

माइक—तो मुख्य रूप से आप केवल इससे सम्बद्ध है कि लोगो को यह जानकारी दी जाय कि आध्यात्मिक (पारमार्थिक) जीवन भी है ?

श्रील प्रभुपाद—हमारी पहिली चिन्ता तो यही है कि यह बताया जाय कि आप यह शरीर नही है। यह शरीर कुरते और कोट के समान आपका आवरण है और इस शरीर के अन्दर 'आप' निवास कर रहे है।

माइक—जी हाँ, मैं सोचता हूँ कि अब मै इस तथ्य को समझ गया हूँ। तो हम यहाँ से पुन: आगे बढ़ते है—आपने कहा कि मृत्यु के पश्चात् मिलने वाले अगले जीवन पर, इस जीवन मे किए गए कर्मो का प्रभाव पड़ता है और ऐसे प्राकृतिक नियम है कि आपका अगला जीवन निर्धारित करते है। यह देहान्तर की विधि किस प्रकार से कार्य करती है ?

श्रील प्रभुपाद—यह प्रक्रिया अर्थात् विधि अत्यन्त सूक्ष्म है। हमारे भौतिक नेत्रो के लिए आत्मा अदृश्य भी है। इसका आकार परमाणु से भी छोटा है।

इन्द्रियाँ, रक्त, हड्डी तथा वसा से बने इस स्थूल शरीर का नाश होने पर भी मन, बुद्धि और अहकार से बना हुआ सूक्ष्म शरीर कार्य करता रहता है। तो मृत्यु के समय यह सूक्ष्म शरीर छोटी-सी आत्मा को दूसरे स्थूल शरीर मे ले जाता है। यह विधि उसी प्रकार है जैसे वायु अपने साथ गन्ध को ले जाती है। कोई यह नही देख सकता कि गुलाब की सुगन्ध कहाँ से आ रही है, परन्तु हम यह जानते है कि यह वायु के द्वारा लाई जाती है। आप देख नही सकते कि यह सब किस प्रकार हो रहा है, परन्तु ऐसा ही होता है। उसी प्रकार आत्मा का देहान्तर भी अत्यधिक सूक्ष्म है। मृत्यु के समय मन की अवस्था के अनुसार सूक्ष्म आत्मा पिता के वीर्य के माध्यम से एक विशेष माँ के गर्भ मे प्रवेश करती है। तत्पश्चात् माँ के द्वारा दिए गए एक विशेष प्रकार के शरीर के रूप मे आत्मा का विकास होता है। यह शरीर मनुष्य, बिल्ली, कुत्ते या किसी अन्य का भी हो सकता है।

माइक—क्या आप यह कह रहे है कि इस जीवन के पूर्व हम कुछ और थे ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ।

माइक—और अगले जन्म मे कुछ और बन कर लौटेंगे ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, क्योंकि आप नित्य अर्थात् शाश्वत है। अपने कार्यों के अनुसार आप केवल शरीर बदल रहे है। इसीलिए आपको यह जानना चाहिए कि किस प्रकार इस जन्म-मृत्यु के कार्य का अन्त किया जाता है। आप किस प्रकार अपने मौलिक चिन्मय शरीर में रह सकते है। यह जानना ही श्रीकृष्ण-भावनामृत है।

माइक—अच्छा! तो यदि मैं कृष्ण-भक्त बन जाऊँ तो क्या मेरे लिए यह संकट नही रहेगा कि मुझे कुत्ते के रूप मे फिर संसार मे आना पड़े ?

श्रील प्रभुपाद—जी नही। (एक भक्त को) जरा यह श्लोक तो ढूंढ़ो : जन्म कर्म च मे दिव्यम्...

शिष्य— **जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।**
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

"हे अर्जुन, जो मेरे जन्म एव कर्म की दिव्य (अप्राकृत) प्रकृति को तत्त्वतः जान लेता है वह भौतिक देह त्याग कर पुन. ससार मे जन्म नही लेता, वरन् मेरे सनातन धाम को प्राप्त करता है।" [गीता ४.९]

श्रील प्रभुपाद—श्रीभगवान् कह रहे है, "जो कोई भी मुझे समझ लेता है, वह जन्म और मृत्यु से मुक्त है।" परन्तु भगवान् को भौतिक अनुमानो या तर्क-वितर्क के द्वारा नही समझा जा सकता है। ऐसा सम्भव ही नही है। सर्वप्रथम हमे आध्यात्मिक स्तर पर आना आवश्यक है। उसके बाद ही हमे श्रीभगवान् को

समझने की आवश्यक बुद्धि प्राप्त होती है। और जब हम भगवान् को समझ जाते है, तब फिर हमें किसी भी भौतिक शरीर की प्राप्ति नही होती। हम अपने घर, श्रीभगवान् के धाम में लौट जाते है। हम वहाँ शाश्वत रूप से निवास करते है तथा फिर किसी प्रकार का शरीर-परिवर्त्तन नही होता।

माइक—अच्छा ! आप दो बार शास्त्रो से श्लोक पढवा चुके है। इन शास्त्रो की उत्पत्ति कहाँ से हुई ? संक्षेप मे आप इसे समझा सकते है ?

श्रील प्रभुपाद—हमारे शास्त्र वैदिक साहित्य के अंग है, जो इस सृष्टि के प्रारम्भ से ही अस्तित्व में है। जब भी कोई नई भौतिक सृष्टि होती है—उदाहरण के लिए यह माइक्रोफोन—तब उसके साथ साहित्य भी रहता है। वह साहित्य इसकी व्याख्या करता है कि उस वस्तु-विशेष से किस प्रकार व्यवहार किया जाय। क्या यह सत्य नही है ?

माइक—जी हाँ, आप का कहना ठीक है, यह सत्य है।

श्रील प्रभुपाद—और वह साहित्य माइक्रोफोन के निर्माण के साथ ही साथ आता है।

माइक—जी हाँ। यह भी सही है।

श्रील प्रभुपाद—तो उसी प्रकार वैदिक साहित्य भी इस भौतिक सृष्टि के साथ आते है। वे यह व्याख्या करते है कि इस संसार के साथ किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए।

माइक—अच्छा ! तो ये शास्त्र सृष्टि के आरम्भ से ही अस्तित्व मे है। अब हम ऐसे विषय पर आते है जिसके ऊपर, मैं विश्वास करता हूँ कि आप अत्यन्त उग्रता का अनुभव करते है। इस श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति मे और पश्चिमी देशो मे सिखाए जाने वाले अन्य पौर्वात्य (पूर्वी जगत् के) दर्शन और सिद्धान्तों में मुख्य भेद क्या है ?

श्रील प्रभुपाद—हमारे और उनके बीच में सबसे बड़ा भेद यह है कि हम मूल वैदिक साहित्य का अनुसरण कर रहे है और वे लोग अपने निजी साहित्य की रचना कर रहे है। मुख्य भेद यही है। जब पारमार्थिक विषयो पर कोई प्रश्न या जिज्ञासा होती है तो आपको अवश्य ही मूल साहित्य से परामर्श लेना चाहिए न कि एक खोटे मनुष्य के द्वारा लिखे गये साहित्य से।

माइक—हरे कृष्ण, हरे कृष्ण कीर्त्तन का क्या महत्व है ?

श्रील प्रभुपाद—विशेषकर इस युग मे हरे कृष्ण-कीर्त्तन शुद्ध बनने की सबसे अधिक सरल विधि है। इस युग मे लोग इतने मन्द हैं कि वे आध्यात्मिक ज्ञान को अत्यन्त सरलता पूर्वक नही समझ सकते। यदि कोई हरे कृष्ण कीर्त्तन करता है, तो

उसकी बुद्धि शुद्ध होती है जिसके फलस्वरूप वह पारमार्थिक विषयो को समझ सकता है।

माइक—क्या आप मुझे यह बता सकते है कि आप जो कार्य करते हैं उसके सम्बन्ध मे आपको किससे निर्देशन प्राप्त होता है ?

श्रील प्रभुपाद—हम वैदिक साहित्य से निर्देशन प्राप्त करते हैं।

माइक—किन शास्त्रो को आपने चर्चा के अन्तर्गत उद्धृत किया था ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, यह सब शास्त्रो मे दिया गया है। हम विभिन्न भाषाओ में केवल उनकी व्याख्या कर रहे है। परन्तु हम किसी भी वस्तु की रचना नही कर रहे है।' जब हम ज्ञान की रचना करने लगते है, तो प्रत्येक वस्तु ही भ्रष्ट हो जाती है। वैदिक साहित्य उस साहित्य के समान है जो यह व्याख्या करता है कि किस प्रकार इस माइक्रोफोन को स्थापित करना है। यह साहित्य कहता है, "इस विधि से कार्य कीजिए : कुछ पेच एक ओर होने चाहिए और कुछ दूसरी ओर।" आप इसमे कोई परिवर्तन नही कर सकते, यदि ऐसा करेंगे तो प्रत्येक वस्तु ही विनष्ट हो जाएगी। इसी प्रकार हम किसी भी सिद्धान्त की रचना नही कर रहे है, इसीलिए हमारे ग्रन्थो मे से एक ग्रन्थ के अध्ययन करने की आवश्यकता भर है। उस ग्रन्थ के अध्ययनमात्र से व्यक्ति यथार्थ आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

माइक—श्रीकृष्णभावनामृत का दर्शन लोगो के रहन-सहन को किस प्रकार प्रभावित कर सकता है ?

श्रील प्रभुपाद—यह लोगो को कष्ट से मुक्त करा सकता है। लोग कष्ट उठा रहे है देहात्म-बुद्धि के कारण अर्थात् वे अपने आपको देह समझ रहे है। यदि आप कोट और कुरता है और आप अत्यन्त सावधानीपूर्वक इस कोट और कुरते को धोते भी रहे, फिर भी यदि आप भोजन करना भूल जाएँगे तो क्या आप सुखी होगे ?

माइक—जी नही, मै सुखी नही हो सकूँगा।

श्रील प्रभुपाद—उसी प्रकार सभी लोग देह रूपी 'कोट और कुरते' को ही केवल धो रहे है, परन्तु शरीर के भीतर रहने वाली आत्मा को भूले जा रहे है। उनको इसकी कोई जानकारी ही नही है कि इस शरीर रूपी 'कोट और कुरते' के भीतर क्या है ? आप किसी से भी पूछे कि वह कौन है ? वह कहेगा "जी हाँ, मै अंग्रेज हूँ" या "मैं भारतीय हूँ" और यदि हम कहते है, "निश्चय ही, यह तो मै भी देख सकता हूँ कि आपका अंग्रेज या भारतीय शरीर है, परन्तु 'आप' कौन है ?"—इस प्रश्न का उत्तर वह नही दे सकता।

माइक—अच्छा।

श्रील प्रभुपाद—सम्पूर्ण आधुनिक सभ्यता ही इस भ्रम पर सचालित हो रही

है कि मैं यह शरीर हूँ (देहात्म-बुद्धि)। यह प्रवृत्ति तो कुत्ते और बिल्लियों की होती है। कल्पना कीजिए कि मैं इंग्लैंड मे प्रवेश करने का प्रयत्न करता हूँ, आप मुझे सीमा पर रोक देते है : "मैं अंग्रेज हूँ," आप कहते है, "परन्तु आप भारतीय, आप यहाँ क्यो आए है ?" और कुत्ता भी भौका करता है, "भो-भों आप यहाँ क्यो आ रहे है ?" तो मनुष्य और कुत्ते की प्रवृत्ति मे भेद ही क्या हुआ ? कुत्ता सोच रहा है कि वह कुत्ता है और मै एक अपरिचित हूँ और आप भी यह सोच रहे है कि आप एक अंग्रेज व्यक्ति है और मैं भारतीय हूँ तो इस प्रकार प्रवृत्ति मे तो कोई भेद नही हुआ यदि आप, लोगो को कुत्तो जैसी प्रवृत्ति के अन्धकार मे बनाए रखे और यह घोषणा भी करते जाएँ कि आपकी सभ्यता प्रगति कर रही है तो आप सर्वाधिक भ्रमित व्यक्ति माने जाएँगे।

माइक—अच्छा, अब दूसरे विषय पर चर्चा की जाय, मुझे ज्ञात है कि हरे कृष्ण अभियान मे विश्व के उन क्षेत्रो के प्रति कुछ सहानुभूति या चिन्ता है, जहाँ लोग दु.खी है।

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, केवल हम ही लोग हैं जिनको वास्तव मे इस विषय की चिन्ता है। दूसरे लोग जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि जैसी प्रधान समस्याओ से मुँह मोड रहे है। दूसरो के पास इन समस्याओ का कोई भी हल नही है, वे लोग केवल सभी प्रकार की मूर्खतापूर्ग चर्चाएँ कर रहे है। लोगो को मार्गभ्रष्ट किया जा रहा है। उनको जानबूझकर अन्धकार मे रखा जा रहा है। तो हम सब, ऐसे लोगो को कुछ प्रकाश देने का प्रयत्न करे।

माइक—जी हाँ, परन्तु आध्यात्मिक प्रकाश के साथ ही साथ क्या आप लोगो के शारीरिक कल्याण के लिए भी चिन्तित है ?

श्रील प्रभुपाद—पारमार्थिक कल्याण-कार्य करने से शारीरिक कल्याण अपने आप ही हो जाता है।

माइक—यह किस प्रकार होता है ?

श्रील प्रभुपाद—मान लीजिए आपके पास एक मोटर-कार है। तो स्वाभाविक ही आप अपने साथ ही साथ मोटर की भी देखभाल करते है, परन्तु आप अपने आपको मोटर नही समझते। आप यह नही कहते, "मै यह मोटर हूँ" ऐसा कहना मूर्खता है। परन्तु लोग यही सब कुछ तो कर रहे है। वे अपने शरीर रूपी 'मोटर' की आवश्यकता से अधिक देखभाल कर रहे है (यह सोचकर कि वे यह मोटर ही है) वे भूल ही जाते है कि वे लोग मोटर से भिन्न है, वास्तव मे वे चिन्मय आत्मा है और उनका एक दूसरा भी प्रयोजन है। जैसे कोई मनुष्य पेट्रोल पीकर सन्तुष्ट नही हो सकता, उसी प्रकार कोई भी केवल शारीरिक क्रिया-कलापो से सन्तुष्ट नही हो सकता है। हमे आत्मा को यथोचित भोजन देना आवश्यक है। यदि एक मनुष्य यह

सोचे, "मैं एक मोटर हूँ और इसलिए अवश्य ही मुझे पेट्रोल पीना चाहिए," तो उस मनुष्य को पागल समझा जाएगा। उसी प्रकार जो यह सोचता है कि वह यह शरीर है और शारीरिक आनन्द के द्वारा सुखी होने का प्रयत्न करता है, वह एक पागल व्यक्ति ही है।

माइक—यह एक उद्धरण है, जिस पर मैं आपका मत जाना चाहूँगा। यहाँ आने के पूर्व हरे कृष्ण भक्तो के द्वारा मुझे यह साहित्य प्राप्त हुआ और उसमे एक स्थान पर आप कहते है, "दार्शनिक सिद्धान्तो के बिना धर्म केवल एक भावुकता है।" क्या आप इसको थोड़ा और स्पष्ट कर सकते है?

श्रील प्रभुपाद—अधिकांश धार्मिक व्यक्ति कहते है, "हम विश्वास करते हैं" परन्तु ऐसे विश्वास का मूल्य ही क्या है? आप किसी ऐसी वस्तु पर भी विश्वास रख सकते है जो यथार्थ मे सही न हो। उदाहरण के लिए, कुछ क्रिश्चियन लोग कहते है, "हम विश्वास करते है कि पशुओ मे आत्मा नही होती।" यह ठीक नही है। वे इसीलिए ऐसा विश्वास करते हैं कि पशुओं मे आत्मा नही होती, क्योकि वे पशुओ को खाना चाहते है। परन्तु वास्तव मे पशुओ में आत्मा होती है।

माइक—आप यह कैसे जानते है कि पशु में आत्मा होती है?

श्रील प्रभुपाद—आप भी इसको जान सकते हैं। यहाँ पर एक वैज्ञानिक प्रमाण है। पशु खाता है, आप खाते है, पशु सोता है, आप भी सोते हैं, पशु मैथुन करता है और आप भी कामाचार मे संलग्न होते है, पशु आत्म-रक्षा करता है और आप भी आत्म-रक्षा करते हैं। तब फिर आप में और पशुओ मे क्या अन्तर है? आप यह कैसे कह सकते है कि आप में आत्मा है परन्तु पशुओ में नही?

माइक—जी हाँ, इन समानताओ को मैं पूर्ण रूप से देख सकता हूँ, परन्तु क्रिश्चियन धर्म-शास्त्रो का कहना...

श्रील प्रभुपाद—किसी धर्म-शास्त्र को बीच मे मत लाइए, यह तो सामान्य बुद्धि का विषय है। इसे समझने का प्रयत्न तो कीजिए। पशु भोजन कर रहा है और आप भोजन कर रहे है, पशु सो रहा है, आप सो रहे है, पशु आत्म-रक्षा कर रहा है, आप भी आत्म-रक्षा रहे है, पशु कामाचार कर रहा है, आप भी मैथुन कर रहे है। पशुओ के सन्तान होती है, आपके भी सन्तान है, उनके लिए निवास का स्थान है, आपके पास भी रहने की व्यवस्था है। यदि पशु का शरीर काटा जाता है, तो उसमे से रक्त निकलता है, आपका शरीर काटा जाय तो उसमे से भी रक्त निकलेगा, तो हममे और पशुओ मे ये सब समानताएँ है। तो अब आप इस एक ही समानता को क्यो अस्वीकार करते है कि पशुओ मे भी आत्मा होती है? तर्क की दृष्टि से यह ठीक नही है। आपने तर्कशास्त्र का अध्ययन किया है? तर्कशास्त्र मे एक विषय है 'समरूपता'। समरूपता का अर्थ है अनेक समान वस्तुओ को ढूंढ़कर

एक निष्कर्ष निकालना। तो यदि मनुष्य और पशुओ के बीच अनेकानेक समानताएँ हैं तब फिर एक ही समानता को क्यों अस्वीकार किया जाय ? यह तर्क नही है। यह विज्ञान नही है।

माइक—परन्तु यदि आप इस तर्क को लेकर उसका दूसरे ढंग से प्रयोग करें...

श्रील प्रभुपाद—दूसरा कोई ढंग ही नही है। यदि आप तर्क के आधार पर वाद-विवाद नही कर रहे है, तो आप समझदार नही है।

माइक—जी हाँ, मैं यह मानता हूँ, परन्तु हम दूसरी कल्पना के आधार पर चर्चा करें। मान लीजिए कि हम यह कल्पना कर ले कि मनुष्य मे आत्मा नही होती...

श्रील प्रभुपाद—यदि आप ऐसा मानते है, तो आप जीवित और मृत शरीर के अन्तर को अवश्य ही स्पष्ट कीजिए। मैं आरम्भ मे ही इस तथ्य की व्याख्या कर चुका हूँ। ज्यो ही जीवन-शक्ति अर्थात् आत्मा शरीर से जाती है त्यो ही सबसे अधिक सुन्दर शरीर का भी कोई मूल्य नही रह जाता। कोई उस शरीर की परवाह तक नही करता और उसे फेक दिया जाता है। परन्तु अभी यदि मै आपके केश का भी स्पर्श करूँ तो झगडा आरम्भ हो जाएगा। जीवित और मृत शरीर मे यही अन्तर है। जीवित शरीर मे आत्मा रहती है और मृत शरीर मे आत्मा नही है। जैसे ही आत्मा शरीर को त्यागती है, शरीर का कोई मूल्य नही रह जाता। वह अनुपयोगी हो जाता है। इस तथ्य को समझना साधारण-सा कार्य है, परन्तु बड़े से बड़े तथाकथित वैज्ञानिक और दार्शनिकगण भी इसे समझने मे जड़-बुद्धि सिद्ध होते है। आधुनिक समाज अत्यधिक निकृष्ट अवस्था मे है। सद्बुद्धि वाला कोई मनुष्य ही नही रह गया है।

माइक—क्या आपका अभिप्राय उन वैज्ञानिको से है जो जीवन के पारमार्थिक मूल्य को समझने मे असफल है ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ। वास्तविक विज्ञान का अर्थ है भौतिक और पारमार्थिक प्रत्येक वस्तु का पूर्ण ज्ञान।

माइक—परन्तु आप अपने पूर्व आश्रम मे एक रसायन शास्त्री थे न ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, मैं अपने पूर्व आश्रम मे एक रसायन शास्त्री था। परन्तु एक रसायन शास्त्री बनने मे कोई बहुत अधिक बुद्धि की आवश्यकता नही पड़ती। कोई साधारण बुद्धि वाला मनुष्य भी यह कार्य कर सकता है।

माइक—परन्तु क्या आपका यह विचार है कि भौतिक विज्ञान भी महत्वपूर्ण है, चाहे भले ही आज के वैज्ञानिक जड़-बुद्धि वाले हो।

श्रील प्रभुपाद—भौतिक विज्ञान का महत्व तो है ही, परन्तु यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण नही है।

माइक—अच्छा ! क्या आपसे पिछला प्रश्न पुनः पूछ सकता हूँ ? कुछ मिनट

पूर्व जब हम लोगों में कुछ मतभेद उत्पन्न हो रहा था तो आप कह रहे थे, "धर्म-शास्त्र को बीच में मत लाइए, केवल साधारण बुद्धि का प्रयोग कीजिए।" परन्तु, वास्तव मे आपके धर्म में शास्त्रो की क्या भूमिका है ? कितने महत्वपूर्ण हैं वे ?

श्रील प्रभुपाद—हमारा धर्म एक विज्ञान है। जब कहते हैं कि एक शिशु का बालक के रूप मे विकास होता है तो यह विज्ञान है, धर्म नही। प्रत्येक शिशु एक बालक बनता है। धर्म का प्रश्न ही कहां उठता है ? प्रत्येक व्यक्ति मरता है। तो इसमें धर्म का प्रश्न कहाँ है ? और जब एक मनुष्य की मृत्यु होती है, तब उसकी देह अनुपयोगी हो जाती है। इसमें भी कोई धर्म का प्रश्न नही है। यह विज्ञान है। चाहे आप क्रिश्चियन अथवा हिन्दू या मुसलमान हो, जब आप मरते हैं तो आपकी देह अनुपयोगी हो जाती है। यह एक विज्ञान है। जब आपके किसी सम्बन्धी की मृत्यु होती है तो आप यह नही कह सकते, "हम लोग क्रिश्चियन है, हम विश्वास करते है कि वह व्यक्ति मरा नही है।" जी नही, उसकी मृत्यु हो चुकी है। चाहे आप क्रिश्चियन हो या हिन्दू अथवा मुसलमान, आपका वह सम्बन्धी मर ही चुका है। तो जब हम लोग चर्चा करते है तो हमारे वार्तालाप का आधार यह होता है—इस शरीर का तभी तक महत्व है जब तक आत्मा इसके भीतर रहती है। जब शरीर के अन्दर आत्मा नही है, तो शरीर अनुपयोगी है। यह विज्ञान सभी पर समान रूप से प्रयुक्त होता है और हम इसी आधार पर लोगो को शिक्षित करने का प्रयत्न कर रहे है।

माइक—परन्तु यदि मै आपको ठीक से समझा हूँ तो मुझे लगता है कि आप लोगो को विशुद्ध वैज्ञानिक आधार पर ही शिक्षित कर रहे है। तब फिर इसमे धर्म का कहाँ से प्रवेश हो जाता है ?

श्रील प्रभुपाद—धर्म का अर्थ विज्ञान भी है। लोगो ने धर्म का गलत अर्थ लगाया है कि धर्म का अर्थ विश्वास होता है—"मैं विश्वास करता हूं।" (एक भक्त से) धर्म (रिलीजन) शब्द का अर्थ शब्द-कोश मे देखो।

शिष्य—शब्द-कोश कहता है, "नियन्त्रण अथवा शक्ति को स्वीकार करना और विशेषकर सगुण साकार भगवान् की आज्ञा का पालन करना। ऐसी स्वीकृति को अनुकूल भाव के साथ व्यवहार मे लाना।"

श्रील प्रभुपाद—हाँ। धर्म का अर्थ है, यह सीखना कि परम-ईश्वर (नियन्त्रक) श्रीभगवान् की आज्ञा का किस प्रकार से पालन किया जाय। तो आप भले ही क्रिश्चियन हो और मै भले ही हिन्दू, इससे कुछ भी अन्तर नही पड़ता। हम दोनो को ही अवश्य यह स्वीकार करना चाहिए कि परम ईश्वर श्रीभगवान् है। सभी को यह तथ्य स्वीकार करना है, यही वास्तविक धर्म है। यह नही, "हम विस्वास करते है कि पशुओ मे आत्मा नही होती।" यह धर्म नही है। यह विचार सर्वाधिक अवै-

ज्ञानिक है। धर्म का अर्थ है वैज्ञानिक आधार पर परम ईश्वर भगवान् को समझना और उनकी आज्ञा का पालन करगा। बस और कुछ नही। देश का अच्छा नागरिक वह है जो शासन को समझता है और शासन के नियमो को मानता है। बुरा नागरिक वह है जो शासन की परवाह नही करता। तो यदि आप अच्छे नागरिक हैं तो स्वाभाविक ही आप धार्मिक होगे।

माइक—अच्छा! क्या आप मुझे बता सकते है कि आपके विश्वास के अनुसार जीवन का क्या अर्थ है? सर्वप्रथम तो हमारे अस्तित्व का प्रयोजन ही क्या है?

श्रील प्रभुपाद—जीवन का अर्थ है आनन्द उठाना। परन्तु अभी जीवन के मिथ्या स्तर पर है और इसीलिए आप आनन्द उठाने के स्थान पर कष्ट पा रहे हैं। जहाँ भी हम देखे वही हमे अस्तित्व के लिए सघर्ष ही दीख पड़ता है। लोग केवल कष्ट उठा रहे है और मर रहे है? सभी लोग संघर्ष कर रहे है, परन्तु अन्त मे उनको इससे क्या सुख अथवा आनन्द प्राप्त होता है? वे लोग केवल कष्ट उठा रहे है और मृत्यु को प्राप्त हो रहे है। जीवन का अर्थ यह है आनन्द उठाना फिर भी वर्त्तमान काल मे आपका जीवन आनन्दमय नही है। परन्तु आप जीवन के सच्चे और आध्यात्मिक स्तर पर आ जाएँ तो आप आनन्द प्राप्त करेंगे।

माइक—तो इस साक्षात्कार (इण्टरव्यु) के अन्त मे क्या आप पारमार्थिक जीवन मे आने वाली कुछ स्थितियो के विषय मे व्याख्या कर सकते है? नवीन कृष्ण-भक्त किन आध्यात्मिक स्तरो से पार होता है?

श्रील प्रभुपाद—पहली सीढी है कि आप जिज्ञासु बनते है। तो, आप कहते है, "यह श्रीकृष्णभावनामृत अभियान है क्या? मै इसका अध्ययन तो करूँ।"

माइक—अच्छा!

श्रील प्रभुपाद—इसे **श्रद्धा** कहा जाता है। यह आरम्भ है। इसके पश्चात् यदि आप भक्ति के विषय मे गम्भीरता के साथ विचार करना चाहते है, तो आप ऐसे व्यक्तियो का संग करे जो इस कृष्ण-भक्ति के अनुशीलन मे मग्न है, **साधु-संग**। आप यह समझने का प्रयत्न करते है कि भक्त-गण क्या अनुभव कर रहे है। तब आप स्वयं अनुभव करेंगे, "क्यो न मैं इन कृष्ण-भक्तो के समान ही बन जाऊँ।" और जब आप भक्त बनते है तब आपके सब अनर्थ दूर हो जाते है, **अनर्थ-निवृत्ति**। आप और अधिक श्रद्धावान् बन जाते है, **निष्ठा**। तब आपको श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति का यथार्थ स्वाद प्राप्त होता है, **रुचि**। ये नवयुवक चलचित्र (सिनेमा) देखने नही जा रहे है, ये मासाहार क्यो नही करते अथवा नाइट क्लब आदि स्थानो मे क्यो नही जाते, क्योकि उनकी रुचि मे परिवर्त्तन हो गया है। अब ये इन सब वस्तुओ से घृणा करते है। इस प्रकार आप भक्ति-जीवन के विभिन्न स्तरो पर प्रगति करते जाते है। सर्वप्रथम श्रद्धा, तत्पश्चात् साधु संग, अनर्थ निवृत्ति, निष्ठा, रुचि

फिर भाव तब भगवान् का साक्षात्कार और अन्त में भक्ति की सिद्धि—कृष्ण-प्रेम की प्राप्ति—यह प्रथम श्रेणी का धर्म है। "मैं विश्वास करता हूँ, तुम विश्वास करते हो" इस आधार पर बनी कोई कर्मकाण्डीय औपचारिकता नही। यह धर्म नही वरन् छल है। वास्तविक धर्म का अर्थ है अपने भगवद्-प्रेम का विकास करना। धर्म की सिद्धि यही है।

माइक—समय देने के लिए आपको अनेकानेक धन्यवाद। यह चर्चा मेरे लिए आनन्ददायक रही।

श्रील प्रभुपाद—हरे कृष्ण !

सत्य एवं सौन्दर्य

"सौन्दर्य सत्य है एव सत्य सौन्दर्य," अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि कीट्स ने कहा था "पृथ्वी पर लोगो को इतना ही ज्ञात है और इतना होने की आवश्यकता भी है, क्या यह यथार्थ दृष्टिकोण है? यह आकर्षक परन्तु कटु लेख अग्रेजी भगवद्-दर्शन के एक प्राचीन सस्करण (२० नवम्बर १९५८) मे प्रकाशित हुआ था। इस निबन्ध मे श्रील प्रभुपाद, 'द्रवित सौन्दर्य' की एक अविस्मरणीय कथा की चर्चा करते हैं।

कभी-कभी यह वाद-विवाद किया जाता है कि, 'सत्य' एवं 'सौन्दर्य' ये दोनो एक दूसरे के अनुरूप शब्द हैं अथवा नही। कोई सत्य को व्यक्त करने के लिए स्वेच्छापूर्वक सहमत तो हो जाता है, परन्तु यहाँ आपत्ति यह होती है कि सत्य सदैव सौन्दर्यमयी नही होता। सत्य प्रायः ही अद्भुत एव अप्रिय होता है—तो फिर सत्य एवं सौन्दर्य को साथ-साथ किस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है?

उत्तर में, हम इस वाद-विवाद से सबद्ध सभी व्यक्तियो को यह जानकारी देते हैं कि 'सत्य' और 'सौन्दर्य' ये एक दूसरे के अनुरूप शब्द है। निःसन्देह, हम दृढ़तापूर्वक स्वीकार कर सकते हैं कि वास्तविक सत्य, जो कि अद्वय (परम) भगवान् हैं, वह सदा ही सुन्दर होता है। वह परम सत्य इतना अधिक सुन्दर है कि वह सभी को आकर्षित करता है, यहाँ तक कि सत्य के आकर्षण के क्षेत्र में स्वयं 'सत्य' भी सम्मिलित रहता है। सत्य इतना अधिक सुन्दर है कि अनेकानेक ऋषि, सन्त और भक्त-गणो ने सत्य के लिए प्रत्येक वस्तु का त्याग कर दिया। आधुनिक जगत् के एक आदर्श, महात्मा गांधी ने अपना सम्पूर्ण जीवन सत्य के साथ प्रयोग करने मे ही समर्पित कर दिया और उनके सभी कार्यों का लक्ष्य केवल सत्य ही रहता था।

केवल महात्मा गांधी ही नहीं, हमारे सबके हृदय में सत्य की खोज करने की एक लालसा है। इसका कारण यह है कि सत्य न केवल सुन्दर परन्तु सर्व-शक्तिमान्, सर्वधनवान्, सर्वप्रसिद्ध, सर्वविरक्त और सर्वज्ञान का भण्डार है।

दुर्भाग्यवश लोगो को परम सत्य के विषय मे कोई जानकारी ही नही है। निःसन्देह, जीवन के समस्त क्षेत्रो के ९९.९ प्रतिशत मनुष्य सत्य के नाम पर केवल

असत्य की खोज कर रहे है। हम सत्य के सौन्दर्य द्वारा वास्तव मे आकर्षित किए जाते है, परन्तु हमें अनादि काल से असत्य से प्रेम करने की आदत है। अत: हमे असत्य सत्य-सा प्रतीत होता है। इसलिए सांसारिक (विषयी) लोगो के लिए 'सत्य' और 'सौन्दर्य' अनुरूप शब्द नही है। भौतिक अर्थात् प्राकृत सत्य और सौन्दर्य की व्याख्या निम्नलिखित ढंग से की जा सकती है।

एक बार एक पुरुष को, जिसका शरीर तो अत्यन्त सुगठित और बलवान् था, परन्तु चरित्र अत्यधिक सन्देह-युक्त था, एक सुन्दर युवती से प्रेम हो गया। वह युवती केवल दिखने मे ही सुन्दर नही, वरन् सन्त स्वभाव की भी थी। अत: उसने इन चेष्टाओ को पसन्द नही किया। किन्तु, वह पुरुष अपनी कामुक इच्छा के कारण हठ पर अडा रहा। इसलिए उस युवती ने उस पुरुष से केवल सात दिनों तक प्रतीक्षा करने की प्रार्थना की। उसने एक समय निश्चित कर दिया, जिसके पश्चात् वह पुरुष उससे भेंट कर सकता था। वह मनुष्य सहमत हो गया और उसने प्रबल आशाओ के साथ निश्चित समय की प्रतीक्षा करनी आरम्भ कर दी।

किन्तु, उस सन्त स्वभाव वाली युवती ने परम सत्य की यथार्थ सुन्दरता दिखलाने के लिए एक अत्यधिक शिक्षाप्रद विधि का सहारा लिया। उसने उदर स्वच्छ करने के लिए अधिक मात्रा मे औषधियाँ (जुलाव) ले ली और सात दिनो तक उस युवती को लगातार दस्त होते रहे। उसने जो कुछ भी भोजन किया वह सब उल्टी के रूप मे निकल गया। यही नही, उसने सारा दस्त यथोचित पात्रो मे एकत्रित कर लिया। इन औषधियो को अधिक मात्रा मे लेने के कारण वह तथाकथित सुन्दर युवती कृशकाय (दुबली-पतली) होकर हड्डियो का एक ढाँचा मात्र रह गई। उसका रग काला पड़ गया और उसके सुन्दर एवं आकर्षक नेत्र गढ़े मे धँस गए। इस प्रकार निश्चित समय पर वह उत्सुकतापूर्वक उस आकुल व्यक्ति की प्रतीक्षा करने लगी।

वह व्यक्ति भली-भाँति सजा हुआ निश्चित समय पर उपस्थित हुआ और उसने प्रतीक्षा करती हुई कुरूप युवती से पूछा कि जिस सुन्दरी से उसका मिलन होना था वह कहाँ है। वह उस युवती को देखकर पहचान ही नही सका कि यह वही सुन्दरी है, जिसके लिए वह कामना कर रहा था। उस युवती ने यद्यपि बारम्बार अपनी पहचान पर बल दिया, परन्तु उसकी दयनीय दशा के कारण वह पुरुष उसे पहचान न सका।

अन्त मे युवती ने उस शक्तिशाली व्यक्ति से कहा कि उसने अपने सुन्दरता के अंगो को अलग करके बर्तनो मे एकत्र कर लिया है। युवती ने यह भी कहा कि वह सौन्दर्य के उन रसो को भोग सकता है। जब उस लम्पट पुरुष ने सुन्दरता के उन रसो को देखना चाहा तो उसे वहाँ ले जाया गया। उस स्थल पर दस्त और

उल्टी के द्रव एकत्रित किए गए थे और उसमे से असह्य दुर्गन्ध निकल रही थी। इस प्रकार 'द्रवित-सौन्दर्य' की सारी कथा उस व्यक्ति को पता चल गई। अन्ततः उस सन्त स्वभाव वाली युवती की कृपा से वह निम्न चरित्र वाला पुरुष छाया और तत्व मे भेद जानने में समर्थ हो सका एवं उसको सद्‌बुद्धि प्राप्त हुई।

उस व्यक्ति की स्थिति हम सभी लोगो के समान ही है, जो मिथ्या प्राकृत सौन्दर्य के द्वारा आकर्षित हो जाया करते है। ऊपर वर्णन की गई युवती का उसके मन की इच्छा के अनुसार एक सुन्दर भौतिक शरीर था, परन्तु वास्तव मे वह उस अस्थायी भौतिक शरीर और मन से पृथक् थी। तथ्य तो यह है कि वह एक चिन्मय स्फुलिंग (आत्मा) थी और उसकी मिथ्या त्वचा के द्वारा आकर्षित होने वाला वह प्रेमी भी एक आत्मा ही था।

किन्तु वाह्य सौन्दर्य और सापेक्ष सत्य के आकर्षण के द्वारा भौतिकतावादी वौद्धिक और सौन्दर्योपासक विमोहित है। ये लोग उस चिन्मय स्फुलिग (आत्मा) से अपरिचित है जो एक ही साथ सत्य है और सुन्दर भी। वह आत्मा इतनी अधिक सुन्दर है कि जव वह इस नाममात्र के सुन्दर शरीर को त्यागती है तो कोई इस शरीर का स्पर्श भी नही करना चाहता। आत्माविहीन शरीर का कोई भी स्पर्श नही करना चाहता है, भले ही वह वहुमूल्य वस्त्रो से सजाया गया हो। वास्तव मे, यह नाममात्र का सुन्दर शरीर मल और मूत्र से परिपूर्ण है।

हम सब मिथ्या और सापेक्ष सत्य की खोज कर रहे है जो यथार्थ सौन्दर्य के अनुरूप नही है। किन्तु वास्तविक सत्य स्थायी रूप से सुन्दर है और असख्य वर्षों तक उसकी सुन्दरता का वही स्तर बना रहता है। वह चिन्मय स्फुलिंग अविनाशी है। वाह्य त्वचा की सुन्दरता केवल कुछ अधिक मात्रा मे पाचक (जुलाब) लिए जाने के द्वारा ही कुछ घण्टे के अन्दर नष्ट की जा सकती है, परन्तु सत्य की सुन्दरता अविनाशी और (यथावत्) है। दुर्भाग्य से भौतिकतावादी कलाकार और वौद्धिक व्यक्ति इस आत्मा रूपी सुन्दर स्फुलिंग के विषय मे अज्ञानी ही सिद्ध होते है। उनको उस पूर्ण अग्नि का भी ज्ञान नही है जो कि इन चिन्मय स्फुलिगो का स्रोत है। न ही उनको यह ज्ञान है कि उस स्फुलिग और अग्नि के बीच मे क्या सम्बन्ध है। यही सम्बन्ध दिव्य लीला का रूप ग्रहण करता है। जब सर्वशक्तिमान् भगवान् की कृपा से उन लीलाओ का प्रदर्शन होता है तो मूढ व्यक्ति अपने इन्द्रियो से परे कुछ नही देख पाते, वे सत्य और सौन्दर्य की इन लीलाओ को, ऊपर वर्णन किए गए दस्त और कै का रूप समझ बैठते हे। इस प्रकार, उलझन मे पडकर वे पूछते है कि सत्य और सौन्दर्य साथ ही साथ एक दूसरे के अनुरूप कैसे हो सकते है।

सासारिक मनुष्य यह नही जानते कि अणी अर्थात् श्रीभगवान् अप्राकृत और सर्वाधिक सुन्दर व्यक्ति है ओर सभी को अपनी ओर आकर्षित करते है। ये लोग

इस तत्त्व से परिचित नही हैं कि भगवान् प्रधान तत्त्व, प्रधान स्रोत और प्रत्येक वस्तु के उद्गम है। लघु चिन्मय स्फुलिग अंशी भगवान् के अंश होने के कारण गुण की दृष्टि से सुन्दरता और नित्यता मे भगवान् से अभिन्न है। भेद केवल यही है कि अंशी नित्य रूप से अंशी है जबकि उनके अंश नित्य रूप से अंश। वैसे जीव और श्रीभगवान् दोनों ही चरम सत्य, चरम सौन्दर्य, चरम ज्ञान, चरम शक्ति, चरम वैराग्य और चरम वैभव के पात्र है।

यद्यपि कोई साहित्य किसी भी महत्तम र सासारिक कवि अथवा बौद्धिक व्यक्ति के द्वारा ही क्यो न रचित हो, यदि उसमे चरम सत्य और सौन्दर्य का वर्णन नही है तो वह साहित्य सापेक्ष सत्य का शौच एव वमन का भडार ही है। यथार्थ साहित्य तो वह है जो श्रीभगवान् के चरम सत्य और सौन्दर्य का वर्णन करते है।

विवेकपूर्ण जिज्ञासाएँ

' भगवद्–दर्शन के एक प्राचीन अक, दिनाक २० अप्रैल सन् १९६० मे श्रील प्रभुपाद आत्मा के विज्ञान के विषय मे पुन चर्चा करते हैं मनुष्य, क्योकि एक विवेकी जीव है, अत जिज्ञासा एव प्रश्न करने के लिए ही उसका जन्म होता है। अधिक प्रश्नो की सख्या का अर्थ है ज्ञान और विज्ञान मे अधिक प्रगति किन्तु सर्वाधिक बुद्धिमान् मनुष्य यह जिज्ञासा करता है कि मृत्यु के पश्चात् क्या होता है ।''

पिता के साथ भ्रमण करता हुआ एक बालक निरन्तर जिज्ञासाएँ करता जा रहा है। वह पिता से अनेकानेक विलक्षण विषय पूछता है और पिता को यथोचित उत्तरो से अपने पुत्र को सन्तुष्ट करना पड़ता है। गृहस्थाश्रम मे जब मै एक युवा पिता था तो निरन्तर साथ रहने वाला मेरा द्वितीय पुत्र मुझसे सैकड़ो प्रश्न का अम्बार लगा देता। एक दिन हम सध्या को ट्राम मे जा रहे थे कि सामने से वर-यात्रा निकली और उस चार वर्ष के बालक ने सदा की ही भाँति यह प्रश्न किया कि यह विशाल शोभा-यात्रा क्या है। विवाह से सम्बन्धित उसके हजारो प्रश्न के हर सम्भव उत्तर दिए गए और अन्त में उसने पूछा क्या उसके पिता का भी विवाह हुआ है। यह प्रश्न सुनकर उपस्थित सज्जन वृन्द जोर से हँस पड़े, यद्यपि वह बालक आश्चर्यचकित था कि हम सब क्यो हँस रहे है। किसी प्रकार बालक को उसके विवाहित पिता के द्वारा सन्तुष्ट किया गया।

इस घटना से यह शिक्षा प्राप्त होती है कि मनुष्य क्योकि एक विवेकी जीव है अत. जिज्ञासा एवं प्रश्न करने के लिए ही उसका जन्म होता है। अधिक प्रश्नो की सख्या का अर्थ है ज्ञान और विज्ञान मे अधिक उन्नति। सम्पूर्ण भौतिक सभ्यता ही, युवा वर्ग के द्वारा अपने से बड़ो को पूछे गए इन प्रचुर प्रश्नो पर ही आधारित है। जब बड़े लोग युवा वर्ग के प्रश्नो का यथोचित उत्तर देते है, तो सभ्यता की क्रमश. उन्नति होती जाती है। सर्वाधिक बुद्धिमान् मनुष्य, किन्तु यही जिज्ञासा करता है कि मृत्यु के पश्चात् क्या होता है। अल्प-बुद्धि वाले व्यक्ति जिज्ञासाएँ कम ही किया करते है, परन्तु जो बुद्धिमान् है उनके प्रश्नो का स्तर उच्च ही होता जाता है।

सर्वाधिक बुद्धिमान् पुरुषो में से एक महाराज परीक्षित थे जो सम्पूर्ण विश्व के सम्राट् थे। अनजाने मे ही एक ब्राह्मण ने राजा को श्राप दे दिया कि सात दिन के भीतर सर्प के काटने के कारण राजा की मृत्यु हो जाएगी। वह ब्राह्मण यद्यपि बालक ही था, किन्तु वह अत्यधिक शक्तिशाली था। उन महान् राजा का महत्व नही जानने के कारण ही उस बालक ने मूर्खतापूर्वक यह श्राप दे दिया कि राजा की सात दिन के भीतर मृत्यु हो जाएगी। बालक के पिता को, जिनका महाराज परीक्षित ने अपराध किया था, यह श्राप सुनकर अत्यन्त शोक हुआ। जब महाराज को इस दुर्भाग्यशाली श्राप के विषय मे सूचना प्राप्त हुई, तो तत्काल ही वे अपना राजमहल त्याग कर, निकट भविष्य मे होने वाली अपनी मृत्यु की तैयारी करने के के लिए गंगाजी के तट पर चले गए। गंगा उनके राजधानी के निकट ही बहती थी। वे एक महान् सम्राट् थे इसलिए प्रायः सभी महर्षि और उच्च कोटि के विद्वान् उस स्थान पर एकत्रित हो गए जहाँ महाराज परीक्षित अपने नाशवान् शरीर को त्यागने के पूर्व उपवास कर रहे थे। अन्त मे, तत्कालीन सन्तो में से सर्वाधिक युवा सन्त, शुकदेव गोस्वामी भी वहाँ उपस्थित हुए और उनके द्वारा उस सन्त-समागम का सर्व सम्मति से सभापतित्व स्वीकार किया गया (यद्यपि वहाँ पर उनके महान् पिता श्रीव्यासदेव भी उपस्थित थे) महाराज परीक्षित ने अत्यन्त आदर पूर्वक शुकदेव गोस्वामी को एक उच्च आसन (व्यास-आसन) अर्पित किया और नश्वर जगत् मे सातवे दिन होने वाली अपनी मृत्यु के सम्बन्ध मे उनसे विवेक पूर्ण (सगत) प्रश्न किए। महाराज परीक्षित भगवान् के महान् भक्त पाण्डवो के योग्य वंशज थे और उन्होने महान् ऋषि श्रीशुकदेव के सामने इस प्रकार संगत जिज्ञासाएँ की। "हे ब्रह्मन्, आप महान् सन्तो मे भी सर्वाधिक महान् है, अतएव मै आपसे विनम्र निवेदन कर रहा हूँ कि आप कृपया यह कहे कि मेरा क्या कर्त्तव्य है। मैं अपनी मृत्यु के कगार पर स्थित हूँ। अतः मै इस विषम समय मे क्या करूँ? कृपा करके मुझे बताइए, हे प्रभो—मैं क्या श्रवण करूँ, क्या अर्चन करूँ, अथवा अब मैं किसका स्मरण करूँ? आप जैसे महान् ऋषि गृहस्थ के घरो मे आवश्यकता से अधिक नहीं ठहरते और इसीलिए यह मेरा सौभाग्य है कि आप करुणावश मेरी मृत्यु के समय यहाँ आए हैं। अतएव कृपया इस विषम समय मे आप मुझे उपदेशामृत का पान कराइए।"

इस प्रकार महाराज परीक्षित के द्वारा मधुर भाषा में निवेदन किए जाने पर महर्षि शुकदेव जी ने उनके प्रश्नो का प्रामाणिक उत्तर दिया। शुकदेव गोस्वामी भागवत-विद्या के न केवल महान् विद्वान्, वरन् समस्त दैवी गुणो से सम्पन्न भी थे, क्योंकि दे वैदिक साहित्य के मूल रचयिता श्री बादरायण (श्री व्यासदेव) के योग्य पुत्र थे।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा, "प्रिय नृप, तुम्हारी जिज्ञासा अत्यधिक संगत और विवेकपूर्ण है एवं यह सब समय के समस्त लोगो के लिए हितकर भी है। ऐसी जिज्ञासाएँ सर्वोच्च है और विवेकपूर्ण भी। इनका वैदिक ज्ञान के निष्कर्ष अर्थात् वेदान्तदर्शन द्वारा समर्थन किया गया है। इन जिज्ञासाओ को **आत्म सम्मत:** कहा जाता है अर्थात् दूसरे शब्दो मे ऐसी विवेकपूर्ण जिज्ञासाएँ वे मुक्त पुरुष करते है, जिनको अपने आध्यात्मिक स्वरूप का पूर्ण ज्ञान है। ऐसी जिज्ञासाओ का उद्देश्य परत्तव भगवान् की जानकारी मे और अधिक वृद्धि करना होता है।"

श्री व्यासदेव के द्वारा रचे गए महान् वेदान्त (शारीरक) सूत्रो की स्वाभाविक टीका श्रीमद्भागवत है। वैदिक साहित्य मे वेदान्त-सूत्र का सर्वोच्च स्थान है। इनमे आध्यात्मिक ज्ञान के दिव्य विषय से सम्बन्धित मूलभूत जिज्ञासाओ का केन्द्रीकरण किया गया है। यद्यपि श्री व्यासदेव ने इस महान् ग्रन्थ की रचना की फिर भी उनके मन मे सन्तोष नही हुआ। रचना के पश्चात् उनकी भेंट श्रीनारद जी से हुई जो उनके गुरुदेव थे। और उन्होने श्री व्यासदेव को भगवान् की लीला का वर्णन करने का परामर्श दिया। ऐसा परामर्श प्राप्त करने पर श्री व्यासदेव ने भक्ति-योग के सिद्धान्तो पर ध्यान लगाया जिसके द्वारा उन्हे श्री भगवान् और तुलनात्मक सत्य अर्थात् माया मे भेद स्पष्ट हो गया। इन तथ्यो के विषय मे पूर्ण रूप से साक्षात्कार कर लेने के पश्चात् उन्हो ने श्रीमद्भागवत अर्थात् सुन्दर भागवत की महान् रचना की जिसका आरम्भ महाराज परीक्षित के जीवन से सम्बद्ध वास्तविक और ऐतिहासिक तथ्यो से होता है।

वेदान्त सूत्र का आरम्भ परत्तव से होता है जो जिज्ञासाओ की कुँजी है, **अथातो ब्रह्म जिज्ञासा**—"अब ब्रह्म अर्थात् परतत्त्व के विषय मे जिज्ञासा करे।"

जब तक मनुष्य मे जीवन का ओज (बल) रहता है तब तक वह अवश्यम्भावी मृत्यु के नग्न सत्य को भूले रहता है। इस प्रकार मूर्ख मनुष्य जीवन की वास्तविक समस्याओ के प्रति कोई विवेक पूर्ण सगत जिज्ञासा नही करता। सभी लोग सोचते है कि वे कभी नही मरेंगे, यद्यपि प्रत्येक क्षण अपने नेत्रो से वे मृत्यु का प्रमाण देखा करते है। पशुता और मानवता मे यही अन्तर है। बकरी जैसे पशु को आगामी मृत्यु का कोई ज्ञान नही रहता। यद्यपि उसके आगे खडी हुई उसकी जाति की बकरी की हत्या की जा रही होती है, फिर भी वह पीछे खडी हुई बकरी सामने डाली गई हरी-हरी घास के मोह मे वध किये जाने की शान्ति-पूर्वक प्रतीक्षा करती रहती है। दूसरी ओर, यदि कोई मनुष्य यह देखता है कि शत्रु के द्वारा साथ के मनुष्य की हत्या की जा रही है तो या तो वह अपने मित्र की रक्षा करने के लिए संघर्ष करता है अथवा सम्भव हुआ तो अपने जीवन की रक्षा

करने की उद्देश्य से उस स्थान से भाग ही खडा होता है। मनुष्य और पशु मे यही अन्तर है।

एक बुद्धिमान् व्यक्ति यह भली-भाँति जानता है कि जन्म के साथ ही मृत्यु भी उत्पन्न हो जाती है। उसे यह ज्ञात है कि प्रत्येक क्षण उसकी मृत्यु होती जा रही है और ज्यो ही उसके जीवन का समय समाप्त होगा त्यो ही मृत्यु का अन्तिम रूप सामने आ जाएगा। इसीलिए वह अगले जीवन के लिए अथवा जन्म-मृत्यु रूपी बारम्बार होने वाले भवरोग से मुक्त होने की तैयारी करता है।

किन्तु मूर्ख व्यक्ति जानता ही नही कि प्रकृति के नियमो के द्वारा दिए गए अनेकानेक जन्म और मृत्यु की शृ खला के पश्चात् ही यह मनुष्य योनि प्राप्त होती है। उसे यह ज्ञात नही कि जीवात्मा नित्य अर्थात् शाश्वत है और उस आत्मा का न तो जन्म होता है, न मृत्यु। जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि जीवात्मा पर बाह्य रूप से आरोपित किए जाते है। इसका कारण भौतिक प्रकृति से सम्पर्क और अपनी नित्य, दैवी प्रकृति एवं श्री भगवान् के साथ गुणात्मक अभिन्नता को भूल जाना है।

मनुष्य जीवन मे हमे इस नित्य सत्य को जानने का सुअवसर प्राप्त होता है। इसी प्रकार वेदान्त सूत्र के आरम्भ मे ही यही परामर्श दिया गया है कि हमारे पास, यह अमूल्य मानव जीवन है इसीलिए हमारा कर्तव्य है कि अभी ही यह जिज्ञासा करे कि ब्रह्म क्या है, परम सत्य, भगवान् क्या है ?

एक मनुष्य जिसके पास पर्याप्त बुद्धि नही है, वह इस अप्राकृत (दिव्य) जीवन के विषय मे जिज्ञासा नही करता, वरन् इसके स्थान पर वह अनेकानेक असगत विषयो के प्रति प्रश्न करता रहता है, जिनका उसके शाश्वत (नित्य) अस्तित्व से कोई सम्बन्ध नही। जीवन के आरम्भ से ही वह माँ, पिता, शिक्षक, प्रख्यात पुस्तके और अन्य दूसरे स्रोतो से जिज्ञासाएँ करने लगता है, परन्तु उसे अपने वास्तविक जीवन की सही जानकारी नही होती।

जैसा पूर्व मे वर्णन किया गया, परीक्षित महाराज को इस सूचना के रूप मे चेतावनी दी गई थी कि सात दिनो के अन्दर उनकी मृत्यु हो जाएगी। इतना सुनते ही उन्होने अगली अवस्था की तैयारी के लिए तत्काल ही अपने राजमहल का त्याग कर दिया था। राजा के पास मृत्यु की तैयारी करने के लिए कम से कम सात दिन तो थे। परन्तु, जहाँ तक हम लोगो का प्रश्न है, यद्यपि हम कम से कम यह भले ही जानते है कि हमारी मृत्यु निश्चित है, तथापि हमको मृत्यु की निश्चित तिथि की कोई भी जानकारी नही रहती। मै यह बिलकुल ही नही जानता हूँ कि सम्भव है अगले पल ही मेरी मृत्यु होने जा रही हो। यहाँ तक कि महात्मा गाधी जैसे महान् पुरुष भी यह गणना नही कर सके कि अगले पाँच मिनटो के अन्दर

उनकी मृत्यु होने जा रही है। न ही गाँधी जी के महान् साथी लोग निकट भविष्य मे होने वाली उनकी मृत्यु के विषय मे कोई अनुमान लगा सके और अचरज की बात तो यही है कि इतना सब कुछ होने पर भी ऐसे सभी सज्जन वृन्द स्वय को जनता के महान् नेताओ के रूप मे प्रस्तुत करते है।

यह जीवन और मृत्यु की अज्ञानता ही है जो एक पशु को मनुष्य से पृथक् करती है। एक ज्ञानी मनुष्य स्वय के विषय मे जिज्ञासा करता है कि वह है कौन ? इस जीवन में वह किस स्थान से आया और मृत्यु के पश्चात् वह कहाँ जाने वाला है ? उसके न चाहने पर भी क्यो उसे त्रिताप (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधि भौतिक क्लेश) कष्ट देते रहते है। बाल्यावस्था से ही हम जीवन की अनेकानेक वस्तुओ के सम्बन्ध मे जिज्ञासा करते रहते है परन्तु जीवन के वास्तविक सारतत्त्व के विषय मे हम कभी प्रश्न नहीं करते। यह पशुता है, जहाँ तक पशु जीवन के चार सिद्वान्तो का प्रश्न है वहाँ पशु और मनुष्य मे कोई अन्तर नही, क्योकि प्रत्येक प्राणी आहार, निद्रा, भय (आत्मरक्षा) और मैथुन के द्वारा जीवित रहता है। परन्तु नित्य जीवन और परतत्त्व भगवान् से सम्बन्धित विषयो के प्रति विवेकपूर्ण जिज्ञासाएँ करने के लिए ही केवल मनुष्य जीवन बनाया गया है। अतएव मनुष्य योनि नित्य जीवन की प्राप्ति के लिए अनुसन्धान करने के लिए बनाई गई है तथा वेदान्त सूत्र यह सलाह देते है कि हम अभी और अभी, इसी समय ही, यह अनुसन्धान (खोज) करे। यदि हम जीवन के इन युक्तिसगत विषयो के प्रति जिज्ञासा करने मे असफल रहते हैं, तो यह सुनिश्चित है कि प्रकृति के नियमो के द्वारा पुन. पशु योनियो में जाएँगे। यहाँ तक कि एक मूर्ख व्यक्ति भी प्राकृत विद्या (अविद्या) अर्थात् आहार, निद्रा, भय और मैथुन इत्यादि मे यदि विकसित प्रतीत हो, फिर भी वह प्रकृति के नियमो के द्वारा मृत्यु के क्रूर हाथो से अपने को मुक्त नही करा सकता। प्रकृति के नियम तीन गुणो के अधीन कार्य करते है—सतोगुण, तमोगुण एवं रजोगुण। सत्त्वगुणी व्यक्ति जीवन के उच्चतर अर्थात् जीवन के आध्यात्मिक स्तर पर उन्नत हो जाते है। जो लोग जीवन की रजोगुगी अवस्थाओ मे रहते है वे जहाँ अभी है वही रह जाते है अर्थात् इस भौतिक जगत् मे ही बने रहते है। परन्तु तमोगुण मे रहने वाले लोगो का निम्न योनियो मे पतन होना सुनिश्चित है।

मानव सभ्यता की आधुनिक संरचना संकटपूर्ण है, क्योकि यह जीवन के प्रधान सिद्धान्तो के विषय मे विवेकपूर्ण जिज्ञासाएँ करने की कोई भी शिक्षा नही देती। पशुओ के समान ही मनुष्य भी यह नही जानता कि प्रकृति के नियमो के द्वारा उसका भी वध किया जाने वाला है। वह केवल हरी घास के बण्डल अर्थात् तथाकथित प्रफुल्लित जीवन से सन्तुष्ट है, ठीक वैसे ही जैसे वधशाला (कसाईखाने)

से वध किए जाने वाली, प्रतीक्षा करती हुई एक बकरी। मनुष्य जीवन की ऐसी दशा पर विचार करके ही हम 'भगवद्-दर्शन' (बैक टू गॉडहेड) के सन्देश के माध्यम से मानव जाति के रक्षा करने का केवल एक विनम्र प्रयास कर रहे है। यह विधि काल्पनिक नही है। यदि कही भी वास्तविकता का कोई युग है, तो 'भगवद्-दर्शन' का यह सन्देश उस युग का आरम्भ कर रहा है।

श्रीशुकदेव गोस्वामी के अनुसार, वास्तविकता यह है कि एक गृहमेधी अर्थात् वह व्यक्ति जिसने परिवार, समाज, समुदाय, राष्ट्र अथवा मानवता के कार्य-कलापो मे अपने आपको इस प्रकार बाँध लिया है, जैसे कि वध के लिए तैयार एक बकरी, एक पशु के समान ही हे। ऐसे व्यक्ति की प्रवृत्ति बकरी के समान ही होती है। गृहमेधी स्वय को पशु जीवन की समस्याओ और आवश्यकताओ अर्थात् आहार, निद्रा, भय और मैथुन से अनावश्यक ही बाँध रखता है और उसे परतत्त्व भगवान् या पारमार्थिक जीवन का कोई ज्ञान नही होता। ऐसा मनुष्य कदापि एक पशु से श्रेष्ठ नही है। हो सकता है कि भले ही वह शारीरिक, राजनैनिक, आर्थिक, सास्कृतिक, शैक्षणिक या अस्थायी एव भौतिक दृष्टिकोण से सम्बन्धित विषयो के प्रति जिज्ञासा भी करे परन्तु यदि उसने पारमार्थिक जीवन के सिद्धान्तो के सम्बन्ध मे जिज्ञासा नही की तो उसे अनियन्त्रित इन्द्रियो का दास अर्थात् एक अन्धा व्यक्ति मानना चाहिए, जो एक गड्ढे मे गिरने को ही है। तो गृहमेधी व्यक्ति का यह वर्णन है।

गृहमेधी से ठीक विपरीत गृहस्थ व्यक्ति होते है। गृहस्थ-आश्रम अर्थात् भगवद्मय पारिवारिक जीवन का आश्रय लेना उतना ही उत्तम है जितना कि एक संन्यासी का जीवन अर्थात् सन्यास-आश्रम। चाहे कोई गृहस्थ हो अथवा सन्यासी इससे कुछ भी अन्तर नही पडता, परन्तु महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि मनुष्य विवेकपूर्ण जिज्ञासाएँ करे। वह ढोगी (बोगस) सन्यासी है जिसकी विवेकपूर्ण जिज्ञासाओ मे कोई रुचि नही, और वह गृहस्थ प्रामाणिक और प्रशसा करने योग्य है, यदि उसकी अभिरुचि (झुकाव) ऐसी जिज्ञासाएँ करने के प्रति है। गृहमेधी व्यक्ति किसी पशु जीवन की आवश्यकताओ मे ही केवल रुचि रखता है। प्रकृति के नियमो के द्वारा, जहाँ गृहमेधी का जीवन विपत्तियो से पूर्ण है, वहाँ गृहस्थ का जीवन आनन्द से परिपूर्ण है। परन्तु आधुनिक मानव सभ्यता मे गृहमेधी लोग गृहस्थ का स्वाग कर रहे है। इसीलिए हमे यह जानना चाहिए कि कौन गृहस्थ है और कौन गृहमेधी। गृहमेधी का जीवन दुर्गुणो से पूर्ण होना है, क्योंकि वह नही जानता कि पारिवारिक जीवन मे किस प्रकार रहना चाहिए। न ही उसको यह ज्ञात है कि उसके वश के परे एक शक्ति है, जो उस गृहमेधी व्यक्ति के कार्य-कलापो का निरीक्षण और नियन्त्रण करती है। वे भविष्य-जीवन अर्थात् अगले जीवन के प्रति ऐसे व्यक्ति

की कोई भी धारणा नही होती। गृहमेधी अपने भविष्य के प्रति अन्धा रहता है और इसीलिए विवेकपूर्ण जिज्ञाएँ करने मे उसकी कोई रुचि नही होती। उसमे केवल एक ही योग्यता रहती है कि वह मिथ्या वस्तुओ की आसक्ति की बेडी से बँधा रहता है। वे मिथ्या वस्तुएँ जो उसके अस्थायी अस्तित्व के अन्तर्गत उस व्यक्ति के सम्पर्क मे आ जाती है। रात्रि मे गृहमेधी निद्रा सोने मे या विभिन्न माध्यमो से अपनी काम-इच्छाओ को सन्तुष्ट करने मे अपना बहुमूल्य समय नष्ट करना है—जैसे कि चलचित्र (सिनेमा), क्लब, जुआघर और मदिरालय जैसे स्थानो मे जाना जहाँ स्त्री और मदिरा (शराब) प्रचुर मात्रा मे प्राप्त होती रहती है। वह व्यक्ति अपना दिन धन-सग्रह मे या यदि उसके पास व्यय करने के लिए पर्याप्त धन है तो अपने परिवार के सदस्यो के लिए सुविधाएँ जुटाने मे व्यर्थ ही नष्ट करता है। उसके जीवन का स्तर और व्यक्तिगत आवश्यकताएँ आय के साथ ही साथ बढ़ती जाती है। इस प्रकार उसके व्यय की न कोई सीमा होती है और न ही व्यक्ति कभी परितृप्त हो पाता है। फलस्वरूप आर्थिक विकास के क्षेत्र मे असीमित प्रतियोगिताएँ चलती रहती है और इसीलिए विश्व के किसी भी मानव समाज मे शान्ति नही है।

प्रत्येक व्यक्ति इन्ही प्रश्नो के द्वारा किंकर्त्तव्यविमूढ (व्याकुल) है कि कैसे धन कमाया जाय और तत्पश्चात् किस प्रकार उसको व्यय किया जाय। परन्तु अन्तत. मनुष्य को माता प्रकृति की दया पर ही निर्भर रहना पडता है। जब उत्पादन का अभाव होता है या देव के द्वारा उत्पात होते है तब योजना बनाने वाले दीन राजनीतिज्ञ क्रूर प्रकृति को दोष देते है। परन्तु अत्यन्त सावधानीपूर्वक वे यह अध्ययन करने से बचते है कि कैसे और किसके द्वारा प्रकृति के नियम नियन्त्रित किए जाते है। श्रीमद्भगवद्गीता किन्तु स्पष्ट करती है कि परम सत्य भगवान् के नियन्त्रण मे प्रकृति के नियम कार्यशील है। एकमात्र श्रीभगवान् ही प्रकृति और प्राकृतिक नियमो के नियन्त्रक है। महत्वाकाक्षी भौतिकवादी कभी-कभी प्रकृति के एक अंश का परीक्षण करते है परन्तु वे इस पर ध्यान कभी नही देते कि इन नियमो को बनाने वाला कौन है। उनमे से अधिकाश व्यक्ति परम पुरुष अर्थात् भगवान् के अस्तित्व में भी विश्वास नही रखते। वे नही जानते कि भगवान् ही प्रकृति के नियमो का नियन्त्रण कर रहे है। ये भौतिकवादी अपने को केवल उन सिद्धान्तो से सम्बद्ध मानते है, जिनके आधार पर विभिन्न तत्त्व प्रतिक्रिया कर रहे है, परन्तु उनको केवल परम निर्देशन का कोई ज्ञान नही है जिसके कारण ये प्रतिक्रियाएँ सम्भव हो पाती है। इस सम्बन्ध मे न तो उनके पास कोई युक्तिसगत प्रश्न है और न ही कोई उत्तर। किन्तु द्वितीय वेदान्त सूत्र, ब्रह्म से सम्बन्धित इस परम आवश्यक प्रश्न को स्वीकार करते हुए यह उत्तर देता है कि परब्रह्म, परतत्त्व

भगवान् से ही प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति हुई है। अन्ततः वे परब्रह्म, पुरुषोत्तम अर्थात् परम पुरुष है।

गृहमेधी मूर्ख होता है, इसमें तो कोई सन्देह है ही नही, क्योंकि उसे प्राप्त हुई देह के अस्थायी स्वभाव का कोई ज्ञान नही है। इतना ही नही, वह नित्य-प्रति के अपने जीवन मे सामने होने वाले कार्यो के वास्तविक स्वभाव के विषय मे भी अन्धा है। उसे अपने पिता, माँ, सम्बन्धी अथवा पड़ोसियों की मृत्यु होती हुई भले ही दिखाई पड़े, परन्तु फिर भी वह इस विषय मे कोई विवेकपूर्ण जिज्ञासाएँ नही करता कि उसके अपने परिवार मे विद्यमान सदस्यो की मृत्यु होगी अथवा नहीं। कभी-कभी तो वह सोचता और जानता भी है कि उसके परिवार के सभी सदस्यो की आज या कल मृत्यु होगी और उसकी भी मृत्यु हो जाएगी। वह भले ही यह जानता हो कि उसका सम्पूर्ण परिवार या इसी कारण से यह सम्पूर्ण समुदाय, समाज, राष्ट्र और ये सब वस्तुएँ—वायु मे एक अस्थायी बुलबुले के समान है, और इनका कोई स्थायी मूल्य नही है। इतना सब कुछ जानने पर भी वह उन अस्थायी वस्तुओ के पीछे पागल है और वह किसी भी प्रकार की विवेकपूर्ण जिज्ञासाएँ नही करता। उस गृहमेधी को इसका कोई ज्ञान ही नही है कि मृत्यु के पश्चात् उसे कहाँ जाना पडेगा यद्यपि सभी की मृत्यु अवश्यम्भावी है। वह अपने परिवार, समाज या राष्ट्र की अस्थायी व्यवस्था के लिए अत्यन्त कठोर परिश्रम करता है। परन्तु वह कदापि न अपने और न ही दूसरो के भविष्य की कोई व्यवस्था करता है।

सार्वजनिक वाहन जैसे कि रेल के डिब्बे मे, कुछ अज्ञात मित्रो से हमारी भेंट होती है और हम साथ मे बैठते है तथा थोडे से समय के लिए उसी वाहन के सदस्य भी बन जाते है। परन्तु एक निश्चित समय मे ही हम अलग भी हो जाते है और ये भी सम्भव है कि भविष्य में हमारी कभी भेंट ही न हो। उसी प्रकार जीवन के लम्बे निवास मे, हमे इस तथाकथित परिवार, देश अथवा समाज मे बैठने का अस्थायी पद दिया जाता है। परन्तु जब हमारा समय पूर्ण हो जाता है तब हमें अनिच्छापूर्वक भी एक दूसरे से अलग होना पड़ता है और हमारी भविष्य मे फिर कभी भेट नही होती। हम जीवन की अस्थायी व्यवस्था और उनमे स्थित हमारे मित्रो से सम्बन्धित अनेकानेक प्रश्न पूछा करते है। परन्तु जो गृहमेधी है वह यथारूप स्थायी स्वभाव जाने बिना ही विभिन्न अशो मे नेता बनकर स्थायी योजनाएँ बनाने मे व्यस्त है। श्रीपाद शंकराचार्य ने समाज की इस अज्ञानता को दूर करने का विशेष प्रयास किया था। उन्होने सर्वव्याप्त निराकार ब्रह्म से सम्बन्धित अध्यात्म ज्ञान का समर्थन किया, परन्तु अन्त मे उन्होने भी निराशा मे यह कह दिया, "बालकगण क्रीडा मे व्यस्त है, युवक युवतियो के साथ तथाकथित प्रेम मे और वृद्ध व्यक्ति सघर्षपूर्ण भ्रमित जीवन को सन्तुलित करने के लिए गम्भीरतापूर्वक

विचारमग्न है। परन्तु, हाय, हाय, कोई भी ब्रह्मज्ञान, परम सत्य के विषय मे विवेकपूर्ण ढंग से जिज्ञासा करने के लिए तत्पर नही है।"

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने, जिनसे महाराज परीक्षित ने निर्देश देने के लिए प्रश्न किया था, राजा की विवेकपूर्ण जिज्ञासाओ का यथोचित उत्तर दिया। उन्होने परामर्श दिया :

तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवानीश्वरो हरिः।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताभयम्॥

"हे राजा भरत के वशज, प्रत्येक नश्वर मनुष्य प्राणी का यह कर्त्तव्य है कि वह श्रीभगवान् के विषय मे जिज्ञासा करे, श्रवण करे, कीर्तन का गान करे और भगवान् के स्वरूप का ध्यान करे। भगवान् ही सर्वाधिक आकर्षक पुरुष है क्योकि वे सर्वैश्वर्यपूर्ण है। उनको श्रीहरि कहा जाता है क्योकि केवल वे ही जीवात्मा को बद्धावस्था से मुक्ति दिला सकते हैं। यदि हमारे मन मे इस ससार से मुक्त हो जाने की ही कामना है तो हमे परम सत्य भगवान् के विषय मे अवश्य ही विवेकपूर्ण जिज्ञासाएँ करनी चाहिए जिससे वे सर्वात्मा भगवान् हमे जीवन मे पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करने की कृपा करे।" [भागवत २ १ ५]

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने अद्वय भगवान् के लिए विशेष कर चार शब्दो का प्रयोग किया है। ये शब्द परम पुरुष अथवा परब्रह्म, भगवान् और अन्य जीवो मे अन्तर स्पष्ट करते है, जो कि गुणधर्म मे भगवान् से अभिन्न है। यहाँ अद्वय भगवान् को सर्व-आत्मा अथवा सर्व-व्याप्त सम्बोधित किया है, क्योकि कोई भी उनसे पृथक् नही है, यद्यपि सबको भले ही इसका साक्षात्कार नही हो पाता। श्रीभगवान् अपने आंशिक प्रतिनिधि के द्वारा प्रत्येक के हृदय मे परमात्मा रूप से जीवात्मा के साथ रहते है। अतएव प्रत्येक व्यक्तिगत जीव का उनके साथ एक घनिष्ठ सम्बन्ध है। भगवान् के साथ नित्य रूप से विद्यमान इस घनिष्ठ सम्बन्ध का विस्मरण ही हमारे अनादि काल से बने रहने वाले बद्ध जीवन का कारण है। वे भक्तवत्सल भगवान् है, अतः वे तत्काल ही अपने भक्तो की प्रार्थना का उत्तर देते है। यही नही, वे पूर्ण पुरुष है। अतएव उनकी सुन्दरता, वैभव, यश, बल, ज्ञान और वैराग्य सभी कुछ जीवात्मा के लिए दिव्य आनन्द का असीमित स्रोत है। जब ये विभिन्न ऐश्वर्य अन्य बद्ध-आत्माओ मे अपूर्ण रूप से प्रकाशित होते रहते है, तो जीव इनके प्रति आकर्षित हो जाता है। परन्तु जीवात्मा इन अपूर्ण प्रकाशो से सन्तुष्ट नही हो पाता और इसीलिए वह परिपूर्ण पुरुष का नित्य ही अन्वेषण करता रहता है। न तो श्रीभगवान् के सौन्दर्य की ही तुलना है और न ही उनके ज्ञान एव वैराग्य की। यही नही, वे ईश्वर अर्थात् परम नियन्त्रक भी है। वर्त्तमान मे हम इन महान् राजा के आरक्षी

विभाग के द्वारा नियन्त्रित किये जा रहे हैं। हम पर आरक्षी विभाग का नियन्त्रण इसीलिए आरोपित किया गया है क्योकि हमने विधि-नियमो को भंग किया है। प्रभु श्रीहरि है अत: वे हमे आध्यात्मिक जीवन मे पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करा कर, हमारे बद्ध जीवन का हरण करने मे पूर्ण समर्थ है। अतएव प्रत्येक मनुष्य का यही कर्त्तव्य है कि वह भगवान् के विषय मे विवेकपूर्ण जिज्ञासाएँ करे और इस प्रकार पुन. भगवद्-धाम मे प्रविष्ट हो जाय।

आत्मा की खोज

श्रील प्रभुपाद एक विख्यात हृदय-रोग विशेषज्ञ डॉक्टर विलफ्रेड जी बिगेलो को पत्र लिखते हैं "आप कहते हैं कि प्रधान प्रश्न यह है, आत्मा कहाँ है और यह कहाँ से आती हैं इसे समझने मे कोई भी कठिनाई नही है ।"

सन् १६६८ मे मैसाच्युसेट्स इंस्टीट्यूट आफ टेक्नॉलाजी (अमेरिका) के छात्रो की सभा के समक्ष प्रवचन देते हुए श्रील प्रभुपाद ने तकनीकी अनुसन्धान की एक महत्वपूर्ण त्रुटि की ओर संकेत किया है । "यद्यपि आपके पास ज्ञान के अनेकानेक विभाग है," वे कहते है, "एक मृत एवं जीवित शरीर मे अन्तर की खोज करने के उद्देश्य पर आधारित विभाग कहाँ है ?"

आधुनिक विज्ञान यद्यपि भौतिक देह की यान्त्रिक कार्य प्रणाली को समझने मे विकसित हो चुका है, परन्तु वह देह को सजीव रखने वाले चिन्मय स्फुलिग (आत्मा) के विषय मे अध्ययन करने के लिए बहुत कम ध्यान देता है । मॉण्ट्रियल राजपत्र (गजट) मे प्रकाशित एक लेख की नीचे दी गई प्रतिलिपि मे विश्वविख्यात हृदय-रोग विशेषज्ञ (कार्डियोलॉजिस्ट) विलफ्रेड जी बिगेलो इस विषय मे व्यवस्थित रूप से अनुसन्धान करने का बलपूर्वक आग्रह कर रहे है । उनका विचार है कि यह ज्ञात किया जाय, आत्मा क्या है और यह कहाँ से आती है । उस लेख के पश्चात् डॉक्टर बिगेलो के आग्रह के उत्तर मे श्रील प्रभुपाद के पत्र की प्रतिलिपि दी गई है । श्रील प्रभुपाद आत्मा के विज्ञान पर ठोस वैदिक जानकारी प्रस्तुत करते है एव इस चिन्मय स्फुलिग को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझने की व्यावहारिक विधि का सुझाव देते है ।

राजपत्र-शीर्षक :

हृदय-रोग चिकित्सक यह ज्ञात करना चाहता है

आत्मा क्या है ।

विण्डसर—एक विश्व-प्रसिद्ध कैनेडियन हृदय-रोग चिकित्सक कहते है कि उनका विश्वास है कि शरीर मे आत्मा होती है, जो मृत्यु के समय शरीर का त्याग करती है । धर्म के तत्त्वज्ञ लोगो को इस विषय पर और अधिक अन्वेषण करना चाहिए ।

डाक्टर विलफ्रेड जी. बिगेलो जनरल हॉस्पिटल (कैनेडा) में हृदय-संवहन चिकित्सा (कार्डियोवस्क्युलर सर्जरी) के प्रधान हैं। उन्होंने कहा, "एक ऐसे व्यक्ति होने के नाते जो विश्वास करता है कि आत्मा है," अब वे सोच रहे हैं, "इस रहस्य का उद्घाटन किया जाय और उसके विषय मे अन्वेषण किया जाय कि आत्मा है क्या। ऐसा अनुसन्धान करने का अब उचित समय आ गया है।"

बिगेलो उस समिति (पैनेल) के सदस्य थे जो एसेक्स काउण्टी मेडिकल सोसायटी के सामने यह चर्चा करने के लिए प्रस्तुत की गई थी कि मृत्यु के यथार्थ समय की परिभाषा देने का प्रयत्न करने मे क्या समस्याएं सामने आती हैं।

यह प्रश्न हृदय-प्रतिरोपण और अन्य अंगो की आयु निश्चित करने मे महत्व-पूर्ण बन गया है विशेषकर उस परिस्थिति मे जबकि इन अगो का दान करने वाले की मृत्यु अवश्यम्भावी हो।

कैनेडियन मेडिकल एसोसिएशन ने मृत्यु की परिभाषा प्रस्तुत की है; जिसे अधिकाश लोगो के द्वारा स्वीकार किया गया है। उस परिभाषा के अनुसार मृत्यु का अर्थ है वह पल जिसमे रोगी सम्मूर्च्छित दशा मे चला जाता हो, किसी भी प्रकार की उत्तेजना का कोई प्रति उत्तर नही देता हो और यन्त्र मे रिकार्ड की गई मस्तिष्क की तरगे समतल हो जाती हो ?

ओटोरियो उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्ति एडसन एल हाइस और विण्डसर विश्वविद्यालय के उपकुलपति जे. फ्रांसिस लेड्डी पेनल के अन्य सदस्य थे।

डाक्टर बिगेलो ने चर्चा के अन्तर्गत प्रस्तुत किए गए अपने विचारो को एक साक्षात्कार (इण्टरव्यू) मे और भी अधिक स्पष्ट किया है। उन्होंने कहा कि चिकित्सक के रूप मे बत्तीस वर्ष के कार्यकाल मे आत्मा की उपस्थिति पर उनके मन मे किसी भी प्रकार का कोई सन्देह नही रह गया है।

"कभी-कभी ऐसा होता है कि आप उस समय उपस्थित रहते हैं जिस पल लोग जीवित अवस्था से मृत अवस्था मे जाते है और उनमे कुछ रहस्यमय परिवर्त्तन हुआ करते है।

"सबसे अधिक सुस्पष्ट परिवर्त्तनों मे से एक यह है कि नेत्रो से सहसा ही जीवन अथवा ज्योति का अभाव हो जाना। वे अपारदर्शी और अक्षरश. निर्जीव हो जाते है।"

"जो आप देखते है उसको लेखबद्ध करना अत्यन्त कठिन है। और वास्तविकता तो यह है कि मै नही सोचता हूँ कि इन परिवर्त्तनो को यथारूप लेखाबद्ध किया जा सकता है।"

बिगेलो चिकित्सा की, 'डीप फ्रीज' विधि (हायपोथर्मिया) के क्षेत्र मे अभूत-पूर्व कार्य करने के / ... र हृदय के वाल्व की अपनी शल्य चिकित्सा से सम्पूर्ण

विश्व में प्रसिद्ध हो गए है। उन्होने कहा कि 'आत्मा की खोज' धर्म के तत्त्वों को जानने वालो और विश्वविद्यालयों में धर्म से सम्बन्धित विभागो के द्वारा अवश्य ही की जानी चाहिए।

इस चर्चा के अन्तर्गत मिस्टर लेड्डी ने कहा, "यदि आत्मा है तो आप उसको न देख सकते है न ही ढूंढ़ सकते है।"

"यदि जीवन-शक्ति का कोई सिद्धान्त है तो वह क्या है ?" समस्या तो यह है, "आत्मा किसी विशेष स्थान पर नही रहती। यद्यपि वह सर्वत्र है फिर भी वह शरीर मे कही नही है।"

लेड्डी कहते है, "इस विषय में प्रयोग करना अच्छा रहेगा, परन्तु मैं यह नही जानता कि आप इनमें से किसी भी वस्तुओं में कुछ अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।" उन्होंने कहा कि इस चर्चा से उन्हे सोवियत अन्तरिक्ष-यात्री का स्मरण आता है, जिसने अन्तरिक्ष से लौटकर यही रिपोर्ट दी कि कोई भगवान् नही है, क्योकि उसने वहाँ भगवान् को नही देखा था।

"भले ही ऐसा हो," बिगेलो ने कहा, "परन्तु आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में जब ऐसी घटनाओ का सामना होता है जिनकी व्याख्या नही की जा सकती है तो, कुंजी यह है कि उत्तर की खोज कीजिए, उसे प्रयोगशाला मे ले जाइए, कहीं भी ले जाइए जिससे कि आप सत्य की खोज कर सके।"

प्रधान प्रश्न यह है कि बिगेलो ने कहा, "आत्मा कहाँ है और यह कहाँ से आती है ?"

श्रील प्रभुपाद द्वारा वैदिक प्रमाण प्रस्तुत करना

प्रिय डॉक्टर बिगेलो :

कृपया मेरा अभिवादन स्वीकार कीजिए। मैने गजट मे रे करोली के एक लेख का अध्ययन किया जिसका शीर्षक है, "हृदय-रोग चिकित्सक यह जानना चाहता है कि आत्मा क्या है," और मुझे वह लेख अत्यधिक रोचक लगा। उसमे की गई समीक्षाएँ आपकी गहन दृष्टि की सूचक है, अत: मैने विचार किया कि आपको इस विषय पर कुछ लिखूँ। सम्भवतया आप जानते होगे कि मै अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्ण-भावनामृत सघ का संस्थापक-आचार्य हूँ। हरे कृष्ण संघ के कैनेडा मे अनेक मन्दिर है—मॉण्ट्रियल, टोराण्टो, वैंकूवर और हैमिल्टन। प्रत्येक जीवात्मा को उसकी मौलिक अर्थात् अप्राकृत स्थिति की शिक्षा देने के लिए ही श्रीकृष्णभावनामृत अभियान का विशेष रूप से निर्माण हुआ है।

नि.सन्देह जीवो के हृदय मे आत्मा उपस्थित है और वह शरीर का निर्वाह करने के लिए आवश्यक सभी शक्तियो का उद्गम है। आत्मा की शक्ति सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है और इसे चेतना कहा जाता है। यह चेतना आत्मा की शक्ति का

सम्पूर्ण शरीर में विस्तार करती है, अतः हम शरीर के किसी भी अंग में कष्ट और आनन्द का अनुभव कर सकते है। आत्मा एक व्यक्तिगत स्वरूप है। जिस प्रकार से एक व्यक्ति शिशु अवस्था से बाल्य, बाल्य से किशोर, किशोर से युवा और तत्पश्चात् वृद्धावस्था मे जाता है, उसी प्रकार आत्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में चली जाती है। वृद्धावस्था के पश्चात् जो परिवर्तन होता है उसे मृत्यु कहते है और उस समय हम एक नई देह ग्रहण कर लेते है, जैसे कि हम जीर्ण (पुराने) वस्त्र को नवीन वस्त्र से बदल लेते है। इसे आत्मा का देहान्तर कहा जाता है।

आत्मा वैकुण्ठ जगत् के अपने वास्तविक घर को भूलकर जब इस भौतिक जगत् को भोगना चाहती है, तब वह "अस्तित्व के लिए घोर संघर्ष" वाला जीवन स्वीकार करती है। अपनी चेतना का परम चेतना अर्थात् भगवान् के साथ सामंजस्य कर देने से हम जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि से इस अस्वाभाविक जीवन का अन्त कर सकते है। हमारे हरे कृष्ण अभियान का आधारभूत सिद्धान्त यही है।

जहाँ तक हृदय के प्रतिरोपण का सम्बन्ध है, जब तक हृदय मे आत्मा न रहे तब तक वहाँ सफलता का कोई प्रश्न ही नही उठता। अतएव आत्मा की उपस्थिति स्वीकार करनी ही पड़ती है। मैथुन मे यदि आत्मा उपस्थिति न हो तो गर्भ धारण हो ही नही सकता। गर्भ-निरोध की विधि गर्भ को विकृत कर देती है, जिसके फलस्वरूप वहाँ आत्मा के निवास के लिए उचितस्थान नही रह जाता। यह श्रीभगवान् की आज्ञा के विरुद्ध है। भगवान् की आज्ञा से आत्मा एक विशेष गर्भ मे भेजी जाती है। परन्तु इस गर्भ-निरोध के द्वारा उस जीव को उस गर्भ मे प्रवेश करने से वंचित कर दिया जाता है तथा इस प्रकार उसे किसी दूसरे गर्भ मे जाना पड़ता है। यह भगवान् की अवज्ञा है। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति को एक विशेष घर मे रहना है, यदि उस घर की स्थिति इतनी अशान्त है कि वह वहाँ प्रवेश ही नही कर सके, तो उस व्यक्ति की महान् हानि और साथ मे उसे घोर असुविधा भी होती है। यह अवैध हस्तक्षेप है एव दण्डनीय है।

'आत्मा की खोज' का कार्य निश्चय ही विज्ञान की उन्नति का चिह्न होगा। परन्तु विज्ञान की उन्नति मात्र ही आत्मा को ढूँढ़ने मे समर्थ नही होगी। आत्मा की उपस्थिति केवल परिस्थिति से सम्बन्धित ज्ञान के आधार पर ही स्वीकार की जा सकती है। आप वैदिक साहित्य मे पाएँगे कि आत्मा का परिमाण विन्दु का १।१०,००० वाँ अश है। भौतिक वैज्ञानिक एक बिन्दु की भी लम्बाई और चौड़ाई नही माप सकते। अतएव भौतिक वैज्ञानिको के लिए यह सम्भव ही नही है कि आत्मा को वे पकड़ सके। केवल अधिकारियो (महापुरुषो) से प्राप्त ज्ञान के आधार पर ही आप आत्मा का अस्तित्व स्वीकार कर सकते है। जिस तथ्य का महानतम वैज्ञानिक अब अन्वेषण कर रहे है, उसे हम लोग अनेक युगो पूर्व ही समझा चुके है।

जैसे ही हम आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करते है, तत्काल ही हम भगवान् के अस्तित्व को स्वीकार करते है, तत्काल ही हम भगवान् के अस्तित्व को भी समझ सकते है। जीव और भगवान् मे अन्तर यह है कि भगवान् एक अत्यधिक महान् आत्मा है, जबकि जीव अत्यन्त लघु है। परन्तु गुणात्मक रूप से दोनो ही समान है। अतएव जहाँ भगवान् सर्वव्यापक है, वही जीवात्मा सीमित है, परन्तु दोनो के स्वभाव और गुण समान है।

"आप कहते है कि प्रधान प्रश्न यह है कि आत्मा कहाँ है और कहाँ से आती है ?" इसे समझने मे कोई भी कठिनाई नही है। हम पहले ही चर्चा कर चुके है कि प्राणियो के हृदय मे आत्मा निवास कर रही है और मृत्यु के पश्चात् वह एक दूसरे शरीर का आश्रय ले लेती है। मूलत. आत्मा भगवान् से आती है। जिस प्रकार एक स्फुलिग अग्नि से निकलता है और जब वह अलग हो जाता है तो बुझा हुआ-सा प्रतीत होने लगता है। उसी प्रकार आत्मा रूपी स्फुलिग मूल रूप मे वैकुण्ठ जगत् से इस भौतिक जगत् मे आता है। इस भौतिक जगत् मे जीवात्मा का तीन विभिन्न अवस्थाओ मे पतन होता है जिन्हे प्रकृति के गुण कहा जाता है। अग्नि का स्फुलिग जब सूखी घास पर पडता है तो अग्नि सम्बन्धित उसके गुण बने रहते है, जब वह भूमि पर गिरता है तो वह अपनी अग्नि की शक्ति तब तक प्रकाशित नही कर सकता जब तक भूमि अनुकूल दशा मे स्थित न हो। और जब वह अग्नि का स्फुलिग जल मे गिर जाता है तो वह बुझ ही जाता है। इस प्रकार हम जीवन की तीन अवस्थाएँ पाते है। एक प्रकार के जीव पूर्ण रूप से अपने दिव्य स्वरूप को भूल बैठे है, दूसरे प्राय. भूले हुए है। फिर भी दूसरे प्रकार के जीवो मे आध्यात्मिक स्वरूप के प्रति कुछ स्वाभाविक रुचि है। तीसरे प्रकार के जीव पूर्ण रूप से आध्यात्मिक सिद्धि के अन्वेषण मे लगे है। आत्मा रूपी चिन्मय स्फुलिग के द्वारा अप्राकृत सिद्धि प्राप्त करने की एक प्रामाणिक विधि है और यदि जीव को उचित रूप से निर्देशन दिया जाय तो वह अत्यन्त सरलतापूर्वक अपने घर, भगवान् के पास लौट सकता है, जहाँ से उसका मौलिक पतन हुआ था।

यह मानव समाज के लिए एक महान् देन होगी, यदि वैदिक साहित्य से प्राप्त इस प्रामाणिक जानकारी को नूतन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर आधुनिक जगत् के सामने प्रस्तुत किया जाय। तथ्य तो पहले से ही उपस्थित है। उसे आधुनिक ज्ञान के आधार पर केवल प्रस्तुत भर करना है।

भवदीय,

हस्ताक्षर

(ए. सी भक्तिवेदांत स्वामी)

भगवत् दर्शन पत्रिका के सदस्य बनें



भगवान् श्रीकृष्ण भगवद्गीता मे कहते हैं

य इम परम गुह्य मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्ति मयि परा कृत्वा मामेवैष्यत्य सशय ।।

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रिय कृत्तम ।
भविता न च मे तस्मा दन्य प्रियतरो भुवि।।

"जो व्यक्ति भक्तो को यह परम रहस्य बताता है उसे शुद्ध भक्ति की प्राप्ति निश्चित है और अन्त मे वह मेरे पास वापस आता है।

"इस ससार मे उसकी अपेक्षा कोई अन्य सेवक न तो मुझे अधिक प्रिय है और न कभी होगा।"

अत आप सभी प्रवुद्ध पाठको से निवेदन है कि अधिक से अधिक लोगो को भगवद्-दर्शन पत्रिका का सदस्य वनाकर भगवान् के प्रिय भक्त वने। भगवान् श्रीकृष्ण की वाणी अर्थात् सनातन-धर्म का प्रचार करने वाली इस पत्रिका का प्रकाशन आज विश्व की २८ भाषाओ मे हो रहा है। हिन्दी भाषा मे पत्रिका का प्रकाशन जारी रखने के लिए आपका सहयोग अपेक्षित है।

भगवत्-दर्शन (हिन्दी)
भक्तिवेदान्त वुक ट्रस्ट
हरे कृष्ण धाम,
जुहू, बम्वई ४०० ०४९

वार्षिक अनुदान	२६/-
द्विवार्षिक अनुदान	५१/-

मैं भगवत्-दर्शन पत्रिका का वार्षिक/द्विवार्षिक सदस्य वनना चाहता हूँ, अत मनीआडर*/पोस्टल आडर/ वैंक ड्राफ्ट द्वारा वार्षिक/द्विवार्षिक शुल्क रु भेज रहा हूँ।

पूरा नाम (साफ अक्षरो मे) --

पता --

व्यवसाय --

* कृपया पत्र के साथ मनीआडर की रसीद सलग्न करें।

टिप्पणी

पाठको से निवेदन है कि उपर्युक्त फ़ार्म को सादे कागज पर उतार कर भेजे।

नाम पता अंग्रेजी के बड़े अक्षरों में लिखने की सम्मति दी जाती है

श्री गुरुदेव क्या हैं?

"समस्त शास्त्रो मे श्रीगुरुदेव को श्रीभगवान् के समान स्वीकार किया गया है, परन्तु गुरु कदापि यह नही कहते, 'मैं भगवान् हूँ।' शिष्यो का कर्तव्य है गुरुदेव का ठीक उसी प्रकार सम्मान करना, जैसा सम्मान भगवान् का होता है, परन्तु गुरु कभी नही सोचते, "मेरे शिष्यगण मुझे वही सम्मान दे रहे हैं, जैसा श्रीभगवान् को अर्पण किया जाता है, अतएव मैं भगवान् बन गया हूँ" जैसे ही वह यह मोचता है, वह भगवान् के स्थान पर श्वान बन जाता है ।'

ॐ अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

"मैं अन्धकार रूपी अज्ञानता मे उत्पन्न हुआ था पर मेरे गुरु महाराज ने ज्ञान के अजन रूपी शलाका से मेरे नेत्र खोल दिए। मैं उनकी सादर वन्दना करता हूँ।" 'अज्ञान' शब्द का अर्थ है मूर्खता अथवा अन्धकार। यदि इस कमरे मे विद्युत-प्रकाश तत्काल लुप्त हो जाए तो हम यह नही कह सकेंगे कि हम, अथवा अन्य दूसरे लोग, कहाँ बैठे हुए है। प्रत्येक वस्तुओ मे सन्देह होने लगेगा। उसी प्रकार हम सब-बस इस संसार के भीतर अन्धकार मे है, जो—'तमस्' जगत् है। 'तमस्' या 'तिमिर' का अर्थ अन्धकार होता है। यह ससार अन्धकार पूर्ण है, अतएव यहाँ सूर्य के प्रकाश अथवा चन्द्रमा के प्रकाश की आवश्यकता पड़ती है। वैसे, एक और जगत् है, जिसे 'वैकुण्ठ' कहते है, जो इस अन्धकार के परे है। श्रीकृष्ण, भगवद्गीता मे उस आध्यात्मिक जगत् का वर्णन करते है .

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥

"मेरा वह परम धाम न सूर्य न चन्द्रमा और न ही अग्नि के द्वारा प्रकाशित होता है। जो मेरे उस परम धाम को प्राप्त कर लेता है, वह पुन. इस प्राकृत जगत् मे नही लौटता।" [गीता १५ ६]

श्रीगुरुदेव का कार्य है, शिष्यो को अँधेरे से प्रकाश की ओर लाना। वर्त्तमान मे अज्ञानता के कारग, प्रत्येक व्यक्ति कष्ट पा रहा है, जैसे किसी को अज्ञानतावश

कोई रोग हो जाया करता है। यदि मनुष्य स्वस्थ रहने के नियम नही जानता है, तो उसको यह ज्ञात नही हो सकेगा कि किस वस्तु का उस पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। अतः अज्ञानता के कारण रोग के कीटाणुओ के संग से, हम उन रोगो से कष्ट पाते है। एक अपराधी भले ही यह कहे, "मुझे कानून का ज्ञान नही था," पर यदि वह अपराध करता है, तो उसको क्षमा नही किया जाएगा। अज्ञानता के कारण क्षमा नही मिला करती। उसी प्रकार शिशु को यदि यह पता न हो कि आग का स्पर्श करने से वह जल जाएगा और यदि वह आग छूता है तो निश्चय ही जलेगा। आग यह नही सोचती, "यह शिशु है और नही जानता है कि वह जल जाएगा।" नही, इस प्रकार का कोई क्षमा-दान नही है। ठीक जिस प्रकार देश के कानून है, नियम है, उसी प्रकार प्रकृति के भी कट्टर नियम है और हमारी अज्ञानता के पश्चात् भी ये नियम कार्य करेगे। यदि हम अज्ञानता के कारण, कोई त्रुटि करते है, तो हमें अवश्य ही कष्ट उठाना पड़ेगा। यह नियम है। चाहे वह किसी देश का कानून हो, या प्रकृति का कानून, यदि हम उनका उल्लंघन करेंगे, तो कष्ट उठाना पडेगा। श्रीगुरुदेव का कार्य है, कि इस ससार मे किसी प्राणीमात्र तक को भी कष्ट न होने पाए। कोई यह दावा नही कर सकता कि वह कष्ट नही पा रहा है। ऐसा सम्भव ही नही है। इस संसार मे तीन प्रकार के कष्ट है—आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। भौतिक शरीर और मन से, दूसरे जीवों से और प्रकृति की शक्ति के कारण, यह कष्ट मिला करते है। हमे मानसिक उलझनो से कष्ट प्राप्त होता है अथवा हमें दूसरे जीव पीड़ा देते है—जैसे चीटी, मच्छर, या मक्खियाँ इत्यादि—अथवा हमको किन्ही दैवी शक्तियो के कारण कष्ट मिलता है। कभी वर्षा नही होती तो कभी बाढ आ जाती है, तो कभी भीषण गर्मी या जाडा पडने लगता है। प्रकृति के द्वारा अनेक प्रकार के कष्ट दिए जाते है। इस प्रकार ससार मे तीन प्रकार के कष्ट होते है और प्रत्येक जीव दु.ख पा रहे है। कोई यह नही कह सकता है कि वह पूर्णरूप से इन कष्टो से मुक्त है।

तब हम जिज्ञासा कर सकते है कि जीव कष्ट क्यो उठा रहे है। उत्तर है—अज्ञानता के कारण। वह यह नही सोचता, "मै त्रुटियाँ कर रहा हूँ और मै पापमय जीवन व्यतीत कर रहा हूँ, मुझे कष्ट हो रहा है।" अतः गुरु का प्रथम कार्य है—शिष्य को इस अज्ञानता से छुटकारा दिलाना। हम अपने बालको को कष्टो से बचने के लिए, पाठशाला मे भेजते है। यदि बच्चो को शिक्षा नही दी गई तो हमें भय रहता है कि भविष्य मे हमारे बच्चो को कष्ट उठाना पडेगा। गुरुदेव जानते हैं कि कष्टो का कारण अज्ञानता है, जिसकी तुलना अन्धकार से की जाती है। अँधेरे मे हमारी रक्षा किस प्रकार की जा सकती है ? प्रकाश द्वारा। गुरु ज्ञान की शलाका (मशाल) लेकर अन्धकार मे फँसे जीवो को मार्ग दिखाते है। यह ज्ञान अन्धकार

रूपी अज्ञानता के कष्टो से उनको मुक्ति प्राप्त कराता है।

कोई पूछे, क्या गुरु बनाना परम आवश्यक है? वेदो से हमे सूचना प्राप्त होती है कि गुरुदेव मे क्या गुण होने चाहिए?

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्।
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥

[मुण्डक उपनिषद् १. २. १२]

वेद हमें एक 'विशेष' गुरु को ढूंढने का परामर्श देते है, किसी भी सामान्य गुरु को नही। 'विशेष' गुरु एक है क्योकि वह गुरु-परम्परा में आता है। ५,००० वर्ष पूर्व जो व्यासदेव और भगवान् श्रीकृष्ण ने शिक्षा दी, वही शिक्षा आज भी दी जा रही है। पहले की शिक्षा में और आज की शिक्षा मे कुछ भी अन्तर नही है। यद्यपि सैकड़ो आचार्य आए और चले गए, पर सन्देश एक ही है। वास्तविक गुरु, दो नही हो सकते क्योकि एक वास्तविक गुरु अपने पूर्व के आचार्यों की शिक्षा से भिन्न कुछ नही कहता है। कुछ गुरु कहते है, "मेरे विचार से तुम्हे यह करना चाहिए।" पर वे गुरु नही हैं। ऐसे तथाकथित गुरु केवल धूर्त और ठग है। वास्तविक और सच्चे गुरुदेव का हमेशा एक ही मत हुआ करता है—और वह भगवान् श्रीकृष्ण, व्यासदेव, नारद, अर्जुन, भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु तथा गोस्वामियों द्वारा कहा गया मत होता है। पॉच हजार वर्ष पहले भगवान् श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता कही और व्यासदेव ने इसे लिखा। श्रील व्यासदेव ने यह नही कहा, "यह मेरा मत है अथवा यह मेरे विचार है," वरन् उन्होने लिखा, **श्रीभगवान् उवाच** "भगवान् ने कहा"। जो भी व्यासदेव ने लिखा, वह स्वय भगवान् के द्वारा कहा गया था। श्रील व्यासदेव ने अपने स्वयं के विचारो को नही लिखा।

फलस्वरूप श्रील व्यासदेव एक गुरु है। वे श्रीकृष्ण के शब्दों के अर्थ का अनर्थ नही करते, परन्तु भगवान् के शब्दो को यथानुरूप, हम तक पहुँचाते है। यदि हम किसी को एक तार भेजे तो उसे पहुँचाने वाले व्यक्ति को न तार सुधारना पड़ता है, न ही शब्दो का सम्पादन और न ही तार मे कुछ शब्द जोडने की आवश्यकता होती है। वह व्यक्ति तार केवल पहुँचा भर देता है। श्रीगुरुदेव का यह कार्य है। गुरु चाहे यह व्यक्ति हो या वह व्यक्ति परन्तु सन्देश वही है, इसलिए कहा जाता है कि श्रीगुरुदेव एक है।

गुरु परम्परा मे हम एक ही विषय की केवल पुनरुक्ति कर पाते है। भगवद्गीता [९ ३४] मे भगवान् श्रीकृष्ण कहते है.

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥

"अपने मन को सदा मेरे चिन्तन मे लगाओ, मेरे भक्त बनो, मुझे नमस्कार करो,

और मेरा पूजन करो। पूर्ण रूप से मुझमें मग्न होने के कारण निःसन्देह, मुझको तुम प्राप्त करोगे।" तो ये वे शिक्षाएँ थी जो सब आचार्यो के द्वारा दोहराई गईं—रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य और श्रीचैतन्य महाप्रभु। छह-गोस्वामी वृन्द ने भी यही सन्देश दोहराया और हम उनके चरणचिह्नो का केवल अनुसरण भर कर सकते हैं। अन्तर कुछ नही है। "मेरे मत में, कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि का अर्थ मनुष्य के शरीर से है, यह कह कर हम श्रीकृष्ण के शब्दो का 'अर्थ' नही लगाया करते हैं। इस प्रकार के अर्थ धूर्त लगाया करते है। आजकल ससार मे अनेकानेक नीच व दुर्जन गुरु है जो अपने स्वयं के विचार प्रकट किया करते है। एक नीच प्रवृत्ति वाला गुरु भले ही कहे, "मै भगवान् हूँ" या "हम सब भगवान् है।" बिल्कुल ठीक, परन्तु हमे यह ज्ञात तो करना चाहिए कि श्रीभगवान् शब्द का क्या अर्थ होता है। प्रायः एक शब्दकोष से हमे ज्ञात होगा कि भगवान् शब्द का अर्थ परम-ईश्वर अथवा परम पुरुष पुरुषोत्तम होता है। तो हम इस गुरु से पूछ सकते है "क्या आप परमेश्वर है," यदि वह इस प्रश्न को ही नही समझ सके तो हमको उसे परम का अर्थ समझाना चाहिए। किसी भी शब्दकोष से हमे ज्ञात हो जाएगा कि परम का अर्थ है "सर्वोच्च-सत्ता।" इसके पश्चात् हम पूछे, "क्या आपकी सत्ता सर्वोच्च या सबसे ऊपर है?" इस प्रकार का नीच गुरु, यथापि स्वयं को भगवान् के रूप मे घोषित कर रहा है परन्तु इन प्रश्नो का उसके पास कोई उत्तर नही है। श्रीभगवान् परम पुरुष है, उनकी सत्ता सर्वोच्च है। न कोई भगवान् के समान है और न ही कोई उनसे अधिक परन्तु फिर भी अनेक 'गुरु' है, जो परम पुरुष होने का दावा करते है और इस प्रकार अपनी नीच प्रवृत्ति का प्रदर्शन करते है। ये नीच हमे माया के अन्धेरे से मुक्ति पाने मे कोई सहायता नही कर सकते है। आध्यात्मिक ज्ञान के प्रकाश की मशाल के द्वारा हमारे—अन्धकार को दूर नही कर सकते।

एक वास्तविक या योग्य गुरुदेव केवल वही शिक्षा प्रस्तुत करेंगे, जिसे कि परम गुरु श्रीभगवान् ने सद् शास्त्रो मे कहा है। श्रीगुरुदेव गुरु-परम्परा के सन्देश को बदल नही सकते।

हमे यह अवश्य ही समझना है कि परम सत्य की प्राप्ति के लिए, हम कोई खोज या अनुसन्धान नही कर सकते है। भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु ने स्वय यह कहा है, "मेरे गुरु महाराज ने मुझे महामूर्ख माना।" वह व्यक्ति जो श्रीगुरुदेव के सामने महामूर्ख बना रहता है, वह स्वयं गुरु है। किन्तु यदि कोई कहे, "मैं इतना ऊँचा उठ गया हूँ कि मैं अपने श्रीगुरुदेव से श्रेष्ठ बोल सकता हूँ," तो वह केवल एक नीच व दुर्जन व्यक्ति है। भगवद्गीता (४ २) मे, भगवान् श्रीकृष्ण कहते है:

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप॥

"हे परतप अर्जुन, यह परम विज्ञान इस प्रकार गुरु-परम्परा के द्वारा प्राप्त किया गया और राजर्षियों ने इसको विधि से जाना। परन्तु काल-क्रम से परम्परा खण्डित हो गई, जिससे यह विज्ञान नष्ट हुआ सा प्रतीत होना है।"

गुरु बनाना कोई प्रथा (फैशन) नही है। जो आध्यात्मिक जीवन के विषय को समझने मे गम्भीर है, उसे श्रीगुरुदेव की आवश्यकता है। गुरुदेव एक 'आवश्यकता' है, क्योकि मनुष्य को आध्यात्मिक जीवन के सम्बन्ध मे बहुत ही गम्भीर होना चाहिए। जब हम इन विषयो को समझने के प्रति गम्भीर होते है, तब हमे गुरुदेव की आवश्यकता है। हमे गुरुदेव के पास केवल इसलिए नही आना चाहिए कि गुरु बनाना समय के एक लोकाचार के अनुरूप है। शरणागत होना आवश्यक है क्योकि बिना शरण मे आए, हम कुछ भी नही सीख सकते। यदि हम श्रीगुरु के समीप केवल उनको चुनौती देने के लिए जाते है, तो कुछ नही सीखेंगे। परन्तु हमे गुरु को उसी प्रकार स्वीकार करना चाहिए जिस प्रकार अर्जुन ने, अपने गुरु स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण को स्वीकार किया था :

कार्पण्यदोषोपहतस्वभाव: पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेता: ।
यच्छ्रेय: स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥

"कृपणता के कारण अब मै स्वय के कर्त्तव्य के विषय मे विमोहित हूँ और दुर्बलतावश पूर्ण रूप से शान्ति खो चुका हूँ। मै इस अवस्था मे आपसे पूछता हूँ कि मुझे स्पष्ट रूप से कहिए कि मेरे लिए क्या श्रेयस्कर है। अब मैं आपका शिष्य हूँ एवं आपकी शरण मे आया एक जीव हूँ। कृपया मुझे उपदेश दीजिए।" [गीता २ ७]

गुरु बनने की विधि है। श्रीगुरुदेव भगवान् श्रीकृष्ण के प्रतिनिधि है। परम्परा मे पहले आए हुए आचार्यो के प्रतिनिधि है। श्रीकृष्ण कहते है सब आचार्य जन, उनके प्रतिनिधि है, इसलिए गुरु का ठीक उसी प्रकार आदर-सत्कार करना चाहिए, जैसे कि मनुष्य भगवान् का करता है। जैसा कि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर अपने श्रीगुर्वाष्टक मे कहते है **यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादो** "श्रीगुरुदेव की दया से, मनुष्य श्रीकृष्ण की कृपा प्राप्त करता है।" इस प्रकार यदि हम योग्य गुरु की शरण लेते हैं, तो हम भगवान् के शरणागत होते है। भगवान्, गुरु के प्रति, हमारी शरणागति को स्वीकार करते है।

भगवद्गीता [१८ ६६] मे, भगवान् श्रीकृष्ण शिक्षा देते है :

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच: ॥

"सब प्रकार के धर्मो को त्याग कर, एकमात्र मेरो शरण ग्रहण करो, बदले मे सम्पूर्ण पापो से तुम्हारी रक्षा करूँगा। अत: कुछ भय मत करो।" कोई तर्क करता है, "श्रीकृष्ण कहाँ है, मै उनकी शरण लूंगा।" पर ऐसा नही होता है।

विधि यह है कि पहले हम श्रीकृष्ण के प्रतिनिधि की शरण लेते है, उसके पश्चात् श्रीकृष्ण की शरण ली जाती है। इसलिए यह कहा गया है, **साक्षाद्धरित्वेन समस्त शास्त्रै:**—गुरुदेव, भगवान् के समान ही है। जब हम गुरु की वन्दना करते है, तब भगवान् की वन्दना होती है क्योकि हम भगवद्-भक्त बनने का प्रयत्न कर रहे है, अत. हमे यह सीखने की आवश्यकता है कि श्रीभगवान् के प्रतिनिधि के माध्यम से भगवान् की वन्दना किस प्रकार होती है। समस्त शास्त्रो मे श्रीगुरुदेव को श्रीभगवान् के समान स्वीकार किया गया है परन्तु गुरुदेव कदापि यह नही कहते, "मै भगवान् हूँ।" शिष्यो का कर्त्तव्य है कि गुरुदेव का ठीक उसी प्रकार सम्मान करना, जैसा सम्मान भगवान् का होता है परन्तु गुरु कभी नही सोचते, "मेरे शिष्य-गण मुझे वही सम्मान दे रहे है, जैसे भगवान् को अर्पित किया जाता है—अतएव मैं भगवान् बन गया हूँ।" जैसे ही वह इस प्रकार सोचता है, वह भगवान् के स्थान पर स्वान बन जाता है। इसलिए श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते है, **किन्तु प्रभोर्य: प्रिय एव तस्य** क्योकि श्रीगुरुदेव, भगवान् के सबसे अधिक अन्तरग दास है, उनका उसी प्रकार आदर किया जाता है, जिस प्रकार स्वय भगवान् का। भगवान् हमेशा भगवान् है और गुरुदेव हमेशा गुरु। शिष्टाचार के अनुसार भगवान् 'सेव्य भगवान्' है और गुरुदेव 'सेवक भगवान्'। अत. गुरुदेव को 'प्रभुपाद' कहा जाता है। प्रभु का अर्थ है—स्वामी तथा 'पाद' का अर्थ 'स्थिति' होता है। तो प्रभुपाद का अर्थ है "जिन्होने प्रभु की स्थिति ली है।" इसका तात्पर्य वही है **साक्षाद्धरित्वेन समस्तशास्त्रै:**।

केवल जब हम भगवद्-विज्ञान जानने के लिए गम्भीर है, तभी श्रीगुरुदेव की आवश्यकता है। हमे केवल प्रदर्शनमात्र के लिए गुरु कभी नही बनाना चाहिए। जिस मनुष्य ने गुरुदेव की शरण ली है, वह विवेकपूर्वक बोलता है। वह कभी अर्थहीन बात नही करता। प्रामाणिक गुरु को स्वीकार करने का यह लक्षण है। निश्चय ही हमे गुरु महाराज की सब प्रकार से वन्दना करनी चाहिए, पर साथ ही साथ हमे यह भी स्मरण रखना चाहिए कि किस प्रकार गुरुदेव की आज्ञा पालन की जाए। भगवद्गीता [४ ३४] मे, स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण गुरुदेव को ढूंढने की और उन तक पहुँचने की विधि कहते है :

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिन: ॥

"गुरु महाराज का आश्रय लेकर ज्ञान रूपी सत्य को जानने का प्रयत्न करो। विनम्र भाव से गुरु से प्रश्न करो और उनकी सेवा करो। आत्मज्ञानी तुम्हे ज्ञान दे सकते है क्योकि वे तत्त्वदर्शी है।"

प्रथम विधि है शरणागति। हमे एक श्रेष्ठतर व्यक्ति को [illegible] से

उनकी शरण लेनी चाहिए। अतः शास्त्रों का आदेश है कि गुरु बनाने के पूर्व, हमें उनका सावधानीपूर्वक अध्ययन करना चाहिए, यह जानने के लिए कि हम उनके शरणागत हो सकते है या नहीं। हमे सहसा केवल भावुकतावश, गुरु नही बनाना चाहिए। ऐसा करना अत्यन्त संकटपूर्ण है। गुरु को भी उस व्यक्ति का अध्ययन करना चाहिए, जो उनका शिष्य बनना चाहता है कि वह शिष्य होने के योग्य है अथवा नही। प्रत्येक वस्तु दी हुई है परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि हमें विधि का गम्भीरतापूर्वक पालन करना है। तभी हम योग्य शिष्य बनने के लिए प्रशिक्षित किए जा सकते है। किन्तु सर्वप्रथम हमे योग्य गुरुदेव अवश्य ढूँढ़ना चाहिए और उनसे सम्बन्ध स्थापित कर, सम्बन्ध के अनुसार कार्य करना चाहिए। इसके पश्चात् ही हमारा जीवन सफल होगा, क्योकि गुरु महाराज अन्धकार में पड़े निष्कपट शिष्य को प्रकाश दे सकते है।

प्रत्येक मनुष्य धूर्त और मूर्ख उत्पन्न हुआ है। यदि हम शिक्षित उत्पन्न होते, तो क्यो हमें पाठशाला जाने की आवश्यकता पड़ती है? यदि हम ज्ञान नही प्राप्त करते तो हम पशुओ के समान ही है। एक पशु भले ही कहे कि ग्रन्थो की कोई आवश्यकता नही है और वह गुरु बन चुका है,परन्तु विज्ञान और दर्शन शास्त्र के प्रामाणिक ग्रन्थो के अध्ययन के बिना कोई किस प्रकार ज्ञान प्राप्त कर सकता है। धूर्त गुरु इन तथ्यो को टालने का प्रयत्न करता है। हमे अवश्य ही यह समझना चाहिए कि हम सब जन्म-जात धूर्त और मूर्ख है तथा हमें ज्ञानरूपी प्रकाश की आवश्यकता है। हमें ज्ञान प्राप्त कर अपने जीवन मे सिद्धि प्राप्त कर लेनी है। यदि हम अपने जीवन में सिद्धि नहीं पाते तो निश्चय ही यह हमारी पराजय है। और यह पराजय क्या है? यह पराजय है, अस्तित्व के लिए सघर्ष। हम श्रेष्ठतर जीवन, उच्चतर स्थिति इत्यादि पाने का प्रयत्न कर रहे है और इस प्रयत्न मे हम अत्यधिक कठिन संघर्ष कर रहे है, परन्तु हमे ज्ञात ही नही है कि उच्चतर स्थिति है क्या?

इस ससार मे, जो भी हमारी स्थिति है उसे अवश्य ही त्यागना पड़ता है। चाहे हमारी अच्छी स्थिति हो अथवा बुरी, दोनो दशाओ मे हम यहाँ, संसार मे बने नही रह सकते। हम लाखो रुपये भले ही कमा ले और सोचे, "अब मै बहुत अच्छी परिस्थिति मे हूँ।" पर जरा सा दस्त या कॉलरा का रोग हमारी इस "अच्छी स्थिति" को एक मिनट मे समाप्त कर देगा। यदि बैंक नष्ट हो जाए, तो हमारी अच्छी स्थिति भी समाप्त हो जाती है। तो इस प्रकार वास्तव मे इस भौतिक जगत् मे कोई भी परिस्थिति अच्छी नही है। यह संसार एक स्वाँग अथवा नाटक है। जो लोग इस संसार में उच्चतर स्थिति पाने का प्रयत्न करते है, अन्त मे पराजित ही होते है क्योकि यहाँ कोई उच्चतर स्थिति है ही नही। भगवद्गीता (१४. २६) दर्शाती है कि उच्चतर परिस्थिति क्या है: "जो मनुष्य पूर्ण रूप से मेरी अव्यभिचारिणी

संत एवं शठ में भेद

श्रील प्रभुपाद, 'लन्दन टाइम्स' के साथ हुए एक साक्षात्कार (इन्टरव्यू) में स्पष्ट करते हैं "आप यदि स्वय को छलना चाहते हैं, तो आप अनेक 'ठग' गुरु पा जाएँगे। परन्तु यदि आप निश्छल हैं, तो आपको निश्छल गुरु की ही प्राप्ति होगी । सच्चे गुरु श्रीभगवान् के प्रतिनिधि हैं तथा वे भगवान् से सम्बन्धित विषय के अतिरिक्त कुछ भी नही चर्चा करते सच्चे गुरु व्यापारी नही हैं। वे श्रीभगवान् के प्रतिनिधि हैं। जो कुछ भी भगवान् कहते हैं, गुरु केवल उसकी पुनरावृत्ति करते हैं। इसके अतिरिक्त वे कुछ भी नही कहते।"

पत्रकार—कृष्णकृपाश्रीमूर्ति, ऐसा प्रतीत होता है कि पहले की तुलना में अधिकाधिक लोग किसी न किसी प्रकार के आध्यात्मिक जीवन की खोज में हैं। क्या आप मुझे बता सकते है कि ऐसा क्यो है ?

श्रील प्रभुपाद—आध्यात्मिक जीवन की आकाक्षा परम स्वाभाविक है। हम आत्मा है, अत हम सासारिक वातावरण मे सुखी नही रह सकते। यदि आप मछली को जल से निकाल दे तो वह भूमि पर सुखी नही रह सकती है। उसी प्रकार यदि हम आध्यात्मिक चेतना से रहित है तो हम कदापि सुखी नही हो सकते। वर्तमान मे अनेकानेक लोग वैज्ञानिक उन्नति एव आर्थिक विकास के पीछे है, परन्तु वे सुखी नही है क्योंकि ये जीवन के वास्तविक लक्ष्य नही है। अनेक युवा मनुष्य इसका अनुभव कर रहे है तथा वे भौतिकता पूर्ण जीवन का त्याग कर रहे है एव आध्यात्मिक जीवन को खोजने का प्रयत्न कर रहे है। वास्तव मे, यथार्थ खोज यही है। कृष्ण-भक्ति ही जीवन का यथार्थ लक्ष्य है। जब तक आप श्रीकृष्णभावनामृत का आश्रय नही लेते, तब तक आप सुखी हो ही नही सकते। यह एक लक्ष्य है अतएव इस महान् अभियान के अध्ययन हेतु तथा इसको समझने के लिए हम प्रत्येक को निमन्त्रित कर रहे है।

पत्रकार—स्पष्ट कहूँ तो चिन्ता मुझे इस बात की है कि ब्रिटेन मे कुछ वर्ष पूर्व एक भारतीय योगी के आने के पश्चात् जो यहाँ के लोगो के द्वारा सुना गया पहला 'गुरु' था, सहसा ही अनेकानेक 'गुरु वर्ग' न जाने कहाँ से प्रकट हो गए है। कभी-कभी मैं अनुभव करता हूँ कि उनमे से सब इतने सच्चे नही है जितना कि उनको

होना चाहिए। क्या यह उचित होगा कि ऐसे लोगो को सचेत किया जाए जो आध्यात्मिक जीवन ग्रहण करने की सोच रहे है जिससे वे निश्चित रहे कि उन्हे शिक्षा देने के लिए उनके पास एक सच्चे गुरु है ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ ! नि सन्देह, गुरु की खोज करना बहुत ही सुन्दर है, किन्तु यदि आप एक सस्ता गुरु चाहते है अथवा स्वय को छलना या ठगना चाहते है, तब आप अनेक ठग गुरु पा जाएँगे। परन्तु यदि आप निश्छल है, तो आपको एक निश्छल गुरु ही मिलेगे। लोग प्रत्येक वस्तु अत्यन्त सस्ते ढग से चाहते है इसीलिए वे ठगे जाते है। हम अपने शिष्यो को अवैध स्त्री अथवा पुरुष सम्बन्ध, मासाहार, जुआ और नशे का त्याग करने के लिए कहते है। लोग सोचते है—यह तो बहुत कठिन है, एक झझट है। परन्तु यदि कोई अन्य व्यक्ति यह कहे, "तुम जो मूर्खता चाहो, वह कर सकते हो, केवल मेरा मन्त्र भर ले लो," तो लोग उसको पसन्द करेगे। मुख्य बात तो यह है कि लोग स्वय को ठगना चाहते है अत उनके पास ठग आते है। कोई भी किसी प्रकार की तपस्या नही करना चाहता है। मानव जीवन तपस्या के लिए बनाया गया है, परन्तु कोई भी तपस्या करने के लिए तैयार नही है। फलस्वरूप, ठग लोग आते है और कहते है, "कोई तपस्या नही। तुम्हारे मन मे जो आए सो करो। केवल मेरी फीस भर दे दो एव मै तुम्हे कोई मन्त्र दे दूँगा तथा तुम छह मास के अन्दर भगवान् बन जाओगे।" तो आजकल यह सब चल रहा है। यदि आप इस प्रकार स्वय को ठगाना चाहते है तो ठग ही आएँगे।

पत्रकार—परन्तु उस व्यक्ति के लिए क्या किया जाए जो गम्भीरतापूर्वक आध्यात्मिक जीवन प्राप्त करना चाहता है, परन्तु उसे असद्‌गुरु की प्राप्ति हो जाती है।

श्रील प्रभुपाद—जब केवल आप एक साधारण-सी शिक्षा प्राप्त करना चाहते है तब उसके लिए आपको इतना समय, परिश्रम एव बुद्धि प्रयुक्त करनी पडती है। उसी प्रकार, यदि आप आध्यात्मिक जीवन ग्रहण करने जा रहे है तो आपको अवश्य ही गम्भीर बनना पडेगा। यह कैसे सम्भव है- कि केवल कुछ अद्‌भुत मन्त्रो के द्वारा कोई छह माह मे भगवान् बन जाय ? लोग ऐसा चाहते ही क्यो है ? इसका अर्थ हुआ कि वे स्वय को छलना चाहते है।

पत्रकार—कोई व्यक्ति यह कैसे कह सकता है कि उसको सद्‌गुरु की प्राप्ति हुई है ?

श्रील प्रभुपाद—इस प्रश्न का उत्तर क्या मेरा कोई शिष्य दे सकता है ?

शिष्य—मुझे स्मरण है कि एक बार जॉन लेनन ने आपसे पूछा, "यह मुझे कैसे ज्ञात होगा कि कौन सच्चा गुरु है ?" और आपने उत्तर दिया, केवल यह ढूँढ निकालिए कि कौन श्रीकृष्ण मे सबसे अधिक आसक्त है। ऐसा व्यक्ति ही सच्चा गुरु है।"

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ। सच्चे गुरु श्रीभगवान् के प्रतिनिधि है तथा वे भगवान् क

विषय के अतिरिक्त कुछ भी नही कहते। सच्चे गुरु वे है जिनकी सासारिक जीवन मे कोई रुचि नही है। वे केवल और एकमात्र भगवान् के पीछे ही है। यह सद्गुरु की एक कसौटी है **ब्रह्मनिष्ठम्**। वे परम सत्य मे मग्न रहते है। मुण्डक उपनिषद् मे कहा गया है, **श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्**—सद्गुरु को शास्त्रो तथा वैदिक रहस्य का भलीभाँति ज्ञान रहता है वे पूर्ण रूप से ब्रह्म पर निर्भर रहते है। उन्हे यह ज्ञात होना चाहिए ब्रह्म क्या है और ब्रह्म मे किस प्रकार स्थित होना चाहिए। वैदिक साहित्य मे ये लक्षण दिए गए है। जैसा कि मैंने पहले कहा, सच्चे गुरु श्रीभगवान् के प्रतिनिधि है। वे परम ईश्वर का प्रतिनिधित्व करते है, ठीक इसी प्रकार जैसे कि एक वॉयसराय, राजा का। वास्तविक गुरु कुछ गढ़ा नही करते। उनके द्वारा कही गई प्रत्येक वस्तु शास्त्रो एव पूर्व के आचार्यों के अनुसार होती है। वे आपको मन्त्र नही देंगे और न यह कहेगे कि आप छह माह मे भगवान् बन जाएँगे। गुरु का कार्य यह नही है। गुरु का कार्य है प्रत्येक जीव को भगवान् का भक्त बनाने के लिए प्रचार करना। वास्तविक गुरु के कार्य का सार-तत्त्व यही है। नि सन्देह, उनका कोई दूसरा कार्य है ही नही। वे जिसको भी देखते है उसे कहते है, "कृपया भगवद्भावनाभावित बनिए।" यदि वे किसी न किसी प्रकार भगवान् की ओर से प्रचार करते है तथा प्रत्येक जीव को श्रीभगवान् का भक्त बनाने का प्रयत्न करते है, तो वे सच्चे गुरु है।

पत्रकार—इस विषय मे क्रिश्चियन पादरी की क्या स्थिति है ?

श्रील प्रभुपाद—क्रिश्चियन, मुसलमान, हिन्दू—इससे कुछ अन्तर नही पडता। यदि वे केवल भगवान् की ओर से बोल रहे है, तो वे एक गुरु है। उदाहरण के लिए, जीसस क्राइस्ट। उन्होने लोगो के बीच प्रचार किया, "भगवान् से प्रेम करने का प्रयत्न करो।" कोई भी—इससे अन्तर नही पडता कि कौन है—चाहे वह हिन्दू, मुसलमान या क्रिश्चियन हो, एक गुरु है, यदि वह भगवान् से प्रेम करने के लिए लोगो को विश्वासपूर्वक सहमत कराता है। यही कसौटी है। गुरु कदापि नही कहते है, "मै भगवान् हूँ" या "मै तुमको भगवान् बना दूँगा।" सच्चे गुरु कहते है, "मै भगवान् का दास हूँ और मै तुमको भी भगवान् का दास बनाऊँगा।" इससे कुछ अन्तर नही पडता कि गुरु की वेशभूषा कैसी है। जैसे भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा, जो भी कृष्ण-तत्त्व का ज्ञान दे सकता है वह गुरु है।" वास्तविक गुरु लोगो को भगवान् अर्थात् श्रीकृष्ण का भक्त बनाने का प्रयत्न करते है। उनका कोई भी अन्य कार्य नही है।

पत्रकार—परन्तु असद्गुरु लोग...

श्रील प्रभुपाद—और 'असद' गुरु क्या होता है ?

पत्रकार—एक असद्गुरु कुछ धन अथवा प्रसिद्धि चाहता है।

श्रील प्रभुपाद—ठीक, परन्तु यदि वह असद् है तो गुरु ही कैसे बन सकता है ? (हँसते है) लोहा सोना कैसे बन सकता है ? वास्तव मे, गुरु बुरा हो ही नही सकता। क्योकि यदि कोई बुरा है तो वह गुरु नही हो सकता, 'बुरा गुरु' आप नही कह सकते। ये विरोधाभास है। आपको केवल यह समझने का प्रयत्न करना है कि सद्गुरु क्या होता है। सच्चे गुरु की परिभाषा है कि वे केवल भगवान् के विषय मे ही बोल रहे है—बस। यदि वह किसी निरर्थक विषय पर बोल रहा है तो वह गुरु नही है। गुरु बुरा हो ही नही सकता। लाल गुरु या सफेद गुरु के समान ही असद् गुरु का भी प्रश्न ही नही उठता। गुरु का अर्थ है 'सच्चा गुरु'। हमे केवल यही जानने भर की आवश्यकता है कि सच्चे गुरु केवल श्रीभगवान् के विषय मे बोल रहे है। तथा लोगो को भगवान् का भक्त बनाने का प्रयत्न कर रहे है। यदि वे ऐसा करते है तो वे सच्चे है।

पत्रकार—यदि मैं आपके सघ मे दीक्षा लेना चाहता हूँ तो मुझे क्या करना होगा ?

श्रील प्रभुपाद—प्रथम तो आपको, अवैध यौन सम्बन्ध का त्याग करना पडेगा।

पत्रकार—क्या इसमे सब प्रकार के यौन जीवन सम्मिलित है। अवैध यौन जीवन क्या होता है ?

श्रील प्रभुपाद—विवाह के बाहर का कामाचार अवैध काम है। पशु बिना किसी प्रतिबन्ध के कामाचार करते है, परन्तु मानव समाज मे प्रतिबन्ध है। प्रत्येक देश एव प्रत्येक धर्म मे यौन जीवन को प्रतिबन्धित करने के लिए किसी न किसी प्रकार की प्रणाली पाई जाती है। आपको सब प्रकार के नशे का भी त्याग करना पडेगा जिसमे चाय, सिगरेट, शराब, अफीम—सम्मिलित है, कोई भी ऐसी वस्तु जिससे नशा होता है।

पत्रकार—इनके अतिरिक्त और क्या करना होगा ?

श्रील प्रभुपाद—आपको मास, अण्डा एव मछली भी छोडना होगा। जुआ का भी त्याग करना पड़ेगा। जब तक आप इन चार पापो का त्याग नही कर देते तब तक आपको दीक्षा नही दी जा सकती है।

पत्रकार—सम्पूर्ण विश्व मे आपके कितने शिष्य है ?

श्रील प्रभुपाद—किसी भी वास्तविक वस्तु के लिए हो सकता है कि शिष्य अत्यन्त कम हो। वही कूडा-करकट प्राप्त करने के लिए अनेक अनुयायी हो सकते है। फिर भी, हमारे लगभग पॉच हजार दीक्षा प्राप्त शिष्य है।

पत्रकार—क्या श्रीकृष्णभावनामृत अभियान की वृद्धि हो रही है ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, यह बढ रहा है—परन्तु धीरे-धीरे। इसका कारण यह है कि हमारे अनेक प्रतिबन्ध है और लोग प्रतिबन्ध पसन्द नही करते।

पत्रकार—आपके सबसे अधिक शिष्य कहाँ है ?

श्रील प्रभुपाद—अमेरिका, यूरोप, दक्षिणी अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया। और निस्सन्देह भारत मे तो लाखो लोग है जो कृष्णभक्ति का साधन करते है।

पत्रकार—क्या आप बता सकते है कि आपके अभियान का लक्ष्य क्या है ?

श्रील प्रभुपाद—श्रीकृष्णभावनामृत अभियान का उद्देश्य है मनुष्य की मौलिक चेतना को जाग्रत करना। वर्त्तमान मे हमारी चेतना उपाधि युक्त है। कोई सोच रहा है, "मै अग्रेज हूँ।" और दूसरा सोच रहा है "मै अमेरिकन हूँ।" यथार्थ मे तो किसी भी उपाधि से हमारा कोई सम्बन्ध नही है। हम सब भगवान् के अंश है, यही हमारा परिचय है। यदि प्रत्येक व्यक्ति केवल इस भावना के स्तर तक आ जाय, तो विश्व की समस्त समस्याओ का हल हो जाएगा। तभी हम जान सकेंगे कि हम एक है—समान गुण वाली आत्मा है। प्रत्येक मे समान गुण वाली आत्मा है यद्यपि वेशभूषा भले ही भिन्न है। यह व्याख्या श्रीमद्भगवद्गीता मे दी गई है।

पत्रकार—श्रील प्रभुपाद, भगवान् की भक्ति का वास्तव मे क्या अर्थ होता है ?

श्रील प्रभुपाद—कृष्ण-भक्ति वास्तव मे एक शुद्धिकारक विधि है। (**सर्वोपाधि विनिर्मुक्तम्**) इसका उद्देश्य लोगो को सब उपाधियो से मुक्त करना है (**तत्परत्वेन निर्मलम्**) जब हमारी चेतना सब प्रकार की उपाधियो से निर्मल हो जाती है, उस अपनी निर्मल इन्द्रियो द्वारा किए गए हमारे कार्य हमको पूर्ण बनाते है। अन्तत. हम मानव जीवन की आदर्श पूर्णता पर पहुँच जाते है। कृष्ण-भक्ति एक अत्यधिक सरल विधि भी है। इसके लिए एक महान् दार्शनिक, वैज्ञानिक आदि बनना आवश्यक नही है। हमे केवल भगवन्नाम कीर्त्तन करने की एव यह समझने की आवश्यकता है कि उनका स्वरूप, उनका नाम तथा उनके गुण ये सभी परम है। कृष्ण-भक्ति अर्थात् श्रीकृष्णभावनामृत एक महान विज्ञान है। दुर्भाग्यवश विश्वविद्यालयो मे इस विज्ञान के लिए कोई विभाग नही है। अत. हम मानव समाज के कल्याण मे रुचि रखने वाले सभी गम्भीर मनुष्यो को इस महान् अभियान को समझने के लिए निमन्त्रित करते है। यदि सम्भव हो तो वे इसमे भाग ले तथा हमारे साथ सहयोग करे। इससे विश्व की समस्याएँ हल हो जाएँगी। आध्यात्मिक ज्ञान का सर्वाधिक महत्व-पूर्ण एव प्रामाणिक ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता का यही निर्णय है। आपमे से अनेक व्यक्तियो ने भगवद्गीता के विषय मे सुना होगा। हमारा अभियान इस पर आधारित है। भारत के सभी महान् आचार्यो द्वारा हमारे अभियान को समर्थन प्राप्त है। श्रीरामानुजाचार्य, श्रीमध्वाचार्य, भगवान् श्रीचैतन्यदेव तथा अनेक महाजन इत्यादि। आप सब समाचार पत्रो के प्रतिनिधि है अत. मै आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मानव समाज के कल्याण के लिए इस अभियान को यथा-सम्भव समझने का प्रयत्न करे।

पत्रकार—क्या आप सोचते है आपका अभियान ही भगवान को जानने का एकमात्र

माग है ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ।

पत्रकार—आपको यह विश्वास कैसे है ?

श्रील प्रभुपाद—आपसे अभी कहे गये महाजनो एवं भगवान् अर्थात् श्रीकृष्ण के आधार पर हमे यह अटूट विश्वास है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते है :—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

"सर्व प्रकार के धर्मो का त्याग करो केवल मेरी शरण मे आओ, बदले मे सब पापो से मै तुम्हारी रक्षा करूँगा। अत. तुम कुछ भय मत करो।" [गीता १८ ६६]

पत्रकार—क्या 'शरण' का अर्थ है कि उन्हे अपने परिवार का त्याग करना पडेगा ?

श्रील प्रभुपाद—जी नही।

पत्रकार—परन्तु यदि मै आपसे दीक्षा लेना चाहूँ तो क्या मुझे मन्दिर मे निवास नही करना पडेगा ?

श्रील प्रभुपाद—यह आवश्यक नही है।

पत्रकार—मै घर मे रह सकता हूँ।

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, अवश्य।

पत्रकार—व्यवसाय के विषय मे क्या होगा ? क्या मुझे अपनी नौकरी छोडनी पडेगी।

श्रील प्रभुपाद—जी नही, आपको केवल अपने बुरे व्यसनो को त्याग कर हरे कृष्ण मन्त्र की माला जपनी है—बस और कुछ नही करना है।

पत्रकार—क्या मुझे आपकी कोई आर्थिक सहायता करनी पडेगी ?

श्रील प्रभुपाद—जी नही। वह आपकी इच्छा पर है। यदि आप करे तो अच्छा है और यदि न करे तो भी हम लोग चिन्ता नही करते। हम किसी के आर्थिक सहयोग पर निर्भर नही रहते। हम श्रीकृष्ण पर निर्भर रहते है।

पत्रकार—मुझे किसी प्रकार से धन नही देना होगा ?

श्रील प्रभुपाद—नही।

पत्रकार—क्या यह एक मुख्य लक्षणो मे से एक है, जिसके कि द्वारा एक सच्चे गुरु व एक ढोंगी मे अन्तर पता चल सकता है।

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, सच्चे गुरु व्यापारी नही है। वे श्री भगवान् के प्रतिनिधि है। जो कुछ भी भगवान् कहते है गुरु केवल उसकी पुनरावृत्ति करते है। इसके अतिरिक्त वे कुछ भी नही कहते है।

पत्रकार—परन्तु क्या आप यह आशा करते है कि एक वास्तविक गुरु 'रॉल्स रॉयस' मोटर मे यात्रा करेगा तथा प्रथम श्रेणी के होटलो के अत्यधिक भव्य कक्षो

म रहेगा।"

श्रील प्रभुपाद—कभी-कभी लोग प्रथम श्रेणी होटलो के कक्षो मे हमारी व्यवस्था कर देते है, परन्तु प्रायः हम स्वय के मन्दिरो मे रुका करते हैं। सम्पूर्ण विश्व मे हम लोगो के प्रायः १२० मन्दिर है अतः हमे किसी होटलो मे जाने की आवश्यकता नही है।

पत्रकार—मै किसी प्रकार का दोषारोपण नही कर रहा था। मैं केवल यह दर्शाने का प्रयत्न कर रहा था कि आपकी चेतावनी न्यायसगत है। अनेकानेक लोग आध्यात्मिक जीवन प्राप्त करने मे रुचि रखते है—परन्तु साथ ही ऐसे बहुत से लोग है जिन्होने गुरु बनने का व्यापार खोल लिया है।

श्रील प्रभुपाद—क्या आपके विचार से आध्यात्मिक जीवन का अर्थ है स्वेच्छापूर्वक निर्धन बन जाना ?

पत्रकार—मै यह तो नही जानता हूँ।

श्रील प्रभुपाद—एक निर्धन व्यक्ति भौतिकवादी हो सकता है तथा एक धनवान् आध्यात्मवादी हो सकता है। आध्यात्मिक जीवन न तो निर्धनता पर निर्भर है और न ही धन पर। आध्यात्मिक जीवन दिव्य है। उदाहरण के लिए, अर्जुन राजपरिवार के सदस्य थे। परन्तु साथ ही वे भगवान् के शुद्ध भक्त थे और भगवद्गीता [४ २] मे श्रीकृष्ण कहते है, **एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।** "इस प्रकार गुरु-परम्परा के द्वारा यह परम विज्ञान प्राप्त किया गया और राजर्षियो ने उसको इसी विधि से जाना।" भूतकाल मे प्राय. सभी राजा राजर्षि हुआ करते थे एव वे आध्यात्क विज्ञान समझा करते थे। अत. आध्यात्मिक जीवन मनुष्य की भौतिक अवस्था पर निर्भर नही करता है। व्यक्ति की भौतिक दशा कुछ भी रहे—चाहे वह राजा हो अथवा एक कगाल—फिर भी वह आध्यात्मिक ज्ञान समझ सकता है। साधारणतया लोगो को यह ज्ञात ही नही है कि आध्यात्मिक जीवन है क्या ? अतएव वे अनावश्यक ही हम लोगो की आलोचना करते है। यदि मै आपसे पूछूँ कि आध्यात्मिक जीवन क्या है तो आपका क्या उत्तर होगा ?

पत्रकार—मुझे निश्चत रूप से ज्ञात नही।

श्रील प्रभुपाद—यद्यपि आप जानते ही नही कि आध्यात्मिक जीवन क्या है फिर भी आप कहते है, 'यह ऐसा है' अथवा 'यह वैसा है।' परन्तु आप सबसे पहले तो यह जानिए कि आध्यात्मिक जीवन है क्या। आध्यात्मिक जीवन का आरम्भ होता है जब आप समझ जाएँ कि आप यह देह नही है। यह आध्यात्मिक जीवन का वास्तविक आरम्भ है। स्वय मे तथा अपने शरीर मे अन्तर देखने के द्वारा आपको यह ज्ञान होता है कि आप आत्मा है (अहं ब्रह्मास्मि)।

पत्रकार—क्या आप सोचते है कि यह ज्ञान प्रत्येक मनुष्य की शिक्षा का अग

होना चाहिए ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ। लोगो को सर्वप्रथम तो इस बात की ही शिक्षा देनी है कि व है क्या। क्या वे शरीर है या कुछ और? शिक्षा का आरम्भ तो यही है। अभी सबको यह शिक्षा दी जाती है कि वे लोग सोचे कि वे शरीर है। "एक बार यदि भाग्यवश कोई जीव अमेरिकन शरीर प्राप्त कर लेता है तो वह सोचता है, "मै अमेरिकन हूँ।" यह इस प्रकार सोचने के समान है, "मैं लाल कुरता हूँ।" ऐसा केवल इसलिए क्योकि आप लाल कुरता पहने हुए है। आप लाल कुरता नही वरन् एक मनुष्य है। उसी प्रकार, यह शरीर वास्तविक व्यक्ति—आत्मा—के ऊपर कुरता अथवा कोट के समान है। यदि हम अपने को शारीरिक 'कुरता' अथवा 'कोट' के आधार पर पहचानें तो हमारी आध्यात्मिक शिक्षा शून्य है।

पत्रकार—क्या आप सोचते है कि विद्यालयो मे इस प्रकार की शिक्षा दी जानी चाहिए।

श्रील प्रभुपाद—हाँ। विद्यालयो, महाविद्यालयो तथा विश्वविद्यालयो में यह शिक्षा अवश्य दी जानी चाहिए। इस विषय पर प्रचुर साहित्य है—ज्ञान का असीम कोश है। वास्तव मे, आवश्यकता तो इस बात की है कि समाज के नेता इस अभियान को समझने के लिए आगे बढे।

पत्रकार—क्या आपके पास ऐसे लोग भी आए है जिनका सम्बन्ध किसी ठग गुरु से था ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ ऐसे अनेक भक्त है।

पत्रकार—उन असद्गुरु लोगो के द्वारा ऐसे भक्तो का आध्यात्मिक जीवन क्या किसी प्रकार से नष्ट कर दिया गया था।

श्रील प्रभुपाद—नही, ऐसे लोग सचमुच मे किसी आध्यात्मिक जीवन की खोज कर रहे थे और यही उनकी योग्यता थी। श्रीभगवान् प्रत्येक के हृदय मे है और ज्यो ही कोई सच्चे हृदय से उन्हे खोजता है त्यो ही वे उस व्यक्ति को एक सद्गुरु से मिलवा देते है।

पत्रकार—क्या आप जैसे 'वास्तविक गुरु'—ने इन ढोंगी गुरु लोगो को रोकने का प्रयत्न किया है—अर्थात् उन पर यह व्यापार बन्द करने के लिए दबाव डाला है।

श्रील प्रभुपाद—जी नही, यह मेरा उद्देश्य नही है। मैंने इस अभियान का आरम्भ केवल हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्त्तन से किया। मैं अकेले ही न्युयॉर्क के टॉम्पकिन्स पार्क मे कीर्त्तन किया करता था और शीघ्र ही लोगो ने मेरे समीप आना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार यह श्रीकृष्णभावनामृत अभियान धीरे-धीरे विकसित हुआ। अनेक व्यक्तियो ने यह स्वीकार किया और कुछ ने नही किया। जो लोग सौभाग्यशाली है उन्होने इसको स्वीकार कर लिया है।

पत्रकार—क्या आप यह अनुभव नही करते कि ठग गुरु के साथ हुए अपने अनुभव के कारण लोग प्रत्येक गुरु पर ही सन्देह किया करते है ? यदि आप दाँत के किसी नीम-हकीम डॉक्टर के पास गए और उसने आपका दाँत तोड़ दिया है तो आपको किसी दूसरे दाँत के डॉक्टर के पास जाने मे भी सन्देह होगा ।

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ । स्वाभाविक ही ठगे जाने पर आप सन्देह करने लग जाते है । परन्तु उसका यह अर्थ तो नही कि यदि एक बार आप छले गए तो आप सदा ही ठगे जाएँगे । आप किसी यथार्थ व्यक्ति की खोज करे । परन्तु श्रीकृष्णभावनामृत को प्राप्त करने के लिए आपको अवश्य या तो अत्यधिक सौभाग्यशाली होना चाहिए अथवा इस विज्ञान से भली-भाँति परिचित रहना चाहिए । श्रीमद्भगवद्गीता से हम समझते है कि वास्तविक खोजकर्त्ता बहुत कम है—**मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।** हजारो व्यक्तियो मे से केवल एक व्यक्ति ऐसा हो सकता है जिसे आध्यात्मिक जीवन मे रुचि हो । प्राय: लोग, आहार, निद्रा, मैथुन एव आत्म-रक्षा में ही रुचि रखते है । अत· हम अनेक अनुयायी प्राप्त करने की आशा कर ही—कैसे सकते है, यह जानना कठिन नही है कि लोग अपनी आध्यात्मिक रुचि खो चुके है । जिनकी वास्तव मे इसमे रुचि है उनमे से प्राय. सभी इन तथाकथित आध्यात्मवादियो द्वारा ठगे जाते है । किसी आन्दोलन के अनुयायियो की केवल सख्या मात्र से आप उस आन्दोलन की परख नही कर सकते है । यदि एक व्यक्ति भी सच्चा है तब वह आन्दोलन सफल है । यह परिमाण का नही वरन् गुण का प्रश्न है ।

पत्रकार—आपकी दृष्टि से कितने लोग इन ठग गुरुओ के जाल मे फँस चुके है ।

श्रील प्रभुपाद—व्यावहारिक रूप से सभी लोग (हास्य) । गिनने का प्रश्न नही उठता है । सभी लोग ।

पत्रकार—इसका अर्थ तो हजारो लोग हुए ।

श्रील प्रभुपाद—हजारो नही लाखो । लाखो लोग ठगे जा चुके है क्योकि वे स्वयं को ठगना चाहते है । भगवान् सर्वज्ञ है । वे आपकी इच्छाएँ समझ सकते है । आपके हृदय मे है और यदि आप ठगे जाना चाहते है तो भगवान् आपके पास एक ठग भेज देते है ।

पत्रकार—आपके द्वारा पहले कही हुई सिद्धि अवस्था को प्राप्त करना क्या सभी के लिए सम्भव है ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, निश्चय ही—यह तो केवल एक पल का प्रश्न है । कोई भी केवल एक पल मे ही सिद्धि प्राप्त कर सकता है—यदि वह इच्छा करे तो । कठिनाई तो यह है कि कोई इच्छा ही नही कर रहा है । श्रीमद्भगवद्गीता मे [१८ ६६] भगवान् श्रीकृष्ण कहते है ·

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।

केवल मेरी शरण मे आ जाओ। परन्तु कौन श्रीभगवान् की शरण लेने जा रहा है ? सभी कहते है, "अरे, मै भगवान् की शरण क्यो लूं ? मै स्वाधीन रहूँगा।" परन्तु यदि आप केवल शरणागत हो जाएँ तो यह एक पल का ही कार्य है और कुछ नही। परन्तु कोई इच्छा ही नही करता, कठिनाई यही है।

पत्रकार—जब आप कहते है कि अधिकाश व्यक्ति ठगे जाना चाहते है तो आपका अर्थ यह है कि लोग सासारिक विषय भोग मे संलग्न रहना चाहते है और साथ ही साथ मन्त्र के जप के द्वारा अथवा पुष्प ग्रहण करने के द्वारा आध्यात्मिक जीवन की प्राप्ति कर लेना चाहते है ? लोग ठगे जाना चाहते है से क्या आपका यही अभिप्राय है ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, यह एक रोगी के सोचने के समान है, "मै अपने रोग को भी बनाए रहूँगा और साथ ही साथ मै स्वस्थ भी हो जाऊँगा। ये परस्पर विरोधी बाते है। पहली आवश्यक बात तो यह है कि मनुष्य को आध्यात्मिक जीवन की शिक्षा दी जाए। आध्यात्मिक जीवन ऐसा विषय नहीं है जिसे कुछ मिनटो की चर्चा द्वारा समझा जा सके। दर्शन एव भगवद्-विज्ञान के अनेक ग्रन्थ है परन्तु लोगो की उनमे रुचि ही नही है। कठिनाई तो यही है। उदाहरण के लिए, श्रीमद्भागवत, एक अत्यन्त वृहद् ग्रन्थ है और यदि आप इस ग्रन्थ का अध्ययन करने का प्रयत्न करे तो इसकी एक पक्ति को ही समझने मे अनेक दिन लग सकते है। भागवत मे परम सत्य अर्थात् श्रीभगवान् का वर्णन है परन्तु लोगो की रुचि ही नही है और भाग्यवश, यदि किसी को आध्यात्मिक जीवन मे रुचि हो भी जाती है तो वह तात्कालिक एव सस्ती वस्तुएँ चाहता है। अतएव वह ठगा जाता है। वास्तव मे, मानव जीवन तपस्या के लिए बना है। वैदिक सभ्यता का यह ढंग है। वैदिक काल मे बालको को ब्रह्मचारी के रूप मे प्रशिक्षण दिया जाता था अर्थात् २५ वर्ष की आयु तक यौन जीवन की अनुमति नही थी। ऐसी शिक्षा अब कहाँ है ? ब्रह्मचारी का अर्थ उस विद्यार्थी से है जो पूर्ण ब्रह्मचर्य का जीवन बिताता है तथा गुरुकुल में रह कर अपने गुरु की आज्ञाओ का पालन करता है। अब विद्यालयो मे, महाविद्यालयो मे बिल्कुल आरम्भ से ही काम-जीवन की शिक्षा दी जा रही है और १२ अथवा १३ वर्ष के बालक एवं बालिकाएँ कामाचार मे संलग्न हो रहे है। ऐसे लोग आध्यात्मिक जीवन प्राप्त ही कैसे कर सकते है। आध्यात्मिक जीवन का अर्थ है भगवद्-साक्षात्कार के लिए स्वेच्छापूर्वक किसी प्रकार की तपस्या स्वीकार करना। इसीलिए हम अपने दीक्षा-प्राप्त विद्यार्थियो से आग्रह करते है कि उन्हे अवैध स्त्री अथवा पुरुष सम्बन्ध, मासाहार, जुआ तथा नशा का त्याग करना पड़ेगा। इन प्रतिबन्धो के बिना 'किसी भी प्रकार का योग अथवा ध्यान' दूसरे शब्दो मे तथाकथित आध्यात्मिक सयम यथार्थ नही हो सकता। वह तो ठग और ठगे जाने वालो

का केवल एक व्यापार है।

पत्रकार—आपको अनेकानेक धन्यवाद है।

श्रील प्रभुपाद—हरे कृष्ण।

एक

आत्मा के विज्ञान की शिक्षा

"मेरी समस्त विनम्रता के साथ"

यह बम्बई मे सन् १९३६ का फरवरी मास है। तीन दशको के पश्चात् श्रीकृष्णभावनामृत अभियान के विश्व-विश्रुत गुरु महाराज का दायित्व ग्रहण करने वाले एक विशुद्ध कृष्ण-भक्त श्रील प्रभुपाद अपने गुरुदेव का यशोगान करते हैं। इस व्याख्यान मे हम गुरु, शिष्य और उनके सम्बन्ध के शाश्वत अर्थ के विषय मे ज्ञान प्राप्त करते हैं ।

साक्षाद्धरित्वेन समस्तशास्त्रै-
रुक्तस्तथा भाव्यत एव सद्भिः ।
किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम् ।।

"धर्म-शास्त्रो मे यह घोषित किया गया है कि गुरु महाराज का पूजन साक्षात् भगवान् श्रीहरि के समान ही किया जाना चाहिए तथा इस आदेश का पालन भगवान् के सभी विशुद्ध भक्तो के द्वारा होता है। गुरुदेव भगवान् के सर्वाधिक अन्तरग दास है अत. हम गुरु महाराज के चरण कमल की सादर वन्दना करते है।"

उपस्थित भक्त वृन्द, गौडीय मठ की बम्बई शाखा के सदस्यो की ओर से मै आप सबका स्वागत करता हूँ, क्योकि आपने आज रात्रि मे सम्पन्न होने वाली सभा मे आने की कृपा की। यह सभा जगद्गुरु श्रील आचार्यदेव, जो इस गौडीय मिशन के सस्थापक एवं श्रीश्रीविश्ववैष्णव राजसभा के सभापति–आचार्य है, मेरा तात्पर्य मेरे शाश्वत, दिव्य स्वामी, परमहस परिव्राजकाचार्य श्री श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज से है—के चरण कमलो के श्रद्धा-सुमन अर्पण करने के लिए आयोजित की गई है।

६२ वर्ष पूर्व, इस मागलिक दिवस पर श्रील आचार्यदेव, ठाकुर भक्तिविनोद के आह्वान पर श्री क्षेत्र जगन्नाथ धाम, पुरी मे प्रगट हुए थे।

उपस्थित भक्त वृन्द, श्रील आचार्यदेव के सम्मान मे आयोजित यह सध्या-सभा कोई सम्प्रदायिक आयोजन नही है क्योकि जब हम गुरुदेव अथवा आचार्यदेव के आधारभूत सिद्धान्तो की चर्चा करते है तो हम उस सिद्धान्त की चर्चा कर रहे है जिसका विश्वव्यापी प्रयोग है। मेरे गुरुदेव और आपके गुरु के मध्य भेदभाव

रखने का कोई प्रश्न ही नही उठता। गुरु केवल एक है, जो आपको, मुझे और दूसरो को शिक्षा देने के लिए अनन्त रूपो मे प्रगट होते है।

जैसा कि हमे प्रामाणिक धर्म से ज्ञात होता है, कि गुरु अथवा अचार्यदेव वैकुण्ठ जगत् (परम-जगत्) के सन्देश को प्रस्तुत करते है। वह जगत् अद्वय भगवान् का अप्राकृत धाम है, जहाँ प्रत्येक वस्तु अभिन्न रूप मे परम सत्य भगवान् की सेवा करती है। हमने यह प्राय सुना है, **महाजनो येन गतः स पन्थाः**–"(पूर्व के आचार्यो के पन्थ का अनुसरण करो)" परन्तु इस श्लोक तात्पर्य समझने के लिए हमने कोई वास्तविक प्रयास ही नही किया है। यदि हम इस उपदेश का सूक्ष्म और गहन अध्ययन करे तो हम समझ जाते है कि महाजन एक है और अप्राकृत जगत् को जाने वाला दिव्य मार्ग भी एक है। मुण्डक उपनिषद् मे कहा गया है [१ २ १२]

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् ।
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥

"अप्राकृत विज्ञान की शिक्षा, प्राप्त करने के लिए, हमे गुरु-परम्परा मे आने वाले प्रामाणिक गुरु का अवश्य ही आश्रय ग्रहण करना चाहिए। ऐसे गुरु परम सत्य मे मे स्थित रहते है (**ब्रह्मनिष्ठम्**)।"

इस प्रकार यहाँ आदेश दिया गया है कि अप्राकृत ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमे अवश्य ही गुरु का आश्रय स्वीकार करना चाहिए। अत. यदि परम सत्य भगवान् एक है, जिसके विषय मे हम सोचते है कि कोई भी मतभेद नही है, तो गुरु भी दो नही हो सकते। श्रील आचार्यदेव, जिनको हम अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए आज रात्रि यहाँ एकत्रित हुए है, वे किसी एक साम्प्रदायिक सस्था के गुरु नही है। दूसरे शब्दो मे, वे सत्य को विविध मत-मतान्तरो के रूप में प्रस्तुत करने वाले अनेकानेक व्यक्तियो मे से एक नही है। इसके विपरीत, वे तो जगद्गुरु है, अर्थात् हम सबके गुरु है। अन्तर केवल यही है कि कुछ उनकी आज्ञा का सर्वतोभावेन पालन करते है, जबकि कुछ उनकी आज्ञा प्रत्यक्ष रूप से नही मानते। श्रीमद्भागवत मे आता है [११ १७ २७]

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् ।
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥

"गुरु महाराज को मेरे ही समान मानना चाहिए," आनन्दघन भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा। "किसी को भी गुरुदेव से न तो ईर्ष्या रखनी चाहिए और न ही उनको सामान्य मनुष्य मानना चाहिए, क्योकि गुरुदेव सभी देवताओ के आधार है।" इसका अर्थ हुआ कि आचार्य को श्रीभगवान् का ही साक्षात् स्वरूप माना गया है। उनका इस भौतिक जगत् के कार्य-कलाप से कोई सम्बन्ध नही है। आचार्य जीवन

की अस्थायी आवश्यकताओ के विषय मे हस्तक्षेप करने के लिए यहाँ अवतरित नही होते। उनका केवल एक ही लक्ष्य रहता है कि पतित बद्ध जीवो का उद्धार करना अर्थात् ऐसे जीव जो इस ससार मे मन और इन्द्रियो के द्वारा भोग करने के उद्देश्य से आए है। आचार्यदेव वैदिक प्रकाश का दान करने के लिए और पूर्ण स्वाधीन जीवन की प्राप्ति कराने के लिए ही हमारे समक्ष प्रगट होते है। जीवन के पग-पग पर हमे ऐसी स्वाधीनता प्राप्ति करने की आकाक्षा रखनी चाहिए।

वेदो के इन्द्रियातीत दिव्य ज्ञान को भगवान् ने सर्वप्रथम इस ब्रह्माण्ड-विशेष के रचयिता ब्रह्माजी को सुनाया। ब्रह्माजी से यह ज्ञान श्रीनारद को प्राप्त हुआ, श्रीनारद से व्यासदेव को। व्यासदेव से श्रीमध्व को और इस प्रकार गुरु-परम्परा की इस विधि मे एक शिष्य के द्वारा दूसरे शिष्य को यह इन्द्रियातीत ज्ञान प्रसारित किया गया। क्रमशः यह ज्ञान भगवान् श्रीमन् गौराग महाप्रभु (श्रीकृष्णचैतन्य) को प्राप्त हुआ जिन्होने श्रीईश्वर पुरी के शिष्य और उत्तराधिकारी का अभिनय किया था। वर्तमान आचार्यदेव, श्रील रूप गोस्वामी के पश्चात् दसवे गुरु है। श्रील रूप गोस्वामी भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु के मौलिक प्रतिनिधि थे एव उन्होने इस इन्द्रियातीत ज्ञान की पद्धति का पूर्ण प्रचार किया। अपने गुरुदेव से हम जो ज्ञान प्राप्त कर रहे है वह स्वय भगवान् के द्वारा दिए गए और ब्रह्म सम्प्रदाय की अटूट परम्परा मे आ रहे पूर्ववर्ती आचार्यो के द्वारा दिए ज्ञान से भिन्न नही है। हम इस मांगलिक दिन की श्रीव्यासपूजा तिथि के रूप मे आराधना करते है क्योकि आचार्य वेद, पुराण, श्रीमद्भगवद्गीता, महाभारत एव श्रीमद्भागवत इत्यादि के दिव्य रचयिता श्रीव्यासदेव के जीवन्त प्रतिनिधि है।

जो व्यक्ति दिव्य अर्थात् ब्रह्म, का अपनी अपूर्ण इन्द्रिय प्रतीति के द्वारा अर्थ का अनर्थ अर्थात् असद्-व्याख्या करता है वह वास्तविक गुरु नही हो सकता। कारण प्रामाणिक आचार्य के अधीन उचित शिक्षा-दीक्षा विधि-विधानो के प्रशिक्षण के अभाव मे असद् व्याख्याकार निश्चय ही श्रीव्यासदेव से मतभेद रखता है (जैसा कि मायावादी लोग करते है)। श्रील व्यासदेव वैदिक प्रकाश के प्रधान अधिकारी (महाजन) है, इसलिए असद् व्याख्याकार को गुरु या आचार्य के रूप मे नही स्वीकार किया जा सकता। अतएव भले ही चाहे उस व्यक्ति मे भौतिक ज्ञान प्राप्त करने की पूरी योग्यताएँ वर्तमान हो। जैसे कि पद्म पुराण मे कहा गया है :

सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते निष्फला मता

"जब तक आप गुरु-परम्परा के एक प्रामाणिक गुरु के द्वारा मन्त्र-दीक्षा प्राप्त नही करते तब तक प्राप्त किया गया मन्त्र निष्फल रहता है।"

दूसरी ओर, इस गुरु-परम्परा मे आने वाले प्रामाणिक गुरु से श्रवण-विधि के द्वारा जिस व्यक्ति ने दिव्य ज्ञान प्राप्त किया है और जिसके हृदय मे वास्तविक

सकता है, न वायु सुखा सकती है और न ही शस्त्र उसका वध कर सकते है। वह अजन्मा और नित्य है। इसको श्रीमद्भागवत मे सिद्ध किया गया है [१० ८४. १३]:

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके
स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचि-
ज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः॥

"जो मनुष्य तीन धातु (कफ, पित्त और वायु) से बने इस शरीर को आत्मा मानता है, जिसकी स्त्री-पुरुष-पुत्र से घनिष्ठ शारीरिक सम्बन्ध रखने मे प्रीति रहती है, जो अपने को पूज्यनीय समझता है और जो तीर्थो के जल को स्वीकार करता है, परन्तु वहाँ वास करने वाले सन्तो का लाभ नही उठाता उस मनुष्य को भ्रम मे माना जाता है एव वह एक गौ अथवा खर से श्रेष्ठ नही है।"

दुर्भाग्यवश, अपनी वास्तविक सुविधाओ की उपेक्षा और इस भौतिक पिंजड़े को अपना 'स्वरूप', मानने के द्वारा इन दिनो हम सभी लोग मूर्ख बन गए है। हमने अपनी सम्पूर्ण शक्तियाँ भौतिक पिंजडे के निरर्थक निर्वाह मे केन्द्रित कर रखी है। हमारे द्वारा पिजडे मे भीतर रहने वाली आत्मा की पूर्ण रूप से उपेक्षा कर दी गई है। पिजड़ा पक्षी को मुक्त करने के लिए बनाया गया है—पक्षी पिंजडे के कल्याण के लिए नही। अतएव हम सब इस पर गहन चिन्तन करे। अभी हमारे समस्त कार्य-कलाप इस पिंजडे का निर्वाह करने मे सलग्न है और अधिक से अधिक हम यही करते है कि कला एव साहित्य के द्वारा मन को कुछ भोजन देने का प्रयत्न करते है। परन्तु हमे यह ज्ञात नही है कि यह मन भी सूक्ष्म रूप से प्राकृत ही है। इसे गीता मे कहा गया है [७ ४]

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

"पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार यह आठ प्रकार से विभाजित तत्त्व मेरी भिन्ना (भौतिक) प्रकृति है।"

हमने कदाचित् ही आत्मा को कभी किसी प्रकार का भोजन देने का प्रयत्न किया है। आत्मा, शरीर और मन से भिन्न है। अत. हम सब यथार्थ रूप मे आत्महत्या कर रहे है। श्रील आचार्यदेव का सन्देश हमको सचेत करता है कि जिससे हम इन गलत कार्य-कलापो का अन्त कर सके। हम पर उन्होने जो विशुद्ध करुणा एव कृपा की वर्षा की है उसके लिए हम उनके चरणकमल की वन्दना करे।

उपस्थित भक्त वृन्द, एक पल के लिए भी यह विचार मत कीजिए कि मेरे गुरुदेव आधुनिक सभ्यता पर पूर्ण अंकुश लगा देना चाहते है। यह असम्भव चमत्कार है। परन्तु घटिया सौदे का सर्वोच्च उपयोग करने की कला की शिक्षा हम

सभी व्यक्तियो को करुणावश प्रसारित किया जा रहा है।

उपस्थित भक्त वृन्द, हम सभी को थोडे या अधिक रूप मे अपनी भूतपूर्व भारतीय सभ्यता पर गर्व है, परन्तु हम वास्तव मे उस सभ्यता का यथार्थ स्वरूप जानते ही नही। हम अपनी भूतपूर्व भौतिक सभ्यता पर गर्व नही कर सकते, जो कि वर्त्तमान मे पहले की तुलना से हजारो गुणा उन्नत है। ऐसा कहा जाता है कि हम अन्धकार के युग (कलियुग) को पार कर रहे है। यह अन्धकार क्या है ? यह अन्धकार भौतिक ज्ञान मे पिछडेपन के कारण नही हो सकता, क्योकि भूतकाल की तुलना मे अब हमारे पास कही अधिक सुविधाएँ है। यदि हमारे पास वे भौतिक सुविधाएँ न हो तो भी हमारे पडोसियो के पास तो किसी न किसी प्रकार से वे प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है ही। अतएव हमे यह निष्कर्ष अवश्य निकालना चाहिए कि वर्त्तमान युग का यह अन्धकार भौतिक विकास के अभाव के कारण नही, वरन् हमारे आध्यात्मिक विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाने से है। आध्यात्मिक विकास करना ही मानव जीवन की प्राथमिक आवश्यकता है और सर्वोच्च प्रकार की मानव सभ्यता का मापदण्ड भी है। वायुयानो से बम वर्षा करना किसी भी रूप मे सभ्यता का विकास नही है क्योकि प्राचीन युग (आदिम काल) मे भी पर्वतो से शत्रुओ के सिर पर बड़े-बडे पत्थरो को फेकने की असभ्य प्रथा थी। मशीन गन और विषैली गैसो के द्वारा अपने पड़ोसियो की हत्या करने की कला मे प्रगति, निश्चय ही भूतकाल मे होने वाली बर्बरता की तुलना मे कोई विकास नही है। वह भूतकाल जिसे धनुष और बाणो के द्वारा हत्या करने की कला के कारण, अपने पर गर्व रहा करता था। न ही स्नेह से रहित स्वार्थ की भावना का विकास किसी प्रकार से बौद्धिक पशुता से श्रेष्ठ सिद्ध होता है। सच्ची मानना सभ्यता इन सब अवस्थाओ से अत्यन्त भिन्न है, अतएव कठोपनिषद् मे एक सुस्पष्ट आह्वाहन है [१. ३ १४].

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति॥

"जाग्रत हो जाओ और उस वरदान को समझने का प्रयत्न करो जो तुम्हे इस मनुष्य योनि मे ही प्राप्त हुआ है। आध्यात्मिक-साक्षात्कार का मार्ग अत्यधिक कठिन है. यह कृपाण की धार है। यह विद्वान् अध्यात्मवादियो का मत है।"

इस प्रकार जब कि अन्य लोग ऐतिहासिक विस्मृति के गर्भ मे थे उस समय भारत के ऋषियो ने एक विभिन्न प्रकार की सभ्यता का विकास कर लिया था, वह सभ्यता जो उन्हे आत्म-ज्ञान प्रदान करने मे समर्थ थी। उनको यह पता चल गया था कि हम भौतिक जीवन नही, परन्तु हम सब श्रीभगवान् के चिन्मय, शाश्वत और अविनाशी दास है। परन्तु हमने अपने निर्णय के विपरीत, इस वर्त्तमान

भौतिक अस्तित्व को ही पूर्ण रूप से अपना स्वरूप मानने का चयन किया है, अतः हमारे कष्ट भी कई गुणा बढ गए है। यह वृद्धि जन्म और मृत्यु के निर्दयी नियम तथा उस नियम के फलस्वरूप व्याधि तथा उत्सुकताओ के अनुसार ही हुई है। यह कष्ट किसी भी प्रकार की भौतिक सुख-सुविधाओ के द्वारा वास्तव मे कम नही किए जा सकते है, क्योकि जड पदार्थ और आत्मा यह दोनो पूर्ण रूप से भिन्न तत्त्व है। यह ठीक उसी प्रकार है, जैसे यदि आप एक जलचर प्राणी को जल से बाहर निकाल कर भूमि पर रख दे। पृथ्वी पर प्राप्य सब प्रकार की सुख-सुविधाएँ भी उसको दे दे, फिर भी उस जलचर प्राणी को घातक कष्टो से तब तक किंचित्मात्र भी मुक्ति प्राप्त न हो सकेगी, जब तक कि उसे विजातीय (विदेशी) वातावरण से बाहर न निकाल लिया जाय। आत्मा और पदार्थ पूर्ण रूप से परस्पर विरोधी वस्तुएँ है। हम सभी चिन्मय प्राणी है। हम भले ही चाहे सासारिक वस्तुओ के कार्य-कलापो मे कितना ही हस्तक्षेप क्यो न करे, किन्तु हमे पूर्ण सुख की प्राप्ति नही हो सकती, वह सुख जो कि हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है। पूर्ण सुख हमे केवल तभी प्राप्त हो सकता है जब हम आध्यात्मिक अस्तित्व की अपनी स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त कर ले। यह हमारी प्राचीन भारतीय सभ्यता का विशिष्ट सन्देश है, यह गीता का सन्देश है, यह वेदो और पुराणो का सन्देश है और भगवान् श्रीचैतन्यदेव की परम्परा मे आने वाले हमारे वर्त्तमान आचार्यदेव सहित सभी यथार्थ आचार्यों का भी यही सन्देश है।

उपस्थित भक्त वृन्द, हम अपने आचार्यदेव की ही कृपा के द्वारा अपूर्ण रूप मे ही सही उनके दिव्य सन्देश को समझने मे कुछ समर्थ हुए है। हमे यह अवश्य स्वीकार करना चाहिए कि हमने यह निश्चय ही साक्षात्कार कर लिया है कि हमारे आचार्यदेव ॐ विष्णुपाद परमहस श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज के पावन मुखारविन्द से निकलने वाला दिव्य सन्देश पीडित मानवता के लिए एक शान्तिदायक वस्तु है। हम सबको धैर्यपूर्वक उनसे श्रवण करना चाहिए। यदि हम बिना किसी अनावश्यक विरोध के उस अप्राकृत शब्द-ध्वनि का श्रवण करे, तो श्रील आचार्यदेव निश्चय ही हम सब पर कृपा करेंगे। आचार्य का सन्देश हमे अपने मूल गृह, भगवान् के धाम में ले जाने के लिए है। अतएव, मै कहता हूँ कि हम धैर्यपूर्वक उनसे श्रवण करे, श्रद्धा और विश्वास के साथ उनकी आज्ञा का पालन करें और उनके चरणारविन्द मे प्रणाम करे। ऐसा करने के द्वारा हम श्रीभगवान् तथा प्राणियो की सेवा करने की अपनीं वर्त्तमान अकारण अनिच्छा से मुक्त हो जाएँगे। श्रीमद्भगवद्गीता से हमे शिक्षा प्राप्त होती है कि देह का नाश हो जाने पर भी आत्मा नष्ट नही होती : वह अपरिवर्तनशील, सदा नवीन और स्फूर्तिमय बनी रहती है। आत्मा को न अग्नि जला सकती है, न जल गीला कर

आचार्य के प्रति सम्मान की भावना है उसको अवश्य ही वैदिक ज्ञान का प्रकाश प्राप्त हो जाता है। परन्तु यह प्रकाश, ज्ञानियो के शुष्क ज्ञानमार्ग की पहुँच से स्थायी रूप से बाहर है। जैसे कि श्वेताश्वतर उपनिषद् मे आता है [६. २३] :

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता हि अर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

"केवल उन महात्माओ के लिए ही जिनका भगवान् और गुरु महाराज दोनो में अचल विश्वास है, उनके समक्ष वैदिक ज्ञान के समस्त अर्थ स्वतः ही प्रकाशित हो जाते है।"

उपस्थित भक्त वृन्द, हमारा ज्ञान इतना अल्प है, हमारी इन्द्रियाँ इतनी अपूर्ण है और हमारे स्रोत इतने सीमित है कि श्रीव्यासदेव या उनके प्रामाणिक प्रतिनिधि के चरण कमलो मे शरणागत हुए बिना यह सम्भव ही नही है कि हमें उस परम धाम के विषय मे किंचित्मात्र भी ज्ञान प्राप्त हो सके। यह सब केवल मन की सृष्टि या कुचक्र है, वह मन जो सदा ही कपटी, परिवर्तनशील और चचल है। हम अपनी सीमित, विकृत अवलोकन तथा प्रयोग की विधि से प्राकृत धाम के विषय मे कुछ भी नही जान सकते। परन्तु गुरुदेव अथवा व्यासदेव के विशुद्ध माध्यम के द्वारा उस धाम से प्रसारित दिव्य-शब्द-ध्वनि का श्रवण करने के लिए हममे से सभी अपनी उत्सुक कर्णेन्द्रियाँ प्रस्तुत कर सकते है। अतएव, उपस्थित भक्त वृन्द, हमारी विनम्रता से शून्य मनोवृत्ति से उत्पन्न समस्त भेद-भावो के उन्मूलन के लिए, श्रीव्यासदेव के प्रतिनिधि के चरणकमल मे आज हम सब स्वयं को समर्पण करे, इसी भाव को श्रीगीता मे कहा गया है [४ ३४] .

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

"बुद्धिमान् एव प्रामाणिक गुरुदेव का आश्रय ग्रहण करो। सर्वप्रथम उनके शरणागत बनो और जिज्ञासा तथा सेवा के द्वारा उनको समझने का प्रयत्न करो। ऐसे बुद्धिमान् गुरु महाराज तुम्हे इन्द्रियातीत (दिव्य) ज्ञान का प्रकाश देंगे, क्योंकि वे पूर्व मे ही परम सत्य भगवान् को जान चुके है।"

दिव्य ज्ञान को प्राप्त करने के लिए हम प्रबल जिज्ञासा और सेवा की भावना के साथ वास्तविक आचार्य के प्रति अवश्य ही पूर्ण रूप से शरणागत हो। आचार्य के निर्देशन मे भगवान् की सेवा का वास्तविक साधन ही केवल वह वाहन है जिसके द्वारा हम दिव्य ज्ञान हृदयगम कर सकते है। श्रील आचार्यदेव के चरणकमलो में हमारी विनम्र सेवा एव श्रद्धाजलि अर्पण करने के उद्देश्य से आयोजित आज की इस सभा के द्वारा हम उस दिव्य ज्ञान को हृदयगम करने की क्षमता प्राप्त करने में समर्थ हो सकेंगे। जिस ज्ञान को श्रील आचार्यदेव के द्वारा बिना किसी भेद भाव के

श्रील आचार्यदेव से प्राप्त करे। साथ ही हम मानव जीवन के महत्व को भी समझे, यह जीवन यथार्थ चेतना के चरम विकास के योग्य है। इस मनुष्य जीवन के सर्वोत्तम उपयोग की उपेक्षा नही की जानी चाहिए। जैसे कि श्रीमद्भागवत मे आता है [११ ९. २९] :

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यू याव-
न्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात्॥

"यह मनुष्य शरीर अनेकानेक जन्मो के पश्चात् प्राप्त होता है और यद्यपि यह अनित्य ही है, यद्यपि यह परम पुरुषार्थ (लाभ) की प्राप्ति करा सकता है। अतएव एक शान्त एव बुद्धिमान् पुरुष को तत्काल ही जीवन का लक्ष्य पूर्ण करने का प्रयत्न करना चाहिए और अगली मृत्यु आने के पूर्व जीवन के परम पुरुषार्थ की प्राप्ति कर लेनी चाहिए। उसे इन्द्रियतृप्ति (विषय-भोग) से बचना चाहिए, क्योकि वह तो सभी अवस्था (योनियो) मे प्राप्त हो सकते है।"

हम सासारिक विषय भोग की व्यर्थ खोज मे ही इस मनुष्य जीवन का दुरुपयोग न करे। दूसरे शब्दो मे आहार, निद्रा, भय (आत्म-रक्षा), और मैथुन जैसे कार्यो के लिए ही जीवित न रहे। आचार्यदेव का सन्देश श्रील रूप गोस्वामी के शब्दो द्वारा व्यक्त हुआ है। [श्रीभक्तिरसामृतसिधु १ २. २५५, २५६] ·

अनासक्तस्य विषयान् यथार्हमुपयुंजतः।
निर्बन्ध. कृष्णसम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते॥
प्रापञ्चिकतया बुद्धया हरिसम्बन्धिवस्तुनः।
मुमुक्षुभि परित्यागो वैराग्य फल्गु कथ्यते॥

"उस मनुष्य को पूर्ण रूप से वैराग्यमय जीवन मे स्थिर कहा जाता है जो श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति के अनुसार जीवन निर्वाह करता है। उसे इन्द्रियतृप्ति के विषयो से अनासक्त रहना चाहिए और शरीर के निर्वाह के लिए जो आवश्यक है उसको स्वीकार करना चाहिए। दूसरी ओर जो श्रीकृष्ण की सेवा मे उपयोग हो सकने वाली वस्तुओ को, भौतिक मान कर त्याग देता है, उसका वैराग्य पूर्ण नही है।"

इन श्लोको के तात्पर्य को केवल तभी आत्मसात किया जा सकता है। जब हम अपने जीवन के पशु-अंश को नही वरन् विवेकी अंश का पूर्ण रूप से विकास करे। श्रील आचार्यदेव के चरणकमल मे बैठ कर, ज्ञान के इन अप्राकृत स्रोत के द्वारा हम यह समझने का प्रयास करे कि हम क्या है, यह जगत् क्या है, श्रीभगवान् क्या है और हमारा भगवान् के साथ क्या सम्बन्ध है। भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु

का सन्देश जीवन्त (वैकुण्ठ) जगत् का सन्देश है और वह सन्देश जीवधारियो के लिए है। भगवान् श्रीचैतन्यदेव ने स्वयं इस मृत जगत् के उन्नति की चिन्ता नही की। इस जगत् का मृत्यु लोक नाम उपयुक्त ही है। जिसका अर्थ है वह जगत् जहाँ प्रत्येक वस्तु की मृत्यु अवश्यम्भावी है। साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व श्रीचैतन्य महाप्रभु उस अप्राकृत जगत् के विषय मे कुछ जानकारी देने, हमारे समक्ष प्रगट हुए जहाँ प्रत्येक वस्तु स्थायी है और प्रत्येक वस्तु भगवान् की सेवा के लिए है। परन्तु कुछ ही समय पूर्व तो भगवान् श्रीचैतन्य का कुछ विवेक-शून्य व्यक्तियो के द्वारा असगत रूप में प्रतिनिधित्व किया गया है। और भगवान् के द्वारा प्रतिपादित उच्चतम दर्शन की निम्नतम प्रकार के समाज के सस्कृति के रूप मे असद् व्याख्या की गई है। आज रात्रि हमे यह घोषणा करते हुए हर्ष होता है कि हमारे आचार्यदेव ने, अपनी स्वाभाविक दयावश हम सबकी इस प्रकार के भयकर पतन से रक्षा की है। अतएव हम सम्पूर्ण विनम्रता के साथ हम उनके चरणकमल की वन्दना करते है।

उपस्थित भक्त वृन्द, आजकल के सभ्य (अथवा असभ्य) समाज मे यह सिद्ध करने का उन्माद छाया हुआ है कि भगवान् केवल निराकार है। यह दावा करने के द्वारा कि भगवान् की इन्द्रियाँ नही है स्वरूप नही है, कर्म नही है, मस्तक नही है, चरण नही है, उनका कोई आनन्दास्वादन नही है—लोग भगवान् को निरर्थक बनाने के लिए व्याकुल हो रहे है। आधुनिक विद्वानो के लिए भी ऐसी मूर्खतापूर्ण घोषणा करना तो एक हर्ष का विषय रहा है, इसका कारण उनके लिए उचित निर्देशन और वैकुण्ठ धाम के यथार्थ दृष्टि का पूर्ण अभाव है। इन सभी ज्ञानियो की विचारधारा एक ही है, समस्त भोग्य वस्तुओ पर मानव समाज अथवा एक विशिष्ट वर्ग का ही केवल एकाधिकार होना चाहिए और निराकार भगवान् को उनके निराले चमत्कारो को पूर्ण करने वाला एक आज्ञाकारी सेवक होना चाहिए। हम सुखी है कि गौरकरुणाशक्ति श्रीविग्रह परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री श्रीमद् भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज की करुणा के द्वारा हम इस भयकर प्रकार की व्याधि से मुक्त कर दिए गए है। वे हमारे नेत्र-उन्मीलक हमारे शाश्वत पिता, हमारे शाश्वत गुरु एवं हमारे शाश्वत निर्देशक है। अतएव इस मंगलमय दिवस पर हम उनके चरणारविन्द की वन्दना करे।

उपस्थित भक्त वृन्द, यद्यपि हम परतत्व के ज्ञान के सम्बन्ध मे अज्ञानी शिशु के सदृश है तथापि गौरकरुणाशक्ति श्री विग्रह मेरे गुरुदेव ने शुष्क ज्ञान के अजेय अन्धकार को नष्ट करने के लिए हमारे भीतर एक लघु अग्नि प्रज्ज्वलित कर दी है। हम अब इतने सुरक्षित स्थान पर है कि ज्ञान मार्ग के दार्शनिक तर्कों का कितना ही अपार भण्डार, गौरकरुणाशक्तिश्रीविग्रह के चरणकमल मे हमारी शाश्वत निर्भरता की स्थिति से हमको एक सूत भी विचलित नही कर सकता। इतना ही

नही, हम मायावाद के सर्वाधिक प्रकाण्ड विद्वानो को भी चुनौती देने के लिए और यह सिद्ध करने के लिए तैयार है कि श्रीभगवान् और गोलोक मे उनकी अप्राकृत लीलाएँ (क्रीडाएँ) ही वेदो की परमोत्कृष्ट जानकारी है। इस तत्त्व का छान्दोग्य उपनिषद् .[८ १३ ३१] मे सुस्पष्ट सकेत है-श्यामाच्छवलं प्रपद्ये शवलाच्छ्यामं प्रपद्ये "श्रीकृष्ण की कृपा प्राप्त करने के लिए,मै उनकी शक्ति (राधा)के शरणागत होता हूँ, और उनकी शक्ति की कृपा प्राप्त करने के लिए,मै श्रीकृष्ण के शरणागत होता हूँ।"

† तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुर आततं विष्णोर्यत्परमं पदम्॥

"भगवान् श्रीविष्णु के चरणारविन्द समस्त देवताओ के परम लक्ष्य है। भगवान् के ये चरणारविन्द आकाश मे स्थित सूर्य के सदृश प्रकाशवान् है।"

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता मे इतना सुस्पष्ट ढग से वर्णन किया गया परम सत्य, वेदो की भी प्रधान शिक्षा है। उसे परम सत्य की, ज्ञान मार्ग के सर्वाधिक शक्तिशाली विद्वानो के द्वारा समझने की बात तो वहुत दूर है, उसका उन्हे आभास तक भी नही हो पाता। तो श्रीव्यास पूजा का यह रहस्य है। जब हम परम सत्य भगवान् की अप्राकृत लीलाओ का ध्यान करते है तो गर्व का अनुभव करते है कि हम भगवान् के नित्य दास हैं। और हम आनन्द-विभोर हो उठते हैं तथा हर्ष के कारण नृत्य करने लग जाते है। मेरे दिव्य प्रभु गुरुदेव की जय हो, क्योकि उन्होने अपनी अनवरत दया के कारण ही हमारे भीतर शाश्वत अस्तित्व के ऐसे तीव्र अभियान को उद्वेलित कर दिया है। हम उनके चरणारविन्द की वन्दना करते है।

उपस्थित भक्त वृन्द, यदि हमे इस घोर सासारिक भ्रम की दासता से मुक्त कराने हेतु यदि श्रील आचार्यदेव हमारे समक्ष प्रगट नही होते तो निश्चय ही हमे असहाय दासता स्थिति के इस अन्धकार मे जन्म-जन्मान्तर तक रहना ही था। यदि वे हमारे समक्ष प्रगट नही होते तो हम भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु के परमोत्कृष्ट शिक्षामृत के शाश्वत सत्य को समझने मे समर्थ न हो पाते। यदि वे हमारे समक्ष प्रगट नही होते तो हम ब्रह्म सहिता के इस प्रथम श्लोक की सार्थकता को समझने के योग्य नही हो सकते थे :

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रह।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥

"श्रीकृष्ण जिनको श्रीगोविन्द कहा जाता है, परम ईश्वर है। उनका श्रीविग्रह (शरीर) सच्चिदानन्द है। वे सबके आदि है। श्रीकृष्ण का कोई आदि नही है। वे अनादि है और वे समस्त कारणो के प्रधान कारण है।"

व्यक्तिगत रूप से मुझे कोई आशा नही है कि करोड़ो जन्म में भी मै अपने गुरुदेव की कोई प्रत्यक्ष सेवा कर सकूँगा, परन्तु इतना मुझे सुदृढ विश्वास अवश्य है

---

† ऋग्वेद [१ २ २२ २०] मे भी है ·

कि किसी न किसी दिन माया के पंक से मेरी मुक्ति हो जाएगी, जिसमे मैं वर्त्तमान में इतने गहन रूप से ग्रसित हूँ। अतएव मैं अपनी सम्पूर्ण गम्भीरता के साथ अपने दिव्य प्रभु गुरुदेव के चरणकमल में विनती करता हूँ कि मेरे पूर्व के दुष्कर्मो के कारण निर्धारित कष्टो को भोगने दिया जाए। परन्तु मुझमें यह अनुस्मरण करने की शक्ति बनी रहे कि सर्वशक्तिमान् परम सत्य श्रीभगवान् के एक क्षुद्र दास के अतिरिक्त मेरा अस्तित्व कुछ भी नही है और मुझे इस वास्तविकता का अनुभव मेरे दिव्य प्रभु, श्रील आचार्यदेव की अपार एवं अहैतुकी दया के माध्यम से हुआ है। अतएव, मेरी समस्त विनम्रता के साथ मै उनके चरणकमल की वन्दना करता हूँ।

इस्कॉन की भक्त योजना



दुर्लभ मानव जीवन का सार्थक उपयोग करना प्रत्येक नर या नारी का आदर्श होना चाहिए। योजना में भाग लेने के लिए प्रत्येक व्यक्ति आमंत्रित है, यदि वह निम्नलिखित विधि-निषेधों का पालन करता है

विधि

श्रद्धापूर्वक अधोलिखित हरे कृष्ण महामंत्र का जप तुलसी की १०८ मनकों वाली माला में प्रतिदिन १६ माला करे तथा गुरु-महाराज के निर्देशन में भक्तिमार्ग के अन्य विधि-विधानों का पालन करे।

महामंत्र

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।।

निषेध

१ नशा निषेध

चाय, कॉफी, तम्बाकू, गाँजा, भाँग, शराब एवं अन्य किसी प्रकार के नशीले द्रव्य का सेवन निषिद्ध।

२ अभक्ष्य भक्षण निषेध

मांस, मछली, अण्डा एवं प्याज, लहसुन जैसी तामसिक वस्तुओं का सेवन निषिद्ध।

३ परस्त्री गमन निषेध

विवाहित दाम्पत्य जीवन के अलावा अन्य सभी प्रकार के स्त्री/पुरुष का अवैध सम्पर्क निषिद्ध।

४ द्यूत निषेध

किसी भी प्रकार का जुआ, सट्टा आदि का खेलना निषिद्ध है।

उपयुक्त हरे कृष्ण महामंत्र युग का एकमात्र मंत्र है और श्रीमद्भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत मान्य शास्त्र हैं।

हमारे केन्द्रों के भगवद्भक्ति से पवित्र आध्यात्मिक वातावरण में नये भक्तों को प्रशिक्षित किया जायगा तथा योग्य भक्तों को भारत के बाहर [illegible] के प्रचारार्थ विदेशों में भी भेजे जाने की सम्भावना है।

विशेष विवरण के लिए इस्कॉन के किसी भी निकटस्थ केन्द्र से सम्पर्क करें अथवा भगवान [illegible] ([illegible]), [illegible] हरे कृष्ण धाम [illegible] से पत्र व्यवहार करें।

तीन

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का अवलोकन

भारत के सबसे महान् निराकारवादी द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण एवं भगवद्गीता पर ध्यान

श्रील प्रभुपाद निराकारवादी योगियो एव स्वामियो की भर्त्सना करते हैं। ऐसे योगी अथवा स्वामी, नवम् शताब्दी मे हुए आचार्य श्रीशकर के नामध्येय अनुयायी हैं। श्रीशकाराचार्य द्वारा, भगवद्गीता ध्यान पर प्रस्तुत की गई टीका मे श्रील प्रभुपाद कहते हैं, "बुद्धिमानो को जहाँ भय होता है, वहाँ मूर्ख नेता बनते हैं। जहाँ महत्तम निराकारवादी श्रीपाद शकर, भगवान् श्रीकृष्ण और उनके ग्रन्थ भगवद्गीता का यथोचित सम्मान करते हैं, वही मूर्ख कहते हैं कि हमे पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के साक्षात् शरणागत होने की आवश्यकता नही है।"

ॐ पार्थाय प्रतिबोधितां भगवतां नारायणेन स्वयम् ।
व्यासेन ग्रथितां पुराणमुनिना मध्ये महाभारतम् ।।
अद्वैतामृतवर्षिणीं भगवतीमष्टादशाध्यायिनी–
मम्ब त्वामनुसंदधामि भगवद्गीते भवद्वेषिणीम् ।।

हे भगवद्गीता, आप अपने अठारह अध्यायो के माध्यम से मनुष्य पर अमृत की एवं अद्वय सत्य (भगवान्) के ज्ञान की वर्षा कर रही है। हे आनन्दमयी गीता, आपके द्वारा स्वय भगवान् श्रीकृष्ण ने पार्थ (अर्जुन) को प्रकाश का दान किया। तदुपरान्त प्राचीन मुनि व्यासदेव ने आपको महाभारत में सम्मिलित किया। हे भगवती, हे माँ, मनुष्य के भवरोग (पुनर्जन्म) को नाश करने वाली इस मर्त्यलोक के अन्धकार मे, मै आपका ध्यान करता हूँ।

नमोस्तु व्यासविशालबुद्धे फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र।
येन त्वया भारततैलपूर्णः प्रज्ज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः ।।२।।

हे विशाल बुद्धि व्यास, आपको प्रणाम है आपके नेत्र कमल के पत्र के सदृश विशाल है। आपने महाभारत रूपी तेल का प्रयोग कर इस ज्ञान के इस द्वीप को और भी अधिक प्रज्ज्वलित कर दिया है।

तात्पर्य

श्रीपाद शंकराचार्य भौतिक (प्राकृत) दृष्टिकोण से एक निराकारवादी थे। परन्तु उन्होने सच्चिदानन्दविग्रह के नाम से सम्बोधित किए जाने वाले अप्राकृत स्वरूप को कदापि अस्वीकार नही किया अर्थात् ज्ञान का वह नित्य एवं आनन्दमय रूप जो इस भौतिक सृष्टि के पहले भी वर्त्तमान था। जब श्रीशंकर ने परम ब्रह्म को निराकार कहा तो उनका अर्थ था कि भगवान् के सच्चिदानन्द स्वरूप मे और साकारता की भौतिक धारणा के बीच कोई भ्रान्ति उत्पन्न न हो। गीता पर अपनी टीका के आरम्भ में ही वे समर्थन करते है कि परमेश्वर भगवान् श्रीनारायण इस प्राकृत सृष्टि के परे है। सृष्टि के पूर्व भी श्रीभगवान् दिव्य पुरुष के रूप मे वर्त्तमान थे और उनको प्राकृत रूपो से कोई प्रयोजन नही है। भगवान् श्रीकृष्ण वही परम ईश्वर है एवं भौतिक शरीर से उनका कोई सम्बन्ध नही है। वे अपने नित्य अप्राकृत स्वरूप में अवतरित होते है, परन्तु मूर्ख लोग उनके शरीर को हमारे शरीर के समान ही मान बैठते है। श्रीशंकराचार्य द्वारा निराकारवाद का प्रचार विशेषकर उन मूर्ख व्यक्तियों को शिक्षा देने के लिए है जो श्रीकृष्ण को पदार्थ से बना हुआ एक साधारण मनुष्य मानते है।

गीता के अध्ययन करने की कोई भी परवाह नही करता यदि वह एक साधारण भौतिक मनुष्य के द्वारा कही गई होती, और नि.सन्देह श्रीव्यासदेव उसे महाभारत के इतिहास मे रखने का व्यर्थ श्रम नही करते। ऊपर के श्लोको के अनुसार महाभारत प्राचीन विश्व का इतिहास है और व्यासदेव इस महान् महाकाव्य के लेखक हैं। श्रीमद्भगवद्गीता भगवान् श्रीकृष्ण के समान ही है, क्योंकि श्रीकृष्ण अद्वय भगवान् है, इसलिए श्रीकृष्ण मे और उनके शब्दो मे कोई भी अन्तर नही। श्रीमद्भगवद्गीता भी साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण के समान ही पूजनीय है, क्योकि दोनों ही अद्वय वस्तु हैं। जो भगवद्गीता का 'यथानुरूप' श्रवण करता है वह वास्तव में भगवान् के मुखारविन्द से निकले हुए शब्दो का प्रत्यक्ष श्रवण करता है। परन्तु अभागे व्यक्ति कहते है कि उन आधुनिक मनुष्यों के लिए गीता अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ है, जो अनुमान (अटकलबाजी) अथवा ध्यान के द्वारा भगवान् को ढूंढना चाहते है।

प्रपन्नपारिजाताय तोत्रवेत्रैकपाणये।
ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः ॥३॥

हे कृष्ण, आपको नमस्कार है, आप समुद्र से उत्पन्न लक्ष्मीजी और अपने शरणागत भक्तो के आश्रय है। आप अपने चरणकमल का आश्रय ग्रहण करने वाले भक्तों के लिए, नि.सन्देह कल्पवृक्ष है। आपके एक हाथ (हस्तकमल) में गउओं का संचालन करने के लिए वेत्र (छडी) है और दूसरा हस्तकमल ज्ञानमुद्रा में है, जो

अप्राकृत ज्ञान का सूचक है। हे परम ईश्वर भगवान्, आपको नमस्कार है, आप गीतामृत रूपी दूध के दोहनकर्त्ता है।

तात्पर्य

श्रीपाद शकराचार्य सुस्पष्ट रूप से कहते है, "अरे मूर्ख, केवल श्रीगोविन्द का और उस भगवद्गीता का भजन करो जो स्वय श्रीनारायण के द्वारा कही गई है, "इतना स्पष्ट कथन होने पर भी मूर्ख लोग अपने अनुसन्धान कार्य (खोज) मे लगे ही रहते हैं। फलस्वरूप वे दुखी है और अपना समय व्यर्थ ही नष्ट कर रहे हैं। श्रीनारायण कभी भी न दुखी है और न ही दरिद्र। उनकी तो पूजा धन एव सौभाग्य की देवी लक्ष्मीजी और सभी जीवो के द्वारा की जाती है। श्रीशकर ने अपने को 'ब्रह्म' के रूप में घोषित किया, परन्तु वे स्वीकार करते है कि श्रीनारायण या श्रीकृष्ण भगवान् है और वे भौतिक सृष्टि से परे है। वे परब्रह्म के रूप मे श्रीकृष्ण को प्रणाम करते है, क्योकि वे श्रीकृष्ण सभी के द्वारा पूजन करने योग्य हैं। केवल मूर्ख एव श्रीकृष्ण के शत्रु लोग ही यह नही समझ सकते कि भगवद्गीता क्या है (यद्यपि वे गीता पर टीका लिखा करते है)।ऐसे व्यक्ति कहते है हमे कृष्ण नामक व्यक्ति की नही वरन् कृष्ण के माध्यम से बोलने वाले उस अजन्मा, अनादि और शाश्वत तत्त्व की सर्वतोभावेन पूर्ण रूप से शरण लेनी है।" जहाँ देवता गण भी ठहरते है, वहाँ मूर्ख आगे भागा करते है। जहाँ बुद्धिमानो को भय होता है, वहाँ मूर्ख नेता बनते हैं। जहाँ महत्तम निराकारवादी श्रीपाद शंकर, भगवान् श्रीकृष्ण और उनके ग्रन्थ भगवद्गीता का यथोचित सम्मान करते है, वही मूर्ख कहते है, "हमें पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के साक्षात् शरणागत होने की कोई आवश्यकता नही है।" ज्ञान के प्रकाश से विहीन ऐसे व्यक्ति नही जानते कि भगवान् श्रीकृष्ण अद्वय (परम) है और उनके भीतर और बाहर मे कुछ भी अन्तर नही है। भीतर और बाहर मे अन्तर का अनुभव इस द्वैत अर्थात् भौतिक जगत् मे ही होता है। अद्वय (परम) जगत् मे इस प्रकार का कोई अन्तर नही है, क्योकि अद्वय भगवान् की प्रत्येक वस्तु अप्राकृत (सच्चिदानन्द) है। और भगवान् श्रीनारायण या भगवान् श्रीकृष्ण उसी अद्वय जगत् के है। अद्वय जगत् का व्यक्तित्व यथार्थ है और वहाँ शरीर एवं आत्मा मे कोई भी अन्तर नही है।

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥४॥

उपनिषद् गायो के समूह है, गोपालनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण उनके दोहनकर्त्ता है, अर्जुन वत्स है, इसी गीतारूपी अमृत दुग्ध का बुद्धिमान् मनुष्य पान करते है।

तात्पर्य

जब तक हम चिद्विलास (अप्राकृत विविधताओ) को नही समझते, तब तक

श्रीभगवान् की अप्राकृत दिव्य लीलाओ को भी हम नही समझ सकते है। ब्रह्म संहिता में आता है कि श्रीकृष्ण का नाम, रूप, गुण, लीला, परिकर और वैशिष्ट्य सभी **आनन्दचिन्मयरस** है। दूसरे शब्दो मे, सक्षेप मे कहा जा सकता है कि भगवान् के दिव्य संग मे स्थित प्रत्येक वस्तु ही सच्चिदानन्दमय है। भगवान् के नाम, रूप इत्यादि का कोई अन्त नही है, जबकि इस भौतिक जगत् (ससार) मे प्रत्येक वस्तु का अन्त होता है। जैसे कि भगवद्गीता में आया है, केवल मूर्ख मनुष्य ही भगवान् की हँसी उड़ाते है। यहाँ महत्तम निराकारवादी श्रीशकर, भगवान्, भगवान् की गौएँ और श्रीवासुदेव के पुत्र एव देवकीजी के परमानन्दरूप मे भगवान् की लीलाओ का पूजन करते है।

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम्।
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥५॥

हे कृष्ण, मैं आपकी वन्दना करता हूँ। आप श्रीवसुदेव के पुत्र, कंस एवं चाणूर जैसे राक्षसो के नाशक, माँ देवकी के परमानन्द तथा जगद्गुरु है।

तात्पर्य

श्रीशकर, श्रीवसुदेव और देवकी के पुत्र के रूप मे भगवान् का वर्णन करते है। तो क्या इसका अर्थ यह हुआ कि वे एक साधारण भौतिक मनुष्य का भजन कर रहे है? वे श्रीकृष्ण का भजन (पूजन) करते है, क्योकि वे जानते है कि श्रीकृष्ण के जन्म एवं कर्म सभी परम अस्वाभाविक (दिव्य) है। जैसे श्रीमद्भगवद्गीता मे आता है [४. ९]:

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

"हे अर्जुन, जो मेरे जन्म एव कर्म के दिव्य स्वभाव को तत्त्वतः जान लेता है, वह भौतिक देह तो त्याग कर पुन. ससार मे जन्म नही लेता वरन् मेरे सनातन धाम को प्राप्त करता है।"

भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म और कर्म रहस्यमय एव अप्राकृत (दिव्य) है और इसलिए केवल कृष्ण-भक्त ही उनको पूर्ण रूप से जान सकते है। श्रीशकर इतने अल्प बुद्धि के नही है कि वे श्रीकृष्ण को एक साधारण मनुष्य के रूप मे स्वीकार करते और साथ ही साथ भगवान् को देवकी और वसुदेव के पुत्र के रूप मे, सर्वप्रकार की भक्तिमय वन्दना भी करते। भगवद्गीता के अनुसार श्रीकृष्ण के दिव्य जन्म एव कर्मों को जानने मात्र से ही श्रीकृष्ण के समान अप्राकृत रूप को प्राप्त कर कोई भी व्यक्ति मुक्ति पा सकता है। पाँच प्रकार की मुक्तियाँ होती है। जो मनुष्य ब्रह्म ज्योति के नाम से ज्ञात, श्रीकृष्ण की अग-कान्ति मे लीन हो जाता है उसके आध्यात्मिक शरीर का पूर्ण रूप से विकास नही होता। परन्तु जो आध्यात्मिक

अस्तित्व का पूर्ण रूप से विकास कर लेता है वह वैकुण्ठ के विविध लोकों मे श्रीनारायण अथवा श्रीकृष्ण का एक पार्षद बन जाता है। जो भक्त श्रीनारायण के लोक मे प्रवेश करते है, उनके आध्यात्मिक स्वरूप का विकास एक श्रीनारायण के स्वरूप (चार-भुजाओ) के समान होता है। जो भक्त गण वृन्दावन नामक श्रीकृष्ण के परम धाम मे प्रवेश करते है उनका स्वरूप श्रीकृष्ण के समान ही दो भुजाओ वाला हो जाता है। शिवजी के अवतार के रूप मे श्रीपाद शकर इन सब आध्यात्मिक तत्त्वो को भली प्रकार से जानते है, परन्तु उन्होने अपने उन बौद्ध अनुयायियो के साथ इन तत्त्वो के रहस्य का उद्घाटन नही किया, क्योकि अनुयायियो के लिए वैकुण्ठ जगत् के विषय मे ज्ञान पाना असम्भव ही था। बुद्धदेव ने प्रचार किया था कि शून्य ही चरम लक्ष्य है, तब फिर उनके अनुयायी अप्राकृत विविधताओ को किस प्रकार समझ सकते थे; अत. श्रीशकराचार्य ने कहा, "ब्रह्म सत्यं जगत्मिथ्या" अर्थात् प्राकृत विविधताएँ (विलास) झूठी है, परन्तु अप्राकृत विविधताएँ (चिद्विलास) वास्तविकता है। पद्म पुराण में श्रीमहादेव ने स्वीकार किया है कि कलियुग मे उनको मायावाद का प्रचार करना पड़ा था जो कि श्रीबुद्ध के 'शून्य' दर्शन का ही एक दूसरा संस्करण है। उन्हे ऐसा श्रीभगवान् की आज्ञावश करना पडा और उसके पीछे विशेष कारण थे। किन्तु श्रीशकर ने, लोगो को श्रीकृष्ण भजन की सलाह देकर अपने वास्तविक भावो को प्रगट किया था। कारण, किसी भी शब्दचातुरी और व्याकरण से सम्बन्धित मनोधर्म के द्वारा हमारी रक्षा नही की जा सकती है। श्रीपाद शंकर आगे सलाह देते है :

भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते।
सम्प्राप्ते सन्निहिते काले, न हि न हि रक्षति डुकृञ्करणे।

"अरे बौद्धिक मूर्खो (मूढमति), केवल श्रीगोविन्द का भजन करो, केवल श्रीगोविन्द का भजन करो, केवल श्रीगोविन्द का भजन करो। तुम्हारा व्याकरण का ज्ञान एव शब्द चातुरी मृत्यु के समय तुम्हारी रक्षा नही कर पाएगी।"

भीष्मद्रोणतटा जयद्रथ जला गान्धारनीलोत्पला।
शल्यग्राहवती कृपेण वहनी कर्णेन वेलाकुला॥
अश्वत्थामविकर्णघोरमकरा दुर्योधनावर्तिनी।
सोत्तीर्णा खलु पाण्डवै रणनदी कैवर्तकः केशव.॥६॥

कुरुक्षेत्र के युद्ध की वह नदी जिसे पाण्डवो ने विजयपूर्वक पार किया, उस नदी के भीष्म और द्रोण दो मुख्य किनारे, जयद्रथ नदी का जल, गन्धार का राजा नीले रग की कमलिनी, शल्य ग्राह (शार्क), कृप नदी की धारा, कर्ण शक्तिशाली तरगे, अश्वत्थामा और विकर्ण भयकर मगर और दुर्योधन उस नदी की भँवर था। परन्तु हे केशव (श्रीकृष्ण), आप उस नदी को पार कराने वाली नौका के

कर्णधार थे ।

पाराशर्यवचः सरोजममलं गीतार्थगंधोत्कटं ।
नानाख्यानककेसरं हरिकथासम्बोधनाबोधितम् ॥
लोके सज्जनषट्पदैरहरहः पेपीयमानं मुदा ।
भूयाभ्दारतपंकजं कलिमलप्रध्वंसिननः श्रेयसे ॥७॥

उस नदी के जल मे श्रीव्यासदेव के वचनो का महाभारत रूपी कमल खिलता है। श्रीमद्भगवद्गीता उस कमल की अत्यधिक उत्कट मधुर सुगन्ध है और वीरों के नाना प्रकार के आख्यान पूर्ण विकसित कमल के पत्र है, जिनका भगवान् श्रीहरि की कथा के द्वारा पूर्ण रूप से विकास हुआ। यह कमल कलियुग के पापो का विध्वंस करने वाला है। हर्षमग्न अनेकानेक भ्रमरो के रूप मे अमृतपान के इच्छुक सज्जनों का दैनिक प्रकाश इस कमल पर पड़ता है। महाभारत रूपी यह कमल हम सब का परम कल्याण करे।

मूकं करोति वाचालं पंगुं लङ्घयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥८॥

परमानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण (श्रीमाधव) की मैं वन्दना करता हूँ, जिनकी कृपा से मूक वाचाल हो जाता है और पगु पर्वत को लाँघ जाता है—उन श्रीकृष्ण की मैं वन्दना करता हूँ।

तात्पर्य

मूर्ख मनोधर्मियो के मूर्ख अनुयायी परमानन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण की वन्दना के अर्थ को नही समझ सकते। श्रीशकराचार्य ने भगवान् श्रीकृष्ण को अपना प्रणाम अर्पित किया है। जिससे उनके कुछ अनुयायी, अपने महान् स्वामी शिवजी के अवतार श्रीशंकर के द्वारा स्थापित किए गए उदाहरण से, वास्तविकता को समझ सकें परन्तु श्रीपाद शकर के ही अनेक अनुयायी है जो कि भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम करना अस्वीकार करते है और उसके स्थान पर श्रीमद्भगवद्गीता में भौतिकतावाद को लाद कर भोले-भाले लोगो को मार्गभ्रष्ट किया करते है। इतना ही नही वे गीता पर अपनी टीकाओ के द्वारा निर्दोष पाठको को उलझा देते हैं, फलस्वरूप पाठको को यह सुअवसर कभी भी नही मिल पाता कि सब कारणो के कारण, भगवान् श्रीकृष्ण की वन्दना कर के वे कृतार्थ हो सके। मानवता पर यह सबसे भयंकर आघात है कि गीता के अर्थ को विकृत रूप में प्रस्तुत करने के द्वारा मानव जाति को कृष्ण-विज्ञान अर्थात् श्रीकृष्णभावनामृत के प्रति अन्धकार में रखा जाय।

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।

ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥ ९ ॥

उन परम प्रकाशवान को नमस्कार है जिनकी—सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी, वरुण, इन्द्र, रुद्र, मरुत एवं दिव्य व्यक्ति स्तुति के द्वारा यश-गान करते है। जिनका वेदो के श्लोको द्वारा यश गान किया जाता है, सामवेद के गायक जिनका गान करते है और उपनिषद् अपनी पूर्ण गायक मण्डलियो के साथ जिनकी महिमा की घोषणा करते है, पूर्ण ध्यान में मग्न योगी लोग मन मे जिनका दर्शन करते है, समस्त सुर एवं असुरो का समूह जिनका अन्त नही पा सकता है, उन परम ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण को सर्वतोभावेन प्रणाम है—उनको हम नमस्कार करते हैं। उनको हम नमस्कार करते है। उनको हम नमस्कार करते है।

तात्पर्य

अपने इस ध्यान के इस नौवे श्लोक के गान के द्वारा जो कि श्रीमद्भागवत से उद्धृत है। श्रीशंकराचार्य ने संकेत किया है कि भगवान् श्रीकृष्ण सभी लोगों के लिए पूज्यनीय है जिनमें स्वयं श्रीशंकर भी सम्मिलित हैं। वे सांसारिक, निराकार-वादी, मनोधर्मी योगी, 'शून्य' दार्शनिक और भौतिक कष्टो के दण्ड के भागी सभी दूसरे मनुष्यो के सकेत देते है—भगवान् श्रीकृष्ण को केवल नमस्कार करो। वे भगवान् श्रीकृष्ण जिनकी ब्रह्मा, श्रीशिव, वरुण, इन्द्र और अन्य सभी देवता पूजन किया करते है। उन्होंने, किन्तु श्रीविष्णु के नाम का वर्णन नही किया है, क्योंकि श्रीविष्णु और श्रीकृष्ण अभिन्न है। वेद और उपनिषद् उस विधि को समझने के लिए बनाए गए है जिसके द्वारा हम भगवान् श्रीकृष्ण की शरण ले सके। योगी लोग उनको (श्रीकृष्ण को) ध्यान के द्वारा अपने भीतर देखने का प्रयत्न करते है। दूसरे शब्दो मे, उन सभी देवताओ और राक्षसों को जो यह नही जानते कि चरम लक्ष्य की अवधि कहाँ है, श्रीशकराचार्य शिक्षा देते है। वे असुरों और मूढो को विशेष उपदेश देते है कि उनके चरणचिह्नो का अनुसरण कर के वे लोग भगवान् श्रीकृष्ण और उनके वचनामृत श्रीमद्भगवद्गीता को नमस्कार करे। केवल इन कार्यो के द्वारा ही राक्षसो का लाभ होगा, अपने भोले-भाले अनुयायियो को नाम मात्र के मनोधर्म या दिखावटी ध्यान विधियो के मार्गभ्रष्ट करने से नही। श्रीपाद शंकर प्रत्यक्ष रूप से श्रीकृष्ण को नमस्कार करते है, उन मूर्खों को दर्शाने के लिए कि तुम जिस प्रकाश की खोज कर रहे हो, यहाँ है सूर्य के समान वह प्रखर प्रकाश।

परन्तु पतित असुर उलूक (उल्लू) के समान है जो प्रकाश के भय के कारण अपने नेत्र नही खोलेंगे। ये उलूक सदृश मनुष्य भगवान् श्रीकृष्ण और उनके वचनामृत भगवद्गीता के चरम प्रकाश के दर्शनार्थ अपने नेत्र कभी भी नही खोलेंगे,

श्रीकृष्णभावनामृत अभियान एक प्रामाणिक वैदिक मार्ग है।

११ १ १९७० को लॉस एञ्जिलस टाइम्स मे श्रीकृष्णभावनामृत अभियान पर प्रकाशित एक लेख का अध्ययन करने के पश्चात, श्रील प्रभुपाद, कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले के दर्शन एव दक्षिणी एशियन भाषाओ के प्राख्याता डॉ जे एफ स्टॉल के साथ एक असाधारण पत्र-व्यवहार आरम्भ करते हैं ।

लॉस एञ्जिलस टाइम्स के लेख से उद्धरण

"यू सी. बर्कले में दर्शन एव पौर्वात्य भाषाओ के प्राख्याता तथा भारतीय दर्शन के प्रशिक्षक, डॉ० जे० एफ० स्टाल विश्वास करते है कि कृष्ण-सम्प्रदाय एक प्रामाणिक भारतीय धर्म है और इसके अनुयायी निश्छल एवं गम्भीर है। उनके अनुसार सघ के सदस्यो मे तीव्र गति से वृद्धि का कारण आज के युवा-पीढी की एक् विशेष प्रवृत्ति है। वह प्रवृत्ति है, चर्च जाने की संयोजित विधि को अस्वीकार करना, परन्तु साथ ही साथ योग साधनाओ के प्रति विश्वास को पूर्ण करने के लिए खोज भी करते रहना।" वे इगित करते है, किन्तु ।इन व्यक्तियो ने क्रिश्चयन, मुस्लिम और यहूदी मत को छोड़ दिया है उनका उन धर्मो के साकार भगवान् के प्रति विश्वास प्रायः खो चुका है। ऐसे लोग परतत्त्व से रहित यौगिक धर्म की खोजकर रहे है।

"ये लोग हिन्दू मत की ओर मुड़े है परन्तु अचरज की बात है कि यह पन्थ परम साकारवाद का है, स्टाल ने कहा। वे एक साकार ईश्वर श्रीकृष्ण को स्वीकार करते है और यही बात क्रिश्चयन मत मे है। मै अनुभव करता हूँ कि उन लोगों ने अपनी क्रिश्चयन पृष्ठभूमि के कुछ विचारो को एक हिन्दू सम्प्रदाय मे परिवर्तित कर दिया है।"

"वे यह भी अनुभव करते है कि भक्त-गण दर्शन का विकास करने के लिए कीर्त्तन अथवा जप मे अत्यधिक समय व्यतीत करते है, इन आधारो पर उन्होंने

और—संकाय (विभाग) के अन्य सदस्यों ने श्रीकृष्णभावनामृत मे एक व्यवहारिक पाठ्यक्रम को अंक प्रदान करने की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया है। इस पाठ्यक्रम की शीत ऋतु के अध्ययन काल में सम्प्रदाय के वर्कले स्थित मन्दिर के अध्यक्ष हांस केरी (श्रद्धेय हंसदूत स्वामी) द्वारा शिक्षा दी जाएगी।

लॉस एञ्जिलस टाइम्स को लिखा गया श्रील प्रभुपाद का पत्र—

सम्पादक १४ जनवरी, १९७०
लॉस एञ्जिलस टाइम्स,

प्रिय महोदय,

मै ११-१-१९७० रविवार को लॉस एञ्जिलस टाइम्स मे, 'कृष्ण-कीर्त्तन' के शीर्षक से प्रकाशित लेख की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ कि हिन्दू धर्म भगवान् अर्थात् श्रीविष्णु के साकार धारणाओ पर पूर्ण रूप से आधारित है। भगवान् की निराकार धारणा एक उप विषय है अर्थात् श्री भगवान् के तीन पक्षो मे से एक है। अन्ततः परम सत्य भगवान् है, परमात्मा पक्ष की धारणा उनकी सर्वव्यापकता का एकदेशीय पक्ष है और निराकार धारणा भगवान् की महानता एवं नित्यता का पक्ष है।, परन्तु ये सब पक्ष मिल कर 'पूर्ण' का निर्माण करते है।

डॉ० जे० एफ० स्टाल का यह कथन सही नही है कि कृष्ण-भक्ति का मार्ग क्रिश्चयन और हिन्दू धर्मो का संयुक्त रूप है, (जैसे कि इस भक्ति-मार्ग की मनगढ़न्त रचना की गई हो) यदि क्रिश्चयन, मुस्लिम या बौद्ध धर्म साकार ईश्वर को स्वीकार करते है तो इसका स्वागत है, परन्तु कृष्ण-धर्म युग प्राचीन काल से साकार को स्वीकार करता रहा है कि जबकि क्रिश्चयन, मुस्लिम और बौद्ध धर्म (मत) अस्तित्व में ही नही आए थे। वैदिक धारणा के अनुसार साकार ईश्वर के द्वारा अपने नियमो के रूप मे धर्म का मौलिक निर्माण होता है। श्रीभगवान्, जो मनुष्यों से सदैव श्रेष्ठ है,के अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति के द्वारा धर्म की रचना नही की जा सकती। धर्म केवल भगवान् का ही नियम है।

दुर्भाग्यवश, इस देश मे मेरे से पूर्व आए सभी स्वामियो ने भगवान् के साकार पक्ष का पर्याप्त ज्ञान दिए बिना ही उनके निराकार पक्ष पर बल दिया। श्रीमद्भगवद्गीता मे, अतः कहा गया है कि केवल मन्द बुद्धि वाले मनुष्य ही भगवान् को मूल रूप मे निराकार मानते है और वे यह भी स्वीकार करते है कि जब वे अवतार लेते हैं, तो एक कल्पित रूप स्वीकार करते है। कृष्ण-भक्ति का दर्शन, वेदो की प्रामाणिकता पर आधारित है और वह यह है कि मौलिक रूप से परम सत्य

श्रीभगवान् है। उनके आंशिक प्रकाश का विस्तार भगवान् के एकदेशीय पक्ष के रूप मे सभी के हृदयो मे स्थित है और निराकार ब्रह्म ज्योति सभी स्थानो मे व्याप्त दिव्य प्रकाश और ताप है। श्रीमद्भगवद्गीता मे यह स्पष्ट कहा गया है कि परम सत्य की खोज करने के वैदिक मार्ग का लक्ष्य साकार ईश्वर को प्राप्त करना है। जो परम सत्य के दूसरे पक्ष अर्थात् परमात्मा अथवा ब्रह्म पक्ष से ही सन्तुष्ट हो जाते है, उन्हे अल्प बुद्धि का माना जाता है। कुछ ही दिन पूर्व हमने श्री ईशोपनिषद् पर भाष्य प्रकाशित किया है और इस लघु पुस्तिका मे हमने इस विषय पर विस्तार से से चर्चा की है।

जहाँ तक हिन्दू धर्म का सम्बन्ध है, भारतवर्ष मे लाखो कृष्ण-मन्दिर है है और एक भी हिन्दू ऐसा नही है जो श्रीकृष्ण का पूजन न करता हो। अतएव, यह श्रीकृष्णभावनामृत अभियान कोई मनगढ़न्त विचार नही है। हम समस्त विद्वानो, दार्शनिको, धर्म-तत्त्व-वेत्ताओ और जन साधारण को निमन्त्रण देते हैं कि वे विवेचनात्मक अध्ययन के द्वारा इस अभियान को समझे। और यदि कोई गम्भीरता-पूर्वक इसका अध्ययन करेगा तो वह इस महान् अभियान की उत्कृष्ट स्थिति को समझ जाएगा।

कीर्त्तन-विधि भी प्रामाणिक है। कृष्ण-नाम के निरन्तर कीर्त्तन के विषय मे प्रोफेसर स्टाल की विरक्ति की भावना निश्चय ही इस बात का प्रमाण है कि श्रीकृष्णभावनामृत के इस प्रामाणिक अभियान से सम्बन्धित ज्ञान का उनके पास अभाव है। श्रीमान् हसदूत के पाठ्यक्रम को अक प्रदान करने की प्रार्थना को अस्वीकार करने के स्थान पर उनको और कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले के अन्य सभी विद्वान प्राख्याताओ को इस प्रामाणिक अभियान की सत्यता को धैर्य-पूर्वक सुनना चाहिए। वर्त्तमान भगवद्विहीन समाज मे इस अभियान की परम-आवश्यकता है। (बाद मे इस पाठ्यक्रम के लिए अंक प्रदान कर दिए गए थे।) केवल यही एक ऐसा अभियान है जो भ्रान्त युवा पीढी की रक्षा कर सकता है। मैं इस देश के सभी उत्तरदायी सरक्षको को निमन्त्रण दूँगा कि वे इस अलौकिक आन्दोलन को समझे और तत्पश्चात् हमे यथा सम्भव सुविधाएँ प्रदान करे, जिससे सभी लोगो के कल्याण के लिए इस अभियान का प्रसार किया जा सके।

सधन्यवाद,

आपका,
अभयचरणारविन्द, भक्तिवेदान्त स्वामी,
हरे कृष्ण अभियान के गुरु महाराज

श्रील प्रभुपाद एवं डाक्टर स्टाल के मध्य पत्रों का आदान-प्रदान

स्वामी ए० सी० भक्तिवेदान्त

२३ जनवरी, १९७०

प्रिय स्वामीजी,

लॉस एन्जिलस टाइम्स को लिखे गए आपके पत्र की प्रतिलिपि मुझे भेजने के लिए धन्यवाद। वह पत्र अब डेली कैलीफोर्निया मे भी प्रकाशित हुआ है। मै सोचता हूँ कि आप मुझसे सहमत होगे कि साक्षात्कार (इन्टरव्यू) एव प्रेस को लिखे गए पत्रो के माध्यम से धार्मिक अथवा दार्शनिक विषयो पर चर्चा करने से विज्ञापन के अतिरिक्त और कोई विलेष लाभ नही होता। परन्तु फिर भी आप मुझे अपने दो विचारो को यहाँ सक्षेप मे प्रस्तुत करने की अनुमति दे।

प्रथम तो यह कि मैं जानता हूँ कि कृष्ण-भक्ति प्राचीन है। (यद्यपि, निश्चय ही इतनी पुरानी नही, जितने कि वेद) और वह कभी भी क्रिश्चयन, मुस्लिम या यहूदी धर्म से प्रभावित नही हुई। (मैने इस सम्बन्ध मे बौद्ध धर्म का कभी कोई सन्दर्भ नही दिया था।) सापेक्ष दृष्टिकोण से साकार और निराकारवाद मे अन्तर अस्पष्ट सा है, परन्तु सरलता की दृष्टि से इस अन्तर को स्वीकार करते हुए, मैने यह देख कर आश्चर्य प्रकट किया था कि जो लोग पाश्चात्य संस्कृति मे पले हुए है—वह संस्कृति जो कि साकार ईश्वर पर बल देती है वे एक ऐसे भारतीय पन्थ को ग्रहण कर रहे है जिसका प्रयोजन भी वही है। जब पाश्चात्य एकेश्वरवाद से असन्तुष्ट लोग एक ऐसे भारतीय दर्शन को ग्रहण कर ले जो परम सत्य के निराकार पक्ष पर बल देता हो, तो मुझे अधिक आश्चर्य नही होगा।

द्वितीय विचार यह है कि कृष्ण-नाम के कीर्तन पर मैने उद्विग्नता (विरक्ति) को कभी भी न तो व्यक्त किया और न ही उसका अनुभव किया है। मै इस पर उत्तेजित नही हुआ करता जैसा कि कुछ लोग हो जाते है, वरन् मै इसे पसन्द करता हूँ। परन्तु यह एक निर्विवाद तथ्य है कि भगवद्गीता (वेदो की तो बात ही दूर है) के इस प्रकार निरन्तर कीर्तन पाठ की आवश्यकता नही होती है। गीता मे पूर्ण रूप से भिन्न-भिन्न विषय वस्तुएँ है, जिनमे से कुछ को मैं भारतीय दर्शनो के अपने पाठ्यक्रमो मे सविस्तार स्थान देता हूँ।

सधन्यवाद,

आपका ही
जे० एफ० स्टाल
दर्शन एव दक्षिणी एशियाई भाषाओ के प्राख्याता,

३० जनवरी १९७०

जे० एफ० स्टाल,
प्राख्याता, दर्शन एव दक्षिणी एशियाई भाषाएँ,
कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय,
बर्कले, कैलीफोर्निया

प्रिय प्रोफेसर स्टाल :

मैं आपके २३ जनवरी, १९७० के कृपापत्र के लिए अनेकानेक धन्यवाद देता हूँ। अपने पत्र के अन्तिम परिच्छेद मे आपने वर्णन किया है कि आप हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्त्तन से उत्तेजित नही होते, जबकि कुछ लोग उत्तेजित हो जाते हैं, वरन् आप उसे पसन्द करते है। इससे मुझे अत्यन्त सन्तोष प्राप्त हुआ है और मै आपको अपनी पत्रिका भगवद्-दर्शन (बैक टू गॉडहेड) के अक २८ की एक प्रति भेज रहा हूँ। इसमे आप देखेगे कि विद्यार्थियो ने ओहिओ स्टेट विश्वविद्यालय के एक कार्यक्रम मे इस हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्त्तन को कितना पसन्द किया था, यद्यपि वे सभी विद्यार्थी इस कीर्त्तन के पन्थ मे नए थे। वास्तव मे यह नाम-सकीर्त्तन हृदय को अत्यधिक सुख देता है। और जन साधारण के हृदय मे आध्यात्मिक भावना अर्थात् श्रीकृष्णभावनामृत को जाग्रत कराने का सर्वोत्तम साधन है।

यह आध्यात्मिक साक्षात्कार की सर्वाधिक सरल विधि है और वेदो मे इसका अनुमोदन है। बृहन्नारदीय पुराण मे यह स्पष्ट कहा गया है कि केवल हरि (कृष्ण) का नाम ही लोगो को भौतिक अस्तित्व की समस्याओ से बचा सकता है और इसके अतिरिक्त इस कलियुग मे और कोई विकल्प (उपाय) नही है, कोई विकल्प नही है और कोई विकल्प नही है।

पाश्चात्य सस्कृति एकेश्वरवादी है, परन्तु पश्चिमी देशो के लोग भारतीय मनोधर्म निराकार पक्ष के द्वारा मार्ग-भ्रष्ट किए जाते है। पश्चिम का युवा वर्ग हतोत्साहित है, क्योकि उसे एकेश्वरवाद के विषय मे उद्यम के साथ शिक्षा नही दी जाती। वे शिक्षा देने और समझाने की इस विधि से सन्तुष्ट नही है। श्रीकृष्णभावनामृत अभियान उनके लिए एक वरदान है, क्योकि उनको प्रामाणिक वैदिक पद्धति के अन्तर्गत पाश्चात्य एकेश्वरवाद को समझने का वास्तव मे प्रशिक्षण दिया जाता है। हम केवल सैद्धान्तिक चर्चा ही नही करते, वरन् हम वैदिक नियमो की प्रक्रिया द्वारा शिक्षा भी ग्रहण करते है।

परन्तु मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि पत्र के अन्तिम परिच्छेद मे आपने कहा, "यह तो एक निर्विवाद तथ्य है कि भगवद्गीता (वेदो की बात तो दूर रही) के निरन्तर कीर्त्तन करने की आवश्यकता नही है।" मै सोचता हूँ कि आपने भगवद्गीता [९ १४] के निम्नलिखित श्लोक के अतिरिक्त और भी अनेक समानार्थी श्लोको को छोड दिया है :

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥

मोह से मुक्त एवं अपने भगवद्-साक्षात्कार मे सिद्ध महात्माओ के कार्य-कलाप यहाँ वर्णन किए गए है : **सततं कीर्तयन्तो मां**, वे सदा ही (सतत) मेरे यश का कीर्त्तन (कीर्तयन्त:) करते है तथा—नित्य युक्त उपासते—सदैव मेरी श्रीकृष्ण की उपासना करते रहते है।

तो मैं यह नही जानता कि आप इसे 'निर्विवाद' कैसे कह सकते है और यदि आप इस विषय पर वेदो से सन्दर्भ चाहे तो मै अनेकानेक सन्दर्भ दे सकता हूँ। वेदो मे प्रधान अप्राकृत शब्द ओकार भी श्रीकृष्ण है। प्रणव ओकार वेदो का दिव्य सार-तत्त्व है। वेदो का पालन करने का अर्थ है वैदिक ग्रन्थो का गान करना और कोई भी वैदिक मन्त्र ओकार के बिना पूर्ण नही है। माण्डुक्य उपनिषद् मे ओकार को परम-ईश्वर भगवान् का सर्वाधिक शुभ शब्द-प्रतिनिधि कहा गया है। इसे पुनः अथर्व वेद मे भी प्रमाणित किया गया है। ओकार परम ईश्वर भगवान् का शब्द ध्वनि प्रतिनिधि है और इसीलिए वेदों का प्रधान शब्द है। इस सम्बन्ध में परम ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण कहते है, **प्रणवः सर्ववेदेषु** "समस्त वैदिक मन्त्रो में मै ॐ अक्षर हूँ।" [गीता ७.८]

इतना ही नही, भगवद्गीता मे १५वे अध्याय के श्लोक १५ मे श्रीकृष्ण कहते है, "मैं प्रत्येक के हृदय मे स्थित हूँ। सभी वेदो के द्वारा मुझे ही जानना है. मैं वेदान्त का रचयिता हूँ और वेदो को यथार्थ जानने वाला मैं ही हूँ।" श्रीभगवान् सभी के हृदय मे स्थित है इसे मुण्डक और श्वेताश्वतर उपनिषद् दोनो मे ही वर्णन किया गया है, **द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया**...भगवान् और व्यक्तिगत जीवात्मा दोनों शरीर में इस प्रकार बैठे हुए है, जिस प्रकार कि दो मित्र पक्षी वृक्ष के ऊपर बैठे रहते है। एक पक्षी वृक्ष के फल अर्थात् सासारिक क्रियाओ के कर्मफल को भोग रहा है और दूसरा पक्षी अर्थात् परमात्मा साक्षी दे रहा है, केवल अवलोकन कर रहा है।

अतएव वेदान्तिक अध्ययन का लक्ष्य, परम ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण को समझना है भगवद्गीता के आठवे अध्याय के श्लोक १३ मे इस विषय पर बल दिया गया है, जहाँ कहा है कि योग विधि के द्वारा, अन्ततः पावन अक्षर ॐ का उच्चारण करते हुए मनुष्य श्रीभगवान् के परम धाम को प्राप्त करता है। वेदान्तसूत्रो मे, जिसका आप निश्चय ही अध्ययन कर चुके है, चौथे अध्याय अधिकरण चार सूत्र २२ मे निश्चय रूप से कहा गया है, **अनावृत्तिः शब्दात्**—"शब्द-ध्वनि के द्वारा मनुष्य मुक्त हो जाता है।" भक्ति के द्वारा, भगवान् के यथार्थ ज्ञान के द्वारा मनुष्य भगवान् के धाम मे जा सकता है और वह इस ससार मे कभी भी वापस नही लौटता। यह कैसे सम्भव है, उत्तर है, भगवन्नाम के निरन्तर कीर्त्तन के द्वारा।

इस तथ्य को आदर्श शिष्य अर्जुन के द्वारा स्वीकार किया गया है, जिन्होने योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण से अध्यात्म विज्ञान के निष्कर्ष को पूर्ण रूपेण सीखा। श्रीकृष्ण को परब्रह्म स्वीकार करते हुए अर्जुन उनका सम्बोधन करते है, **स्थाने हृषीकेश...**"जगत् आपका नाम सुन कर हर्षित हो उठता है और इस प्रकार सभी लोग आपमे अनुरक्त हो जाते है।" [गीता ११ ३६] यहाँ कीर्त्तन की विधि को परम सत्य (पर ब्रह्म) भगवान् से सम्पर्क स्थापित करने के प्रत्यक्ष साधन के रूप मे प्रामाणित किया गया है। केवल कृष्ण-नाम के कीर्त्तन के द्वारा आत्मा परम पुरुष श्रीकृष्ण के प्रति आर्कर्षित हो जाती है और फलस्वरूप वह अपने गृह, भगवान् के धाम में लौट सकती है।

नारद पंचरात्र मे कहा जाता है कि समस्त वैदिक अनुष्ठान मन्त्र और ज्ञान—**हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे**—इन आठ शब्दो मे सम्मिलित है। उसी प्रकार कलिसन्तरण उपनिषद् मे आता है कि यह सोलह शब्द—**हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे—हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे**—विशेष रूप से इस कलियुग के प्रभाव को निष्फल करने के लिए बनाए गए है। यह महा-मन्त्र कलियुग अर्थात् भौतिकवाद से पूर्ण युग के पतनोन्मुख और दोषयुक्त प्रभाव का प्रतिकार करने मे विशेष सहायक है।

यह सब विषय-वस्तु मेरे ग्रन्थ, "भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत" मे अत्यन्त विस्तार के साथ प्रस्तुत की गई है।

अतएव, कीर्त्तन की विधि न केवल जीवन की व्यवहारिक सिद्धि प्राप्त करने की सर्वोत्कृष्ट पद्धति है, वरन् एक प्रामाणिक वैदिक सिद्धान्त भी है। महानतम वैदिक विद्वान् एवं भक्त, भगवान् श्रीचैतन्य देव के द्वारा इस सिद्धान्त का उद्घाटन किया गया था। भगवान् श्रीचैतन्य को हम लोग श्रीकृष्ण का अवतार स्वीकार करते है। हम उनके प्रामाणिक चरणचिह्नो का केवल अनुसरण कर रहे है।

श्रीकृष्णभावनामृत अभियान का कार्यक्षेत्र विश्वव्यापी है। मौलिक अध्यात्मिक स्तर के सच्चिदानन्द जीवन को प्राप्त करने की हमारी विधि कपोल कल्पना अथवा शुष्क सिद्धान्त नही है। वेदो मे पारमार्थिक जीवन का वर्णन सैद्धान्तिक, शुष्क या निराकार रूप मे नही किया गया है। वेदो का लक्ष्य विशुद्ध भगवद्-प्रेम की प्राप्ति करना मात्र ही है। और इस सुसगत निष्कर्ष को व्यवहारिक अनुभूति श्रीकृष्णभावनामृत अभियान अर्थात हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्त्तन द्वारा हो जाती है। तो इस प्रकार क्योकि आध्यात्मिक साक्षात्कार का लक्ष्य केवल एक है और वह है भगवान् का प्रेम, अत. अप्राकृत विषय को समझने मे वेद एक व्यापक इकाई का कार्य करते है। प्रामाणिक वैदिक मार्ग के शिक्षार्थी के अतिरिक्त, विभिन्न दलो के केवल अपूर्ण विचार ही भगवद्गीता को खण्डित रूप देते है। वेदो

मे प्रस्तुत किये गए विविध प्रतीत होने वाले समस्त प्रस्तावो के मध्य समन्वय करने वाला समाधानात्मक तत्त्व, वेदो का सार अर्थात् श्रीकृष्णभावना (भगवतप्रेम) है।

आपको पुनः धन्यवाद देता हुआ,

आपका ही,
अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्तस्वामी

स्वामी ए. सी. भक्तिवेदान्त, ८ फरवरी, १९७०

प्रिय स्वामी जी,

आपके ३० जनवरी के दीर्घ एवं रुचिपूर्ण पत्र भेजने की दयालुता के लिये आपको अत्यन्त धन्यवाद, साथ भेजी गई (बैंक टू गॉडहेड) की प्रति मुझे प्राप्त हो गई है। अब तक यहाँ मैंने आपके सघ के सदस्यो के साथ कुछ चर्चाएँ की थी, परन्तु मेरे दृष्टिकोण से वे पूर्ण रूप से सन्तोषजनक नही रहीं। परन्तु अब मेरे पास आपका कही अधिक प्रामाणिक पत्र है, जिसके फलस्वरूप यह चर्चा उच्चतर स्तर पर आरम्भ होती है।

इतना होने के पश्चात् भी, मुझे भय है कि आपने मुझे प्रतीति नही कराई है कि वे सब शास्त्र, जो आपने उद्धृत किए है, वे केवल कृष्ण-नाम का कीर्त्तन ही निर्धारित करते है। मै उनमे से केवल सर्वाधिक महत्वपूर्ण शास्त्रो का सन्दर्भ देता हूँ।

भगवद्गीता [९ १४] मे **कीर्तयन्तः** का अर्थ कृष्ण-नाम का कीर्त्तन ही नही है। इसका अर्थ यश, कीर्त्तन, गान, चर्चा के साथ ही साथ गीत, श्लोक, वर्णन, अथवा वार्त्तालाप हो सकता है। टीकाकारो ने इस शब्द को इसी रूप मे लिया है। शकर अपनी टीका मे इस शब्द की केवल आवृत्ति भर करते है, परन्तु आनन्दगिरि ने अपनी व्याख्या मे 'कीर्त्तन' को वेदान्त-श्रवण प्रणव-जपश्च की वर्ण मे रखा है। इसका अर्थ हुआ, "वेदान्त का श्रवण करना और ॐ का जप करना।" (ॐ श्रीकृष्ण है यह भगवद्गीता मे कहा गया है, परन्तु वहाँ श्रीकृष्ण का और दूसरी वस्तुओ के रूप मे भी परिचय दिया गया है)। परन्तु गीता स्मृति है। ऐसा वेदो मे नही है, जो कि श्रुति माने जाते है। दूसरे टीकाकार, हनुमान अपने पैशाच भाष्य मे कहते है कि **'कीर्तयन्तः'** का अर्थ भाष्मान. अर्थात् "किसी विषय मे चर्चा करना है।"

मैं सोचता हूँ कि इस शब्द के वास्तविक अर्थ से अधिक महत्वपूर्ण यह है कि हमें सम्पूर्ण श्लोक के अनुसार सभी को सदा ही कीर्त्तन मे संलग्न रहना आवश्यक नहीं है। परन्तु यह श्लोक केवल यही कहता है कि कुछ महात्मा ऐसा करते है। यह अगले श्लोक मे और स्पष्ट हो जाता है, जो कहता है कि **अन्ये**, 'दूसरे' ज्ञानयज्ञेन मे सलग्न होते है...**यजन्तेमाम्** "मेरा पूजन करते है...ज्ञान के द्वारा।" 'भगवद्गीता' एक उदार ग्रन्थ है और वह विविध प्रकार के धार्मिक मार्गो के प्रति सहन शील है, यद्यपि वह एक पक्ष की तुलना में अन्य पक्ष पर अधिक बल देती है (अर्थात् सर्वफल त्याग)।

अन्तत., वेदान्तसूत्रो के अन्तिम सूत्र मे, **अनावृत्तिः शब्दात्** मे शब्द का अर्थ शास्त्र या वेदों के प्रकाश ज्ञान से है, जैसा कि सन्दर्भ एवं टीकाकारो के द्वारा स्पष्ट कर दिया गया है। शकर इसके समर्थन मे कई श्लोक उद्धृत करते है, जिसके अन्त मे, "इत्यादि शब्देभ्य" आता है। श्री शकर इस सूत्र मे शब्द का अर्थ **मन्त्रार्थ** वादादि. ."मन्त्र, वर्णन इत्यादि।" भी करते है। वाचस्पति मिश्र **भामति** में इसका समर्थन करते हैं, एवं इसके आगे एक विरोधी विचार को जोड कर और अधिक स्पष्ट करते है कि इसके विपरीत विचार-धारा **श्रुति-स्मृति-विरोधः** श्रुति और स्मृति से विरुद्ध है।" आपके दयापूर्ण ध्यान के लिए एक बार पुनः धन्यवाद देता हुआ।

आपका ही अपना,
जे एफ स्टाल

१५ फरवरी, १९७०

श्रीकृष्ण का सदैव कीर्त्तन किया जाना चाहिए ।" (श्री शिक्षाष्टक-३)] उसी प्रकार श्रीमध्वाचार्य उद्धृत करते है, **वेदे रामायणे चैव हरिः सर्वत्र गीयते** । वेदो और रामायण में प्रत्येक स्थान पर श्री हरि का ही गान किया गया है । उसी प्रकार भगवद्गीता [१५.१५] मे भगवान् श्रीकृष्ण कहते है, **वेदैश्च सर्वेरहमेव वेद्यो** सभी वेदों के द्वारा मुझे ही जानना है ।"

इस प्रकार हम पाते है कि सभी शास्त्रो मे लक्ष्य परम पुरुष है । ऋगवेद [१.२२.२०] में मन्त्र है **ॐ तद् विष्णोः परमं पदम् सदा पश्यन्ति सूरयः** देवतागण श्रीविष्णु के उस परम धाम का सदैव दर्शन करते है ।" अतएव, सम्पूर्ण वैदिक पद्धति का तात्पर्य भगवान् श्रीविष्णु को समझना है और कोई भी शास्त्र प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से परमेश्वर श्रीविष्णु के यश का ही कीर्त्तन कर रहा है ।

भगवद्गीता के श्लोक का अर्थ निश्चय ही यश, कीर्त्तन, गान और चर्चा करना है जैसा कि आपने कहा है । परन्तु किसका यश, कीर्त्तन या गान करना है ? निश्चय ही श्रीकृष्ण का । इस विषय मे **माम्** (मेरा) शब्द का प्रयोग हुआ है । अत. हम तब असहमत नही होते, जब एक मनुष्य श्रीकृष्ण का यश-गान करता है, जैसे श्रीशुकदेव ने श्रीमद्भागवत मे किया था । यह भी कीर्त्तन है । परम ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के ऐसे यश-गान का वैदिक साहित्य मे सर्वोच्च स्थान है और इसको हम निम्नलिखित श्लोक से समझ सकते है :

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुविभावुकाः ॥

"हे विवेकी मनुष्यो, श्रीमद्भागवत वैदिक साहित्य रूपी कल्पवृक्ष का एक परिपक्व फल है, ऐसा जानो । यह शुकदेव गोस्वामी के अधरो से उत्पन्न हुआ है अतएव अमृत के समान रसमय फल, मुक्त पुरुषो द्वारा भी और अधिक आस्वादनीय हो गया है ।" [श्रीमद्भागवत १ १.३]

ऐसा कहा जाता है कि महाराज परीक्षित ने केवल श्रवण के द्वारा मुक्ति प्राप्त की और उसी प्रकार शुकदेव गोस्वामी ने केवल कीर्त्तन के द्वारा मुक्ति पाई । हमारी भक्ति मे उसी एक लक्ष्य अर्थात् भगवद् प्रेम को प्राप्त करने की विभिन्न विधियाँ है और पहली विधि है **श्रवणम्** (सुनना) । यह श्रवग-विधि श्रुति कहलाती है । अगली विधि कीर्त्तन है । कीर्त्तन-विधि स्मृति है । हम श्रुति एव स्मृति दोनो को साथ ही साथ स्वीकार करते है । हम श्रुति को माँ और स्मृति को बहन मानते है क्योकि एक बालक माँ से सुनता है और फिर बहन से वर्णन के द्वारा पुन. उसे सीखता है ।

श्रुति और स्मृति समान रूप से उपयोगी दो साहित्य है । श्रील रूप गोस्वामी, इसलिए कहते है [श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु १. २. १०१] :

श्रुतिस्मृतिपुराणादिपंचरात्रविधिं विना।
ऐकान्तिकी हरेर्भक्तिरुत्पातायैव कल्पते ॥

अर्थात् श्रुति, स्मृति, पुराण और पंचरात्र के आधार के बिना एकान्तिकी (विशुद्ध) भक्ति कदापि नही प्राप्त होती है। अतएव, जो कोई भी शास्त्रो के आधार के बिना भक्ति के भावो का प्रदर्शन करता है वह केवल उत्पात ही फैलाता है। वही दूसरी ओर यदि हम केवल श्रुति पर ही अडे रहे, तब हम **वेदवादरत:** बन जाते है। भगवद्गीता मे ऐसे वेदवादरत. मनुष्यो का कोई विशेष मूल्याकन नही किया गया है।

अतएव भगवद्गीता, स्मृति होते हुए भी समस्त वैदिक साहित्य का सार है। **सर्वोपनिषदो गाव:** गीता एक गाय के समान है जो वेदो और उपनिषदो का सार रूप दूध प्रदान कर रही है। शंकराचार्य सहित सभी आचार्य भगवद्गीता को इसी रूप मे स्वीकार करते है। इसलिए आप भगवद्गीता की प्रामाणिकता अस्वीकार नही कर सकते, क्योकि यह स्मृति है। यह विचार श्रुति-स्मृति-विरोधी है।" जैसा कि आपने सही रूप मे कहा है।

आनन्दगिरि के इस उद्धरण के सम्बन्ध में कीर्त्तनम् का अर्थ "वेदान्तप्रणव जपश्च" (वेदान्त का श्रवग करना और ओम् का जप करना) होता है, यही कहना पर्याप्त है कि श्रीकृष्ण **वेदान्तकृत** है। तो वेदान्त-श्रवणम् का इससे महान् अवसर और कहाँ प्राप्त होगा कि वेदान्त को श्रीकृष्ण से श्रवण किया जाय ?

अगले श्लोक के सम्बन्ध मे जिसमे कि यह वर्णन है कि **ज्ञानयज्ञेन...यजन्तो माम्** अर्थात् पूजा के विषय तो श्रीकृष्ण ही है, जैसा कि माम् (मेरी) से दर्शाया गया है। इस विधि का वर्णन श्रीईशोपनिषद् के श्लोक ११ मे भी आता है :

विद्यां चाविद्यां च यस्तद् वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥

"जो अविद्या और विद्या को साथ-साथ तत्त्व से जानता है, एकमात्र वही बारम्बार होने वाली जन्म-मृत्यु को पार करके पूर्णामृत का आस्वादन करता है।"

विद्या अर्थात् दिव्य ज्ञान की प्राप्ति मनुष्यो के लिए आवश्यक है, नही तो अविद्या (माया) की वृद्धि उनको भौतिक स्तर पर एक बद्ध अवस्था मे बाँध कर रखती है। भौतिक अस्तित्व भवरोग का अर्थ है इन्द्रियतृप्ति की खोज करना अथवा उसमे वृद्धि करना। इस प्रकार इन्द्रियतृप्ति के ज्ञान (अविद्या) का अर्थ है बारम्बार होने वाली जन्म-मृत्यु के चक्र मे फँसते जाना। जो ऐसे ज्ञान अर्थात् अविद्या मे तल्लीन है वे प्रकृति के नियमो के द्वारा किसी प्रकार की भी शिक्षा नही ग्रहण करते। वे मायिक (भ्रामक) वस्तुओ के सौन्दर्य से मोहित होकर बारम्बार वही कर्म किया करते है। विद्या अर्थात् वास्तविक ज्ञान का, वही दूसरी ओर, अर्थ है कि

प्राकृत दिव्य विज्ञान में वृद्धि करने के साथ ही साथ अविद्यामूलक कर्मों की विधि का भी पूर्ण रूप से ज्ञान प्राप्त करना। फलस्वरूप, मुक्ति के पथ का अविचल भाव से अनुसरण किया जा सकता है।

सम्भूति-अमृतं अश्नुते—पूर्ण अमृतत्व का आनन्द ही मुक्ति है। इस अमरत्व का आस्वादन श्रीभगवान् के शाश्वत धाम मे होता है और सर्व कारणो के कारण परम ईश्वर भगवान् के भजन का फल है, **सम्भवात्**। तो इस वास्तविक ज्ञान अर्थात् विद्या का अर्थ है भगवान् श्रीकृष्ण का भजन करना। यही ज्ञान अर्थात् ज्ञान का यजन (पूजन) है।

यह **ज्ञान-यज्ञेन...यजन्तो माम्**, ज्ञान की सिद्धि है जैसा कि भगवद्गीता [७.१९] मे कहा गया है :

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

"बहुत जन्म जन्मान्तरो के पश्चात् यथार्थ ज्ञानी मुझे समस्त कारणो के परम कारण जान कर मेरी शरण ग्रहण करता है। ऐसा महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।"

यदि हम ज्ञान के इस निष्कर्ष पर नही पहुँचते और कृष्ण-ज्ञान से रहित शुष्क ज्ञान प्राप्त करने मे सलग्न रहते है, तो ज्ञान प्राप्त करने का हमारा यह कठोर परिश्रम धान के छिलके को कूटने के समान है। धान और चावल के खाली छिलके एक ही समान दिखाई पडते है। और जो यह जानता है कि धान से किस प्रकार चावल प्राप्त किया जाय वह बुद्धिमान् है। परन्तु जो कुछ फल पाने की आशा से रिक्त (खाली) छिलके को कूट रहा है वह तो केवल अपना परिश्रम व्यर्थ ही नष्ट कर रहा है। उसी प्रकार, यदि कोई वेदो का लक्ष्य श्रीकृष्ण को प्राप्त किए बिना ही वेदो का अध्ययन करता है तो वह अपना बहुमूल्य समय केवल व्यर्थ ही नष्ट करता है।

तो श्रीकृष्ण के भजन-पूजन के ज्ञान का सवर्धन अनेकानेक जन्म-मरण के पश्चात् तभी हो पाता है जब मनुष्य वास्तव मे बुद्धिमान बनता है। जब वह इस प्रकार से बुद्धिमान् बन जाता है तब वह श्रीकृष्ण को सब कारणो का कारण पहचान कर उनके शरणागत होता है। इस प्रकार के महात्मा बहुत दुर्लभ है। तो जिन लोगो ने श्रीकृष्ण को अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया है, अर्थात् सर्वतोभावेन श्रीभगवान् के शरणागत हो गए है, वे सुदुर्लभ महात्मा है। वे साधारण महात्मा नही है।

भगवान् श्रीचैतन्य की कृपा से जीवन की वह चरम सिद्धि की अवस्था निःशुल्क ही सर्वत्र वितरित की जा रही है। इसका प्रभाव भी अत्यधिक उत्साह-जनक है। नही तो कैसे इन युवक एव युवतियो ने इस अप्राकृत शब्द ध्वनि 'हरे कृष्ण'

का केवल कीर्त्तन करने से ही इतने शीघ्र सुदुर्लभ महात्माओ का पद प्राप्त कर लिया है। उनके पास वैदिक सस्कृति की कोई भी पृष्ठभूमि नही थी। और केवल इस कीर्त्तन के आधार पर इनमे से अधिकाश जो बहुत अधिक निश्छल है भक्ति मार्ग पर स्थिर है। पापमय जीवन के चार सिद्धान्तो के स्तर पर उनका पतन नही हो रहा है। ये चार पाप हैं—(१) मासाहार, (२) अवैध स्त्री अथवा पुरुष सम्बन्ध, (३) चाय, कॉफी और तम्बाकू सहित नशीली वस्तुओ को लेना और (४) जुआ खेलना, और वेदान्तसूत्र का यही अन्तिम सूत्र है अर्थात् **अनावृत्ति. शब्दात्** "शब्द-ध्वनि के द्वारा मनुष्य मुक्त हो जाता है।"

हमे फल के द्वारा निर्णय करना है (**फलेन परिचीयते**)। हमारे शिष्यो को इस प्रकार का आचरण करने की आज्ञा दी गई है और अब इनका कोई पतन नही हो रहा है। ये लोग विशुद्ध पारमार्थिक जीवन के स्तर पर बने हुए हैं। और उपरोक्त अविद्या अर्थात् इन्द्रियतृप्ति के सिद्धान्त की वृद्धि करने मे इनकी कोई आकाक्षा नही है। यह इस बात की कसौटी है कि इनके द्वारा वेदो को उचित रूप से समझा गया है। ये लोग इस सासारिक स्तर पर फिर नही लौटते है, क्योकि वे भगवद्-प्रेममय रूपी अमृतमय फल का रसास्वादन कर रहे हैं।

"सर्वफल त्याग, (मनुष्य के सब कर्मफल का त्याग) भगवद्गीता मे स्वयं श्रीभगवान् के द्वारा ही इन शब्दो मे समझाया गया है : **सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज**...प्रत्येक वस्तु का त्याग कर केवल मेरी (श्रीकृष्ण की) शरण लो।"

"हरे कृष्ण महामन्त्र का अर्थ है, हे कृष्ण की परम शक्ति और हे भगवान् कृष्ण कृपया करके मुझे अपनी नित्य सेवा मे सलग्न कर लीजिए।" हम लोग प्रत्येक वस्तु का त्याग कर चुके है और केवल श्रीभगवान् की सेवा मे सलग्न है। श्रीकृष्ण हमे जो आज्ञा देते है केवल उसी कार्य को करना ही हमारा एकमात्र प्रयोजन है। हम कर्म, ज्ञान और योग के समस्त फलो को त्याग चुके है और यही विशुद्ध भक्ति अर्थात् 'भक्ति रुत्तमा' की अवस्था है।

आपका ही,
अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्तस्वामी

स्वामी ए० सी० भक्तिवेदान्त
सस्थापकाचार्य
अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत सघ

२५ फरवरी, १९७०

प्रिय स्वामी जी,

आपके १५ २ १९७० के अति रूचिपूर्ण पत्र के लिए अनेकानेक धन्यवाद।

मुझे भय है कि जब भी आप कोई श्लोक इस अभिप्राय को दर्शाने के लिए उद्धृत करते है कि केवल कृष्ण-नाम का कीर्त्तन आवश्यक है, तब-तब मै एक दूसरा श्लोक उद्धृत कर सकता हूँ जो कि किसी और वस्तु की आवश्यकता पर बल देता है। साथ ही मै यह श्लोक भी जोडना चाहूँगा, **यदि श्लोकोऽपिप्रमाणं अयं अपि श्लोकः प्रमाणं भवितुं अर्हति** "यदि केवल श्लोक ही प्रमाण के आधार है तो इस श्लोक को भी प्रामाणिक मानना चाहिए। निकट भविष्य मे इन श्लोक-प्रतिश्लोको के उद्धरण की कोई समाप्ति नही दीख पडती। जैसे पतजलि भी कहते है **महान् ही शब्दस्य प्रयोग-विषयः** "शब्दो के प्रयोग का क्षेत्र महान् है।"

आपका अपना ही
जे० एफ० स्टाल

२४ अप्रैल, १९७०

३७६४ वाटसीका एवन्यु
लॉस एन्जिलस, कैलीफोर्निया ९००३४

प्रिय डॉ० स्टाल,

मै आपके २५ २ १९७० के कृपापत्र के लिए अत्यन्त आभारी हूँ। मुझे दु.ख है कि मैं आपके पत्र का शीघ्र उत्तर नही दे सका, क्योकि मै एक नूतन चर्च के भवन के क्रय मे थोड़ा सा व्यस्त था। यह चर्च ऊपर लिखे गए पते पर है। हमने वहुत ही सुन्दर स्थान प्राप्त कर लिया है जिसमे अलग मन्दिर, प्रवचन कक्ष, मेरे कक्ष और भक्तो के आवास गृह इत्यादि है। एक दृष्टि से यह स्थान पूर्णरूपेण सुन्दर है। इसमें सभी आधुनिक सुख-सुविधाएँ है।

मेरा आपसे यह विनम्र निवेदन है कि आप अपनी सुविधा के अनुसार इस स्थान पर पधारे और यदि आप एक दिन पूर्व दया करके सूचना भिजवा दे तो मेरे शिष्य आपका यथोचित स्वागत-सत्कार करके प्रसन्न होगे।

हमारे पत्र-व्यवहार के विषय मे वास्तविकता तो यही है कि ये उद्धरण अथवा प्रति-उद्धरण समस्या को हल नही कर सकते। न्यायालय मे दोनो ही विद्वान् परामर्शदाता (एडवोकेट) कानून की पुस्तको से उद्धरण देते है, परन्तु मुकदमे का वह हल नही है। मुकदमे का परिणाम माननीय न्यायाधीश के निर्णय पर निर्भर करता है। तो तर्क-वितर्क हमे किसी भी निष्कर्ष पर नही ला सकते। शास्त्रीय उद्धरण कभी-कभी परस्पर विरोधी रहते है और प्रत्येक दार्शनिक का विभिन्न

मन्तव्य होता है, क्योकि भिन्न सिद्धान्त प्रस्तुत किए बिना कोई भी एक प्रसिद्ध दार्शनिक नही बन सकता। अतएव उचित निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन है। जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है, निष्कर्ष यही निकलता है कि अधिकारी (महाजन) के निर्णय को स्वीकार कर लिया जाय। हम लोग भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु की प्रामाणिकता को स्वीकार करते है। श्रीचैतन्य महाप्रभु श्रीकृष्ण से अभिन्न हैं और उनका दृष्टिकोण वैदिक शास्त्र के अनुसार ही है। वह यह है कि इस युग में जीवन की समस्त समस्याओ का एक मात्र हल नाम-कीर्त्तन है और ऐसा वास्तव में व्यवहारिक अनुभव के द्वारा दर्शाया जा चुका है।

कुछ समय पूर्व भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु के अविर्भाव की तिथि पर हमारे शिष्यो के द्वारा बर्कले मे एक विशाल नगर संकीर्त्तन (शोभा-यात्रा) का आयोजन किया गया था। इस सम्बन्ध मे जनता ने अपनी सम्मति इस प्रकार दी, "मनुष्यों का यह समूह उन लोगो के समान नही है जो खिड़कियाँ तोड़ने के लिए और उत्पात करने के लिए एकत्रित होते है।" पुलिस के द्वारा भी इस सम्मति को इन शब्दो में सिद्ध किया गया था, "श्रीकृष्णभावनामृत अभियान के सदस्यो ने पुलिस के साथ पूर्ण रूप से सहयोग किया और सम्पूर्ण शोभा-यात्रा के अन्तर्गत शान्ति बनाए रखने का भक्तो का प्रयत्न इतना सफल रहा कि पुलिस-व्यवस्था की न्यूनतम आवश्यकता पड़ी।"

उसी प्रकार डेट्रॉयट अमेरिका में एक विशाल शान्ति यात्रा हुई और हमारे भक्तो का, भीड़ में देवदूत के रूप मे मूल्याकन किया गया। तो यह श्रीकृष्णभावनामृत अभियान वर्त्तमान समय मे यथार्थतः रामबाण औषधि के रूप मे आवश्यक है। यह रामबाण औषधि मनुष्य समाज की सभी समस्याओं का निराकरण कर सकती है।

और दूसरे उद्धरण इस काल मे बहुत महत्व के सिद्ध नही होगे। एक औषधि की दूकान मे अनेकानेक औषधियाँ हो सकती है और वे सभी सच्ची हो सकती है, परन्तु आवश्यकतानुसार एक अनुभवी चिकित्सक विशेष रोग के लिए विशेष दवा ही नियत करता है। हम इस विषय मे यह नही कह सकते है, "यह भी औषधि है और वह भी औषधि है।" जी नही। जिस औषधि से व्यक्ति-विशेष को लाभ हो वही उस व्यक्ति की औषधि है—**फलेन परिचीयते**।

आपका अपना ही,
अभय चरणारविन्द भक्तिवेदान्त **स्वामी**

श्रील प्रभुपाद के द्वारा अन्तिम टिप्पणी

न्यायालय में एक विषय को निश्चित करने के लिए दो विधि-परामर्श दाता (एडवोकेट) विधि (कानून) के प्रमाणिक ग्रन्थो से अपने-अपने युक्तिसंगत तर्क प्रस्तुत करते हैं। परन्तु यह न्यायाधीश पर निर्भर है कि किसी एक के अनुकूल निर्णय दे। जब विरोधी विधि-परामर्श दाता अपने-अपने तर्क प्रस्तुत करते है, तो दोनो के ही तर्क वैध और प्रामाणिक है, परन्तु निर्णय उस आधार पर दिया जाता है कि कौन सा तर्क उस विशेष मुकदमे मे प्रयुक्त किये जाने के योग्य है।

भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु शास्त्रो के प्रमाण पर अपना निर्णय देते है कि व्यक्ति को दिव्य इन्द्रियातीत स्तर तक उन्नत कराने का केवल एक साधन है और वह है भगवन्नाम का कीर्त्तन। तथा वास्तव मे हम देख सकते है कि यह विधि प्रभावशाली है। हमारे शिष्यो का, जिन्होने इस विधि को गम्भीरतापूर्वक ग्रहण किया है, व्यक्तिगत रूप से परीक्षण किया जा सकता है और कोई भी निष्पक्ष न्यायाधीश सरलतापूर्वक देख लेगा कि ये भक्त-गण, किसी भी दार्शनिक, धर्मप्रेमी, योगी या कर्मियो की तुलना मे अपने दिव्य साक्षात्कार मे कही अधिक उन्नत है।

हमे परिस्थितियो की अनुकूलता के अनुसार प्रत्येक वस्तु स्वीकार करनी है। किसी विशेष परिस्थिति मे दूसरी विधियो का त्याग करने का यह अर्थ नही है कि त्याग की गई विधियाँ प्रामाणिक नही है। परन्तु कभी-कभी कुछ समय के लिए देश, काल और पात्र पर विचार करते हुए प्रामाणिक होते हुए भी उन विधियो को त्यागना पड़ता है। हमे व्यवहारिक फल के द्वारा प्रत्येक वस्तु की कसौटी करनी चाहिए। ऐसी कसौटी के आधार पर इस युग में हरे कृष्ण महामन्त्र का निरन्तर कीर्त्तन, निःसन्देह अत्यधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ है।

श्रीकृष्णभावनामृत : हिन्दू पन्थ अथवा दैवी संस्कृति?

"कभी भारत एव विदेशो मे रहने वाले भारतीय सोचा करते थे कि हम हिन्दू धर्म का प्रचार कर रहे हैं, परन्तु वास्तव मे हम ऐसा नही कर रहे हैं लोग यह न सोचे कि हम एक साम्प्रदायिक धर्म का प्रचार कर रहे। जी नही। हम केवल यह प्रचार कर रहे हैं कि श्रीभगवान् से किस प्रकार प्रेम किया जाय हम एक ऐसी आध्यात्मिक सस्कृति प्रस्तुत कर रहे हैं जो जीवन की समस्त समस्याओ को हल कर सकती है, अतएव सम्पूर्ण विश्व मे उस सस्कृति को स्वीकार कर लिया गया है।"

यह एक भ्रम है कि श्रीकृष्णभावनामृत अभियान हिन्दू धर्म का प्रतिनिधित्व कर रहा है, किन्तु वास्तविकता तो यह है कि श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्णभक्ति किसी भी रूप मे एक ऐसा मत अथवा धर्म नही है, जो अन्य मतो अथवा धर्मो को पराजित करने का प्रयत्न करे। अपितु, यह तो सम्पूर्ण मानव समाज के लिए एक परमावश्यक सास्कृतिक अभियान है। इसमे किसी भी विशेष साम्प्रदायिक मत पर विचार नही किया जाता। यह सास्कृतिक आन्दोलन विशेष रूप से जन-साधारण को यह शिक्षित करने के लिए बनाया गया है कि वे किस प्रकार श्रीभगवान् से प्रेम कर सकते है।

कभी-कभी भारत मे और विदेशो मे भी रहने वाले भारतीय यह सोचते है कि हम हिन्दू धर्म का प्रचार कर रहे है, परन्तु वास्तव मे हम ऐसा नहीं कर रहे है। हमे भगवद्गीता मे, 'हिन्दू' नामक शब्द नही मिलेगा। निःसन्देह सम्पूर्ण,वैदिक साहित्य में भी 'हिन्दू' नामक कोई शब्द है ही नही। इस शब्द का प्रारम्भ मुसलमानों के द्वारा हुआ था जो कि भारत के सीमावर्ती राज्य जैसे अफगानिस्तान, बलूचिस्तान और पर्शिया मे रहते थे। भारत के उत्तर-पश्चिमी राज्यो का विभाजन सिन्धु नदी से होता है और क्योकि मुस्लिम सिन्धु शब्द का उचित उच्चारण नही कर सकते थे, अतः उन्होने उस नदी को 'हिन्दू' कहा। उन्होने सिन्धु नदी के उस पार मे रहने वाले निवासियो को 'हिन्दू' कह कर पुकारा। भारत में, वैदिक भाषा

के अनुसार युरोपियन म्लेच्छ अथवा यवन कहे जाते है। उसी प्रकार 'हिन्दू' मुसलमानो के द्वारा दिया गया एक नाम है।

भारत की वास्तविक संस्कृति का वर्णन भगवद्गीता मे आता है, जहाँ यह कहा गया है कि प्रकृति के विभिन्न गुणो के अनुसार विभिन्न प्रकार के मनुष्य है। इन मनुष्यो को प्रायः चार सामाजिक और चार आध्यात्मिक भागो में बाँटा जाता है। सामाजिक एवं आध्यात्मिक प्रणाली का यह वर्गीकरण वर्णाश्रम धर्म कहलाता है। चार वर्ण (सामाजिक श्रेणियाँ) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र है। चार आश्रम (आध्यात्मिक श्रेणियाँ) ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास है। वर्णाश्रम, व्यवस्था का वर्णन पुराणो मे भी आता है। वैदिक संस्कृति की इस वर्णाश्रम सस्था का लक्ष्य सभी मनुष्यो को ऐसी शिक्षा देना है जिससे वे भगवान् अर्थात् श्रीकृष्ण के ज्ञान मे विकास कर सके। यही सम्पूर्ण वैदिक कार्यक्रम है।

भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु ने एक महान् भक्त श्रीरामानन्द राय से जब चर्चा की तो भगवान् ने उनसे पूछा, "मानव जीवन का आधारभूत सिद्धान्त क्या है? श्रीरामानन्द राय ने उत्तर दिया कि मानव सभ्यता का तभी आरम्भ होता है जब वर्णाश्रम धर्म को स्वीकार कर लिया जाय। वर्णाश्रम धर्म के स्तर पर आने के पूर्व मानव सभ्यता का कोई प्रश्न ही नही उठता। अतएव, श्रीकृष्णभावनामृत अभियान मानव सभ्यता की इस उचित प्रणाली को स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा है। यह प्रणाली श्रीकृष्णभावनामृत या दैव वर्णाश्रम अर्थात् सस्कृति के नाम से जानी जाती है।

भारत मे, वर्णाश्रम प्रणाली का अब एक विकृत रूप हो चुका है और इस प्रकार ब्राह्मण (सर्वोच्च सामाजिक श्रेणी) के परिवार मे जन्मा हुआ मनुष्य यह दावा करता है कि उसे भी ब्राह्मण के रूप मे स्वीकार किया जाना चाहिए। परन्तु शास्त्रो के द्वारा ऐसे दावे को स्वीकार नही किया गया है। गोत्र (पारिवारिक वश) के अनुसार उस मनुष्य के पूर्वज भले ही ब्राह्मण हो, परन्तु यथार्थ वर्णाश्रम धर्म, मनुष्यो के द्वारा प्राप्त गुणो पर आधारित है। जन्म या वश का इससे कोई सम्बन्ध नही है अत. हम लोग हिन्दुओ की वर्त्तमानकालीन पद्धति का प्रचार नही कर रहे है। विशेषकर ऐसे हिन्दुओ की पद्धति जो शकराचार्य से प्रभावित है, क्योकि श्रीशकराचार्य ने शिक्षा दी कि परम सत्य निराकार है और इस प्रकार उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से श्रीभगवान् की सत्ता को अस्वीकार किया है।

श्रीशकराचार्य का प्रयोजन (मिशन) विशेष लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए था, वे बौद्धवाद के प्रभाव के पश्चात् वैदिक प्रभाव की पुन. स्थापना करने के लिए प्रगट हुए थे। बौद्ध मत को सम्राट् अशोक का सरक्षण प्राप्त हुआ, इसलिए २६०० वर्ष पूर्व बौद्ध धर्म व्यावहारिक रूप से सारे भारतवर्ष मे फैल गया था। वैदिक

साहित्य के अनुसार, बुद्धदेव भगवान् श्रीकृष्ण के एक अवतार हैं। उनमे एक विशेष शक्ति थी और वे एक विशेष उद्देश्य के लिए प्रगट हुए थे। उनकी विचारधारा अथवा मत अनेक लोगो द्वारा स्वीकारा गया, परन्तु श्रीबुद्ध ने वेदो की प्रामाणिकता (सत्ता) को अस्वीकार किया। जब बौद्धवाद फैल रहा था तो उस समय के अन्तर्गत भारत और अन्य स्थानो में वैदिक संस्कृति का प्रसार रुक-सा गया था। शंकराचार्य का एकमात्र उद्देश्य बौद्धवाद के दर्शन को दूर भगाना था, अतः उन्होने मायावाद की पद्धति प्रस्तुत की।

सही अर्थ में तो मायावाद नास्तिकता ही है, क्योंकि यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें मनुष्य यह 'कल्पना' करता है कि भगवान् है। मायावाद का दर्शन अनादि काल से है। वर्त्तमान भारतीय धर्म या संस्कृति की प्रणाली शकराचार्य के मायावाद पर आधारित है। मायावाद दर्शन एक प्रकार से बौद्ध दर्शन के साथ समझौता है, अर्थात् मायावाद प्रछन्न बौद्धवाद है। मायावाद के अनुसार वास्तव मे कोई ईश्वर नही है यदि ईश्वर है तो भी वह निराकार है, और सर्वव्याप्त है इसलिए उसकी किसी भी रूप में कल्पना की जा सकती है। यह निष्कर्ष वैदिक साहित्य के अनुसार नही है। वैदिक साहित्य में अनेकानेक देवताओ के नाम है जिनकी पूजा विभिन्न उद्देश्यो के लिए की जाती है, परन्तु सभी अवस्थाओ में भगवान् विष्णु को परम नियन्ता के रूप में स्वीकार किया जाता है। वास्तविक वैदिक संस्कृति तो यही है।

श्रीकृष्णभावनामृत का दर्शन न भगवान् को और न ही देवताओ के अस्तित्व को अस्वीकार करता है, परन्तु मायावादियो के लिए अन्ततः सभी कुछ शून्य है। वे कहते है कि किसी के भी रूप की कल्पना की जा सकती है—चाहे श्रीविष्णु हों या दुर्गा, शिवजी हो या सूर्य देवता—प्राय. समाज में इन्ही देवताओ की पूजा की जाती है। परन्तु सचमुच मे मायावाद इसमे से किसी का भी अस्तित्व नही मानता। मायावादी कहते है कि व्यक्ति निराकार, निर्विशेष ब्रह्म पर मन एकाग्र नही कर सकता। इसलिए इनमे से किसी भी रूप की कल्पना की जा सकती है। यह नई पद्धति है, जिसे पचोपासना कहते है। श्रीशकराचार्य के द्वारा इसका आरम्भ किया गया था, परन्तु श्रीमदभगवद्‌गीता ऐसे किसी भी प्रकार के सिद्धान्त की शिक्षा नही देती और इसलिए यह पद्धति प्रामाणिक नही है।

भगवद्‌गीता देवताओ के अस्तित्व को स्वीकार करती है। वेदो मे देवताओ का वर्णन आता है और उनके अस्तित्व को अस्वीकार नही किया जा सकता। परन्तु देवताओ को, श्रीशंकराचार्य की विधि के अनुसार न समझना चाहिए और न ही उनके सिद्धान्त के अनुसार पूजा करनी चाहिए। देवताओ की पूजा को भगवद्‌गीता में अस्वीकार किया गया है। गीता स्पष्ट कहती है [७. २०] :

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥

"भौतिक कामनाओ के द्वारा जिनके ज्ञान को हर लिया गया है, वे ही अन्य देवताओं की शरण लेकर अपने प्रकृति के अनुसार, उपासना के विधि-विधान का पालन करते है ।" इतना ही नही, भगवद्गीता मे फिर भगवान् श्रीकृष्ण कहते है [२. ४४] :

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥

"जो मनुष्य इन्द्रियों के भोग में एवं प्राकृत ऐश्वर्यों में अत्यन्त आसक्त है अथवा इन वस्तुओ से, जिनका चित्त विमोहित हो रहा है, उनकी बुद्धि मे भगवान् की निश्चयात्मिका भक्ति उत्पन्न नही हो सकती ।" भिन्न देवताओ के पीछे जाने वाले लोग **हृत-ज्ञाना:** कह कर वर्णन किए जा चुके है, जिसका अर्थ होता है "जिनके ज्ञान का हरण हो चुका है ।" इससे भी आगे भगवद्गीता में प्रमाणित किया गया है [७. २३] :

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥

"अल्प बुद्धि वाले मनुष्य देवताओ का पूजन करते है और ऐसी पूजा के फल सीमित एवं क्षणभंगुर होते है । देवताओ का जो पूजन करते है वे देव लोको मे जाते है, जबकि मेरे भक्त मेरे परम धाम को प्राप्त होते है ।" देवताओ के द्वारा दिए गए पुरस्कार अस्थायी है, क्योकि किसी प्रकार की भी भौतिक सुविधा अस्थायी देह के सम्बन्ध के आधार पर ही अनिवार्य रूप से कार्य करती है । आधुनिक वैज्ञानिक विधियो के द्वारा या देवताओ से मिले वरदानो के द्वारा हमे जो कुछ भी भौतिक सुविधाएँ प्राप्त हो जाएँ, वे सभी इस शरीर के साथ ही समाप्त हो जाएँगी, परन्तु पारमार्थिक विकास कभी भी समाप्त नही होता है ।

लोग यह न सोचे कि हम एक साम्प्रदायिक धर्म का प्रचार कर रहे हैं । जी नही । हम केवल यह प्रचार कर रहे है कि श्रीभगवान् के साथ किस प्रकार प्रेम किया जाय । भगवान् के अस्तित्व के विषय मे अनेकानेक सिद्धान्त है । उदाहरण के लिए, नास्तिक लोग कभी भी भगवान् मे विश्वास नही करेगे । नोबल पुरस्कार विजेता प्रो जेस्क्यस् मॉनॉड जैसे नास्तिक व्यक्ति घोषणा करते है कि प्रत्येक वस्तु एक सयोग है (यह ऐसा सिद्धान्त है जो चार्वाक जैसे भारत के नास्तिक दार्शनिको के द्वारा हजारो वर्ष पहले ही प्रस्तुत कर दिया गया था) । अन्य दूसरे दर्शन भी है, जैसे कर्म-मीमासा दर्शन । यह दर्शन मानता है कि यदि कोई अपना कार्य सुन्दरता और ईमानदारी के साथ करता जाय, तो भगवान् को बिना बीच मे लाए ही, अपने आप ही उन कार्यो के फल उसे प्राप्त हो जाएँगे । प्रमाण के लिए, ऐसे सिद्धान्तो को

प्रस्तुत करने वाले यह तर्क देते है कि यदि कोई किसी छूत के रोग से पीड़ित हो और उसे दूर करने के लिए औषधि ले तो रोग ठीक हो जाएगा। परन्तु इस सम्बन्ध मे हमारा तर्क यह है कि उस मनुष्य को सर्वोत्तम औषधि दिए जाने पर भी उसकी मृत्यु हो सकती है। फलो या परिणामो की भविष्यवार्णा सदैव नही की जा सकती। इसलिए एक उच्चतर सत्ता है, **दैवनेत्रेण**, एक परम संचालक। यदि ऐसा न हो, तो यह कैसे होता कि एक धनी एवं पुण्यात्मा मनुष्य का पुत्र सड़को पर घूमने वाला एक हिप्पी (आवारा) बन जाता है या एक मनुष्य जो दिन-रात कठोर परिश्रम करके धनी बनता है, उसे चिकित्सक कह देता है, "अब आप जौ के पानी के अतिरिरिक्त किसी भी प्रकार का भोजन नही कर सकते।"

कर्म-मीमांसा के सिद्धान्त के अनुसार भगवान् के किसी परम निर्देशन के बिना ही यह संसार चल रहा है। यह सिद्धान्त कहता है कि प्रत्येक वस्तु का कारण 'काम' (काम-हेतुकम्) है। काम-वासना के द्वारा पुरुष स्त्री की ओर आकर्षित होता है और मैथुन हो जाने के कारण सयोग से स्त्री गर्भवती बन जाती है। वास्तव में स्त्री को गर्भवती बनाने की कोई योजना नही होती, परन्तु एक प्राकृतिक क्रमानुसार जब स्त्री-पुरुष का मिलन होता है तो परिणाम उत्पन्न हो जाता है। भगवद्गीता के सोलहवे अध्याय मे इस नास्तिक सिद्धान्त का वर्णन किया गया है जो आसुरी सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त कहता है कि वास्तव मे संयोग और स्वाभाविक आकर्षण के कारण ही ऊपर लिखे गए ढंग से प्रत्येक वस्तु क्रियाशील हो रही है। यह आसुरी सिद्धान्त इस विचार का समर्थन करता है कि यदि कोई सन्तान उत्पन्न करने से बचना चाहे तो वह गर्भ-निरोधक विधियो का भी प्रयोग कर सकता है।

वास्तव में, प्रत्येक वस्तु के पीछे एक महान्—वैदिक योजना है। वैदिक साहित्य इस विषय मे निर्देश देते है कि कैसे स्त्री और पुरुष का मिलन हो, किस प्रकार वे सन्तान उत्पन्न करे और काम-जीवन का उद्देश्य क्या है। श्रीकृष्ण भगवद्गीता मे कहते है कि वेदो मे स्वीकार किया गया वैध काम-जीवन अर्थात् वैदिक विधि-विधान के निर्देशन के अन्तर्गत आनेवाला काम-जीवन उचित है और उनके द्वारा (भगवान् के द्वारा) स्वीकार करने के योग्य है। परन्तु 'सयोग' के कारण होने वाला काम-जीवन उनके द्वारा स्वीकृत नही है। यदि कोई 'संयोग' से काम की ओर आकर्षित होता है और सन्तान उत्पन्न हो जाती है तो उन्हे वर्ण-सकर अर्थात् अनावश्यक सन्तान कहा जाता है। यह निम्नस्तर के पशुओ का ढग है। "मनुष्यो के लिए यह ग्राह्य नही है। मनुष्यो के लिए एक योजना है। हम यह सिद्धान्त नही स्वीकार कर सकते कि मानव जीवन के प्रति कोई योजना नही है या प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति 'संयोग' और भौतिक आवश्यकता के कारण हुई है।

श्रीशकराचार्य का सिद्धान्त है कि भगवान् नही है और अपना कार्य भर

करते जाओ और किसी भी रूप में भगवान् की कल्पना कर लो जिससे कि समाज में शान्ति और समानता स्थापित की जा सके। यह सिद्धान्त लगभग 'संयोग' और 'आवश्कता' के इसी विचार पर आधारित है। किन्तु हमारा मार्ग पूर्ण रूप से भिन्न है और सत्ता प्रमाण पर आधारित है। श्रीकृष्ण इस दैवी वर्णाश्रम धर्म का समर्थन करते है, न कि आजकल समझी जाने वाली जाति-व्यवस्था का। इस आधुनिक जाति-व्यवस्था की तो अव भारतवर्ष मे भी निन्दा की जाती है और इसकी निन्दा की ही जानी चाहिए, क्योकि जन्म के अनुसार विभिन्न प्रकार के मनुष्यो का वर्गीकरण वैदिक या दैवी जाति-व्यवस्था नही है।

समाज में अनेक वर्ग के मनुष्य है—कुछ यन्त्री (इजीनियर) है, कुछ चिकित्सक (डॉक्टर) कुछ रसायनशास्त्री, तो कुछ व्यापारी। विविध प्रकार के इन वर्गों को जन्म के अनुसार नही, किन्तु गुण के आधार पर पहचाना जाता है। वैदिक साहित्य के द्वारा जन्म के आधार पर जाति व्यवस्था की कही भी अनुमति नही दी गई है और न ही हम लोग इसको स्वीकार करते है। हमे ऐसी जाति-व्यवस्था से कोई प्रयोजन नही है। इस प्रकार जन्म के आधार पर जाति-व्यवस्था वर्त्तमान मे भारत के लोगो के द्वारा भी अस्वीकार की जाती है। वही दूसरी ओर, हम ब्राह्मण वनने का और इस प्रकार जीवन की सर्वोच्च अवस्था प्राप्त करने का सभी को अवसर देते है।

वर्त्तमान समय मे ब्राह्मण (आध्यात्मिक निर्देशक) और क्षत्रिय (प्रशासन करने वाले मनुष्य) का अभाव है और क्योकि सम्पूर्ण विश्व शूद्रों के द्वारा अर्थात् श्रमिक वर्ग के मनुष्यो के द्वारा शासित किया जा रहा है, इसीलिए समाज मे अनेकानेक असगत स्थितियाँ उत्पन्न हो रही है। इन असंगत स्थितियो को दूर करने के लिए ही हमने यह श्रीकृष्णभावनामृत अभियान का आश्रय लिया है। यदि वास्तव मे ब्राह्मण वर्ग की पुनर्स्थापना हो जाती है तो समाज-कल्याण के अन्य पक्ष अपने आप ही कार्यान्वित हो जाएँगे। जैसे यदि मस्तिष्क सन्तुलन मे है तो शरीर के अन्य दूसरे भाग, उदाहरण के लिए भुजाएँ, उदर और चरण सभी सुन्दर ढग से कार्य करते है।

इस उद्देश्य का चरम लक्ष्य लोगो को यह शिक्षा देना है कि श्रीभगवान् से किस प्रकार प्रेम किया जाय। भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु इस निष्कर्ष का अनुमोदन करते है कि मानव जीवन की चरम सिद्धि यह शिक्षा प्राप्त करना है कि भगवान् से किस प्रकार से प्रेम किया जाय। श्रीकृष्णभावनामृत अभियान का हिन्दू धर्म अथवा अन्य किसी धार्मिक व्यवस्था से कुछ भी प्रयोजन नही है। कोई भी क्रिश्चयन से हिन्दू मत मे परिवर्त्तित होने की रुचि नही रखेगा। उसी प्रकार, कोई भी हिन्दू सज्जन क्रिश्चयन मत ग्रहण करने को तत्पर नही होगा। ऐसा परिवर्त्तन उन

मनुष्यों के लिए है, जिनका कोई विशेष सामाजिक स्तर नही है, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति भगवान् के दर्शन और विज्ञान को समझने मे रुचि और उसे गम्भीरतापूर्वक ग्रहण करने मे रुचिशील रहेगा। यह अत्यन्त ही स्पष्ट रूप से समझा जाना चाहिए कि श्रीकृष्णभावनामृत अभियान, तथाकथित हिन्दू धर्म का प्रचार नही कर रहा है। हम एक आध्यात्मिक संस्कृति प्रदान कर रहे है जो जीवन की समस्त समस्याओ को हल कर सकती है। अतएव इसे सम्पूर्ण विश्व मे स्वीकार कर लिया गया है।

चार

कृष्ण एवं क्राइस्ट

कृष्ण अथवा क्राइस्ट : एक नाम है

यह सन् १९७४ है। श्रील प्रभुपाद अपने अनेक शिष्य एल फादर इमैन्युअल जुगक्लासेन के साथ कृष्ण-केन्द्र के फ्रैंकफर्ट, पश्चिमी जर्मनी के मन्दिर के निकट प्रात कालीन भ्रमण कर रहे हैं। फादर इमैन्युअल निदरलैटिक मत के उच्चकोटि के साधु हैं। यह निरीक्षण करके कि श्रील प्रभुपाद रोजरी के समान ही एक ध्यान करने की जपमाला साथ मे लिए हुए हैं, फादर इमैन्युअल व्याख्या करते हैं कि वे भी निरन्तर प्रार्थना करते रहते हैं।'' श्रील प्रभुपाद एल फादर इमैन्युअल के मध्य हुआ वार्तालाप इस प्रकार है

श्रील प्रभुपाद—क्राइस्ट शब्द का क्या अर्थ है ?

फादर इमैन्युअल—क्राइस्ट शब्द ग्रीक शब्द क्रीस्टोस से निकला है जिसका अर्थ होता है, 'अभिषिक्त व्यक्ति'।

श्रील प्रभुपाद—क्रीस्टोस, कृष्ण शब्द का ग्रीक भाषान्तर है।

फादर इमैन्युअल—यह तो अत्यन्त रुचिकर है।

श्रील प्रभुपाद—जब एक भारतीय श्रीकृष्ण को पुकारता है, तो वह प्राय. कहता है, 'कृष्ट'। 'कृष्ट' संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ होता है 'आकर्षण'। तो जब हम भगवान् को 'क्राइस्ट' 'कृष्ट', अथवा 'कृष्ण' कह कर सम्बोधित करते हैं तो ये शब्द उसी एक सर्वाकर्षक भगवान् के सूचक हैं। जब जीसस ने कहा, "हमारे पिता, आप स्वर्ग मे है, आपका नाम शुद्धिकारक है।" भगवान् का वह नाम 'कृष्ट' या 'कृष्ण' था। क्या आप सहमत है ?

फादर इमैन्युअल—मैं सोचता हूँ कि जीसस ने हमको ईश्वर के पुत्र के रूप में ईश्वर का वास्तविक नाम दिया है—क्राइस्ट। हम ईश्वर को 'पिता' पुकार सकते हैं परन्तु यदि हम ईश्वर को उनके वास्तविक नाम से पुकारना चाहते है तो हमको 'क्राइस्ट' कहना पडेगा।

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ। 'क्राइस्ट' कृष्ट को ही कहने का दूसरा ढग है और 'कृष्ट' भगवान् का नाम अर्थात् 'कृष्ण' को उच्चारण करने का दूसरा ढंग है। जीसस ने कहा कि व्यक्ति को भगवान् के नाम का यश गाना चाहिए, परन्तु कल ही मैंने सुना कि एक धर्म ज्ञानी कहते थे कि भगवान् का कोई नाम नही है—कि हम उनको केवल

'पिता' कह कर ही पुकार सकते है। एक पुत्र भले ही अपने पिता को 'पिता' कहकर पुकार सकता है, परन्तु पिता का एक विशेष नाम भी होता है। उसी प्रकार, 'ईश्वर' भगवान् का सामान्य नाम है, परन्तु उनका विशेष नाम कृष्ण है। अत. चाहे आप ईश्वर को 'क्राइस्ट', 'कृष्ट' या 'कृष्ण', कहकर बुलाएँ, अन्ततः आप उन्ही एक भगवान् को ही सम्बोधित कर रहे है।

फादर इमैन्युअल—जी हाँ, यदि हम ईश्वर के वास्तविक नाम के विषय मे कहते है तो हमें अवश्य ही 'क्रीस्टोस' कहना पड़ेगा। हमारे धर्म मे त्रियेक (ट्रिनिटी) ईश्वर है : पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा। हम विश्वास करते है कि केवल ईश्वर के पुत्र के द्वारा ही हम ईश्वर का नाम जान सकते है। जीसस क्राइस्ट ने पिता का नाम प्रकाशित किया और इसीलिए क्राइस्ट नाम को ईश्वर का, ईश्वरादिष्ट नाम मानते है।

श्रील प्रभुपाद—वास्तव में, इससे कुछ अन्तर नही पड़ता—कृष्ण या क्राइस्ट—नाम एक ही है। मुख्य वस्तु तो यह है कि वैदिक शास्त्रो के इन आदेशो का पालन किया जाए कि इस युग मे भगवन्नाम कीर्त्तन युग-धर्म है। इसका सबसे अधिक सरल ढंग महामन्त्र का कीर्त्तन करना है—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे॥

राम और कृष्ण भगवान् के नाम है और हरे भगवान् की शक्ति है। तो जब हम महामन्त्र का कीर्त्तन करते है तो हम श्रीभगवान् को उनकी शक्ति के साथ सम्बोधित कर रहे है। यह शक्ति दो प्रकार की होती है—अप्राकृत (आध्यात्मिक) और प्राकृत (भौतिक)। वर्तमान मे हम भौतिक शक्ति के जाल मे फँसे हुए है। इसलिए हम श्रीकृष्ण से प्रार्थना करते है कि वे दया करके हमे भौतिक शक्ति की सेवा से मुक्त कराएँ और अध्यात्मिक शक्ति की सेवा मे हमको स्वीकार करे। यही हमारा सम्पूर्ण दर्शन है। हरे कृष्ण का अर्थ है, "हे भगवान् की शक्ति, हे भगवान् (कृष्ण), कृपा करके मुझे अपनी सेवा मे सलग्न कर लीजिए।" सेवा करना हमारा स्वभाव ही है। किसी न किसी प्रकार हम इन सासारिक वस्तुओ की सेवा कर रहे है, परन्तु जब यह सेवा आध्यात्मिक शक्ति की सेवा मे परिणत हो जाएगी तभी हमारा जीवन पूर्ण है। भक्तियोग (भगवान् की प्रेममयी सेवा) के साधन करने का अर्थ है, उपाधियो से मुक्त हो जाना और केवल भगवान् की ही सेवा मे संलग्न रहना। उपाधियाँ क्या है ? स्वयं को 'हिन्दू', 'मुसलमान', 'क्रिश्चयन' इत्यादि समझना। हम लोगो ने क्रिश्चयन, हिन्दू और मुसलमान धर्मो की रचना कर ली है, परन्तु जब हम उपाधियो से रहित धर्म के स्तर पर आते है, ऐसा स्तर जिसमें

हम यह नही सोचते कि हम हिन्दू, क्रिश्चयन या मुसलमान है, तभी हम शुद्ध धर्म अर्थात् भक्ति का आचरण कर सकते है।

फादर इमैन्युअल—मुक्ति ?

श्रील प्रभुपाद—जी नही, भक्ति। जब हम भक्ति कहते है तो मुक्ति (सांसारिक कष्टो से छुटकारा) उसमे सम्मिलित रहती है। भक्ति के बिना मुक्ति का प्रश्न ही नही है, परन्तु यदि हम भक्ति के स्तर पर कार्य करे, तो उसमे मुक्ति स्वत: सम्मिलित रहती है। इस तथ्य को हम भगवद्गीता [१४ २६] से सीखते है :

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्तमतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

"जो पूर्णरूपेण मेरी अव्यभिचारिणी भक्ति के द्वारा मेरी सेवा करता है, किसी भी स्थिति मे उससे पतित नही होता, वह अविलम्ब प्रकृति के गुणो का उल्लंघन करके ब्रह्मभूत स्तर प्राप्त करता है।"

फादर इमैन्युअल—क्या श्रीकृष्ण ब्रह्म है ?

श्रील प्रभुपाद—श्रीकृष्ण परब्रह्म है। ब्रह्म की अनुभूति तीन पक्ष मे होती है, निराकार ब्रह्म, अन्तर्यामी परमात्मा और साकार ब्रह्म के रूप मे। श्रीकृष्ण परम पुरुष है और वे परब्रह्म है, क्योकि अन्ततः भगवान् एक व्यक्ति है। श्रीमद्भागवत [१.२ ११] मे यह सिद्ध किया गया है :

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥

"विद्वान् आध्यात्यवादी जो परम सत्य को जानते है वे इस अद्वय वस्तु को, ब्रह्म, परमात्मा या भगवान् के नाम से पुकारते है।" भगवान् का स्वरूप, ईश्वर साक्षात्कार की सीमा है। भगवान् मे ऐश्वर्य पूर्ण रूप से होते है, वे सबसे अधिक बलवान्, सबसे अधिक धनवान्, सबसे अधिक सुन्दर, सबसे अधिक प्रसिद्ध, सबसे अधिक बुद्धिमान् और सबसे अधिक विरक्त है।

फादर इमैन्युअल—जी हाँ, मैं इससे सहमत हूँ।

श्रील प्रभुपाद—क्योकि श्रीभगवान् अद्वय (परम) है इसलिए उनका नाम, उनका रूप और उनके गुण भी परम है और भगवान् से अभिन्न है। अत. भगवान के नाम कीर्त्तन करने का अर्थ है प्रत्यक्ष रूपेण उनसे सम्बद्ध होना। जब व्यक्ति भगवान् से सम्बद्ध होता है तो वह दैवी गुणो को प्राप्त करता है और जब वह पूर्ण रूप से शुद्ध होता है तो वह भगवान् का पार्षद बन जाता है।

फादर इमैन्युअल—परन्तु भगवान् के नाम के सम्बन्ध मे हमारी बुद्धि (समझ) सीमित है।

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ। हम लोग सीमित है, परन्तु भगवान् असीमित, अनन्त है।

और क्योंकि वे असीमित या परम है, उनके अनन्त नाम है। भगवान् का प्रत्येक नाम भगवान् है। जैसे-जैसे हमारी आध्यात्मिक बुद्धि का विकास होता है वैसे-वैसे हम भगवान् के नामो को समझते जाते है।

फादर इमैन्युअल—क्या मै एक प्रश्न पूछ सकता हूँ। हम क्रिश्चयन लोग भी ईश्वर के प्रेम का प्रचार करते है और उस प्रेम की अनुभूति करने का एव भगवान् की सर्व प्रकार से सेवा करने का हम प्रयत्न भी करते है। अब, आपके अभियान और हमारे आन्दोलन के मध्य क्या अन्तर है? आप अपने शिष्यो को पश्चिमी देशो मे भगवान् के प्रेम का प्रचार करने के लिए क्यों भेजते है, जबकि जीसस क्राइस्ट का क्रिश्चयन धर्म भी उसी सन्देश को प्रस्तुत कर रहा है?

श्रील प्रभुपाद—समस्या तो यह है कि क्रिश्चयन भगवान् की आज्ञाओ का पालन नहीं करते हैं। क्या आप सहमत है?

फादर इमैन्युअल—जी हाँ, काफी अंश मे आपका कहना सही है।

श्रील प्रभुपाद—तब फिर क्रिश्चयनो के भगवद्-प्रेम का अर्थ ही क्या हुआ? यदि आप श्रीभगवान् की आज्ञाओं का पालन नही करते तो आपका प्रेम है ही नही। इसलिए हम लोग यह शिक्षा देने आए है कि भगवान् से प्रेम करने का अर्थ क्या होता है, यदि आप उनसे प्रेम करते हैं तो आप उनकी आज्ञाओ को भंग नही कर सकते। और यदि आप आज्ञाकारी नही है तो आपका प्रेम सच्चा नही है।

आज पूरे ससार में यही हो रहा है कि लोग भगवान् को नही, वरन् स्वान (कुत्ते) से प्रेम करते है। इसलिए श्रीकृष्णभावनामृत अभियान के लिए यह आवश्यक है कि वह लोगो को सिखाए कि हम किस प्रकार भगवान् से अपने भूले हुए प्रेम को जाग्रत कर सकते है। न केवल क्रिश्चयन, वरन् हिन्दू, मुसलमान, और दूसरे धर्मो के लोग भी दोषी है। उन्होंने केवल अपने ऊपर 'क्रिश्चयन', 'हिन्दू', या 'मुसलमान', नामक रबर की एक मोहर भर लगा ली है, परन्तु वे भगवान् की आज्ञा का पालन नही करते। यही तो समस्या है।

अतिथि—क्या आप बता सकते है कि क्रिश्चयन लोग किस रूप मे आज्ञाकारी नही है।

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ। प्रथम तो यह कि वे लोग, "तुम हत्या नही करोगे" नामक आदेश को भग करते है, क्योकि वे कसाईखाने (पशुवधशालाएँ) चला रहे है। क्या आप सहमत है कि यह आदेश भग किया जाता है?

फादर इमैन्युअल—व्यक्तिगत रूप से मैं सहमत हूँ।

श्रील प्रभुपाद—सुन्दर। तो यदि क्रिश्चयन भगवान् से प्रेम करना चाहते है, तो उन्हे पशुओ की हत्या अवश्य रोकनी चाहिए।

फादर इमैन्युअल—परन्तु क्या यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथ्य नही है...

श्रील प्रभुपाद—यदि आप एक वस्तु को भूल जाएँ, तो आपकी गणना मे त्रुटि या गलती हो जाती है। उसके पश्चात् चाहे आप जो भी जोड़ें या घटाएँ, उस गणना मे त्रुटि हो चुकी है और उसके बाद की प्रत्येक वस्तु त्रुटिपूर्ण होगी। हम ऐसा नही कर सकते है कि शास्त्र के जिस भाग को हम पसन्द करते है, उसको स्वीकार करे और जिसको पसन्द नही करते है, उसको त्याग दे। और इतने पर भी हम आशा करें कि फल वही प्राप्त होगा। उदाहरण के लिए, मुर्गी अपने पिछले भाग से अण्डा देती है और चोच से भोजन करती है। एक किसान भले ही यह सोच सकता है, "मुर्गी का अगला भाग बहुत खर्चीला है, क्योकि मुझे मुर्गी को भोजन देना पड़ता है। श्रेष्ठ यही होगा कि मै अगले भाग को काट दूँ।" परन्तु यदि सिर कट गया तो फिर अण्डे ही नही होगे क्योकि शरीर मृत हो जाता है। उसी प्रकार, यदि हम शास्त्रो के कठिन भाग को न माने और जो भाग हमें पसन्द है उसका पालन करे, तो ऐसा मनोधर्म हमारी कोई सहायता नही करेगा। हमे शास्त्र के सभी आदेशो का यथानुरूप पालन करना होगा। यह नही कि जो आज्ञाएँ हमारे अनुकूल है हम केवल उन्ही का पालन करे। तो यदि आप प्रथम आज्ञा, "तुम हत्या नही करोगे" का ही पालन नही करते तब फिर भगवान् के प्रेम का प्रश्न ही कहाँ उठता है ?

अतिथि—क्रिश्चयन लोग मानते है कि यह आदेश मनुष्यो की हत्या के लिए प्रयुक्त होता है, पशुओ की हत्या के लिए नही।

श्रील प्रभुपाद—इसका अर्थ तो यह हुआ कि क्राइस्ट इतने बुद्धिमान् नही थे कि वे सही शब्द का प्रयोग कर सके—नर हत्या। एक शब्द हत्या है और एक शब्द नर-हत्या। क्या आप सोचते है कि जीसस इतने बुद्धिमान् नही थे कि वे सही शब्द का प्रयोग कर सके, अर्थात् हत्या के स्थान पर नर-हत्या शब्द का प्रयोग कर सके। हत्या का अर्थ है किसी प्रकार का वध विशेषकर पशुओ की हत्या। यदि जीसस का अभिप्राय केवल मनुष्यो की हत्या से होता तो नर-हत्या शब्द का प्रयोग उन्होने किया होता।

फादर इमैन्युअल—परन्तु ओल्ड टेस्टमेट मे "तुम हत्या नही करोगे" इस आदेश का तात्पर्य नर-हत्या से ही है। और जब जीसस ने कहा, "तुम हत्या नही करोगे," उन्होने इस आदेश का और विस्तार किया, जिसका अर्थ यह निकलता है कि मनुष्य न केवल दूसरे मनुष्यो की हत्या करने से बचे, परन्तु उनके साथ प्रेम का व्यवहार करे। उन्होने कभी दूसरे जीवो के साथ मनुष्य के सम्बन्ध के विषय पर कुछ नही कहा, परन्तु उन्होने केवल मनुष्य के साथ मनुष्य के सम्बन्ध पर ही कहा। जब उन्होने कहा, "तुम हत्या नही करोगे", तो उनका इसमे मानसिक और भावनात्मक अर्थ भी था। दूसरे शब्दों मे, आप दूसरो का अपमान न करे या उसे हानि न पहुँचाएँ अथवा उनके साथ अभद्र व्यवहार न करे, इत्यादि।

श्रील प्रभुपाद—हम इस या उस टेस्टमेंट से सम्बद्ध नही है, परन्तु आदेशो मे प्रयोग किए गए शब्दो से ही केवल हमारा प्रयोजन है। यदि आप इन शब्दो की किसी अन्य ढंग से व्याख्या करना चाहते है तो यह दूसरी बात है। हम लोग तो सीधा अर्थ लेते हैं। "तुम हत्या नही करोगे" का अर्थ है, "क्रिश्चयन लोगो को हत्या नही करनी चाहिए।" अपने वर्त्तमान कार्यो को करते रहने के उद्देश्य से आप भले ही अनेकानेक व्याख्याएँ प्रस्तुत कर सकते है। परन्तु हम अत्यन्त ही स्पष्ट रूप से समझते है कि इस प्रकार के अर्थ-निर्णय की कोई भी आवश्यकता नही है। व्याख्या की आवश्यकता तो तब होती जब विषय स्पष्ट न होता। परन्तु यहाँ अर्थ बिल्कुल स्पष्ट है। "तुम हत्या नही करोगे।" एक स्पष्ट निर्देश है। तो हम इसके अर्थ-निर्णय करने के चक्कर मे फँसे ही क्यो?

फादर इमैन्युअल—क्या फल-फूल खाना भी हत्या नही है?

श्रील प्रभुपाद—वैष्णव सिद्धान्त यह शिक्षा देता है कि हमे वृक्षों की भी अनावश्यक हत्या नही करनी चाहिए। भगवद्गीता [९.२६] में श्रीकृष्ण कहते है:

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

"यदि कोई प्रेम एवं भक्ति के साथ मुझको पत्र, पुष्प अथवा जल अर्पण करता है तो मैं उसको ग्रहण करता हूँ।" हम श्रीकृष्ण को केवल उसी प्रकार का भोजन अर्पण करते है, जिसकी वे माँग करते है, और तत्पश्चात् हम कृष्ण-प्रसाद (अवशेष भोजन) ग्रहण करते है। यदि श्रीकृष्ण को शाकाहारी भोजन अर्पण करना पाप था तो वह श्रीकृष्ण का पाप होगा, हमारा नही। परन्तु भगवान् **अपाप-विद्धाम्** है अर्थात् उनको पाप स्पर्श तक नही कर सकता है। वे सूर्य के समान है जो इतना शक्तिशाली है कि वह मूत्र तक को भी शुद्ध कर सकता हे। हमारे लिए ऐसा करना असम्भव है। श्रीकृष्ण एक राजा के समान है, जो हत्यारे को फाँसी का दण्ड दे सकते है परन्तु स्वयं दण्ड के परे है, क्योंकि वे अत्यन्त शक्तिशाली है। श्रीभगवान् को अर्पण किए गए भोजन को खाना, युद्ध मे सैनिक के द्वारा हत्या करने के समान है। युद्ध मे, जब सेनापति एक मनुष्य को आक्रमण करने की आज्ञा देता है तो शत्रु की हत्या करने वाले आज्ञाकारी सैनिक को पदक प्राप्त होगा। परन्तु यदि वही सैनिक अपनी इच्छा से किसी की हत्या कर देता है तो उसको दण्ड मिलेगा। उसी प्रकार जब हम केवल कृष्ण-प्रसाद अर्थात् श्रीकृष्ण को अर्पित किए गए भोजन का अवशेष ग्रहण करते है तो हम किसी भी प्रकार का पाप नही करते। जिसे भगवद्-गीता [३.१३] मे सिद्ध किया गया है:

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।

भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥

"यज्ञ से बचे अन्न का भोजन करने वाले भगवान् के भक्त सब पापों से मुक्त हो जाते है परन्तु जो स्वयं के इन्द्रियभोग के लिए भोजन बनाते है वे तो पाप ही खाते है।"

फादर इमैन्युअल—कृष्ण पशुओं को खाने की आज्ञा नही दे सकते ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ—पशु योनियो मे आज्ञा है परन्तु सभ्य मनुष्य, धार्मिक मनुष्य पशुओ की हत्या करने और उनको खाने के लिए नही बनाए गए है। यदि आप पशुओ को हत्या करना रोक दें और क्राइस्ट के नामो का कीर्त्तन करें, तो प्रत्येक वस्तु पूर्ण और सुव्यवस्थित हो जाएगी। मैं आप लोगों को शिक्षा देने के लिए नही, वरन् केवल यह निवेदन करने के लिए आया हूँ कि कृपा करके भगवान् के नाम का कीर्त्तन कीजिए। बाइबिल भी आपसे यही माँग करती है तो आप दया-पूर्वक सहयोग दें और साथ मे कीर्त्तन करे। यदि श्रीकृष्ण के नाम का कीर्त्तन करने मे आपका पूर्व विरोध है तो आप 'क्रीस्टोस' या 'कृष्ट' नाम का कीर्त्तन कीजिए—इन दोनो मे कुछ भी अन्तर नही है। श्रीचैतन्य ने कहा है : **नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्तिः**। भगवान् के लाखो-करोडो नाम है, क्योकि भगवान् के नाम मे और स्वयं भगवान् मे कोई अन्तर नही है, इसलिए प्रत्येक भगवन्नाम मे भगवान् के समान ही शक्ति है।" अतएव, यदि आप 'हिन्दू', 'क्रिश्चयन', या 'मुसलमान' जैसी उपाधियो को मानते भी हो, फिर भी यदि आप अपने शास्त्रो में पाए जाने वाले भगवान् के नाम का केवल कीर्त्तन करे तो आपको आध्यात्मिक स्तर प्राप्त हो जाएगा। मानव जीवन आत्म-साक्षात्कार के लिए बनाया गया है अर्थात् यह सीखने के लिए कि श्रीभगवान् से किसी प्रकार प्रेम किया जाए। मनुष्य की यथार्थ सुन्दरता यही है। आप चाहे इस कर्त्तव्य को हिन्दू के रूप मे, क्रिश्चयन के रूप मे या मुसलमान के रूप मे पालन करे इससे कुछ अन्तर नही पड़ता। परन्तु इस कर्त्तव्य का पालन अवश्य कीजिए।

फादर इमैन्युअल—मै सहमत हूँ।

श्रील प्रभुपाद—(१०८ मनके की जप-माला की ओर संकेत करते हुए)—हमारे पास सदा ही यह जप-माला रहती है, जैसे आपके पास आपकी रोजरी है। आप जप कर रहे है, परन्तु दूसरे क्रिश्चयन भी क्यो नही जप करते। उनको मानव जीवन के इस सुअवसर को क्यो खोना चाहिए। कुत्ते और बिल्ली कीर्त्तन नही कर सकते परन्तु हम लोग कर सकते है, क्योकि हमारे पास मनुष्य की जिह्वा (जीभ) है। यदि हम भगवान् के नामो का कीर्त्तन करे, तो हमारी कोई भी हानि नही होगी, इसके विपरीत हमको महान् लाभ मिलेगा। मेरे शिष्य-गण निरन्तर हरे कृष्ण जप करने का साधन करते है। ये चलचित्र (सिनेमा) जा सकते थे या और भी दूसरे कार्यो मे सलग्न हो सकते थे, परन्तु उन्होने सब कुछ त्याग दिया है। ये भक्त

न मछली और न ही मांस या अण्डा खाते है, नशा नही करते, मद्यपान नही करते धूम्रपान नही करते, ये जुआ नही खेलते, ये हवाई-किले बनाने मे व्यस्त नही रहते और ये अवैध यौन-सम्बन्ध नही रखते है। परन्तु ये भगवन्नाम कीर्त्तन अवश्य करते है। यदि आप हमारे साथ सहयोग करना चाहे, तो चर्चो मे जाकर, 'क्राइस्ट', 'कृष्ट' या 'कृष्ण', का कीर्त्तन कीजिए। इसमे क्या आपत्ति की जा सकती है ?

फादर इमैन्युअल—कुछ भी नही। मुझे तो आपके सघ मे सम्मिलित होने पर हर्ष ही होगा।

श्रील प्रभुपाद—जी नही, हम आपसे क्रिश्चयन चर्च के प्रतिनिधि के रूप मे निवेदन कर रहे है। चर्चो को बन्द रखने के स्थान पर, उन्हे हम लोगो को क्यो न दे दिया जाय ? हम दिन में चौबीसो घण्टे भगवान् के नाम का कीर्त्तन करेगे। अनेक स्थानो पर हम लोगो ने चर्च खरीदे है जो व्यावहारिक रूप से बन्द पड़े हुए थे, क्योकि कोई भी उन चर्चो मे जा नही रहा था। लन्दन मे मैने देखा कि सैकड़ो चर्च बन्द पड़े हुए है या सांसारिक उद्देश्यो के लिए प्रयोग मे लाये जा रहे है। हमने लॉस एन्जिलस में एक ऐसा ही चर्च खरीदा है। उस चर्च को इसीलिए बेचा गया क्योकि वहाँ कोई नही आता था। परन्तु यदि आप उसी चर्च मे आज जाएँ तो आप देखेगे कि हजारो की सख्या मे लोग वहाँ आते है। कोई भी बुद्धिमान् व्यक्ति पाँच मिनट मे ही यह समझ सकता है कि श्रीभगवान् क्या है, इसके लिए पाँच घण्टे की आवश्यकता नही पड़ती।

फादर इमैन्युअ—मैं सहमत हूँ।

श्रील प्रभुपाद—परन्तु लोग सहमत नही हैं। उनका रोग है कि वे इस विषय को समझना ही नही चाहते।

अतिथि—मै सोचता हूँ कि भगवान् को समझना बुद्धि का नही वरन् विनम्रता का प्रश्न है।

श्रील प्रभुपाद—विनम्रता का अर्थ ही बुद्धि होता है। विनम्र और सौम्य व्यक्ति ही श्रीभगवान् के राज्य को प्राप्त करते है। यह तो बाइबिल मे कहा गया है, है ना ? परन्तु धूर्तो का सिद्धान्त यह है कि सभी लोग भगवान् है और आजकल यह विचार लोकप्रिय बन गया है। इसलिए कोई भी ना विनम्र है और न सौम्य। यदि प्रत्येक व्यक्ति सोचता है कि वह भगवान् है, तो वह विनम्र और सौम्य बने ही क्यो ? इसलिए मै अपने शिष्यो को सिखाता हूँ कि किस प्रकार विनम्र और सौम्य बनना चाहिए। वे मन्दिर मे और गुरु को सदा ही प्रणाम करते है और इस प्रकार वे उन्नति करते है। विनम्रता और सौम्यता के गुणो के द्वारा अतिशीघ्र ही आध्यात्मिक साक्षात्कार प्राप्त हो जाता है। वैदिक शास्त्रो मे यह कहा गया है, "जिनका श्री-

भगवान् और भगवान् के प्रतिनिधि गुरुदेव में अटूट विश्वास है, उनके लिए वैदिक शास्त्रो के अर्थ अपने आप प्रकाशित हो जाते है।

फादर इमैन्युअल—परन्तु क्या यह विनम्र व्यवहार सभी के साथ ही नही किया जाना चाहिए।

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, परन्तु दो प्रकार के आदर होते है—विशेष और साधारण। श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु ने शिक्षा दी है कि हमे अपने लिए किसी भी प्रकार के मान-सम्मान की आशा नही करनी चाहिए, परन्तु दूसरो को सदा ही मान देना चाहिए, चाहे वह भले ही हमारा अनादर करे। परन्तु भगवान् और उनके शुद्ध भक्त का विशेष आदर किया जाना चाहिए।

फादर इमैन्युअल—जी हाँ, मै सहमत हूँ।

श्रील प्रभुपाद—मै सोचता हूँ कि क्रिश्चयन पादरी श्रीकृष्णभावनामृत अभियान में सहयोग दे। वे क्राइस्ट अथवा क्रिस्टोस के नाम का कीर्त्तन करे और पशुओ का वध करना रोक दें। यह कार्यक्रम बाइबिल की शिक्षाओ के अनुसार है यह मेरा दर्शन नही है। कृपया इसके अनुसार कार्य कीजिए और आप देखेंगे कि विश्व की दशा मे किस प्रकार परिवर्त्तन आ जाएगा।

फादर इमैन्युअल—मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

श्रील प्रभुपाद—हरे कृष्ण।

क्राइस्ट, क्रिश्चयन और कृष्ण

"वैष्णव—भगवान् के शुद्ध भक्त— पर-दु ख दु खी होते हैं, अर्थात् दूसरो का कष्ट देख कर उन्हे दु.ख होता है, अतएव जीसस क्राइस्ट ने— दूसरो को उनके दु खो से मुक्त करने के लिए— क्रॉस पर चढना स्वीकार किया। परन्तु उनके अनुयायी इतने कृतघ्न हैं कि उन्होने निश्चय किया है, "क्राइस्ट हमारे लिए दु ख पाते रहे और हम लोग पाप करते रहेगे।" वे क्राइस्ट से इतना अधिक प्रेम करते हैं कि वे सोचते हैं, "प्रिय क्राइस्ट, हम अत्यधिक निर्बल हैं। हम पाप करना त्याग नही सकते। तो कृपया आप हमारे लिए दु ख उठाइए ।"

श्रीमद्भागवत ग्रन्थ कहता है कि भगवद्-भावना के किसी भी प्रामाणिक प्रचारक मे तितिक्षा (सहनशीलता) और करुणा (दया) के गुण अवश्य ही होने चाहिए। लॉर्ड जीसस क्राइस्ट के जीवन मे हम इन दोनो ही गुणो को देखते है। वे इतने सहनशील थे कि क्रॉस पर चढ़ते समय भी उन्होने किसी को भी दोषी नही ठहराया और वे इतने दयालु थे कि उन्होने भगवान् से उन्ही व्यक्तियो को क्षमा करने की प्रार्थना की जो उनको मारने का प्रयत्न कर रहे थे। (नि.सन्देह, उन लोगो के द्वारा क्राइस्ट वास्तव मे कभी भी नही मारे जा सकते थे। परन्तु वे लोग ऐसा सोच रहे थे कि वे उनकी हत्या कर सकते है, तो इस प्रकार वे लोग एक महान् अपराध कर रहे थे।) क्राइस्ट ने क्रॉस पर चढते समय भी प्रार्थना की, "हे पिता इनको क्षमा कर दीजिये। ये लोग नही जानते कि ये क्या रहे है।"

भगवद्-भावना का प्रचारक सभी जीवो का सुहृद (मित्र) होता है। जीसस क्राइस्ट ने इसका उदाहरण अपनी इच्छा के द्वारा दिया, "तुम हत्या नही करोगे।" परन्तु क्रिश्चयन लोग इस उपदेश की असद व्याख्या करना चाहते है। वे यह सोचते है कि पशुओ मे कोई आत्मा नही होती और इसलिए वे सोचते है कि वे कसाईखानो (पशु-वध-शालाएँ) मे करोडो निर्दोष पशुओ की स्वच्छन्दतापूर्वक हत्या कर सकते है। यद्यपि अनेकानेक व्यक्ति है जो क्रिश्चयन होने का व्यवसाय करते हैं परन्तु एक ऐसा व्यक्ति पाना अत्यन्त कठिन होगा जो दृढतापूर्वक जीसस क्राइस्ट के उपदेशो का पालन करता हो।

वैष्णव पर-दु:ख दु:खी होता है, अर्थात् दूसरो का कष्ट देखकर उन्हे दु:ख होता है, अतएव जीसस क्राइस्ट ने—दूसरो को उनके दु:खो से मुक्त करने के लिए—क्रास पर चढना स्वीकार किया। परन्तु उनके अनुयायी इतने कृतघ्न है कि उन्होने निश्चय किया है, "क्राइस्ट हमारे लिए दु:ख पाते रहे और हम लोग पाप करते रहेगे।" वे क्राइस्ट से इतना अधिक प्रेम करते है कि वे सोचते है, "प्रिय क्राइस्ट, हम अत्यधिक निर्बल है। हम पाप करना त्याग नही सकते। तो कृपया आप हमारे लिए दु:ख उठाइए...।"

जीसस क्राइस्ट ने सिखाया, "तुम हत्या नही करोगे।" परन्तु उनके अनुयायियो ने अब निश्चय किया है कि हम किसी न किसी प्रकार हत्या करेंगे ही। और उन्होने विशाल आधुनिक एव वैज्ञानिक कसाईखाने खोले है। यदि इसमे कोई पाप है भी, तो क्राइस्ट हमारे लिये दु.ख उठाएँगे। यह एक सर्वाधिक घृणित निष्कर्ष है।

क्राइस्ट अपने भक्तो के द्वारा पहले किए गए पापो के कष्ट को स्वीकार कर सकते है। परन्तु सबसे पहले उनके भक्तो को समझदार होना पड़ेगा, "मैं अपने पापो के लिए जीसस क्राइस्ट को क्यो कष्ट दूँ? मुझे पापो को करना ही बन्द कर देना चाहिये।"

कल्पना कीजिए कि एक मनुष्य, अपने पिता का प्रिय पुत्र—हत्या (खून) करता है। और कल्पना कीजिए कि वह सोचता है, "यदि इसमे कोई दण्ड मिलने वाला है तो मेरे पिता मेरे लिए कष्ट उठा सकते है।" क्या कानून इसकी अनुमति देगा? जब हत्यारे को बन्दी बनाया जाता है और वह यह कहने लगे कि, "नही, नही, आप मुझे छोड़ सकते है और मेरे पिता को बन्दी बना लीजिए, मैं उनका दुलारा पुत्र हूँ।" क्या पुलिस कर्मचारी उस मूर्ख की विनती मानेगे? उसने हत्या की है परन्तु वह सोचता है कि दण्ड उसके पिताजी को मिले। क्या यह एक समझदार प्रस्ताव है? नही। तुमने हत्या की है तो फाँसी भी तुमको ही मिलेगी। उसी प्रकार जब आप पाप करते है, तो आपको कष्ट होगा—जीसस क्राइस्ट को नही। भगवान् का यही नियम है।

जीसस क्राइस्ट एक महापुरुष थे। वे भगवान् के पुत्र अथवा भगवान् के प्रतिनिधि थे। उनमे कोई दोष नही था। फिर भी उनको क्रॉस पर चढाया गया। वे भगवद्-भावना का वितरण करना चाहते थे, परन्तु बदले मे लोगो ने उनको क्रॉस पर चढा दिया—इतने कृतघ्न थे वे लोग। वे लोग उनके प्रचार का मूल्याकन नहीं कर सके। परन्तु हम उनका मूल्यांकन करते है और भगवान् के प्रतिनिधि के रूप मे उनका पूर्ण सम्मान करते है।

नि.सन्देह क्राइस्ट ने जिस सन्देश का प्रचार किया वह उनके विशेष देश

काल और पात्र के अनुसार ही था। परन्तु निश्चय ही वे भगवान् के प्रतिनिधि थे अतः हम लॉर्ड जीसस क्राइस्ट की आराधना करते है और उनको अपना प्रणाम अर्पित करते हैं।

एक बार, मैलबोर्न में क्रिश्चयन पादरी का एक समुह मुझसे भेट करने के लिये आया। उन्होने पूछा, "जीसस क्राइस्ट के विषय मे आपका क्या विचार है?" मैंने उनसे कहा, "वे हमारे गुरु हैं। वे भगवद्-भावना का प्रचार कर रहे है, इसलिए वे हमारे गुरु है।" उन लोगो ने इस उत्तर को अत्यधिक महत्व दिया।

वास्तव में, जो कोई भी भगवान् के यश का प्रचार कर रहा है, उसे अवश्य ही गुरु के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। जीसस क्राइस्ट ऐसे ही एक महा-पुरुष थे। हम उनको एक साधारण मनुष्य न समझे। शास्त्र कहते है कि जो भी गुरु महाराज को एक साधारण मनुष्य मानता है उसकी नारकीय बुद्धि है। यदि जीसस क्राइस्ट एक साधारण मनुष्य होते तो वे भगवद्-भावना का वितरण नही कर सकते थे।

समस्त जीवों में आत्मा विद्यमान

इस्कॉन के पेरिस केन्द्र मे श्रील प्रभुपाद कार्डिनल जीन डॅनीलो से चर्चा करते हैं, "बाइबिल केवल यह तो नही कहता, 'मनुष्यो की हत्या नही करो', यह तो स्पष्ट कहता है, 'तुम हत्या नही करोगे ' आप इसका अर्थ निर्णय अपनी सुविधा के अनुसार क्यो करते हैं? जब भोजन न मिले, तब कोई भले ही भुखमरी से रक्षा करने के लिए मास खा सकता है। यह एक दूसरी बात है। परन्तु यह सबसे बडा पाप है कि केवल अपनी जिव्हा की सन्तुष्टि के लिए नियमित रूप से पशुवध-शालाओ को बनाए रखा जाय।"

श्रील प्रभुपाद—जीसस क्राइस्ट ने कहा, "तुम हत्या नही करोगे।" तो ऐसा क्यो है कि क्रिश्चयन लोग पशु-हत्या मे सलग्न है ?

कार्डिनल—निश्चय ही क्रिश्चयनिटी मे हत्या करना निषेध है, परन्तु हम विश्वास करते है कि मनुष्य के जीवन मे और पशुओ के जीवन मे अन्तर होता है। मनुष्यो का जीवन पवित्र है, क्योकि मनुष्य भगवान् की प्रतिछाया है—अतः मनुष्यो की हत्या करना निषेध है।

श्रील प्रभुपाद—परन्तु बाइबिल केवल यह तो नही कहता, "मनुष्यो की हत्या नही करो।" वह तो स्पष्ट कहता है, "तुम हत्या नही करोगे।"

कार्डिनल—हम विश्वास करते है कि केवल मनुष्य जीवन ही पवित्र है।

श्रील प्रभुपाद—यह आपका अपना अर्थ निर्णय है। आदेश तो यही है, "तुम हत्या नही करोगे।"

कार्डिनल—मनुष्य के लिए पशुओ की हत्या करना आवश्यक है जिससे उनको भोजन प्राप्त हो सके।

श्रील प्रभुपाद—मनुष्य अन्न, शाक, फल और दूध का भोजन कर सकते हैं।

कार्डिनल—मास नही ?

श्रील प्रभुपाद—जी नही। मनुष्य शाकाहारी भोजन करने के लिए बनाए गए है। शेर आपके फल खाने के लिए नही आता। पशु के लिए मास उसका निर्धारित भोजन है, परन्तु मनुष्य का भोजन शाक-सब्जी, फल, अन्न और दूध से बने पदार्थ है। तो आप यह कैसे कह सकते है कि पशुओ की हत्या करना पाप नही है।

कार्डिनल—हम विश्वास करते है कि यह केवल अभिप्राय का प्रश्न है। यदि पशुओ की हत्या भूखे लोगो को भोजन देने के लिए की जाए तो यह न्यायोचित है।

श्रील प्रभुपाद—परन्तु आप गाय पर विचार करे, हम उसका दूध पीते है, अतः वह हमारी माँ है। क्या आप सहमत है ?

कार्डिनल—जी हाँ। निश्चय ही।

श्रील प्रभुपाद—तो यदि गाय आपकी माँ है, तो आप कैसे उसकी हत्या का समर्थन कर सकते है ? आप उससे दूध लेते है और जब वह वृद्ध हो जाती है और आपको दूध नही दे सकती, तो आप उसका वध कर देते है। क्या यह एक बहुत मानवोचित प्रस्ताव है ? भारतवर्ष मे जो मांसाहारी है उनको सलाह दी गई है कि वे कोई निम्न श्रेणी का पशु जैसे बकरी, सूअर या भैंस की हत्या करे। परन्तु गौ हत्या तो सबसे महान् पाप है। श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति के प्रचार मे हम लोगो से कहते है कि वे किसी प्रकार का मास न खाएँ और मेरे शिष्य-गण दृढता के साथ इस सिद्धान्त का पालन करते है। परन्तु यदि, किसी विशेष परिस्थिति मे दूसरे लोगो को मांस खाना ही पड जाय, तो वे किसी निम्न पशु का मांस खा सकते है। गायो की हत्या मत कीजिए। यह सबसे महान् पाप है। और जब तक मनुष्य पापी बना रहता है तब तक वह भगवान् को नही समझ सकता। मनुष्यो का प्रमुख प्रयोजन है भगवान् को समझना और उनसे प्रेम करना। परन्तु यदि आप पापी बने रहे, तो आप कभी भी भगवान् को समझने योग्य नही बन सकेंगे—उनसे प्रेम करने के विषय में तो कहना ही क्या है।

कार्डिनल—मै सोचता हूँ कि शायद यह एक आवश्यक वस्तु नही है। महत्वपूर्ण वस्तु तो ईश्वर से प्रेम करना है। एक धर्म के व्यवहारिक आदेश दूसरे धर्म से भिन्न हो सकने है।

श्रील प्रभुपाद—तो बाइबिल मे ईश्वर का व्यवहारिक आदेश है कि आप हत्या नही कर सकते, अत. गायो की हत्या करना आपके लिए पाप है।

कार्डिनल—ईश्वर भारतीयो से कहते है कि हत्या करना अच्छा नही है और वे यहूदियो से कहते है कि...

श्रील प्रभुपाद—नही, नही। जीसस क्राइस्ट ने सिखाया, "तुम हत्या नही करोगे।" आप इसका अर्थ निर्णय अपनी सुविधानुसार क्यो करते है।

कार्डिनल—परन्तु जीसस ने ईस्टर पर मेमने की बलि देने की आज्ञा दी थी।

श्रील प्रभुपाद—परन्तु उन्होने पशुवधशालाएँ (कसाईखाने) नही बनाये।

कार्डिनल—(हँसते है) जी नही—परन्तु उन्होने मास खाया था।

श्रील प्रभुपाद—जब कोई भोजन न प्राप्त हो तब कोई भुखमरी से रक्षा करने के लिए मास भले ही खा सकता है। यह एक दूसरी वस्तु है परन्तु यह सबसे बड़ा

पाप है कि अपनी जिह्वा (जीभ) की सन्तुष्टि के लिए नियमित रूप से पशुवध-शालाओ को बनाए रखा जाय। वास्तव मे, जब तक कसाईखाने चलाने की इस निर्दयी प्रथा को बन्द नही किया जाता तब तक आपका समाज 'मानव' समाज नही हो सकेगा। और यद्यपि कभी-कभी जीवित रहने के लिए पशुओ की हत्या करना भले ही आवश्यक हो, परन्तु कम से कम गौ माता की हत्या नही की जानी चाहिए। यह केवल मानवोचित शालीनता है। श्रीकृष्णभावनामृत अभियान मे हमारी पद्धति यह है कि हम किसी भी प्रकार के पशु हत्या की अनुमति नही देते है। श्रीकृष्ण कहते है, **पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति**—"शाक, फल, दूध और अन्न मुझे भक्तिपूर्वक अर्पण किए जाने चाहिए।" [गीता ९ २६] हम केवल कृष्ण-प्रसाद, श्रीकृष्ण को अर्पण किए गए भोजन का अवशेष ही लेते है। वृक्ष हमे विविध फल देते है, परन्तु वृक्षो की हत्या नही की जाती। नि.सन्देह, एक जीव दूसरे जीव का भोजन है, परन्तु इसका अर्थ यह तो नही हुआ कि आप भोजन के लिए अपनी माँ की हत्या कर सकते है। गाय निरीह एवं निर्दोष पशु है : वह हमे दूध देती है। आप उसका दूध लेते है—और फिर कसाईखाने मे उसकी हत्या कर देते है। यह पाप है।

शिष्य—श्रील प्रभुपाद, क्रिश्चर्याजिटी में मासाहार की अनुमति इस विचार पर आधारित है कि जीवन की निम्न योनियो मे, मनुष्यो के समान आत्मा नही होती।

श्रील प्रभुपाद—यह विचार मूर्खतापूर्ण है। सबसे पहले तो हमे शरीर के भीतर आत्मा की उपस्थिति को समझना है। तब हम देख सकते है कि मनुष्य मे आत्मा है और गाय मे नही। गाय एवं मनुष्य की क्या विभिन्न विशेषताएँ है। यदि हमे विशेषताओ मे अन्तर दिखाई पडे, तभी हम कह सकते है कि पशु में आत्मा नही होती। परन्तु यदि हम देखते है कि पशु और मनुष्य की एक जैसी ही विशेषताएँ है, तब आप कैसे कह सकते है कि पशु मे आत्मा नही होती। सामान्य लक्षण है कि पशु भोजन करता है, आप भी भोजन करते है, पशु सोता है और आप भी सोते है, पशु मैथुन करता है आप मैथुन करते है, पशु आत्मरक्षा करता है और आप भी आत्मरक्षा करते है। तो पशु और मनुष्य मे क्या अन्तर है ?

कार्डिनल—हम स्वीकार करते है कि पशुओ मे मनुष्यो के समान जैव अस्तित्व हो सकता है, परन्तु उनमे आत्मा नही है। हम विश्वास करते है कि आत्मा केवल मनुष्यो मे होती है।

श्रील प्रभुपाद—हमारी भगवद्गीता कहती है **सर्वयोनिषु**, "जीवन की सभी योनियो मे आत्मा रहती है।" यह शरीर कपड़े के सूट (कोट और पैण्ट) के समान है। आपके काले वस्त्र है, और मैं गेरुआ वस्त्र धारण किए हुए हूँ। परन्तु वस्त्र के भीतर आप एक मनुष्य है और मैं भी एक मनुष्य हूँ। उसी प्रकार, विभिन्न योनियों

के विभिन्न शरीर, विभिन्न प्रकार के वस्त्रों के समान ही है। चौरासी लाख योनियाँ या वस्त्र है, परन्तु प्रत्येक योनियों में एक जीवात्मा है, जो श्रीभगवान् का एक अंश है। कल्पना कीजिए एक मनुष्य के दो पुत्र है और समान रूप से गुणी नही है ! एक उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश हो सकता है दूसरा एक साधारण श्रमिक मजदूर परन्तु पिता यह दावा करता है कि दोनो ही उसके पुत्र है। वह ऐसा कोई अन्तर नही देखता कि जो पुत्र न्यायाधीश है वह बहुत महत्वपूर्ण है और जो श्रमिक है उस पुत्र का महत्व नही है। और यदि न्यायाधीश पुत्र कहे, "प्रिय पिताजी, आपका दूसरा पुत्र अनुपयोगी है, इसलिए मै उसको काट डालता हूँ और खा लेता हूँ," क्या पिता इसकी आज्ञा देगा।

कार्डिनल—निश्चय ही नही, परन्तु यह विचार कि सभी प्रकार के जीवन ईश्वर के जीवन के अंग है, हम लोगो के लिए स्वीकार करना थोड़ा-सा कठिन है। मानव जीवन और पशु जीवन में महान् अन्तर है।

श्रील प्रभुपाद—वह अन्तर चेतना से विकास के कारण है। मनुष्य शरीर मे विकसित चेतना है। एक वृक्ष मे भी आत्मा है परन्तु वृक्ष की चेतना बहुत अधिक विकसित नही है। यदि आप वृक्ष को काटे तो वह प्रतिरोध नही करता। वास्तव में, वह प्रतिरोध करता है, परन्तु बहुत ही कम अंश मे। जगदीशचन्द्र बोस नाम के एक भारतीय वैज्ञानिक थे, जिन्होने ऐसा यन्त्र बनाया जो यह दर्शाता है कि पेड़ पौधे भी काटे जाने पर पीड़ा का अनुभव करने मे समर्थ है। और हम प्रत्यक्ष रूप से भी देख सकते है कि जब कोई एक पशु की हत्या करने के लिए आता है तो वह पशु प्रतिरोध करता है, वह रोता है और भयभीत स्वर मे पुकारता है। तो यह केवल चेतना के विकास का प्रश्न है, परन्तु सभी जीवो मे आत्मा होती है।

कार्डिनल—परन्तु तात्त्विक दृष्टिकोण से, मनुष्य का जीवन पवित्र है। मनुष्य के सोचने का स्तर पशुओ के स्तर से उच्च है।

श्रील प्रभुपाद—वह उच्च स्तर क्या है ? पशु अपने शरीर का निर्वाह करने के लिए भोजन करता है और मनुष्य भी अपने शरीर का निर्वाह करने के लिए भोजन करते है। गाय खेत मे घास खाती है और मनुष्य अपने यन्त्रो से पूर्ण विशाल कसाईखाने से मास खाता है। परन्तु आपके पास एक विशाल यन्त्र और वीभत्स दृश्य है, जबकि पशु केवल घास खाते है, तो इसका यह अर्थ तो नही हुआ कि आप इतने विकसित है कि केवल आपके शरीर मे ही आत्मा है और पशु के शरीर मे कोई आत्मा नही है। यह तर्क विरुद्ध (असंगत) है। हम भली-भाँति देख सकते है कि पशु और मनुष्य की आधारभूत विशेषताएँ एक ही है।

कार्डिनल—परन्तु केवल मनुष्यो मे ही हम जीवन का अर्थ जानने के लिए एक तात्त्विक अन्वेषण (खोज) पाते है।

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ। तो आप तात्त्विक दृष्टिकोण से ही अन्वेषण कीजिए कि आप क्यो यह विश्वास करते है कि पशु मे आत्मा नही है। यही तत्त्व-मीमांसा है। यदि आप तात्त्विक दृष्टिकोण से सोच रहे है, तो यह ठीक है। परन्तु यदि आप एक पशु के समान सोच रहे है, तब आपके तात्त्विक अध्ययन का उपयोग ही क्या है? तात्त्विक का अर्थ होता है, "प्राकृत वस्तु से परे।" दूसरे शब्दो में, "आध्यात्मिक (अप्राकृत)।" भगवद्गीता मे श्रीकृष्ण कहते है—**सर्वयोनिषु कौन्तेय**—"प्रत्येक प्राणी मे आत्मा होती है," यही तात्त्विक ज्ञान है। तो अब आप श्रीकृष्ण शिक्षाओं को तात्त्विक स्वीकार कीजिए अथवा आपको एक तृतीय श्रेणी के मूर्ख की सम्मति को तात्त्विक मानना पड़ेगा आप किसको स्वीकार करते है?

कार्डिनल—परन्तु ईश्वर ऐसे पशुओ की सृष्टि ही क्यों करते हैं जो दूसरे को खाते है? ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी सृष्टि मे दोष है।

श्रील प्रभुपाद—यह दोष नही है। श्रीभगवान् अत्यन्त दयालु हैं। यदि आप पशु को खाना चाहते है तो आपको इसकी पूर्ण सुविधा देगे। अगले जन्म मे भगवान् आपको एक शेर का शरीर प्रदान करेंगे जिससे आप अत्यन्त उन्मुक्त ढंग सेमांस खा सके। "तुम पशुवधशालाएँ क्यों चला रहे हो? मैं तुम्हें दाँत और पंजे दूँगा। अब मांस खाओ।" मांसाहारी इस प्रकार के दण्ड की ही प्रतीक्षा कर रहे हैं। मांसाहारी अगले जन्म मे शेर, भेड़िए, बिल्ली और कुत्ते बनते है जिससे उनको मांस खाने की अधिकाधिक सुविधा प्राप्त हो सके।

कलियुग में योगाभ्यास

परा चेतना

"परमात्मा सभी के हृदय मे वर्त्तमान एव सर्वत्र स्थित रहने के कारण प्रत्येक के अस्तित्व के विषय मे चेतन हैं। यह सिद्धान्त कि आत्मा और परमात्मा एक हैं, स्वीकार करने योग्य नही है क्योकि एक व्यक्तिगत आत्मा की चेतना, परा चेतना के रूप मे कार्य नही कर सकती। इस परा चेतना की तभी प्राप्ति हो सकती है, जब व्यक्तिगत चेतना का परा चेतना से सामजस्य कर दिया जाय और सामजस्य स्थापित करने की यह विधि शरणागति अर्थात् श्रीकृष्णभावनामृत कहलाती है।"

श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति प्रशिक्षित भक्ति-योगियों का सर्वोच्च योग है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा प्रस्तुत प्रामाणिक योगाभ्यास सूत्र एव पतंजलि योगमार्ग के द्वारा समर्थित योग साधन, आजकल साधन किए जा रहे हठयोग से भिन्न है। इसी हठयोग को पश्चिमी देशों में 'योग' के नाम से प्रायः जाना जाता है।

वास्तविक योगाभ्यास का अर्थ है इन्द्रियो पर नियन्त्रण करना और ऐसा नियन्त्रण हो जाने के पश्चात्, भगवान् श्रीकृष्ण के श्रीनारायण स्वरूप पर मन को एकाग्र करना। भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् है तथा शंख, चक्र, गदा एवं पद्म से सुशोभित चार भुजाओ वाले अन्य दूसरे विष्णु स्वरूप श्रीकृष्ण के स्वांश हैं।

भगवद्गीता मे इसका अनुमोदन किया गया है कि हमे श्रीभगवान् के स्वरूप का ध्यान करना चाहिए। मन को एकाग्र करने का अभ्यास करने के लिए, धार्मिक वातावरण के द्वारा पवित्र किए गए एकान्त स्थान मे जाकर व्यक्ति को बैठना पड़ता है, और योगी को ब्रह्मचर्य के विधि-विधानो का पालन करना चाहिए। दूसरे शब्दो मे, वह सुदृढता के साथ आत्म-सयम और ब्रह्मचर्य (स्त्री-संग से पूर्ण रूप से दूर) से युक्त जीवन व्यतीत करे। कोई भी घनी आबादी के नगर मे, (उच्छृङ्खल) जीवन बिताते हुए योग का अभ्यास नही कर सकता। उच्छृङ्खल जीवन के अन्तर्गत किसी प्रतिबन्ध के बिना ही काम-भोग और परम लोभी जिह्वा (जीभ) का निःसंकोच प्रयोग सम्मिलित है। हम यह पहले ही कह चुके है कि योगाभ्यास का अर्थ है इन्द्रियो पर नियन्त्रण करना और इन्द्रियो पर नियन्त्रण का आरम्भ होता है जीभ

पर नियन्त्रण करने से । आप जीभ को सब प्रकार के निषिद्ध भोजन और मदिरा पान करने की अनुमति देते हुए योग के अभ्यास में किसी प्रकार की भी उन्नति नही कर सकते है । यह एक बहुत ही खेदजनक तथ्य है कि अनेकानेक मार्ग-भ्रष्ट अप्रमाणिक तथाकथित योगी, न केवल भारतवर्ष में वरन् पश्चिमी देशो मे भी जा कर लोगों की योग करने की रुचि का दुरुपयोग करके उनका शोषण कर रहे है। ऐसे अप्रमाणिक योगी सार्वजनिक रूप से यह कहने का भी साहस कर बैठते है कि मनुष्य मदिरा पान करने के साथ-साथ ध्यान भी कर सकता है ।

पाँच हजार वर्ष पूर्व, भगवद्गीता के संवाद में, भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने शिष्य अर्जुन को योग का अभ्यास करने का परामर्श दिया। परन्तु अर्जुन ने योग के कठोर विधि और नियमों का पालन करने में अपनी अयोग्यता स्पष्ट रूप से व्यक्त की थी । हमें प्रत्येक कार्यक्षेत्र में व्यवहारिक बनना चाहिए । हम योग के नाम पर कुछ अद्भुत आसन (शारीरिक व्यायाम) करने मे ही अपना बहुमूल्य समय व्यर्थ नष्ट न करे । हृदय में स्थित चतुर्भुज परमात्मा की खोज करना और ध्यान में निरन्तर उनका दर्शन करना ही वास्तविक योग है। ऐसा (नित्य-निरन्तर) ध्यान 'समाधि' कहलाता है । किन्तु यदि कोई व्यक्ति शून्य या निराकार पर ध्यान करना चाहे, तो योगाभ्यास के द्वारा कुछ भी प्राप्त करने में बहुत लम्बे समय की आवश्यकता पड़ेगी । हम अपने मन को किसी शून्य या, निराकार पर एकाग्र नही कर सकते । वास्तविक योगाभ्यास तो यह है कि सभी के हृदय मे निवास करने वाले चतुर्भुज श्रीनारायण के स्वरूप पर मन को स्थिर करना ।

कभी-कभी यह कहा जाता है कि ध्यान के द्वारा व्यक्ति सुगमतापूर्वक ही यह समझ जाएगा कि श्रीभगवान् सभी के हृदय मे सदैव स्थित है, भगवान् सभी के हृदय में स्थित है । न केवल वे मनुष्यों के हृदय मे है वरन् वे कुत्ते और बिल्ली के हृदय में भी स्थित है । भगवद्गीता यह घोषणा करती हुई इसे प्रमाणित करती है कि ईश्वर, जगत् के परम नियन्त्रक सभी के हृदय में स्थित है, **ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति**—[गीता १८ ६१] । वे केवल सभी के हृदय मे ही उपस्थित नही अपितु परमाणु के भीतर भी है । कोई स्थान रिक्त नही है, कोई स्थान भगवान् की उपस्थिति के बिना नही है।

श्रीभगवान् का वह पक्ष जिसके द्वारा वे प्रत्येक स्थान में उपस्थित है, परमात्मा कहलाता है । आत्मा का अर्थ है व्यक्तिगत जीव (चेतना) और परमात्मा का अर्थ है व्यक्तिगत परम चेतन । आत्मा और परमात्मा दोनो ही का अपना-अपना स्वरूप (व्यक्तित्व) है । किन्तु उनके बीच अन्तर यह है कि आत्मा केवल एक विशेष स्थान में उपस्थित है जबकि परमात्मा सर्वत्र उपस्थित है ।

इस सम्बन्ध में, सूर्य का उदाहरण बहुत सुन्दर है । एक व्यक्तिगत मनुष्य

भले ही एक स्थान पर स्थित रह सकता है, परन्तु सूर्य की एक विशिष्ट व्यक्तिगत सत्ता होने पर भी वह प्रत्येक व्यक्तिगत मनुष्य के सिर पर उपस्थित है। श्रीमद्-भगवद्गीता मे इसे बहुत ही सुन्दर ढंग से समझाया गया है। इसलिए, सभी प्राणियो मे भगवान् के समान गुण है। परन्तु परमात्मा और जीवात्मा मे प्रकाश (विस्तार) के परिमाण मे भेद है। भगवान् या परमात्मा अपना विस्तार लाखो विभिन्न रूपो में कर सकते हैं जबकि जीवात्मा ऐसा नही कर सकती।

परमात्मा की सबके हृदय मे स्थिति होने के कारण सभी के भूत, वर्त्तमान और भविष्य के कार्यों को देख सकते है। उपनिषदो मे परमात्मा को जीवात्मा के साथ बैठा हुआ सखा और साक्षी (गवाह) कहा गया है। मित्र के रूप मे वे जीवात्मा को, उसके घर भगवान् के धाम मे वापस ले जाने के लिए सदा ही अधीर रहते है। साक्षी के रूप मे, वे जीव के कार्यों के सभी प्रकार के परिणामों को देने वाले है। जीवात्मा जो भी इच्छा करे, परमात्मा उसे प्राप्त करने मे सब प्रकार की सुविधाएँ देते है। परन्तु वे अपने मित्र को उपदेश देते है जिससे वह अन्त में और दूसरे सभी कार्यो को छोड़कर केवल भगवान् की शरण मे आ जाए। फलस्वरूप उसको सच्चिदानन्द जीवन (ज्ञान से पूर्ण चिरस्थायी आनन्द का नित्य जीवन) प्राप्त हो सके। सभी प्रकार के योगो के सम्बन्ध मे सर्वाधिक प्रामाणिक और व्यापक रूप से अध्ययन किए जाने वाले ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता का यही अन्तिम उपदेश है।

भगवद्गीता का यह उपरोक्त उपदेश अन्तिम शब्द, योग साधन की सिद्धि की पराकाष्ठा (सीमा) है। भगवद्गीता मे आगे कहा गया है कि जो व्यक्ति श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति मे सदैव मग्न रहता है वह सर्वोच्च योगी है। यह श्रीकृष्णभावनामृत है क्या ?

जीवात्मा जिस प्रकार अपनी चेतना के द्वारा सम्पूर्ण शरीर में सर्वत्र उपस्थित है, उसी प्रकार परमात्मा अपनी परा चेतना के द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि में उपस्थित है। इस परम चेतना का अनुकरण जीवात्मा के द्वारा नही किया जा सकता। जीव का बोध (जानकारी) सीमित है। उदाहरण के लिए, मैं समझ सकता हूँ कि मेरे सीमित शरीर मे क्या हो रहा है, परन्तु मैं यह अनुभव नही कर सकता कि दूसरे के शरीर मे क्या हो रहा है। मैं अपनी चेतना के द्वारा अपने सम्पूर्ण शरीर मे उपस्थित हूँ, परन्तु मैं अपनी चेतना के द्वारा किसी अन्य के शरीर मे उपस्थित नही हूँ। किन्तु परमात्मा सभी मे उपस्थित और प्रत्येक स्थान पर स्थित होने के कारण सभी के अस्तित्व के ज्ञाता है। यह सिद्धान्त कि आत्मा और परमात्मा एक है स्वीकार करने के योग्य नही है, क्योंकि जीवात्मा की चेतना परा चेतना के रूप मे कार्य नही कर सकती। यह परा चेतना केवल तभी प्राप्त की जा सकती है जब जीवात्मा की चेतना का परम चेतना के साथ सामंजस्य हो जाय

और यह सामंजस्य स्थापिन करने के विधि शरणागति अर्थात् श्रीकृष्णभावनामृत कहलाती है।

भगवद्गीता की शिक्षाओ से हम बहुत ही स्पष्ट ढग से यह समझते है कि अर्जुन आरम्भ मे अपने सम्बन्धियो के साथ युद्ध नही करना चाहते थे। परन्तु भगवद्गीता को समझने के पश्चात् जब उन्होने अपनी चेतना का सामजस्य भगवान् श्रीकृष्ण की परा चेतना के साथ कर दिया, तो उनकी चेतना श्रीकृष्णभावनामृत बन गई। पूर्ण रूप से कृष्णभावनाभावित व्यक्ति श्रीकृष्ण के आदेशो के अनुसार ही कार्य करता है और इसलिए अर्जुन ने कुरुक्षेत्र का युद्ध करना स्वीकार कर लिया था।

श्रीकृष्णभावनामृत के साधन के आरम्भ मे श्रीभगवान् का यह आदेश गुरु महाराज रूपी पारदर्शी माध्यम के द्वारा मिलता है। जब हम पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित हो जाते है और विश्वसनीय गुरु महाराज के निर्देशन के अन्तर्गत श्रीकृष्ण में विनम्र श्रद्धा विश्वास और प्रेम हो जाने के कारण, कर्म करते है तब सामजस्य स्थापित करने की विधि और अधिक दृढ एव यथार्थ हो जाती है। इस अवस्था पर श्रीकृष्ण प्रेरणा द्वारा आदेश देते है। बाहर से भक्त को श्रीकृष्ण के विश्वसनीय प्रतिनिधि, गुरुदेव के द्वारा सहायता दी जाती है और भीतर से भगवान् सभी के हृदय मे स्थित होने के कारण चैत्य गुरु के रूप मे भक्त की सहायता करते है।

"केवल यह समझ जाना कि भगवान् सभी के हृदय मे स्थित है," सिद्धि नही है। हमे भगवान् से आन्तरिक और बाह्य दोनो ही रूपो मे परिचित होकर श्रीकृष्णभावनामृत मे कार्य करना पडेगा। मानव जीवन की यह चरम सिद्धि की अवस्था है और सभी योग साधनो मे सर्वोच्च साधन है।

एक सिद्ध योगी के लिए आठ प्रकार की सिद्धियाँ (अलौकिक उपलब्धियाँ) होती हैं :

(१) परमाणु से भी छोटा हो जाना (अणिमा)।
(२) पर्वत से भी बड़ा हो जाना (महिमा)।
(३) हवा से भी अधिक हल्का हो जाना (लघिमा)।
(४) जो भी प्राप्त करने की इच्छा हो, उसे पा लेना (प्राप्ति)।
(५) इच्छा अनुसार किसी प्रकार के भौतिक पदार्थ की सृष्टि कर लेना उदाहरण के लिए एक लोक की सृष्टि करना (ईशित्व)।
(६) प्रभु के समान दूसरों को वशीभूत कर लेना (वशीत्व)।
(७) इस लोक में या इस लोक से परे ब्रह्माण्ड में किसी भी स्थान पर मुक्त रूप से यात्रा कर लेना (प्रकाम्य)।

(८) अपनी मृत्यु का समय एवं स्थान निश्चित कर लेना और इच्छा होने पर पुनः जन्म लेना (कामावसायता)।

परन्तु जब कोई भगवान् से आदेश प्राप्त करने की सिद्ध-अवस्था तक उन्नति कर लेता है तो वह ऊपर वर्णन की गई भौतिक उपलब्धियो की अवस्था से ऊँचा उठ जाता है।

योग साधना मे प्राणायाम (श्वास को रोकना) जिसका प्राय. अभ्यास किया जाता है, वह साधना का केवल एक आरम्भ है। परमात्मा पर ध्यान इससे एक आगे का पग है। अद्भुत लौकिक सफलताओ की प्राप्ति भी केवल इससे एक ही पग आगे है। परन्तु परमात्मा के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करके उनसे आदेश लेना, सिद्धि की सर्वोच्च अवस्था है।

प्राणायाम और ज्ञानयोग की विधियाँ इस युग के लिए बहुत कठिन है। वास्तव मे वे पाँच हजार वर्ष पहले भी कठिन थी, नही तो अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण के प्रस्ताव को स्वीकार किया होता। यह कलियुग पतित युग कहलाता है। वर्त्तमान काल मे, लोगो की आयु प्रायः कम होती है और वे आत्मसाक्षात्कार या आध्यात्मिक जीवन को समझने मे अत्यन्त सुमन्द होते है। इतना ही नही वे सबसे अधिक अभागे भी है और इसलिए यदि किसी मे आत्मसाक्षात्कार की थोड़ी-सी रुचि हो भी, तो वह अनेकानेक कपटी लोगो के द्वारा मार्गभ्रष्ट हो जाता है। योग की सिद्ध-अवस्था की अनुभूति करने का यथार्थ मे केवल एक ही ढंग है और वह है भगवद्-गीता के सिद्धान्तो का उस प्रकार पालन करना, जिस प्रकार भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु ने किया था। यह योगाभ्यास की सबसे अधिक सरल और सर्वोच्च सिद्धि है।

भगवान् श्रीचैतन्य ने श्रीकृष्णभावनामृत के योग का, केवल कृष्ण-नाम कीर्त्तन के द्वारा व्यवहारिक रूप से प्रचार किया था। श्रीकृष्ण के नामो का वर्णन वेदान्त, श्रीमद्भागवत और अनेक महत्वपूर्ण पुराणो मे आया है। अधिकांश भारतीय इस योगाभ्यास का साधन करते है और अब अमेरिका एवं अन्य पश्चिमी देशो के नगरो मे भी यह योगाभ्यास धीरे-धीरे फैल रहा है। इस युग के लिए यह बहुत सरल और व्यावहारिक है, विशेषतः उन लोगो के लिए जो योग मे सफलता प्राप्त करने मे गम्भीर है। कोई भी दूसरी विधि इस युग मे सफल नही हो सकती है।

स्वर्ण युग अर्थात् सत्य युग मे ध्यानयोग की विधि का यथोचित रूप से पालन करना सम्भव था, क्योंकि लोग उस युग मे औसत एक लाख वर्ष तक जीवित रहते थे।

किन्तु वर्तमान युग में यदि आप व्यावहारिक योग में सफलता चाहते हैं तो इस महामन्त्र का कीर्त्तन कीजिए—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे ॥

इस महामन्त्र का कीर्त्तन करने से आप स्वयं ही यह अनुभव कर सकते है कि किस प्रकार आप उन्नति कर रहे है। व्यक्ति को यह स्वयं ही जानना चाहिए कि वह योगाभ्यास करने मे कितनी उन्नति कर रहा है।

भगवद्गीता में श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति के अभ्यास को **राज-विद्या** (सभी विद्याओं का राजा), **राजगुह्यम्**—आध्यात्मिक साक्षात्कार का सबसे अधिक गोपनीय साधन, **पवित्रम्** (पवित्रो मे सबसे अधिक पवित्र), **सुसुखम्** (सुख पूर्वक किया जाने वाला) और **अव्ययम्** (अविनाशी) कहा गया है।

जिन्होंने इन सबसे अधिक श्रेष्ठ भक्ति-योग के साधन को ग्रहण किया है, वे साक्षी दे सकते है कि वे कितने सुन्दर ढंग से इस भक्ति के सुखद और सरल साधन का रसास्वादन कर रहे है। भक्ति का अर्थ है दिव्य कृष्ण-प्रेम के कारण, श्रीकृष्ण की स्नेहमयी सेवा करना। योग का अर्थ है इन्द्रियो पर नियन्त्रण करना और भक्ति-योग का अर्थ है इन्द्रियो को शुद्ध करना। जब इन्द्रियाँ शुद्ध हो जाती है तो अपने आप ही नियन्त्रित भी हो जाती हैं। आप किसी कृत्रिम साधन के द्वारा इन्द्रियो के कार्यो को नही रोक सकते है, परन्तु यदि आप इन्द्रियो को शुद्ध कर ले, तो न केवल वे निकृष्ट सेवा करने से रुक जाती है वरन् वे श्रीभगवान् की अप्राकृत (दिव्य) सेवा में सार्थक रूप से सलग्न हो जाती है।

श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति हमारे अनुमानो की रचना नही है। श्रीमद्भगवद्गीता में इसे निर्धारित किया गया है, इसके अनुसार जब हम कृष्ण-चिन्तन, कृष्ण-कीर्त्तन, कृष्ण-सेवन, कृष्ण-प्रसाद, कृष्ण-चर्चा और श्रीकृष्ण का अनन्य आश्रय लेते हैं, तो हम निःसन्देह श्रीकृष्ण के समीप लौट जाते है। श्रीकृष्ण-भावनामृत का यही सार सर्वस्व है।

"श्री चैतन्य महाप्रभु स्वय श्री कृष्ण हैं और वे एक अत्यधिक सरल विधि के द्वारा शिक्षा दे रहे हैं कि भगवत्प्रेम का किस प्रकार विकास किया जाय जनता साक्षात्कार की अनेकानेक विधियो के द्वारा उलझन मे पडी हुई है। वह ध्यान अथवा योग यथार्थ अनुष्ठान-विधियो का पालन नही कर सकती, यह सम्भव ही नही है। अतएव भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु कहते हैं कि यदि कोई इस भगवन्नाम-कीर्तन की विधि को ग्रहण कर ले तो वह भगवत् साक्षात्कार स्तर की तात्कालिक प्राप्ति कर सकता है।"

पीतावतार, भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु, श्रीधाम मायपुर, नवद्वीप (पश्चिमी बंगाल) में लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व प्रकट हुए थे। देश की यह प्रथा है कि जब शिशु का जन्म होता है तो ज्योतिषी को निमन्त्रित किया जाता है। जब भगवान् श्रीकृष्ण, पाँच हजार वर्ष पूर्व प्रकट हुए, तो उनके पिता द्वारा गर्ग मुनि को बुलाया गया था। गर्गाचार्य ने कहा, "यह शिशु पूर्व में तीन वर्ण शुक्ल, रक्त और पीत मे प्रगट हुआ था और अब इसका कृष्ण वर्ण हुआ है।" शास्त्रो मे श्रीकृष्ण का वर्ण मेघ के समान काला कहा गया है। भगवान् श्रीचैतन्य को श्रीकृष्ण समझा जाता है, जो पीत वर्ण में प्रकट हुए है। वैदिक शास्त्रो मे इसके कई प्रमाण है कि श्रीचैतन्य महाप्रभु भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार है और इसे विद्वानो एवं भक्तों के द्वारा प्रमाणित किया गया है। श्रीमद्भागवत मे आता है [११. ५. ३२]:

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः संकीर्त्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥

अर्थात् इस वर्त्तमान समय (कलियुग) में श्रीकृष्ण अर्थात् भगवान् के अवतार सदा ही श्रीकृष्ण का वर्णन करने में संलग्न रहेगे। वे श्रीकृष्ण है परन्तु कृष्ण-भक्त के रूप मे वे स्वयं अपना वर्णन करते है। और इस युग मे उनके शरीर का रंग 'कृष्ण' (काला) नही होगा। इसका अर्थ हुआ कि वह रंग शुक्ल (सफेद), रक्त (लाल) अथवा पीत (सुनहरा या गोरा), हो सकता है क्योंकि ये चार रंग—सफेद, लाल, पीला और काला—विभिन्न युगो के अवतारों रंग है। लाल, श्वेत, और काला रंग पूर्व के अवतारो के द्वारा ग्रहण किया जा चुका है अतः श्रीचैतन्य महाप्रभु के

द्वारा गोरा रंग स्वीकार किया गया। उनका रंग काला नही है, परन्तु वे श्रीकृष्ण हैं।

इस अवतार की दूसरी विशेषता यह है कि वे सदा ही अपने पार्षद (सहकारी) जनो के साथ रहते हैं। भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु के चित्र में हम देखेगे कि सदा ही उनके साथ कीर्त्तन करते हुए अनेकानेक भक्त रहते है। जब-जब भगवान् अवतार लेते है तो उनके दो उद्देश्य होते है, जैसे कि भगवद्गीता [४. ८] में कहा गया है। वहाँ श्रीकृष्ण कहते है—"जब-जब मै प्रगट होता हूँ, तो मेरा उद्देश्य साधुओ का उद्धार और असुरो का नाश होता है।"

जब भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए तो उनको अनेक असुरो का वध करना पड़ा था। यदि हम भगवान् श्रीविष्णु का चित्र देखे तो उनके पास शख, चक्र, गदा और पद्म रहते है। गदा और चक्र असुरों का वध करने के लिए है। इस संसार मे दो प्रकार के मनुष्य है—असुर (अभक्त) और सुर (भक्त)। भक्त देवता भी कहलाते हैं और वे लगभग ईश्वर के ही समान है, क्योकि उनमे दैवी गुण होते है। जो भक्त हैं उनको देवता कहा जाता है और जो अभक्त है, नास्तिक है, वे असुर कहलाते है। तो भगवान् श्रीकृष्ण दो प्रयोजन के लिए यहाँ आते है, भक्तो की रक्षा करने के लिए और दुष्टो का नाश करने के लिए। इस युग मे भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु का मिशन भी यही है, भक्तो की रक्षा करना और अभक्तों को नष्ट करना। परन्तु इस युग में भगवान् का अस्त्र भिन्न है। वह चक्र, गदा अथवा कोई घातक अस्त्र नही है—उनका अस्त्र है "संकीर्त्तन अभियान।" भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु ने संकीर्त्तन अभियान का आरम्भ लोगो की आसुरी प्रवृत्ति का वध करने के लिए किया है। भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु का यह विशेष महत्व है। इस युग मे लोग पहले से ही अपनी हत्या कर रहे हैं। उन्होने परमाणु अस्त्र की खोज की है, इसके द्वारा वे स्वयं अपना वध कर लेंगे। तो इसलिए श्रीभगवान् के द्वारा उनका वध अथवा उद्धार करने की कोई भी आवश्यकता नही है। परन्तु श्रीमन्महाप्रभु लोगों की आसुरी प्रवृत्ति का वध करने के लिए प्रगट हुए। यह वध श्रीकृष्णभावनामृत अभियान के द्वारा सम्भव है।

इसलिए श्रीमद्भागवत मे यह कहा गया है कि श्रीचैतन्य महाप्रभु इस युग के भगवान् के अवतार हैं, और उनका पूजन कैसे किया जाता है? पूजा करने की विधि बहुत ही साधारण है। पार्षद सहित भगवान् श्रीचैतन्य का केवल एक चित्र रख लीजिए। बीच में भगवान् श्रीचैतन्य और उनके चारो ओर उनके प्रधान पार्षद—श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैत प्रभु, श्रीगदाधर पण्डित और श्रील श्रीवास पण्डित। हमे इस पंचतत्त्व के चित्र को अपने सामने केवल रख भर लेना है। हम चित्र को कही भी रख सकते हैं। कोई भी इस चित्र को अपने घर मे रख सकता है, इस हरे

कृष्ण महामन्त्र का कीर्त्तन कर सकता है और इस विधि से भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु की पूजा की जा सकती है। यह एक साधारण-सी विधि है। परन्तु इस साधारण विधि को ग्रहण कौन कर सकेगा? केवल वे ही जिनके पास सद्बुद्धि (सुमेधसः) है। यदि कोई केवल श्रीचैतन्य महाप्रभु का चित्र अपने घर पर रखता है और हरे कृष्ण कीर्त्तन करता है, तो वह भगवद्-साक्षात्कार कर लेगा। कोई भी इस सुगम विधि को ग्रहण कर सकता है। ऐसी सरल विधि मे कष्ट का प्रश्न ही कहाँ उठता है। इसमे कोई खर्च नही है। कोई कर (टैक्स) नही है और न ही कोई बहुत बड़ा चर्च अथवा मन्दिर बनाने की आवश्यकता है। कोई भी, कही भी, मार्ग पर या वृक्ष के नीचे बैठ सकता है और हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्त्तन के द्वारा श्रीभगवान् की पूजा कर सकता है। इसलिए यह एक महान् अवसर है। उदाहरण के लिए, व्यापार या राजनीति में कभी-कभी व्यक्ति को एक महान् अवसर मिल जाता है। जो बुद्धिमान् राजनीतिज्ञ हैं वे इसका लाभ उठा कर, उस महान् अवसर के द्वारा पहली बार में ही सफलता प्राप्त कर लेते हैं। उसी प्रकार इस युग मे जिन व्यक्तियो के पास पर्याप्त बुद्धि है, वे इस सकीर्त्तन अभियान को ग्रहण करते है और बहुत शीघ्र ही उन्नति कर लेते है।

भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु को "गौरसुन्दर अवतार" कहा जाता है। अवतार का अर्थ है, "अवतरण करना" या "नीचे उतरना।" जिस प्रकार कोई व्यक्ति भवन की पाँचवी मंजिल या सौवी मजिल से नीचे आ सकता है, उस प्रकार एक अवतार परव्योम (चिदाकाश) के वैकुण्ठ लोको से नीचे आता है। यह आकाश जो हम अपने नेत्र से या दूरबीन (टेलिस्कोप) के द्वारा देखते हैं वह केवल भौतिक आकाश है। परन्तु इस आकाश से परे एक दूसरा आकाश है, जिसे अपने नेत्र अथवा किसी यन्त्रो के द्वारा देख पाना सम्भव नही है। वह जानकारी भगवद्गीता मे है: यह कोई कल्पना नही है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते है कि इस भौतिक आकाश (भूताकाश) के परे एक दूसरा आकाश है जिसे परव्योम (चिदाकाश) कहते है।

हमे भगवान् श्रीकृष्ण के वचनो को यथानुरूप ग्रहण करना है। उदाहरण के लिए, हम बालको को शिक्षा देते हैं कि भारत के परे जर्मनी और इंग्लैण्ड नामक अन्य स्थान है और बालको को इन स्थानो के विषय मे शिक्षक के माध्यम से सीखना पडता है, क्योकि वे स्थान उनकी बुद्धि से परे है। इसी प्रकार, इस भौतिक आकाश के परे एक दूसरा आकाश है। हम उसके विषय मे कोई प्रयोग नही कर सकते, जिस प्रकार कि एक छोटा-सा बालक जर्मनी अथवा इंग्लैण्ड को ढूंढने के लिए कोई प्रयोग नही कर सकता। यह सम्भव नही है। यदि हम ज्ञान चाहते हैं, तो हमे अधिकारी (महाजन) को स्वीकार करना ही पड़ता है। उसी प्रकार यदि

हम यह जानना चाहते है कि इस भौतिक जगत् के परे क्या है, तो हमको वैदिक प्रमाण को स्वीकार करना ही पड़ता है। नही तो उस विषय के गणना की कोई सम्भावना ही नही है। इस एक ब्रह्माण्ड में ही दूर स्थित लोको मे नही जाया जा सकता है, तो फिर इस ब्रह्माण्ड के परे जाने के विषय मे तो कहना ही क्या ? यह गणना की गई है कि आधुनिक यन्त्रों सहित इस ब्रह्माण्ड के सर्वोच्च लोक मे जाने के लिए, व्यक्ति को चालीस हजार प्रकाश वर्ष तक यात्रा करनी पड़ेगी। तो हम इस सम्पूर्ण भौतिक आकाश के क्षेत्र तक में भी यात्रा नही कर सकते है। हमारे जीवन और साधन इतने सीमित है कि हमे इस भौतिक जगत् के विषय मे भी यथोचित ज्ञान नही हो सकता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में, जब अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण से प्रश्न किया, "क्या आप दया करके इसकी व्याख्या कीजिएगा कि आपकी शक्तियाँ किस प्रकार कार्य कर रही हैं ?" परम ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने इस विषय पर उनको अनेक उदाहरण दिए और अन्त में उन्होंने कहा, "प्रिय अर्जुन, मैं अपनी शक्तियों के विषय में क्या व्याख्या करूँ। वास्तव में तुम्हारे लिए यह समझ पाना सम्भव नही है। परन्तु तुम मेरी शक्तियो के विस्तार के विषय मे केवल कल्पना कर सकते हो, यह भौतिक जगत् जिसमे करोड़ों ब्रह्माण्ड है, वह मेरी केवल एक चौथाई सृष्टि का प्रदर्शन है।" हम एक ब्रह्माण्ड की स्थिति तक की भी कल्पना नही कर सकते और इस प्रकार के असख्य ब्रह्माण्ड है। इस भौतिक आकाश के परे परव्योम (चिदाकाश) है और उसमे भी लाखो वैकुण्ठ लोक है। यह समस्त जानकारी वैदिक साहित्य से प्राप्त होती है। यदि मनुष्य वैदिक साहित्य को स्वीकार करे, तो वह यह ज्ञान प्राप्त कर सकता है। यदि कोई स्वीकार नही करे, तो इसका और कोई दूसरा साधन नही है। यह हमारा चुनाव है। इसलिए वैदिक सभ्यता के अनुसार, जब कभी भी एक आचार्य प्रवचन देते है, तो वे तत्काल ही वैदिक साहित्य से सन्दर्भ प्रस्तुत करते हैं। और तभी अन्य लोग उनके कथन को स्वीकार करते है : "हाँ, यह सही है।" न्यायालय मे अधिवक्ता (वकील) न्यायालय के द्वारा दिए गए पहले के निर्णयो से सन्दर्भ देता है और यदि उसका मुकदमा ठोस है तो न्यायाधीश उसे स्वीकार कर लेता है। उसी प्रकार, यदि कोई वेदो से प्रमाण दे सके, तो यह समझा जाता है कि उसकी स्थिति वास्तविक है।

भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु इस युग के अवतार है और वैदिक साहित्य में उनका वर्णन आता है। हम किसी को तब तक अवतार नही मान सकते, जब तक उस व्यक्ति मे शास्त्रो मे दिए गए लक्षण न पाए जाएँ। हम मनमानी ही, मतो के आधार पर भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु को एक अवतार नही मान लेते है। आजकल तो यह एक प्रथा अर्थात् फैशन सा हो गया है कि कोई भी मनुष्य आकर

दयालु है कि हम जो कुछ भी चाहते है वे दे देते हैं। यदि हम शेर का शरीर चाहें तो श्रीकृष्ण हमको वह अवसर भी देंगे। शेर के शरीर मे शेर के समान बल है और ऐसे दाँत है जिनके द्वारा पशुओ को पकड कर उनके ताजे रक्त का पान किया जा सकता है। और यदि हम एक सन्त अर्थात् भगवान् की सेवा मे सलग्न व्यक्ति का शरीर चाहते है, तो भगवान् हमको वैसा ही शरीर देंगे। यह भगवद्‌गीता में कहा गया है।

यदि कोई व्यक्ति आत्म-साक्षात्कार की विधि—योग मे संलग्न हो और किसी प्रकार उस विधि को पूर्ण करने मे असफल हो जाय, तो उसे एक दूसरा अवसर दिया जाता है। वह अवसर यह है कि उस व्यक्ति का विशुद्ध ब्राह्मण अथवा धनी मनुष्य के परिवार मे जन्म होता है। यदि कोई इतना भाग्यशाली है कि उसे ऐसे परिवार मे जन्म मिले, तो उसे आत्म-साक्षात्कार का महत्व समझने की समस्त सुविधाएँ प्राप्त होती है। जीवन के आरम्भ से ही, हमारे श्रीकृष्ण-भक्त बालक यह अवसर प्राप्त कर रहे है कि किस प्रकार भगवन्नाम कीर्त्तन एवं नृत्य करना सीखा जाय। तो जब वे बडे होंगे तो उनमे परिवर्त्तन नही आएगा परन्तु वे स्वतः ही प्रगति करेंगे। ये बालक अत्यन्त सौभाग्यशाली है। चाहे उनका जन्म अमेरिका मे हुआ हो अथवा युरोप मे, बालक प्रगति करेंगे यदि उनके माता-पिता भक्त हो। उन्हे यह सुअवसर मिलेगा ही। यदि एक शिशु भक्तो के परिवार में जन्म लेता है, तो इसका अर्थ हुआ कि उसने अपने पिछले जन्म मे योग की विधि का पालन किया था, परन्तु किसी सयोगवश वह उस विधि को पूरा नही कर सका। इसलिए बालक को दूसरा अवसर दिया जाता है जिससे वह भक्त अर्थात् उत्तम माता-पिता की देख-रेख मे आगे उन्नति करे। इस प्रकार, जैसे ही व्यक्ति भगवद्-भावनामृत के अपने विकास को पूर्ण कर लेता है, वैसे ही उनको फिर इस भौतिक जगत् मे जन्म नही लेना पड़ता, परन्तु वह वैकुण्ठ जगत् मे लौट जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण भगवद्‌गीता मे कहते है [४ ९] :

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

अर्थात् हे अर्जुन, यदि कोई मेरे जन्म और कार्यो को ममझ लेता है तो केवल ऐसा समझने के कारण ही उसको यह शरीर त्यागने के पश्चात् वैकुण्ठ जगत् मे जन्म लेने का अवसर दिया जाता है। हमे यह शरीर त्यागना ही पडेगा आज, कल या परसों हम इससे बच नही सकते है, परन्तु जिसने श्रीकृष्ण को समझ लिया है उसे पुनः भौतिक शरीर नही लेना पडेगा। वह सीधे ही वैकुण्ठ जगत् मे जाता है और वहाँ किसी एक वैकुण्ठ लोक मे जन्म लेता है। तो श्रीकृष्ण कहते हैं कि जैसे ही किसी को यह भौतिक शरीर मिलता है—इससे कुछ अन्तर नही पड़ता कि वह शरीर

कह सकता है कि वह भगवान् है या भगवान् का एक अवतार है और कुछ मूर्ख तथा धूर्त लोग उसको ऐसा मान भी लेंगे : "अरे, वह भगवान् है।" हम अवतार को इस प्रकार स्वीकार नहीं करते। हम लोग वेदों से प्रमाण माँगते है। इन अवतारों के वर्णन वेदों में अवश्य ही होने चाहिए, तभी हम उसको अवतार मानते हैं : वे जिस-जिस स्थान पर प्रगट होंगे, उनका क्या रूप होगा, और वे किस प्रकार कर्म करेंगे। वैदिक प्रमाण का यही स्वरूप है।

श्रीमद्भागवत में अवतारो की एक सूची है और उसमें बुद्धदेव के नाम का वर्णन आता है। यह श्रीमद्भागवत पाँच हजार वर्ष पूर्व लिखा गया था और वह भविष्य में होने वाले विभिन्न अवतारों का वर्णन करता है श्रीमद्भागवत कहता है कि भविष्य में भगवान्, श्रीबुद्धदेव के रूप मे प्रगट होंगे, उनकी माँ का नाम अंजन होगा और वे गया नामक स्थान में प्रकट होंगे। तो श्रीबुद्धदेव दो हजार छह सौ वर्ष पूर्व हुए थे और श्रीमद्भागवत जो कि पाँच हजार वर्ष पूर्व लिखी गई थी, वर्णन करती है कि वे भविष्य में प्रगट होंगे। उसी प्रकार भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु का भी वर्णन आता है और इस कलियुग के अन्तिम अवतार का भी भागवत में वर्णन किया गया है। वहाँ वर्णन आता है कि इस कलियुग के अन्तिम अवतार श्रीकल्कि है। वे शम्भल नामक स्थान में विष्णुयश नाम के ब्राह्मण के पुत्र के रूप में प्रगट होंगे। इस नाम का भारत में एक स्थान है और सम्भवतया यहाँ भगवान् प्रकट हों।

तो अवतार का वर्णन उपनिषद्, श्रीमद्भागवत, महाभारत और अन्य वैदिक साहित्य में अवश्य ही होना चाहिए। इस प्रकार वैदिक साहित्य के प्रमाणो और श्रील जीव गोस्वामी जैसे महान् प्रकाण्ड गोस्वामियो के भाष्य के आधार पर, हम भगवान् श्रीचैतन्य को श्रीकृष्ण के एक अवतार के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। श्रील जीव गोस्वामी विश्व के महानतम विद्वान् एवं दार्शनिक थे।

भगवान् श्रीचैतन्य क्यो प्रकट हुए? भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं, "सब प्रकार के धर्मो को त्याग कर केवल मेरी सेवा मे सलग्न हो। मैं पापो के कारण मिलने वाले फल से तुम्हारी रक्षा करूँगा।" इस भौतिक जगत् मे, इस बद्ध जीवन में, हम केवल पापमय फलों की सृष्टि कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त और कोई कार्य है ही नहीं। पापों के फल के कारण ही हमें यह शरीर प्राप्त हुआ है। यदि हमारे पापो की समाप्ति हो जाती तो हमको एक भौतिक शरीर न लेना पड़ता, हमें एक आध्यात्मिक शरीर प्राप्त हो जाता।

आध्यात्मिक शरीर क्या होता है? आध्यामिक शरीर वह शरीर है जो जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि से मुक्त हो। वह शरीर सच्चिदानन्द है। विभिन्न इच्छाओ के द्वारा विभिन्न प्रकार के शरीरो की सृष्टि होती है। तब तक विविध प्रकार के भौतिक शरीर स्वीकार करने ही पड़ेंगे। श्रीकृष्ण अर्थात् भगवान् इतने

भारत मे, चन्द्रमा में, सूर्य में, ब्रह्मलोक में अथवा इस भौतिक जगत् में भी हो—हमे यह जानना चाहिए कि यह हमारे पापो के कारण ही है। पापो के कई प्रकार है और उनके अनुसार ही मनुष्य को भौतिक शरीर मिलता है। इसलिए हमारी वास्तविक समस्या यह नही है कि हम अहार, निद्रा, भय (आत्म रक्षा) और मैथुन किस प्रकार करे। हमारी वास्तविक समस्या तो यह है कि कैसे हम वह शरीर प्राप्त करे जो भौतिक नही वरन् आध्यात्मिक हो। सभी प्रकार की समस्याओ का यही चरम हल है। तो श्रीकृष्ण निश्चित आश्वासन देते है कि यदि कोई उनकी शरण मे आ जाय, यदि कोई पूर्ण रूप से कृष्ण-भक्त बन जाय, तो वे सब प्रकार के पापों से उसकी रक्षा करेंगे।

भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा भगवद्गीता मे यह आश्वासन दिया गया था, परन्तु अनेकानेक मूर्ख व्यक्ति श्रीकृष्ण को समझ नही सके। भगवद्गीता मे ऐसे लोगो का 'मूढ़' कह कर वर्णन किया गया है। मूढ़ का अर्थ होता है 'महामूर्ख' और श्रीकृष्ण गीता मे कहते है, "मूढ यह नही जानते कि मैं वास्तव मे क्या हूँ।" तो बहुत से व्यक्तियो ने श्रीकृष्ण को गलत समझा। यद्यपि श्रीकृष्ण ने हमको भगवद्गीता मे यह सन्देश दिया, जिससे हम उनको समझ सके परन्तु अनेक लोगो ने इस अवसर को खो दिया। इसीलिए अपनी अहेतुकी दया के कारण श्रीकृष्ण एक भक्त के रूप मे पुन. आए और हमको यह दिखलाया कि श्रीकृष्ण की शरण किस प्रकार लेनी चाहिए। भगवद्गीता मे भगवान् का अन्तिम उपदेश है "शरण लेना।" परन्तु मूढ अर्थात् महामूर्ख व्यक्तियो ने कहा, "मैं भगवान् की शरण क्यो लूं?" अतः यद्यपि श्रीचैतन्य महाप्रभु स्वयं श्रीकृष्ण है फिर भी इस बार वे हमे व्यावहारिक दृष्टिकोण से यह सिखा रहे है कि भगवद्गीता के उपदेशो का अपने जीवन मे किस प्रकार आचरण करना चाहिए। बस भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु का उद्देश्य यही है। श्रीचैतन्य महाप्रभु किसी असाधारण वस्तु की शिक्षा नहीं दे रहे हैं। वे भगवान् की शरण लेने के विधि के अतिरिक्त और कुछ भी नही सिखा रहे है। उस विधि की शिक्षा भगवद्गीता मे पहले से ही थी। श्रीचैतन्य महाप्रभु की और दूसरी कोई भी शिक्षा नही है, परन्तु भगवद्गीता की शिक्षा को ही विभिन्न प्रकार से प्रस्तुत किया गया है, जिससे विभिन्न प्रकार के लोग उसको ग्रहण कर सके और भगवान् की शरण लेने का सुअवसर प्राप्त कर सके।

श्रीचैतन्य महाप्रभु हमे भगवान् को प्राप्त करने का प्रत्यक्ष अवसर देते है। जब भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु के प्रधान शिष्य, श्रील रूप गोस्वामी सर्वप्रथम श्रीचैतन्य महाप्रभु से मिले, तो वे बंगाल के शासन मे एक मन्त्री थे। परन्तु वे श्रीचैतन्य महाप्रभु के अभियान मे सम्मिलित होना चाहते थे। तो श्रील रूप गोस्वामी ने अपने मन्त्री का पद का त्याग कर दिया और सकीर्त्तन अभियान में

सम्मिलित होने के पश्चात् जब वे शरणागत हुए तो उन्होंने भगवान् श्रीचैतन्य की संकीर्त्तन अभियान में बहुत ही सुन्दर स्तुति की। वह श्लोक इस प्रकार है :

नमो महावदान्याय कृष्ण प्रेम प्रदायते ।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः ।।

"हे प्रभो, आप सब अवतारो में से सर्वाधिक वदान्य (उदार), है।" ऐसा क्यो ? **कृष्णप्रेमप्रदाय ते**—"क्योंकि आप प्रत्यक्ष रूप से भगवान् का प्रेम प्रदान कर रहे है। आपका दूसरा कोई उद्देश्य है ही नही। आपकी विधि इतनी सुन्दर है कि मनुष्य तत्क्षण ही भगवान् से प्रेम करना सीख जाता है। अत. आप सब अवतारों में से सर्वाधिक वदान्य है और स्वयं श्रीकृष्ण के अतिरिक्त यह किसी के लिए भी सम्भव नही है कि वह इस प्रकार का वरदान दे सके। अतः मै कहता हूँ कि आप स्वयं श्रीकृष्ण हैं। **कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने**—"आप श्रीकृष्ण है—परन्तु आपने श्रीकृष्णचैतन्य नाम स्वीकार किया है। मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ।"

तो भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु की यह विधि है। श्रीचैतन्य महाप्रभु स्वयं श्रीकृष्ण हैं और वे एक बहुत ही साधारण विधि के द्वारा यह शिक्षा दे रहे है कि किस प्रकार भगवान् का प्रेम विकसित किया जाय। वे कहते है केवल हरे कृष्ण का कीर्त्तन करो।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ।।

"इस युग में, हरे कृष्ण महामन्त्र का केवल कीर्त्तन करते जाओ। इसके अतिरिक्त और कोई विकल्प (दूसरी विधि) है ही नही।" साक्षात्कार की अनेकानेक विधियो के द्वारा लोग उलझन में पड़े हुए है। वे ध्यान या योग के अनुष्ठान से सम्बन्धित वास्तविक विधियो का पालन नही कर सकते, यह सम्भव ही नही है। इसीलिए भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु कहते है कि यदि कोई इस कीर्त्तन विधि को ग्रहण कर ले, तो तत्काल वह साक्षात्कार के स्तर पर पहुँच सकता है।

भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु के द्वारा, भगवद्-प्रेम प्राप्त करने की कीर्त्तन-विधि 'संकीर्त्तन' कहलाती है। संकीर्त्तन एक सस्कृत शब्द है। सम् का एक अर्थ है सम्यक 'पूर्ण।' और कीर्त्तन का अर्थ है, "कीर्त्ति (यश) गाना या वर्णन करना।" तो 'पूर्ण वर्णन' का अर्थ है परतत्त्व श्रीभगवान् की पूर्ण कीर्त्ति। यह नही कि कोई किसी भी वस्तु का वर्णन करे या किसी भी मनुष्य की कीर्त्ति गाए और वह 'कीर्त्तन' होगा। व्याकरण की दृष्टि से भले ही वह 'कीर्त्तन' हो परन्तु वैदिक प्रणाली के अनुसार 'कीर्त्तन' का अर्थ है परम सत्य, परम् ईश्वर, भगवान् का वर्णन करना। कीर्त्तन इसे कहते है।

भक्ति का आरम्भ श्रवण की विधि से होता है। श्रवण का अर्थ है—

सुनना।" और कीर्त्तन का अर्थ है—'वर्णन करना।' एक मनुष्य वर्णन करे और दूसरा सुने, अथवा एक ही मनुष्य वर्णन कर सकता है और सुन सकता है। उसे किसी और मनुष्य की आवश्यकता नही है। जब हम हरे कृष्ण कीर्त्तन करते हैं, तो हम कीर्त्तन करते है और श्रवण करते है। यह विधि पूर्ण हैं। परन्तु यह कीर्त्तन और श्रवण करना है क्या ? हमें अवश्य ही श्रीविष्णु अर्थात् श्रीकृष्ण के विषय में ही कीर्त्तन करना और सुनना है। और किसी के विषय मे नही। **श्रवणं कीर्तनं विष्णोः**—हम सर्वव्यापक परम सत्य, भगवान् श्रीविष्णु को श्रवण की विधि के द्वारा समझ सकते हैं।

हमे श्रवण करना ही पडेगा। यदि हम भगवान् के विषय मे सुनें तो वह भक्ति का आरम्भ है। किसी भी प्रकार की शिक्षा या भौतिक ज्ञान के विकास की कोई आवश्यकता नही है। उदाहरण के लिए एक बालक, जैसे ही वह सुनता है, तत्काल वह प्रत्युत्तर दे सकता है और नृत्य कर सकता है। तो प्रकृति के द्वारा भगवान् ने हमे यह सुन्दर यन्त्र—कर्णेन्द्रिय (कान) दिये है, जिससे हम सुन सके। परन्तु हमे सही स्रोत से ही सुनना चाहिए। उस स्रोत को श्रीमद्‌भागवत मे कहा गया है। हमे 'भागवत' व्यक्तियो से ही सुनना चाहिए। 'भागवत' का अर्थ होता है जो भगवान् मे आसक्त है। ऐसे व्यक्तियो को **सताम्** भी कहा जाता है। यदि कोई सही स्रोत अर्थात् एक स्वरूप सिद्ध व्यक्ति से श्रवण करे, तो उसका प्रभाव अवश्व ही होगा। और भगवान् अर्थात् श्रीकृष्ण के ये वचनामृत अत्यन्त ही रसमय है। यदि किसी मे पर्याप्त बुद्धि है तो वह उस विषय-वस्तु को अवश्य ही सुनेगा जो एक स्वरूप सिद्ध व्यक्ति के द्वारा कही जाती है। तब वह बहुत शीघ्र ही ससार बन्धन से मुक्त हो जाएगा।

यह मनुष्य जीवन मुक्ति के मार्ग पर आगे बढने के लिए बनाया गया है। इसे अपवर्ग अर्थात् बन्धन से मुक्ति कहते है। हम सब बन्धन मे फँसे हुए है। इस भौतिक शरीर को स्वीकार करने का अर्थ ही यह है कि हम पहले से ही बँध गए है। परन्तु हमे इस बन्धन को और अधिक दृढ करने वाली विधि में उन्नति नही करनी चाहिए। वह विधि 'कर्म' कहलाती है। जब तक हमारा मन कर्म करने में लीन है, तब तक हमे भौतिक शरीर ग्रहण करना ही पड़ेगा। मृत्यु के समय हमारा मन भले ही यह सोचता हो, "अरे, मै इस कार्य को पूर्ण नही कर सका। अरे, मैं मर रहा हूँ। मुझे यह करना है। मुझे वह करना है।" तो इसका अर्थ यह हुआ कि श्रीकृष्ण यह सब कार्य करने के लिए हमे एक दूसरा अवसर देंगे और हमें एक दूसरा भौतिक शरीर ग्रहण करना पडेगा। भगवान् हमे अवसर देंगे—"ठीक है, तुम इस कार्य को नही कर सके हो। अब कर लो। इस शरीर को ग्रहण करो।" श्रीमद्भागवत कहता है, "ये मूढ लोग प्रमत्त (मतवाले) होने के कारण ही विकर्म

कर रहे हैं।" विकर्म उस कर्म को कहते हैं, जिसे नही करना चाहिए। ये लोग क्या कर रहे है ? राजा धृतराष्ट्र इस विषय के अच्छे उदाहरण है। धृतराष्ट्र अपने पुत्रो का पक्षपात करने के लिए, पाण्डवो की हत्या करने की कुटिलतापूर्वक योजना बना रहे थे। तो श्रीकृष्ण ने अपने चाचा अक्रूरजी को उन्हे यह सलाह देने के लिए भेजा कि वे ऐसा न करें। धृतराष्ट्र अक्रूर के उपदेश समझ तो गए परन्तु उन्होने कहा, "प्रिय अक्रूर जी, आप जो कह रहे है वह पूर्ण रूप से उचित है। परन्तु यह उपदेश मेरे हृदय मे नही रुक रहा है, अतः मैं अपनी नीति नही बदल सकता। मुझे इस नीति का पालन करना ही पड़ेगा। चाहे इसका परिणाम जो कुछ भी निकले।"

जब मनुष्य अपनी इन्द्रियो को सन्तुष्ट करना चाहते है तो वे प्रमत्त (पागल) हो जाते हैं और उस पागलपन मे वे उचित-अनुचित सब कुछ कर डालते है। उदहरण के लिए, भौतिक जीवन में इसके अनेक उदाहरण है, जहाँ कोई किसी वस्तु के पीछे पागल हो गया और उसने हत्या जैसे अपराध कर डाले। वह व्यक्ति अपने को रोक नहीं सका। उसी प्रकार हम इन्द्रियतृप्ति के अभ्यस्त हो गए है। हम प्रमत्त है और इसीलिए हमारा मन सदैव कर्म मे पूर्ण रूप से लीन रहता है। यह बहुत ही दुर्भाग्य की बात है, क्योकि हमारा शरीर, यद्यपि अस्थायी है फिर भी वह समस्त दुर्भाग्य और कष्टो का भण्डार है। यह शरीर हमे सदा से ही कष्ट देता रहा है। इन विषयो का अध्ययन किया जाना चाहिए। हम प्रमत्त न बने। मनुष्य जीवन इसके लिए नही बनाया गया है। वर्त्तमान सभ्यता का दोष यह है कि लोग इन्द्रियतृप्ति के पीछे प्रमत्त है। वर्त्तमान सभ्यता में इसके अतिरिक्त और कुछ है ही नही। ये व्यक्ति जीवन का वास्तविक मूल्य नही जानते है और इसलिए वे जीवन के सर्वाधिक मूल्यवान् शरीर (इस मनुष्ययोनि) की उपेक्षा कर रहे है।

जब यह शरीर समाप्त हो जाता है, तो यह निश्चित नही है कि हमारा अगला शरीर किस प्रकार का होगा। कल्पना कीजिए कि देवयोग से मुझे अगले जीवन मे एक वृक्ष का शरीर मिलता है। अब हजारो वर्ष तक मुझे एक स्थान पर खड़े रहना पड़ेगा, परन्तु लोग इस विषय में बहुत गम्भीर नही है। वे तो यहाँ तक कहते है, "उसमे क्या हानि है। यदि मुझे खड़ा रहना पड़ा तो भी मैं उसको भूल जाऊँगा।" जीवन की निम्न योनियाँ विस्मृति में स्थित है। यदि एक पेड़ विस्मरण-शील (भुलक्कड़) न होता तो उसके लिए जीवित रहना असम्भव हो जाता। कल्पना कीजिए कि हमें कह दिया जाए, "आप यहाँ तीन दिन तक खड़े रहिए।" क्योकि हम विस्मरणशील नहीं हैं, अत. हम पागल हो जाएँगे। तो प्रकृति के नियम के द्वारा, जीवन की यह सभी निम्न योनियाँ विस्मरणशील है। उनकी चेतना का पूर्ण विकास नही होता है। वृक्ष में जीवन तो है परन्तु यदि कोई उसको काट भी

डाले, तो उसकी चेतना का विकास न होने के कारण वह उत्तर नही देता। इस प्रकार हमे इस मनुष्य योनि का उचित रूप से सदुपयोग करने के लिए बहुत सावधान रहना चाहिए। श्रीकृष्णभावनामृत अभियान जीवन मे सिद्धि प्राप्त करने के लिए बना है। यह न कपट है ओर न ही किसी प्रकार का शोषण परन्तु दुर्भाग्य-वश लोग कपट करने के अभ्यस्त हो गए है। एक भारतीय कवि ने लिखा है— "यदि कोई सुन्दर और सत्य वस्तु कहता है, तो लोग उससे कलह करेंगे—"अरे, तुम क्या निरर्थक चर्चा कर रहे हो।" परन्तु यदि वह उनको धोखा दे, उनके साथ छल करे, तो वे अत्यन्त प्रसन्न होगे। तो यदि एक कपटी कहता है, "तुम केवल यह करो, मुझे मेरी फीस भर दे दो और छह माह में तुम भगवान् बन जाओगे।" तो लोग सहमत हो जाएँगे—"जी हाँ, यह फीस लीजिए और मुझे छह माह के भीतर भगवान् बना दीजिए।" नही। इस ठग विद्या से हमारी समस्या हल नही होगी। इस युग मे, यदि कोई वास्तव मे जीवन की समस्याओ को सुलझाना चाहता है, तो उसे इस कीर्त्तन विधि का पालन करना ही पड़ेगा। यही अनुमोदित विधि है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

वर्त्तमान समय अर्थात् कलियुग मे हम आत्म-साक्षात्कार या जीवन में सिद्धि प्राप्त करने के लिए कीर्त्तन के अतिरिक्त किसी भी अन्य विधि का पालन नही कर सकते। इस युग मे कीर्त्तन परमावश्यक है।

समस्त वैदिक साहित्य मे यह सिद्ध किया गया है कि हमें परतत्त्व (परम सत्य) श्रीविष्णु का ध्यान करना चाहिए, किसी भी अन्य वस्तु या व्यक्ति का नही। परन्तु विभिन्न युगो के लिए ध्यान करने की विभिन्न विधियो का अनुमोदन किया गया है। ध्यान की विधि सत्ययुग मे सम्भव थी, जबकि मनुष्य हजारो वर्ष तक जीवित रहते थे। अब लोग इस तथ्य पर ही विश्वास नही करेंगे, परन्तु पहले के युगो मे लोगो की आयु एक लाख वर्ष होती थी। वह युग सत्ययुग कहलाता था और ध्यान-योग उस समय सम्भव था। उस युग मे महान योगी वाल्मीकि मुनि ने साठ हजार वर्ष तक ध्यान किया था। तो ध्यान की विधि एक दीर्घकालीन (लम्बी) विधि है, जिसे इस युग मे करना सम्भव नही है। यदि कोई प्रहसन करना चाहे, तो दूसरी बात है। परन्तु यदि कोई वास्तव मे इस प्रकार के ध्यान का अभ्यास करना चाहता है तो सिद्ध होने मे बहुत अधिक लम्बे समय की आवश्यकता होती है। अगले युग त्रेता में साक्षात्कार की विधि, वेदो मे अनुमोदित किए विभिन्न प्रकार के यज्ञ—अनुष्ठान करना था। तत्पश्चात्, द्वापर मे युग-धर्म श्रीमूर्ति का पूजा करना था। इस वर्त्तमान समय कलियुग में उसी फल को हरि-कीर्त्तन अर्थात्

भगवान् श्रीहरि (श्रीकृष्ण) की कीर्ति-गान की विधि के द्वारा वही फल प्राप्त किया जा सकता है।

किसी भी और प्रकार के कीर्त्तन का अनुमोदन नही किया गया है। वह हरि-कीर्त्तन पाँच सौ वर्ष पहले भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु के द्वारा बगाल मे प्रारम्भ किया गया था। बंगाल मे वैष्णवो और शाक्तो के मध्य एक प्रतियोगिता बनी रहती है। शाक्तो ने एक विशेष प्रकार के कीर्त्तन का आरम्भ किया है जिसे काली-कीर्त्तन कहा जाता है। परन्तु वैदिक शास्त्रो मे काली-कीर्त्तन करने की कोई सलाह नही दी गई है। कीर्त्तन का अर्थ है हरि-कीर्त्तन। कोई यह नही कह सकता, "अरे, आप तो वैष्णव हैं। आप हरि-कीर्त्तन कर सकते है। मै शिव-कीर्त्तन या देवी-कीर्त्तन या गणेश-कीर्त्तन करूँगा।" जो नही। वैदिक शास्त्र हरि-कीर्त्तन के सिवाय किसी और कीर्त्तन को प्रमाणित नही करते। कीर्त्तन का अर्थ है हरि-कीर्त्तन अर्थात् श्रीकृष्ण की कीर्ति का गान। तो यह हरि-कीर्त्तन की विधि बहुत साधारण है—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे॥

वास्तव मे इस महामन्त्र मे केवल तीन शब्द है—हरे, कृष्ण और राम। परन्तु कीर्त्तन करने के लिए वे इतने सुन्दर ढंग से व्यवस्थित किए गए है, जिससे सभी लोग—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे॥

इस महामन्त्र का कीर्त्तन कर सकते है। अब हमने इस हरे कृष्ण अभियान को पश्चिमी देशों में भी आरम्भ कर दिया है, अत. यूरोपियन, अमेरिकन, अफ्रिकन, इजीप्शियन और जापानी सभी लोग हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्त्तन कर रहे है। इसमें कोई कठिनाई नही है। ये लोग बहुत प्रसन्नतापूर्वक कीर्त्तन कर रहे है और उसका फल प्राप्त कर रहे है। इस महामन्त्र के कीर्त्तन मे कठिनाई ही क्या है? हम हरे कृष्ण भक्त इस कीर्त्तन का निःशुल्क वितरण कर रहे है और कीर्त्तन करना बहुत ही सरल है। कलियुग मे एकमात्र कीर्त्तन के द्वारा कोई भी आत्म-साक्षात्कार (स्वरूप साक्षात्कार), भगवद्-साक्षात्कार कर सकता है। और जब भगवद्-साक्षात्कार हो जाता है, तो उसमे प्रकृति का साक्षात्कार भी सम्मिलित है। उदाहरण के लिए, यदि कोई एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ और शून्य पहचानना सीख लेता है तो उसने पूरी गणित का अध्ययन कर लिया, क्योंकि गणित का अर्थ है केवल इन दस अंको के स्थान को अदल-बदल करना। बस इन दसों को जान लेना पर्याप्त है। उसी प्रकार, यदि कोई श्रीकृष्ण का अध्ययन कर

लेता है, तो उसका ज्ञान पूर्ण है। और श्रीकृष्ण केवल हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्त्तन के द्वारा बहुत सुगमतापूर्वक समझे जाते है। तो हम लोग क्यो न इस सुअवसर को ग्रहण करे ?

मानव समाज को प्रदान किए गए इस सुअवसर को ग्रहण कीजिए। यह विधि बहुत प्राचीन और वैज्ञानिक है। यह नही कि यह मन की कोरी कल्पना है, और केवल तीन अथवा चार वर्ष तक प्रयोग में आएगी नही। भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं कहते है, "यह दर्शन अव्यय (शाश्वत) और अविनाशी है अर्थात् इसका कभी भी नाश नही होता।" कुछ समय के लिए यह ज्ञान भले ही ढक सकता है परन्तु यह कभी भी नष्ट नही होता। इसीलिए इसको **अव्ययम्** कहा जाता है है। व्यय का अर्थ है 'समाप्ति।' हमारे पास यदि सौ रुपए हो और हम एक के बाद एक उनका व्यय करते जाएँ तो एक दिन रुपये शून्य अर्थात् समाप्त हो जाएँगे। यह व्यय है अर्थात् समाप्त हो जाने के योग्य। परन्तु श्रीकृष्णभावनामृत इस प्रकार की वस्तु नही है। यदि आप श्रीकृष्णभावनामृत के इस ज्ञान का अनुशीलन करे, तो उसमे वृद्धि ही होती जाएगी। भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु के द्वारा इसको प्रमाणित किया गया है। **आनन्दम्बुधिवर्धनम्**। आनन्द का अर्थ है 'सुख', दिव्य (इन्द्रियातीत) हर्ष और अम्बुधि का अर्थ होता है 'सागर।' भौतिक जगत् मे हम देखते है कि सागर मे वृद्धि नही होती है, परन्तु यदि कोई श्रीकृष्ण-भावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति का अनुशीलन करे, तो उसका दिव्य आनन्द बढ़ता ही जाएगा– **आनन्दाम्बुधिवर्धनम्**। मैं सभी जिज्ञासुओ को सदैव इस बात का बारम्बार स्मरण दिलाता हूँ कि यह विधि बहुत ही सरल है। कोई भी, कही भी कीर्त्तन कर सकता है। और इसमे न कोई कर देना पड़ता है और न ही कोई हानि है परन्तु लाभ बहुत महान् है।

श्रीचैतन्य महाप्रभु ने इस कीर्त्तन अभियान को अपने श्रीशिक्षाष्टक मे समझाया है। शिक्षा का अर्थ है 'उपदेश।' और अष्टक का अर्थ 'आठ' होता है। श्रीमन्महाप्रभु ने हमे ये आठ श्लोक दिए है, जिसके द्वारा हमे श्रीकृष्णभावनामृत अभियान को समझने मे सहायता मिल सके। मै श्रीशिक्षाष्टक के प्रथम श्लोक को स्पष्ट करूँगा। मैं इसे अनेकानेक बार समझा चुका हूँ परन्तु यह नीरस नही बनता। यह श्रीशिक्षाष्टक हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्त्तन के समान है। इसका गान करने मे कभी थकान का अनुभव नही होता। हमारे हरे कृष्ण भक्त (साधक) हरे कृष्ण महामन्त्र का चौबीसो घण्टे कीर्त्तन कर सकते है और वे कभी भी नही थकेंगे। वे नृत्य और कीर्त्तन निरन्तर करते रहेगे। और कोई भी इस विधि का पालन करने का प्रयत्न कर सकता है क्योकि यह भौतिक नही है, अतः हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्त्तन से कोई कभी भी नही थकेगा। भौतिक जगत् मे, यदि कोई व्यक्ति अपने

प्रिय नाम को तीन, चार या दस बार कहता है, तो वह कहते-कहते थक जाएगा। यह एक वास्तविकता है। परन्तु हरे कृष्ण प्राकृतिक ध्वनि नही है अत. हम इस महामन्त्र का कीर्त्तन करते है, तो हम कभी भी नही थकेंगे। वही दूसरी ओर, जो जितना अधिक हरे कृष्ण कीर्त्तन करेगा, उसके हृदय से भौतिक धूल (विषयवासना) उतनी ही दूर होती जाएगी। इस प्रकार इस भौतिक जगत् के भीतर उसके जीवन मे आने वाली सभी समस्याएँ हल हो जाएँगी।

हमारे जीवन मे समस्या क्या है? हमे यही ज्ञात नही है। आधुनिक शिक्षा जीवन की वास्तविक समस्या के विषय मे कभी भी ज्ञान-प्रकाश नही देती है। यह भगवद्गीता मे दर्शाया गया है। जो शिक्षित है और ज्ञान मे विकास कर रहे है, उनको अवश्य ही यह जानना चाहिए कि जीवन की समस्या क्या है। इस समस्या का भगवद्गीता मे वर्णन किया गया है—हमे जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि इन असुविधाओ को सदैव देखना चाहिए। जब मनुष्य को कोई व्याधि (बीमारी) हो जाती है तो वह सोचता है, "कोई बात नही। मै डॉक्टर के पास जाऊँगा और वह मुझको कुछ दवा दे देंगे, जिससे मैं ठीक हो जाऊँगा।" परन्तु वह समस्या पर बहुत गम्भीरतापूर्वक विचार नही करता। "मैं यह रोग चाहता तो नही था। फिर क्यो यह रोग हुआ? क्या रोग से मुक्त होना सम्भव नही है?" वह इस प्रकार कभी भी नही सोचता। ऐसा इसलिए है क्योकि उसकी बुद्धि बहुत निम्न कोटि की है, अर्थात् पशु की बुद्धि के समान ही है। एक पशु कष्ट पाता है परन्तु उसके कोई बुद्धि नही होती। यदि एक पशु पशुवधशाला मे लाया जाता है और वह देखता है कि उसके आगे खडे हुए पशु की हत्या की जा रही है फिर भी वह पशु खडा होकर सन्तोष के साथ घास खाता रहता है। यह पशु का जीवन है। वह यह नही जानता कि अगली बार उसका क्रम है और उसका भी वध कर दिया जाएगा। मैं स्वय इसको देख चुका हूँ। एक काली मन्दिर मे मैने देखा है एक बकरा बलि दिए जाने के लिए तैयार खड़ा था जबकि समीप मे एक दूसरा बकरा बहुत आनन्द के साथ घास खाए जा रहा था।

उसी प्रकार, यमराज ने यक्ष के वेष मे महाराज युधिष्ठिर से पूछा, "इस संसार मे सबसे अधिक आश्चर्यजनक वस्तु क्या है? क्या तुम इसको समझ सकते हो?" तो महाराज युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, "जी हाँ। सबसे अधिक आश्चर्यजनक वस्तु यह है कि प्रत्येक पल हम देख सकते है कि हमारे मित्र, हमारे पिता और हमारे सम्बन्धियों की मृत्यु हो रही है, परन्तु हम सोच रहे है, "मैं सदैव जीवित बना रहूँगा।" हम कभी भी यह नही सोचते कि हमारी भी मृत्यु होगी, ठीक उसी प्रकार जैसे कि एक पशु कभी भी यह नही सोचता कि अगले पल उसकी भी हत्या

की जा सकती है। वह घास से ही सन्तुष्ट है, बस और कुछ नही। पशु इन्द्रियतृप्ति से सन्तुष्ट रहता है। वह यह नही जानता कि वह भी मरने जा रहा है।

हमारे पिताजी की मृत्यु हो चुकी है, मेरी माँ की मृत्यु हो चुकी है, उस पुरुष की मृत्यु हो चुकी है, इस स्त्री की मृत्यु हो चुकी है। तो मेरी भी मृत्यु होगी ही। तब फिर मृत्यु के पश्चात् क्या ? मुझे ज्ञात नही। वास्तविक समस्या तो यही है। लोग इस समस्या को गम्भीरता साथ नही लेते, परन्तु भगवद्गीता भी यह दर्शाती है कि इस तथ्य की शिक्षा ही वास्तविक शिक्षा है। वास्तविक शिक्षा का अर्थ है, हम यह जिज्ञासा करें, क्यो, यद्यपि हम मरना नही चाहते, फिर भी मृत्यु आती है। वास्तविक जिज्ञासा यह है। हम वृद्ध नही होना चाहते। फिर भी क्यो हमारी वृद्धावस्था होती है ? हमारी बहुत-सी समस्याएँ है, परन्तु उन सब का सार-तत्त्व यही है।

भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु ने इस समस्या का हल (हरे कृष्ण) निर्धारित किया है। जैसे ही हमारा चित्त इस हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्त्तन के द्वारा स्वच्छ होता है, वैसे ही समस्याओ से पूर्ण हमारा भवबन्धन रूपी दावानल बुझ जाता है। यह कैसे बुझता है ? जब हम अपने चित्त को स्वच्छ कर लेगे तो हमे यह अनुभूति हो जाएगी कि हमारा इस भौतिक जगत् से कुछ भी सम्बन्ध नही है। हम यहाँ के निवासी नही है। लोग इस भौतिक जगत् को अपनी पहचान मान रहे है, अतः वे सोचते है, "मै एक भारतीय हूँ, मै एक अग्रेज हूँ, मै यह हूँ, मै वह हूँ।" परन्तु यदि कोई हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्त्तन करता है तो उसको यह अनुभूति हो जाती है कि वह यह भौतिक शरीर नही है। "मेरा न इस भौतिक शरीर से और न ही इस भौतिक जगत् से कोई सम्बन्ध है। मै आत्मा हूँ और श्रीभगवान् का अश हूँ। मेरा भगवान् के साथ नित्य सम्बन्ध है और मुझे इस भौतिक जगत् से कुछ भी प्रयोजन नही है।" यही मुक्ति अथवा ज्ञान है। यदि हम अपने को भौतिक जगत् से अनासक्त कर ले, तो हम मुक्त है और वह ज्ञान ब्रह्म-भूत अवस्था कहलाता है।

जिसे यह अनुभूति हो गई है, उस व्यक्ति के लिए कोई कर्त्तव्य शेष नही है। अभी हम क्योकि अपने अस्तित्व का इस भौतिक जगत् से सम्बन्ध मान रहे है, अत. हमारे अनेकानेक कर्त्तव्य है। श्रीमद्भागवत कहता है कि जब तक आत्म-साक्षात्कार नही हो जाता, तब तक हमारे ऊपर बहुत से ऋण और कर्त्तव्य है। हम देवताओ के ऋणी है। देवताओ का अस्तित्व कोई कपोल-कल्पित वस्तु नही है। वे वास्तविक है। सूर्य, चन्द्रमा और वायु पर नियन्त्रण रखने वाले देवता है। जैसे शासन के विभागो मे निर्देशक होते है, उसी प्रकार ताप-विभाग मे सूर्य देवता है, वायु-विभाग मे पवन है और उसी प्रकार अन्य विभागो के लिए भी देवता है।

वेदों में उनका वर्णन नियन्त्रक-मूर्त्तियों के रूप में किया गया है, अतः हम उनकी उपेक्षा नही कर सकते । इसके अतिरिक्त, अनेक महान् ऋषि और दार्शनिक हैं जिन्होने हमको ज्ञान दिया है और हम उनके ऋणी है । तो जैसे ही हम जन्म लेते है, वैसे ही हम अनेकानेक जीवो के ऋणी हो जाते है परन्तु इन सभी के ऋणो से उऋण होना असम्भव है । इसलिए, वैदिक साहित्य सलाह देते है कि हमे श्रीकृष्ण के चरणारविन्द की शरण लेनी चाहिए और श्रीकृष्ण कहते है, "यदि कोई मेरी शरण लेता है, तो उसे फिर और किसी की शरण लेने की आवश्यकता नही पड़ती है ।"

अतएव जो कृष्ण-भक्त है, उन्होने श्रीकृष्ण की शरण ली है और इस शरणागति का आरम्भ श्रवण और कीर्त्तन है । **श्रवणं कीर्तनं विष्णोः** । तो हमारी आप सभी लोगो से यह अत्यन्त विनम्र प्रार्थना है कि इस भगवन्नाम कीर्त्तन को आप स्वीकार करे । श्रीकृष्णभावनामृत का यह अभियान पाँच सौ वर्ष पूर्व बंगाल में भगवान् श्रीचैतन्य के द्वारा आरम्भ किया गया था और अब सम्पूर्ण भारत में विशेष कर बगाल मे श्रीचैतन्य महाप्रभु के लाखो अनुयायी है । अब यह अभियान पश्चिमी देशो मे भी आरम्भ हो रहा है अतएव आप सब इसको समझने मे बहुत गम्भीर बनिए । हम किसी दूसरे धर्म की आलोचना नही करते । इसको उस ढग से मत देखिए । किसी अन्य धार्मिक विधि की आलोचना करने का हमारा कोई प्रयोजन नही है । श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति लोगो को सर्वाधिक उत्कृष्ट धर्म—भगवद्-प्रेम—प्रदान कर रही है । इससे अधिक हमारा और कोई प्रयोजन नही है । हम भगवान् से प्रेम करने की शिक्षा दे रहे है । सभी लोग पहले से ही प्रेम कर रहे हैं, परन्तु वह प्रेम अभी त्रुटिपूर्ण दशा मे है । हम इस युवक या उस युवती को, इस देश अथवा उस समाज को और यहाँ तक कि कुत्ते और बिल्लियो से प्रेम करते है, परन्तु हमे सन्तोष नही प्राप्त हो पाता । इसलिए हमे अवश्य ही श्रीभगवान् से प्रेम करना चाहिए । यदि कोई भगवान् से प्रेम करने लग जाता है, तो वह सुखी हो जाता है ।

आप यह न सोचे कि यह श्रीकृष्णभावनामृत अभियान एक नवीन प्रकार का धर्म है । ऐसा कौन-सा धर्म है जो श्रीभगवान् की सत्ता को स्वीकार नही करता ? कोई भगवान् को भले ही 'अल्लाह' अथवा 'कृष्ण' अथवा किसी और नाम से पुकार सकता है परन्तु ऐसा कौन-सा धर्म है जो भगवान् की सत्ता को स्वीकार न करे ? हम यही शिक्षा दे रहे है कि लोगो को केवल श्रीभगवान् से प्रेम करने का प्रयत्न करना चाहिए । हम अनेक वस्तुओ के द्वारा आकर्षित किए जाते है, परन्तु यदि हम भगवान् से प्रेम करने लगे, तो हम आनन्दित हो जाएँगे । तत्पश्चात् हमे किसी और से प्रेम करने की शिक्षा नही ग्रहण करनी पड़ेगी । अन्य सभी वस्तुएँ

भगवद्-प्रेम में स्वतः सम्मिलित हो जाती है। केवल भगवान् से प्रेम करने का प्रयत्न तो कीजिए। वृक्ष अथवा पशुओ से नही, ऐसा करने से हमको कदापि सन्तोष प्राप्त होगा। भगवान् से प्रेम करना सीखिए। यही भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु का प्रयोजन है और हमारा भी यही प्रयोजन है।

हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन

" ध्यान की इस सर्वाधक सरल विधि का इस युग के लिए अनुमोदन किया गया है। व्यावहारिक अनुभव के द्वारा भी, हम यह प्रतीति कर सकते हैं कि इस महामन्त्र अर्थात् मुक्ति दिलाने हेतु महान् मन्त्र के कीर्तन मे आध्यात्मिक स्तर से अवतरित होते हुए एक दिव्य भाव का कोई भी आस्वादन कर सकता है ।"

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे ॥

इस महामन्त्र के कीर्त्तन के द्वारा स्थापित की गई अप्राकृत शब्द-ध्वनि हमारी (दिव्य) चेतना को जागृत करने की एक सर्वोत्कृष्ट विधि है। चेतना, आत्मा होने के कारण, हम सभी मौलिक रूप से कृष्णभावनाभावित जीव है, परन्तु अनादि काल से जड़-पदार्थ के संग के कारण हमारी चेतना भौतिक वातावरण के द्वारा दूषित हो चुकी है। जिस भौतिक वातावरण में हम अब निवास कर रहे है, उसे माया अथवा भ्रम कहा जाता है। माया का अर्थ है, "वह जो नही है।" और वह भ्रम क्या है ? वह भ्रम यह है कि हम सभी भौतिक प्रकृति पर प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे है, जबकि वास्तव मे हम प्रकृति के कठोर नियमो के बन्धन मे बद्ध है। जब एक दास कृत्रिम भाव से सर्व-शक्तिशाली स्वामी का स्वाँग करने का प्रयत्न करता है, तो उसे भ्रम मे पडा हुआ कहा जाता है। हम भौतिक प्रकृति के स्रोतो का शोषण करने का प्रयत्न कर रहे है, परन्तु वास्तव मे हम प्रकृति की विषमताओ मे अधिकाधिक बद्ध होते जा रहे हैं। यद्यपि हम प्रकृति पर विजय पाने के लिए कठिन सघर्ष मे संलग्न है, तथापि हम उस पर अधिकाधिक निर्भर बनते जाते है। हम अपनी नित्य श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति की जाग्रति के द्वारा भौतिक प्रकृति के विरुद्ध यह भ्रामक संघर्ष तत्क्षण ही समाप्त कर सकते है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे। यह एक अप्राकृत (दिव्य) विधि है, जिसके द्वारा हम अपनी मौलिक, शुद्ध चेतना को जाग्रत कर सकते है। इस अप्राकृत शब्द-ध्वनि के कीर्त्तन के द्वारा, हम अपने हृदय को सभी प्रकार के अनर्थो से स्वच्छ कर सकते है। इन समस्त अनर्थो की जड़ यह मिथ्या चेतना है कि मैं जो कुछ भी निरीक्षण कर रहा हूँ, उसका स्वामी हूँ।

श्रीकृष्णभावनामृत मन पर कोई कृत्रिम आरोपण नही है। यह भावनामृत जीवों की मौलिक, स्वाभाविक शक्ति है। जब हम इस अप्राकृत शब्द-ध्वनि को सुनते हैं, यह भावनामृत जाग्रत हो जाती है। ध्यान की इस सर्वाधिक सरल विधि का इस युग के लिए अनुमोदन किया है। व्यवहारिक अनुभव के द्वारा भी, हम यह प्रतीति कर सकते है। कि इस महामन्त्र अर्थात् मुक्ति दिलाने हेतु महामन्त्र के कीर्त्तन में आध्यात्मिक स्तर से अवतरित होते हुए एक दिव्य भाव का कोई भी आस्वादन कर सकता है। जीवन की भौतिक धारणा मे हम इन्द्रियतृप्ति के विषय में व्यस्त हैं, जैसे कि हम निम्न पशु योनियो मे रहा करते थे। इस इन्द्रियतृप्ति के स्तर से थोड़ी सी उन्नत अवस्था है, जिसमें इस भौतिक बन्धन से मुक्ति पाने के साथ अनुमान (मनोधर्म) में सलग्न हुआ जाता है। तर्क-वितर्क के स्तर से भी थोड़ी उन्नत अवस्था यह है कि जब मनुष्य सब कारणो के कारण श्रीभगवान् को अपने भीतर एवं बाहर ढूंढ़ने का प्रयत्न करता है। अन्ततः जब वास्तव मे कोई इन्द्रिय, मन और बुद्धि की अवस्थाओ से परे जाकर आध्यात्मिक ज्ञान के स्तर पर पहुँच जाता है, वह अप्राकृत स्तर पर स्थित हो जाता है। हरे कृष्ण महामन्त्र का यह कीर्त्तन आध्यात्मिक स्तर पर क्रियाशील होता है और इस प्रकार यह शब्द-ध्वनि चेतना के सभी प्रकार के निम्न स्तरो को पार कर जाती है—अर्थात् ऐन्द्रिक, मानसिक और बौद्धिक स्तर। इसलिए न महामन्त्र की भाषा समझने की आवश्यकता है और न ही महामन्त्र का कीर्त्तन करने के लिए कोई अनुमान अथवा बौद्धिक सन्तुलन की आवश्यकता है। यह स्वतः आध्यात्मिक स्तर से अवतरित होता है और इस प्रकार बिना किसी पूर्व योग्यता के कोई भी इस कीर्त्तन मे भाग ले सकता है। निःसन्देह और अधिक उन्नत अवस्था में, आध्यात्मिक ज्ञान का आधार प्राप्त कर लेने पर व्यक्ति से यह आशा की जाती है कि वह अपराध—नामापराध, सेवापराध इत्यादि नही करेगा।

आरम्भ मे, सभी सात्त्विक भाव उपस्थित नही रहते। ये सात्त्विक भाव आठ होते है। (१) स्तम्भ—जड़ बन जाना, (२) स्वेद—पसीना निकलना, (३) रोमाँच या पुलक होना, (४) स्वर भेद—गद्गद् हो जाना, (५) कम्प, (६) वैवर्ण्य, (७) अश्रु और (८) मूर्च्छा या प्रलय (समाधि)। इसमे तो कोई सन्देह नही है कि थोड़ी देर का ही कीर्त्तन मनुष्य को तत्काल ही आध्यात्मिक स्तर पर ले जाता हैं और इस अवस्था का पहला लक्षण यह है कि वह कीर्त्तन करने के साथ-साथ नृत्य करना चाहता है। हम व्यवहारिक रूप से इसको देख चुके है। यहाँ तक कि एक शिशु भी कीर्त्तन और नृत्य मे भाग ले सकता है। नि.सन्देह, जो सासारिक जीवन मे घोर रूप से बद्ध है, उसे आदर्श स्तर तक आने के लिए भले ही कुछ अधिक समय लग सकता है। परन्तु ऐसे घोर विषयी मनुष्य भी बहुत ही शीघ्र आध्यात्मिक स्तर तक उन्नत हो जाते है। जब श्रीभगवान् के एक विशुद्ध भक्त के द्वारा

प्रेम भाव से भगवन्नाम कीर्त्तन किया जाता है, तो सुनने वालो पर इसका सर्वाधिक महान् प्रभाव पड़ता है और इसलिए यह कीर्त्तन भगवान् के शुद्ध भक्तो के श्रीमुख से सुना जाना चाहिए, जिससे कि तात्कालिक प्रभाव हो सके। जहाँ तक सम्भव हो, अभक्तो के मुख से कीर्त्तन सुनने से बचना चाहिए। यह ठीक उसी प्रकार है, जैसा कि साँप के द्वारा पिये गये दूध का विषैला बन जाना।

हरा शब्द भगवान् की शक्ति को सम्बोधित करने का एक रूप है और 'कृष्ण' एवं 'राम' शब्द स्वयं श्रीभगवान् को सम्बोधित करने के लिए है। कृष्ण और राम दोनों का ही अर्थ, 'परम-आनन्द' है और हरा भगवान् की परम आह्लादिनी शक्ति है। सम्बोधन कारक मे प्रयोग करने के कारण हरा शब्द हरे मे परिवर्तित हो जाता है। भगवान् की परम-आह्लादिनी शक्ति हमे भगवान् तक पहुँचाने मे सहायता करती है।

भौतिक शक्ति माया भी भगवान् की विविध शक्तियो मे से एक है। और हम जीवात्मा भी शक्ति है, श्रीभगवान् की **तटस्था शक्ति**। जीवात्मा भौतिक शक्ति से श्रेष्ठ है। जब परा (श्रेष्ठ) शक्ति अपरा (निम्न) शक्ति के सम्पर्क मे आती है तो एक असगत स्थिति उत्पन्न हो जाती है, परन्तु जब परा तटस्था शक्ति, अन्तरगा शक्ति हरा के सम्पर्क मे रहती है, तो वह अपने सुखद एव स्वाभाविक अवस्था मे स्थित हो जाती है।

हरे, कृष्ण एव राम ये तीन शब्द महामन्त्र के अप्राकृत बीज शब्द (मन्त्र) है। इसका कीर्त्तन श्रीभगवान् और उनकी शक्ति के लिए एक आध्यात्मिक पुकार है, जिससे बद्ध आत्मा की रक्षा हो सके। महामन्त्र का कीर्त्तन उस शिशु के यथार्थ रुदन के समान है जो अपनी माँ के पास आना चाहता है। माँ हरा भक्त को परम पिता भगवान् के पास ले जाती है और श्रद्धा तथा विश्वास के साथ महामन्त्र का कीर्त्तन करने वाले भक्त के सन्मुख भगवान् स्वय उपस्थित हो जाते है। अतएव, इस कलियुग मे अर्थात् कलह और पाखण्ड के युग मे .

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे॥

इस महामन्त्र के कीर्त्तन के समान और कोई भी आत्म-साक्षात्कार की विधि प्रभाव शाली नही है।

श्रीकृष्णभावनामृत आधुनिक युग का योग

"ऐसा नही कि यह अभियान केवल एक भावुक अभियान है। आप यह न सोचे कि ये युवक किसी धार्मिक भावुकता अथवा उन्माद के कारण नृत्य कर रहे हैं। जी नही। हमारी सर्वोच्च दार्शनिक एव ब्रह्म-विद्या युक्त पृष्ठभूमि है । परन्तु यह सब सरलीकृत कर दी गयी है। इस अभियान की सुन्दरता तो यही है। चाहे कोई एक महान् वैज्ञानिक हो अथवा एक बालक, वह बिना किसी कठिनाई के इस अभियान मे भाग ले सकता है।"

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम् ।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्त्तनम् ।।

सकीर्त्तन अभियान की परम विजय हो । **परम विजयते श्रीकृष्ण-संकीर्तनम् ।** भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु ने सोलह वर्ष की अवस्था मे पाँच सौ वर्ष पूर्व श्रीधाम नवद्वीप (पश्चिमी बगाल) मे इस संकीर्त्तन अभियान का आरम्भ किया था । ऐसा नही था कि उन्होने किसी धार्मिक प्रणाली की रचना की, जैसा कि आज कल बहुत सारी धार्मिक प्रणालियो की रचना की जाती है । वास्तव मे धर्म को रचा नही जा सकता । **धर्मं तु साक्षाद् भगवत्प्रणीतम्** (भागवत) । धर्म का अर्थ है भगवान् के नियम, भगवान् के द्वारा दी गई आचार सहिता । उसी प्रकार हम भगवान् के नियमो का पालन किए बिना जीवित नही रह सकते और भगवद्गीता [४ ७] मे भगवान् कहते है कि जब कभी भी धार्मिक कार्यो के पालन मे असंगति होती है । **यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।** और अधार्मिक कार्यो मे वृद्धि होती है—**अभ्युत्थानमधर्मस्य**, उस समय मे (कृष्ण) प्रकट होता हूँ—**तदात्मानं सृजाम्यहम् ।** भौतिक जगत् मे हम देख सकते है कि इसी सिद्धान्त को प्रकट किया जाता है, क्योकि जब कभी भी राज्य के नियम भग किए जाते है, तो उस समय किसी विशिष्ट राज्याधिकारी अथवा आरक्षी अधिकारी का "सामान्य स्थिति लाने के लिए" पदार्पण होता है ।

भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु का पूजन गोस्वामियो के द्वारा होता है । ये षड्-गोस्वामी है—श्रील रूप गोस्वामी, श्रील सनातन गोस्वामी, श्रील रघुनाथ भट्ट



कृष्णकृपाश्रीमूर्ति श्री श्रीमद् ए सी भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद
संस्थापक-आचार्य अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत संघ
सम्पूर्ण विश्व में वैदिक ज्ञान के अद्वितीय प्रचारक



असीम सौन्दर्य, वल, वैभव, ज्ञान, यश एव वैराग्य से युक्त षडैश्वर्यवान् श्रीकृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।



सभी प्राणी भगवान् श्रीकृष्ण के नियंत्रण मे कार्य करनेवाली भौतिक प्रकृति की शक्तियो के वश मे है।



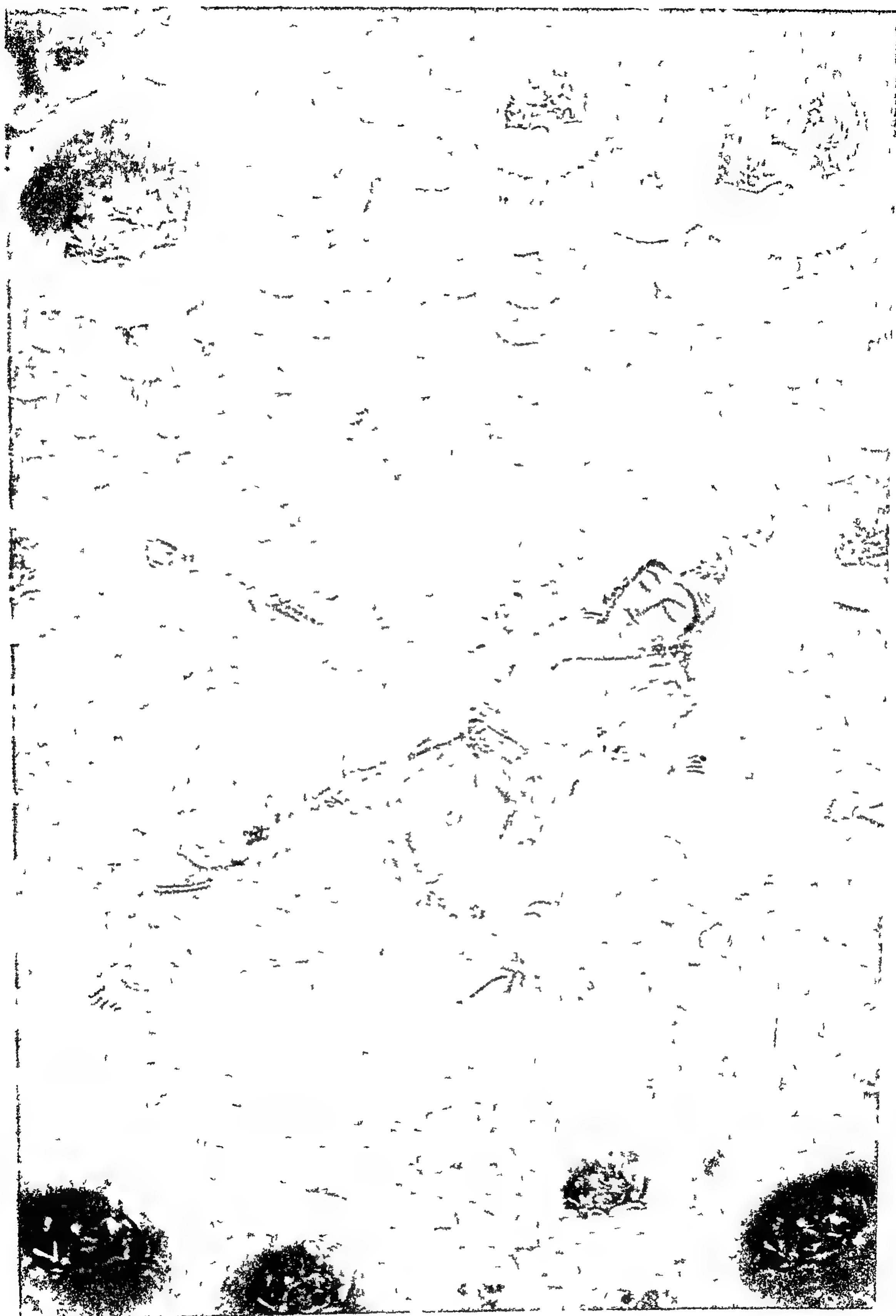
महाराज परीक्षित् ने श्री शुकदेव गोस्वामी से मरणासन्न व्यक्ति के कर्त्तव्यों के विषय मे पूछा।



कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि मे किंकर्त्तव्यविमूढ़ अर्जुन को दिव्य ज्ञान से आलोकित करने के लिए, श्रीकृष्ण ने उसे गीता का उपदेश दिया।



सच्चा योगी अपने ध्यान मे श्रीभगवान् के दिव्य परमात्मा स्वरूप का दर्शन करता है।



अमोघ ज्ञान की निधि वेदों से हमें पता चलता है कि भगवान् श्रीकृष्ण की अद्भुत शक्तियाँ भौतिक सृष्टि की रचना करती हैं।



भगवान् श्रीकृष्ण के साथ अपना दिव्य प्रेममय सम्बन्ध स्थापित करना ही मानव जीवन का वास्तविक उद्देश्य है।

गोस्वामी, श्रील जीव गोस्वामी, श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी और श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी। गो शब्द के तीन अर्थ होते है, भूमि, गाय, और इन्द्रियाँ। तो गोस्वामी का अर्थ हुआ कि वे लोग इन्द्रियो के स्वामी थे। जब कोई इन्द्रियो का स्वामी अर्थात् गोस्वामी बन जाता है, तो वह आध्यात्मिक जीवन मे प्रगति कर सकता है। स्वामी का वास्तविक अर्थ यही है। स्वामी का अर्थ है कि व्यक्ति इन्द्रियो का दास नही वरन् उनका स्वामी है।

इन छह गोस्वामियो मे से श्रील रूप गोस्वामी सब मे प्रधान है और उन्होने भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु के सम्मान में एक सुन्दर श्लोक की रचना की है। वे कहते है : [चैतन्य चरितामृत, आदि० १. ४] .

अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम्।
हरिः पुरटसुन्दरद्युतिकदम्बसन्दीपितः
सदा हृदयकन्दरे स्फुरतु वः शचीनन्दनः॥

कलौ का अर्थ है यह युग, यह कलियुग अर्थात् लौह युग। यह युग दोषो का सागर है और कलह एव असहमतियो से पूर्ण है। श्रील रूप गोस्वामी कहते है कि इस कलियुग मे, जबकि प्रत्येक वस्तु मे असहमति और कलह होता है, "आप सर्वोच्च भगवद्-प्रेम प्रदान करने के लिए अवतरित हुए है। "**समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां**" न केवल सर्वोच्च वरन् अधिक उज्ज्वल रस अथवा अप्राकृत (दिव्य) रस। "**पुरटसुन्दरद्युति**" आपका वर्ण स्वर्ण के समान है। आप इतने दयालु है कि मैं सभी को यह आशीर्वाद देता हूँ (गोस्वामी लोग आशीर्वाद दे सकते है क्योकि वे इन्द्रियो के स्वामी है) कि उन सबके हृदय मे भगवान् का यह रूप अर्थात् भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु सदा ही नृत्य करते हुए विराजमान रहे।"

प्रयाग मे जब श्रील रूप गोस्वामी की भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु से भेंट हुई, तो भगवान् श्रीचैतन्य मार्ग में कीर्त्तन और नृत्य कर रहे थे, "**हरे कृष्ण, हरे कृष्ण**।" उस समय भी श्रील रूप गोस्वामी ने स्तुति का एक श्लोक कहा . **नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते**।'हे भगवन्, आप सभी अवतारो मे से सबसे अधिक वदान्य (उदार) है, क्योकि आप कृष्ण-प्रेम (भगवद्-प्रेम) का वितरण कर रहे है।" **कृष्णप्रेमप्रदायते। कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः**। "आप स्वयं श्रीकृष्ण हैं, यदि आप श्रीकृष्ण नही होते, तो आप कृष्ण-प्रेम अर्थात् भगवान् के प्रेम का वितरण नही कर सकते थे, क्योकि कृष्ण-प्रेम इतनी सरलता से प्राप्त नही होता। परन्तु आप यह प्रेम का सभी जीवो को नि.शुल्क वितरण कर रहे है।"

इस प्रकार श्रीधाम नवद्वीप, बगाल मे सकीर्त्तन अभियान का आरम्भ हुआ।

इस दृष्टि से बंगाली लोग अत्यन्त सौभाग्यशाली है, क्योकि उनके देश में भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु के द्वारा इस अभियान का आरम्भ किया गया था। श्रीमन्महाप्रभु ने भविष्यवाणी की थी :

पृथिवीते आछे यत नगरादि ग्राम।
सर्वत्र प्रचार हइबे मोर नाम॥

"पृथ्वी मे जितने भी नगर और ग्राम है, सभी स्थान में इस संकीर्त्तन अभियान का प्रचार किया जाएगा।"

यह भगवान् श्रीचैतन्य की, भविष्यवाणी है। तो भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु की कृपा के कारण, यह अभियान न्युयॉर्क से आरम्भ होता हुआ पश्चिमी देशो में पहले से ही प्रस्तुत किया जा चुका है। हमारे संकीर्त्तन अभियान का, सन् १९६६ में न्युयॉर्क से सर्वप्रथम आरम्भ हुआ। उस समय मैं न्युयॉर्क पहुँचा और मैंने टॉमकिन्स स्क्वायर पार्क में इस हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्त्तन करना आरम्भ किया। मै वहाँ तीन घण्टे तक एक छोटा-सा मृदंग लेकर कीर्त्तन करता रहा और ये अमेरिकन युवा एकत्र हुए तथा क्रमशः इस अभियान मे सम्मिलित हो गए। इस प्रकार यह अभियान बढ़ता जा रहा है। सबसे पहले यह संकीर्त्तन अभियान न्युयॉर्क के २६, सेकण्ड एवेन्यु पर स्थित एक स्टोर फ्रण्ट मे आरम्भ किया गया था। उसके पश्चात् हमने सेन फ्रान्सिस्को, मॉण्ट्रियल, बोस्टन, लॉस एन्जिलस, बफेलो, कोलम्बस इत्यादि स्थान में अपने मन्दिर आरम्भ किए। (१९७० मे) चौबीस शाखाएँ है, जिसमे लन्दन और हैमबर्ग की शाखा भी सम्मिलित है। लन्दन मे ये सभी अमेरिकन युवक और युवतियाँ है और वे प्रचार कर रहे है। वे न तो संन्यासी है, न वेदान्ती, न हिन्दू और न ही भारतीय, परन्तु उन्होने इस अभियान को बहुत अधिक गम्भीरतापूर्वक ग्रहग किया है। यहाँ तक कि लन्दन टाइम्स मे एक लेख इस शीर्षक के साथ प्रकाशित हुआ, **"कृष्णकीर्त्तन के द्वारा लन्दन विस्मित।"** तो अब हमारे अभियान में अनेक व्यक्ति है। मेरे सभी शिष्य, कम से कम इस देश मे, अमेरिकन और यूरोपियन है। वे कीर्त्तन कर रहे है, नृत्य कर रहे है और भगवद्-दर्शन नामक पत्रिका का वितरण कर रहे है। अब हमने अनेकानेक ग्रन्थ प्रकाशित किए है—**श्रीमद्भागवत, भगवद्गीता यथानुरूप, भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत, श्रीईशोपनिषद्**, इत्यादि। ऐसा नही कि यह हरे कृष्ण अभियान केवल एक भावुक अभियान है। आप यह न सोचे कि ये युवक किसी धार्मिक भावुकता अथवा उन्माद के कारण नृत्य कर रहे है। जी नही। हमारी सर्वोच्च दार्शनिक एवं ब्रह्मविद्या से सम्बन्धित पृष्ठभूमि है।

उदाहरण के रूप मे, हम भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु पर विचार करे। जब वे प्रचार कर रहे थे, तो मायावादी सन्यासियो के केन्द्र बनारस गए। बनारस में

अधिकांश शंकराचार्य के अनुयायी ही दिखाई पड़ते है। जब भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु वहाँ थे, तो वे भगवन्नाम कीर्त्तन और नृत्य किया करते थे। कुछ लोगो ने इसका अत्यधिक मूल्यांकन किया और श्रीमन्महाप्रभु शीघ्र ही विख्यात हो गए। एक प्रधान संन्यासी, प्रकाशानन्द सरस्वती, जो हजारो मायावादी सन्यासियो के नेता थे, को सूचना दी गई : "अरे, बंगाल के एक युवा संन्यासी यहाँ आए है। वे वहुत सुन्दर ढंग से कीर्त्तन कर रहे है।" प्रकाशानन्द सरस्वती एक महान् वेदान्ती थे और उन्होने इस विचार को पसन्द नहीं किया। उन्होने कहा, "अरे, वह तो एक छद्म संन्यासी है। वह कीर्त्तन और नृत्य कर रहा है, एक संन्यासी का तो यह कार्य नही है। संन्यासी को दर्शन और वेदान्त का अध्ययन करने मे अपने को सदैव संलग्न रखना चाहिए।"

तब वहाँ उपस्थित एक भक्त, जिसे प्रकाशानन्द सरस्वती की टिप्पणी पसन्द नही आई, वापस आया और उसने भगवान् श्रीचैतन्य को सूचित किया कि उनकी आलोचना की जा रही है। तो उस भक्त ने सभी सन्यासियो की एक सभा का आयोजन किया और उसमे प्रकाशानन्द सरस्वती एवं भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु के बीच वेदान्त पर दार्शनिक चर्चा हुई। इन घटनाओ तथा दार्शनिक चर्चाओ को को "भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत" नामक ग्रन्थ मे लिखा गया है। अनोखी बात तो यह है कि श्रीप्रकाशानन्द अपने शिष्यो के साथ वैष्णव बन गए।

उसी प्रकार, श्रीचैतन्य महाप्रभु ने अपने समय के सर्वश्रेष्ठ तार्किक श्री सार्वभौम भट्टाचार्य के साथ भी महान् शास्त्रार्थ किया। श्री भट्टाचार्य भी एक मायावादी (निराकारवादी) थे और वे भी भक्त के रूप मे परिवर्त्तित हो गए। तो भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु का अभियान कोरी भावुकता नही है। यदि कोई इस संकीर्त्तन अभियान को दर्शन और तर्क के माध्यम से समझना चाहता है, तो भी हमारे पास अत्यधिक सम्पन्न पृष्ठभूमि है। इसके लिए पर्याप्त अवसर दिया जाता है, क्योकि यह अभियान विज्ञान एवं वेदो की सत्ता (प्रामाणिकता) पर आधारित है। परन्तु यह सब सरलीकृत कर दिया गया है। इस अभियान की सुन्दरता तो यही है। चाहे कोई महान् विद्वान्, दार्शनिक अथवा एक बालक हो, तो भी वह बिना किसी कठिनाई के इस अभियान मे भाग ले सकता है। आत्म-साक्षात्कार के अन्य साधन जैसे ज्ञानमार्ग या योगमार्ग भी प्रामाणिक है, परन्तु इस युग में उनका साधन करना सम्भव नही है। यह वेदो का निर्णय है :

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥

[भागवत १२. ३. ५२]

सत्ययुग अर्थात् स्वर्णयुग में ध्यान करना सम्भव था। उदाहरण के लिए, वाल्मीकि

मुनि ने पूर्णता पाने के लिए साठ हजार वर्ष तक ध्यान किया था। तो हमारी इतनी लम्बी आयु कहाँ है? इतना ही नही, जैसा कि भगवद्गीता मे वर्णन किया गया है, ध्यान करने की विधि के लिए व्यक्ति को एक एकान्त स्थान का चुनाव करना होता है, उसे यह ध्यान अकेले ही करना पड़ता है, यथोचित आसन-मुद्रा पर बैठना पड़ता है, उसे पूर्ण ब्रह्मचर्य का जीवन बिताना पड़ता है इत्यादि-इत्यादि। इसके सम्बन्ध मे बहुत से विधि और विधान है। इस प्रकार अष्टांगयोग ध्यान की विधि सम्भव नही है। यदि कोई ध्यान का स्वाँग करने से सन्तुष्ट है, तो यह दूसरी बात है, परन्तु यदि कोई सिद्धि चाहता है, तो उसे अष्टागयोग की सभी आठ अवस्थाओ का पालन करना पड़ेगा। और यदि ऐसा करना सम्भव नही है, तो यह व्यर्थ ही समय नष्ट करना है।

योग अथवा ध्यान की विधि का चरम लक्ष्य क्या है? श्रीभगवान् अर्थात् परतत्व या परमात्मा या परम ईश्वर के साथ सम्पर्क मे आ जाना। भगवान् के साथ युक्त हो जाना ही सभी प्रकार के योग की विधियो का लक्ष्य है। उसी प्रकार, दार्शनिक अनुसन्धान ज्ञान मार्ग का भी लक्ष्य परब्रह्म को समझना है। निःसन्देह, ये प्रामाणिक मार्ग है, परन्तु प्रामाणिक वर्णन के अनुसार वे इस कलियुग अर्थात् लौह युग मे व्यवहारिक नही है। इसलिए हमे इस हरि-कीर्त्तन की विधि का पालन करना पड़ता है। कोई भी बिना किसी पूर्व योग्यता के इसका साधन कर सकता है। हमे न दर्शन और न ही वेदान्त का अध्ययन करने की आवश्यकता है। भगवान् श्रीचैतन्य की प्रकाशानन्द सरस्वती के साथ हुई भेंट का यही तात्पर्य था।

जब भगवान् श्रीचैतन्य और प्रकाशानन्द सरस्वती के बीच वेदान्त दर्शन पर गहन चर्चा हुई, तो प्रकाशानन्द सरस्वती ने सबसे पहले श्रीचैतन्य महाप्रभु से पूछा, "मै समझता हूँ कि तुम अपनी युवावस्था मे एक बहुत अच्छे विद्वान् थे। (वास्तव मे भगवान् श्रीचैतन्य एक अत्यन्त महान् विद्वान् थे। उनका नाम था निमाई पण्डित और सोलह वर्ष की अवस्था मे उन्होने काश्मीर के एक महान् विद्वान् केशव काश्मीरी को हराया था।) और मैं यह भी समझता हूँ कि तुम एक महान् सस्कृत के विद्वान् हो, विशेषकर तर्क शास्त्र मे तुम एक अत्यन्त उच्च कोटि के विद्वान् हो। तुम्हारा जन्म भी ब्राह्मण परिवार मे हुआ है और तुम एक सन्यासी हो। तो यह क्या कारण है कि तुम कीर्त्तन और नृत्य कर रहे हो और वेदात का अध्ययन नही? तो यह पहला प्रश्न था जो प्रकाशानन्द सरस्वती ने भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु से पूछा और भगवान् श्रीचैतन्य ने उत्तर दिया, "जी हाँ, इसका कारण यह है कि जब मुझे अपने गुरु महाराज के द्वारा दीक्षा प्राप्त हुई, तो उन्होने कहा कि मै प्रथम श्रेणी का मूर्ख हूँ।" "तुम वेदान्त की चर्चा मत करो," उन्होने मुझसे कहा। "तुम केवल अपना समय व्यर्थ ही नष्ट करोगे। केवल इस हरे कृष्ण कीर्त्तन को ग्रहण-करो

और तुम सफल हो जाओगे।" श्रीमन्महाप्रभु का यह उत्तर था। निःसन्देह, भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु मूर्ख नही थे और निश्चय ही वेदान्त मूर्खों के लिए नही है। पहले तो व्यक्ति को पर्याप्त शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए और एक विशेष स्तर पर आना चाहिए तभी वह वेदान्त समझ सकता है। एक-एक शब्द मे अर्थों का भण्डार छिपा है और शंकराचार्य तथा रामानुजाचार्य के द्वारा बहुत से बडे-बड़े संस्कृत मे भाष्य हैं। परन्तु फिर हम वेदान्त समझ कैसे सकते है? यह सम्भव नही है। भले ही एक या दो व्यक्तियो के लिए यह समझना सम्भव हो, परन्तु जन साधारण के लिए यह सम्भव नही है। न योगाभ्यास ही सम्भव है। इसलिए, यदि कोई भगवान् महाप्रभु का मार्ग हरे कृष्ण कीर्त्तन का आश्रय लेना है तो लाभ की पहली श्रेणी (किश्त) होगी: **चेतोदर्पणमार्जनम्।** दूसरे शब्दो में केवल कीर्त्तन करने के द्वारा ही उसके चित्त से सभी अनर्थ दूर हो जाएँगे। कीर्त्तन कीजिए। इसमे कोई व्यय नही है और न ही कोई हानि। यदि कोई एक सप्ताह के लिए भी कीर्त्तन करता है, वह देखेगा कि आध्यात्मिक विज्ञान मे वह कितनी अधिक उन्नति कर लेता है।

हम अनेक भक्तो को केवल कीर्त्तन के द्वारा आकर्षित कर रहे है और वे सम्पूर्ण दर्शन को समझ रहे है, तथा शुद्ध बन रहे है। इस सघ का अभियान केवल चार वर्ष पूर्व सन् १९६६ मे आरम्भ हुआ था और अब हमारी बहुत-सी शाखाएँ है। ये अमेरिकन युवक एवं युवतियाँ इसे अत्यधिक गम्भीरता के साथ ग्रहण कर रहे है और ये सुखी है। आप इनमे से किसी से भी पूछ लीजिए। **चेतोदर्पणमार्जनम्** ये केवल—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे॥

महामन्त्र के कीर्त्तन करने मात्र से ही अपने चित्त (हृदय) से सब अनर्थों को दूर कर रहे हैं।

श्रीकृष्ण-संकीर्त्तन का अगला प्रभाव है— **भवमहादावाग्निनिर्वापणम्।** जैसे ही हृदय से सब अनर्थ दूर हो जाते है, तब संसार की सारी समस्याएँ तत्काल हल हो जाती है। इस ससार की तुलना दावाग्नि के साथ की जाती है। दावाग्नि का अर्थ होता है वन मे लगने वाली भयानक आग। इस संसार मे कोई भी व्यक्ति दुःख नही चाहता, परन्तु हम दु.ख उठाने के लिए बाध्य किए जाते हैं। भौतिक प्रकृति का यही नियम है। कोई भी अग्नि नही चाहता, परन्तु हम एक नगर मे कही भी जाएँ, अग्नि शामक दल सदैव क्रियाशील रहता है। सदैव कही न कही आग लगी रहती है। उस प्रकार, अनेक वस्तुएँ है जिनको कोई नही चाहता। कोई मृत्यु नही चाहता—परन्तु मृत्यु है। कोई व्याधि नही चाहता—परन्तु व्याधि

है। कोई वृद्धावस्था नही चाहता—परन्तु वृद्धावस्था है। हमारी इच्छा, हमारी कामना के विपरीत, ये दुःख वर्त्तमान है।

इस प्रकार हमें इस संसार की अवस्था पर विचार करना चाहिए यह मनुष्य जीवन भगवद्-ज्ञान को प्राप्त करने के लिए बनाया गया है—पशुओ के समान, आहार, निद्रा, भय और मैथुन मे ही अपने बहुमूल्य जीवन को व्यर्थ करने के लिए नही। सभ्यता का यह विकास नही है। भागवत कहता है कि यह शरीर केवल इन्द्रियतृप्ति के लिए ही कठोर परिश्रम करते रहने के लिए नही बनाया गया है।

नायं देहो देहभाजां नृलोके कष्टान् कामानर्हते विड्भुजां ये।

तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुद्ध्येद्यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम्।

[भागवत ५. ५. १]

कठोर परिश्रम करना और इन्द्रियतृप्ति के द्वारा अपने को सन्तुष्ट करना सूकरो का कार्य है, मनुष्यो का नही। मनुष्य तपस्या करना सीखे। विशेषकर भारत मे, अनेक महान् ऋषि, अनेक महान् राजा और अनेक ब्रह्मचारी एव अनेक सन्यासियो ने अपना जीवन महान् तपस्या करने मे व्यतीत किया है। उस तपस्या का उद्देश्य यही था कि इस ससार मे और अधिक बन्धन मे न फँसा जाए। बुद्धदेव युवराज थे, परन्तु उन्होने प्रत्येक वस्तु को त्याग कर तपस्या की। वास्तविक जीवन तो यही है। जब महाराज भरत, जिनके नाम पर हमारे देश का नाम भारतवर्ष पड़ा, चौबीस वर्ष के ही थे, उन्होने अपना राज्य, युवा पत्नी और अपनी सन्तानों को त्याग दिया और तपस्या करने चले गए। जब भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु केवल चौबीस वर्ष के थे, तो उन्होंने अपनी युवा पत्नी, माँ, और प्रत्येक वस्तु का त्याग कर दिया। ऐसे कई उदाहरण है। भारत तपोभूमि है, परन्तु हम इसे भूल रहे है। अब हम उसे तकनीकी की भूमि बना रहे है। आश्चर्य होता है कि अब भारत इस तपस्या का प्रसार-प्रचार नही कर रहा है, जब कि भारत धर्म का क्षेत्र है—**धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः** [गीता १ १]।

इस कलियुग मे न केवल भारत मे : अपितु सभी स्थानों पर प्रत्येक वस्तु निम्न कोटि की हो गई है। **प्रायेणाल्पायुषः सभ्य कलावस्मिन् युगे जनाः।** [भागवत १ १ १०] इस कलियुग मे आयु कम हो गई है और आत्म-साक्षात्कार की ओर मनुष्यो को कोई भी रुचि नही है, यदि रुचि है भी तो वे अनेकानेक धोखेबाज नेताओ के द्वारा मार्गभ्रष्ट कर दिए जाते है। यह युग घोर भ्रष्टाचार का युग है। अतः भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु की हरे कृष्ण कीर्त्तन की विधि सर्वोत्तम और सर्वाधिक सरल मार्ग है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

"इस कलियुग मे हरिनाम कीर्त्तन के अतिरिक्त भगवान् की कीर्ति-गान करने के लिए और कोई दूसरा धर्म नही है। यह सभी अपौरुषेय शास्त्रो का आदेश है। और कोई दूसरी गति (मार्ग) नही है, कोई दूसरी गति नही है, कोई भी दूसरी गति नही है। यह वृहन्नारदीय पुराण [३.८.१२६] का श्लोक है। **हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।** केवल हरे कृष्ण कीर्त्तन कीजिए और कोई दूसरा उपाय (विकल्प) नही है। **कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।** इस कलियुग मे आत्म-साक्षात्कार करने का और कोई दूसरा विकल्प नही। तो हमे इसको स्वीकार करना ही पड़ेगा।

श्रीमद्भागवत [१२.३.५१] में इसी प्रकार एक और श्लोक है। **कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुण:।** उस श्लोक मे श्रीशुकदेव गोस्वामी ने परीक्षित महाराज को इस युग के दोषो के विषय में जानकारी दी थी। और अब कलियुग के वे सब लक्षण प्रत्यक्ष दीख पड़ रहे है। किन्तु निष्कर्ष मे शुकदेव गोस्वामी ने कहा, "प्रिय राजन्—यह कलियुग दोषो का सागर है, परन्तु इसमे एक सुअवसर है।" वह सुअवसर क्या है? "केवल इस हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्त्तन के द्वारा मुक्त होकर भगवान् के धाम में लौटा जा सकता है।"

यह भक्ति-मार्ग व्यवहारिक और प्रामाणिक है तथा कोई स्वयं भी यह परीक्षण कर सकता है कि कैसे वह केवल कीर्त्तन करने के द्वारा उन्नति कर रहा है। यह श्रीकृष्णभावनामृत अभियान कोई नई वस्तु नही जिसे हमने प्रारम्भ किया है, या रचा है। यह वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर प्रमाणित है, श्रीचैतन्य महाप्रभु जैसे आचार्य और अन्य महाजनो के द्वारा प्रामाणित है। और विधि भी वहुत सरल है, इसमे किसी भी प्रकार की हानि नही है। हम किसी भी प्रकार का कर नही ले रहे है, हम आपसे फीस देने के लिए नही कह रहे है और न ही लोगो को कोई गुप्त मन्त्र देकर यह वचन दे रहे है कि ६ महीने के अन्दर वे लोग भगवान् बन जाएँगे। नही। यह मार्ग सभी के लिए खुला हुआ है—बालक, स्त्री, युवती, युवक एवं वृद्ध। सभी लोग कीर्त्तन कर सकते है और उसके परिणामो को देख सकते है।

कृष्ण-भक्ति में और आगे उन्नति करने के लिए न केवल हम पश्चिम वर्जीनिया (अमेरिका) मे अपनी कृषि परियोजना, नव वृन्दावन की स्थापना कर रहे है। परन्तु अन्य आध्यात्मिक केन्द्रो का भी निर्माण कर रहे है जैसे नव नवद्वीप और नव जगन्नाथपुरी। हम सेन फ्रान्सिस्को में नव जगन्नाथ पुरी का पहले से ही

आरम्भ कर चुकें है और श्रीजगन्नाथ का रथ यात्रा महोत्सव सम्पूर्ण विश्व में अब मनाया जा रहा है। इस वर्ष लन्दन मे भी रथयात्रा का एक महोत्सव मनाया जाएगा। तीन रथ होगे, एक श्रीजगन्नाथ के लिए, एक श्रीमती सुभद्रा के लिए और एक रथ श्रीबलराम के लिए। रथो को थेम्स नदी के किनारे ले जाया जाएगा। अमेरिका ने न्यु इंग्लैण्ड और न्युयॉर्क का आयात किया है तो नव वृन्दावन (न्यु वृन्दावन) अमेरिका मे क्यो नही लाया जा सकता ? हमें इस वृन्दावन की विशेष रूप से स्थापना करनी चाहिए, क्योकि भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु ने इसकी सलाह दी है, **आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम् वृन्दावनम्**। "नन्दनन्दन श्रीकृष्ण ब्रज भूमि के वृन्दावन धाम मे परम पूज्यनीय श्रीविग्रह है और उनका धाम श्रीवृन्दावन भी उसी प्रकार पूज्यनीय है।"

पश्चिमी युवक और युवतियाँ श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति को ग्रहण कर रहे है, तो उनके लिए श्रीवृन्दावन के समान एक स्थान भी होना चाहिए। मेरे एक शिष्य स्वामी कीर्त्तनानन्द, मेरे साथ दो वर्ष पूर्व श्रीवृन्दावनधाम, भारत गए थे। वे जानते है कि श्रीवृन्दावन किस प्रकार का दीखता है। तो मैंने उनको निर्देश का दिया है कि हमारे नव वृन्दावन मे कम से कम सात मन्दिरो का निर्माण करे। श्री वृन्दावन मे श्रीराधाकृष्ण के पॉच हजार मन्दिर है परन्तु सबसे अधिक महत्वपूर्ण मन्दिर सात है। इन सात मन्दिरो की स्थापना गोस्वामियो के द्वारा की गई है। नव वृन्दावन मे हमारा निवास करने का कार्यक्रम है कि आर्थिक समस्याओ के हल के रूप मे कृषि एवं गायो पर निर्भर रहना और शान्तिपूर्वक श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति का साधन-हरे कृष्ण कीर्त्तन करना। यह श्रीवृन्दावन की योजना है।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दु:खहा॥

[गीता ६. १७]

यह मानव जीवन कृत्रिम आवश्यकताओ को बढाने के लिए नही बनाया गया है। हम शरीर का केवल निर्वाह करके सन्तुष्ट रहे और शेष समय हम अपने श्रीकृष्ण-भावनामृत को विकसित करने मे लगाएँ। इसका परिणाम यह होगा कि यह शरीर त्यागने के बाद हमे फिर से कोई दूसरा भौतिक शरीर नही लेना पड़ेगा। परन्तु हम वापस अपने घर, भगवान् के धाम मे लौट जाएँगे। मनुष्य जीवन का यही आदर्श होना चाहिए।

भौतिक जीवन का अर्थ है आहार, निद्रा, भय और मैथुन एव आध्यात्मिक जीवन का अर्थ है पशु जीवन की उन क्रियाओ से कुछ श्रेष्ठ क्रिया। पशु जीवन और मानव जीवन के बीच मे भी यही अन्तर है। पशु जीवन में और मनुष्य जीवन

में ये चार क्रियाएँ समान हैं—अर्थात् खाना, सोना, आत्म-रक्षा करना और मैथुन करना। एक कुत्ता आहार करता है, मनुष्य भी आहार करता है। मनुष्य सोता है और कुत्ता भी सोता है। मनुष्य में काम-जीवन है और कुत्ते मे भी कामाचार का जीवन है। कुत्ता अपने ढंग से अपनी रक्षा करता है और मनुष्य अपने ढंग से। मनुष्य भले ही परमाणु बम का प्रयोग करे और कुत्ता अपने नाखूनो का। यह चार सिद्धान्त मनुष्य और पशु दोनों के लिए ही है और इन सिद्धान्तो में उन्नति करना मानव सभ्यता नही, वरन् पशु सभ्यता है। मानव सभ्यता का अर्थ है **अथातो ब्रह्म जिज्ञासा**। यह पहला वेदान्तसूत्र है, अथातो ब्रह्म जिज्ञासा—"अब ब्रह्म के विषय में जिज्ञासा करने का समय है।" मनुष्य जीवन तो यही है। जब तक मनुष्य आध्यात्मिक जीवन के विषय मे जिज्ञासा नही करता—**जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्**। तब तक वह पशु ही है, क्योकि वह इन्ही चार सिद्धान्तो के अनुसार जीवन बिताता है। इससे अधिक उस नर पशु मनुष्य का और कोई परिचय नही है। उसे यह जानने के लिए अवश्य ही जिज्ञासा करनी चाहिए कि वह कौन है और उसे क्यों यह जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि के कष्ट झेलने पड़ते है। क्या इनका कोई समाधान है ? इन विषयो से सम्बन्धित प्रश्न पूछे जाने चाहिए। यही मनुष्य जीवन है; यही आध्यात्मिक जीवन है।

आध्यात्मिक जीवन का अर्थ है मनुष्य जीवन और भौतिक जीवन का अर्थ है पशु जीवन। बस और कुछ भेद नही है। हमे भगवद्गीता मे अनुमोदित किए गए समाधानो को ग्रहण करना पड़ेगा। **युक्ताहारविहारस्य**। उदाहरण के लिए, क्योकि मैं एक आध्यात्मिक मनुष्य बनने जा रहा हूँ, इसका यह अर्थ तो नही हुआ कि मै भोजन करना त्याग दूँगा। किन्तु मेरे भोजन में सन्तुलन हो। भगवद्गीता वर्णन करती है कि कौन-सा भोजन प्रथम श्रेणी का है, अर्थात् सतोगुणी और कौन सा रजोगुणी और कौन-सा तमोगुणी भोजन है। हमे स्वयं को मानव सभ्यता के सात्विक स्तर तक उन्नति करना है, तब हम अपनी अप्राकृत दिव्य चेतना अर्थात् श्रीकृष्णभावनामृत को जाग्रत कर सकते है। प्रत्येक वस्तु शास्त्रो में दी गई है। दुर्भाग्यवश हम शास्त्रो से परामर्श नही लेते।

एवं प्रसन्नमनसो भगवद्भक्तियोगतः।

भगवत्तत्त्व विज्ञानं मुक्तसङ्गस्य जायते॥ [भागवत १-२-२०]

जब तक व्यक्ति भौतिक प्रकृति के इन तीन गुणो के बन्धनो से मुक्त नही होता, तब तक वह भगवान् को नही समझ सकता। **प्रसन्नमनसः**। हम ब्रह्म भूत स्तर पर आएँ। **ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति** [गीता १८ ५४] तो शास्त्रो मे यह आदेश है, अतः हमें इन से लाभ उठाना चाहिए और इनका प्रचार करना चाहिए। एक बुद्धिमान् व्यक्ति का यही उत्तरदायित्व है। जन साधारण

को केवल इतना ही ज्ञान है कि भगवान् महान् हैं, परन्तु उन्हें यह ज्ञात नही कि भगवान् वास्तव में कितने महान् हैं। यह सूचना हमें वैदिक साहित्य से प्राप्त होगी। इस लौह युग में हमारा कर्त्तव्य यही है। यही हरि-कीर्त्तन अर्थात् **परम विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्** है—भगवान् की कीर्ति-गान।

ध्यान एवं आत्म-ज्ञान

"क्या ध्यान के द्वारा हमारी दिन-प्रतिदिन की समस्याएँ हल हो सकती हैं? क्या मृत्यु के पश्चात् जीवन है? क्या मादक पदार्थ आत्म-साक्षात्कार मे हमारी सहायता करते हैं, दक्षिण अफ्रिका की अपनी यात्रा के अन्तर्गत, श्रील प्रभुपाद डरबन-नैटल मर्क्युरी पत्रिका के बिल फेलेल के साथ हुए एक साक्षात्कार मे इनका और अन्य प्रश्नो का श्रील प्रभुपाद उत्तर देते हैं।"

श्रील प्रभुपाद—'कृष्ण' भगवान् का नाम है, जिसका अर्थ है 'सर्वाकर्षक।' जब तक कोई सर्वाकर्षक न हो, तब तक वह श्रीभगवान् नही हो सकता। तो श्रीकृष्ण-भावनामृत का अर्थ है भगवद्-भावनामृत। हम सब भगवान् के क्षुद्र अश है और गुग की दृष्टि के उनके समान हैं। जीवो के रूप मे हमारी वही स्थिति है जो स्वर्ण के एक छोटे से अंश की, स्वर्ण के विशाल भण्डार से होती है।

बिल—क्या हम अग्नि के एक स्फुलिग के समान है ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ। अग्नि और स्फुलिग दोनो ही अग्नि हैं, परन्तु एक बडी है और दूसरी बहुत छोटी। किन्तु हमारा भगवान् के साथ नित्य सम्बन्ध है जब कि अग्नि और स्फुलिग के बीच का सम्बन्ध नित्य नही है। यद्यपि वर्तमान मे भौतिक शक्ति के सम्पर्क के कारण हम श्रीभगवान् के साथ अपने सम्बन्ध को भूल गए है। केवल इस विस्मृति के कारण ही हम अनेकानेक समस्याओ का सामना कर रहे है। यदि हम अपनी मौलिक भगवद्-भावनामृत को जाग्रत कर सके, तब हम सुखी हो जाएँगे। श्रीकृष्णभावनामृत का यही सार-तत्त्व है। अपनी मौलिक भगवद्-भावनामृत को जाग्रत करने की यह सर्वोत्तम विधि है। आत्म-साक्षात्कार की विभिन्न विधियाँ है परन्तु वर्तमान युग कलि युग मे, लोग अत्यन्त पतित है और उन्हे श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति की सरल विधि की आवश्यकता है। अभी मनुष्य सोच रहे है कि उनका नाममात्र का भौतिक विकास ही उनकी समस्याओ का हल है, परन्तु यह वास्तविकता नही है। वास्तविक हल इस संसार बन्धन से पूर्ण रूपेण मुक्त होना है। यह मुक्ति कृष्ण-भक्त बन जाने से प्राप्त होती है। भगवान् नित्य है, अत. हम लोग भी नित्य सनातन है, परन्तु बद्ध अवस्था में हम सोच रहे है, "मै यह शरीर हूँ," और यही कारण है जो हमे बारम्बार एक

शरीर से दूसरा बदलना पड़ता है। यह अज्ञानता के कारण है। वास्तव मे हम यह शरीर नही, वरन् चिन्मय स्फुलिंग है अर्थात् भगवान् के अंश हैं।

बिल—तब तो शरीर आत्मा के लिए एक वाहन के समान हुआ ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ। यह एक मोटर के समान है। जैसे आप एक स्थान से दूसरे स्थान पर मोटर में जाते है, उसी प्रकार जीवन की भौतिक अवस्था मे मन भटकते रहने के कारण, हम सुखी बनने के प्रयत्न में एक स्थिति से दूसरी स्थिति में जा रहे है। परन्तु कोई वस्तु हमें तब तक सुखी नही बना सकेगी, जब तक हम अपनी वास्तविक स्थिति को न प्राप्त करे। हमारी वास्तविक स्थिति यह है कि हम श्रीभगवान् के अंश है और हमारा वास्तविक प्रयोजन भगवान् का संग-लाभ करना है तथा भगवान् को सहयोग देने के द्वारा सभी प्राणियो की सहायता करना है। सभ्य मनुष्य जीवन लम्बे समय तक चौरासी लाख योनियो मे चक्कर काटने के पश्चात् प्राप्त होता है। तो यदि हम इस सभ्य मनुष्य जीवन का यह समझने के लिए लाभ नही उठाते कि भगवान् कौन है, हम कौन है और हमारा भगवान् के साथ क्या सम्बन्ध है, तो हम एक महान् अवसर खो रहे है। इन महत्वपूर्ण प्रश्नो को हल न करके यदि हम केवल अपना समय कुत्ते और बिल्लियो के समान, इन्द्रियतृप्ति के लिए इधर-उधर जाने मे व्यर्थ ही नष्ट करते है, तो निश्चय ही हम एक महान् अवसर खो रहे है। श्रीकृष्णभावनामृत अभियान लोगो को यह शिक्षा दे रहा है कि किस प्रकार मनुष्य जीवन का पूर्ण रूप से लाभ उठाना चाहिए। वह लाभ यह है कि भगवान् को और उनके साथ सम्बन्ध को समझने का प्रयत्न किया जाय।

बिल—यदि हम इस जीवन का लाभ नही उठाते, तो क्या हमें दूसरे जीवन मे भी अवसर मिलता है ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ। मृत्यु के समय आपकी कामनाओ के अनुसार आप दूसरा शरीर पाते है। किन्तु यह निश्चित नही है कि वह मनुष्य का शरीर होगा। जैसे मैं पूर्व मे ही समझा चुका हूँ कि चौरासी लाख प्रकार की योनियाँ है। मृत्यु के समय अपनी मानसिक दशा के अनुसार आप इनमे से किसी एक योनि मे प्रवेश कर सकते है। मृत्यु के समय हम जो सोचा करते है, वह जीवन भर किए गए हमारे कार्यो पर निर्भर करता है। जब तक हम भौतिक भावना मे है, हमारे कर्म भौतिक प्रकृति के नियन्त्रण मे है। भौतिक प्रकृति तीन गुणो के माध्यम से सचालित होती है—सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। ये गुण तीन प्रधान रंग के समान है—पीला, लाल और नीला। जिस प्रकार हम लाल, पीले और नीले रंगो के मिश्रण से लाखो रग उत्पन्न कर सकते है, उसी प्रकार प्रकृति के गुण आपस मे मिल कर अनेक प्रकार के जीवन की उत्पत्ति करते है। जीवन की विभिन्न योनियो मे बारम्बार होने वाले इस जन्म-मृत्यु के चक्र को रोकने के लिए, हमे भौतिक प्रकृति

के आवरण के परे जाना आवश्यक है। इस प्रकार हम शुद्ध भावना के स्तर पर आते है। परन्तु यदि हम श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति के अप्राकृत इन्द्रियातीत विज्ञान को नही सीखते, तो मृत्यु के समय हमे अवश्य देहान्तर करना पड़ेगा। वह शरीर श्रेष्ठ या निम्न कोटि का हो सकता है। यदि हम सत्त्व-गुण का अनुशीलन करे, तो हम उच्चतर लोक अर्थात् स्वर्ग लोक मे जाते हैं, जहाँ जीवन का स्तर श्रेष्ठ है। यदि हम रजोगुण मे रहते है, तो हमे वर्त्तमान अवस्था मे ही बने रहना पड़ेगा। परन्तु यदि हम अज्ञानता के कारण पाप-कर्म करते है और प्रकृति के नियमो को भंग करते है, तो पशु या वृक्ष की योनि मे हमारा पतन होगा। उसके पश्चात् पुनः हमे मनुष्य जीवन के स्तर तक विकास करना होगा और यह विकसित होने की विधि लाखों वर्ष ले सकती है। इसलिए मनुष्य को अवश्य ही उत्तरदायी बनना चाहिए। उसे मानव जीवन के दुर्लभ अवसर का अवश्य ही लाभ उठाना चाहिए और वह लाभ है श्रीभगवान् के साथ अपना सम्बन्ध समझना और उस सम्बन्ध के अनुसार कार्य करना। तब वह विभिन्न प्रकार के जीवन मे होने वाले जन्म-मृत्यु के चक्र से छूट सकता है और अपने घर, भगवान् के धाम लौट सकता है।

बिल—क्या आप सोचते है कि भावातीत ध्यान (टी एम —ट्रान्सेनडेण्टल मेडिटेशन) लोगो की सहायता कर रहा है?

श्रील प्रभुपाद—वे यह जानते ही नही कि वास्तविक ध्यान क्या है उनका ध्यान केवल स्वाँग है—तथाकथित स्वामी और योगियो के द्वारा निकाली गई एक और ठग-विद्या। आप मुझसे पूछ तो रहे है कि ध्यान लोगो की सहायता कर रहा है, परन्तु क्या आप जानते है कि ध्यान क्या होता है?

बिल—मन को शान्त और स्थिर कर देना, इधर-उधर भटके बिना मन को एक केन्द्र पर बैठाने का प्रयत्न करना।

श्रील प्रभुपाद—वह केन्द्र क्या है?

बिल—मैं नही जानता।

श्रील प्रभुपाद—तो सभी लोग ध्यान के विषय में चर्चा तो बहुत कर रहे हैं, परन्तु कोई भी यह नही जानता कि वास्तविक ध्यान क्या है? ये ठग लोग 'ध्यान' शब्द का प्रयोग करते है, परन्तु उन ठगो को यह नही मालूम कि ध्यान का यथार्थ विषय क्या है। वे लोग केवल मिथ्या प्रचार कर रहे है।

बिल—क्या लोगो को सही विचारधारा प्रदान करने मे ध्यान का कोई महत्व नही है?

श्रील प्रभुपाद—जी नही। वास्तविक ध्यान का अर्थ है उस अवस्था को प्राप्त करना जिसमे मन भगवद्-भावनामृत से सतृप्त रहे। परन्तु यदि आप यही नही जानते कि

श्रीभगवान् क्या है, तो आप कैसे ध्यान कर सकते है ? इसके अतिरिक्त इस युग मे लोगो का मन इतना अधिक उत्तेजित रहता है कि वे मन को एकाग्र नही कर सकते। मैने इस नाममात्र के ध्यान को देखा है, लोग केवल सोते है और खर्राटे भरते है। दुर्भाग्यवश, भगवद्-भावनामृत अथवा 'आत्म-साक्षात्कार', के नाम पर बहुत से ठग लोग ध्यान की अप्रमाणिक विधियो को प्रस्तुत कर रहे है। ये व्यक्ति वैदिक ज्ञान के प्रामाणिक ग्रन्थो से कभी भी परामर्श नही लेते। ये ठग व्यक्ति एक प्रकार से लोगों का शोषण कर रहे है।

बिल—दूसरे शिक्षको के विषय में आपके क्या विचार है ? भूतकाल में वे लोग पश्चिम मे आपकी शिक्षा के समान ही सन्देश लाए थे।

श्रील प्रभुपाद—सबसे पहले हमें उनके द्वारा दी गई शिक्षाओ का अध्ययन करना पड़ेगा, यह जानने के लिए कि वे वेदो की दृष्टि मे प्रामाणिक है या नही। चिकित्सा विज्ञान या किसी और दूसरे विज्ञान के समान ही भगवद्-भावनामृत भी एक विज्ञान है। यह विज्ञान केवल इसलिए भिन्न-भिन्न नही हो सकता, क्योकि इसको विभिन्न मनुष्यो के द्वारा कहा गया है। दो+दो सभी स्थान मे चार होते है, पाँच अथवा तीन नही। इसी का नाम विज्ञान है।

बिल—क्या आप अनुभव करते है कि दूसरे व्यक्तियो ने भी सम्भवतया भगवद्-भावनामृत की सच्ची और प्रामाणिक विधि की शिक्षा दी होगी ?

श्रील प्रभुपाद—जब तक मै उनकी शिक्षाओ का विस्तार से अध्ययन न कर लूं, तब तक कुछ कह पाना बहुत कठिन है। वैसे ठगो की कोई कमी नही है।

बिल—जी हाँ, जो केवल धन पाने के लिए ध्यान का स्वाँग कर रहे है।

श्रील प्रभुपाद—हाँ, इसके अतिरिक्त उनका कोई और प्रयोजन नही है। उनकी कोई प्रामाणिक विधि नही है। इसलिए हम भगवद्गीता यथानुरूप प्रस्तुत कर रहे है, जो किसी व्यक्ति-विशेष की व्याख्या नही है। प्रामाणिकता की यही कसौटी है।

बिल—जी हाँ, यदि आप वस्तुओ को थोड़ा-सा भी परिष्कार करने लग जाएँ तो अन्तत. उसमे परिवर्त्तन आना अवश्यम्भावी है।

श्रील प्रभुपाद—श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति नई विधि नही है। यह अत्यन्त प्राचीन है और साथ मे प्रामाणिक भी। इसको बदला नही जा सकता। जैसे ही आप इसमे परिवर्त्तन लाने का प्रयत्न करते है, वैसे ही इसकी शक्ति नष्ट हो जाती है। यह विद्युत् शक्ति (बिजली) के समान है। यदि आप विद्युत् उत्पन्न करना चाहते है, तो आपको प्रामाणिक विधि का अवश्य ही पालन करना पड़ेगा। ऋण और धन ध्रुवो को एक दूसरे से सम्बद्ध करना ही पड़ेगा। यह नहीं कि आप मनमानी एक विद्युत-उत्पादक (जनरेटर) का निर्माण कर ले और फिर भी यह आशा करे कि वह विद्युत उत्पन्न कर सकता है। उसी प्रकार, वास्तविक

महाभागवतों से कृष्ण-भक्ति का दर्शन समझने की एक प्रामाणिक विधि है। यदि हम उनके उपदेशों का पालन करेंगे, तो वह विधि कार्य करेगी। दुर्भाग्यवश, आधुनिक मनुष्य के संकटपूर्ण रोगों में से एक यह है कि वह सभी कुछ अपने मन के अनुसार करना चाहता है। कोई भी प्रामाणिक मार्ग का पालन नही करना चाहता। इसलिए आध्यात्मिक और भौतिक दोनो ही दृष्टिकोण से प्रत्येक वस्तु असफल हो रही है।

बिल—क्या श्रीकृष्णभावनामृत अभियान की वृद्धि हो रही है?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, इस अभियान की अत्यधिक वृद्धि हो रही है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि हम लाखो रुपये के ग्रन्थ प्रतिदिन वितरण कर रहे है। हमारे लगभग ५० ग्रन्थ है और अनेक पुस्तकालय एवं महाविद्यालय के प्रख्याता लोग इन ग्रन्थों का अति-उत्कृष्ट मूल्याकन कर रहे है। इन ग्रन्थो के प्रकाशित होने तक ऐसा कोई साहित्य अस्तित्व में न था। यह विश्व को एक नया योगदान है।

बिल—यह प्रतीत होता है श्रीकृष्णभावनामृत में सिर का मुण्डन करना पड़ता है और गेरुआ वस्त्र पहनने होते है। पारिवारिक जीवन मे फँसा हुआ एक साधारण मनुष्य किस प्रकार श्रीकृष्णभावनामृत अथवा अर्थात् कृष्ण-भक्ति का साधन कर कर सकता है।

श्रील प्रभुभपाद—गेरुआ वस्त्र और मुण्डित सिर कोई आवश्यक नही है, यद्यपि ऐसा करने से उत्तम मानसिक स्थिति उत्पन्न होती है। जैसे सेना का एक अधिकारी जब अपने यथोचित वेष-भूषा (यूनिफॉर्म) में रहता है तो उसे एक मानसिक शक्ति प्राप्त होती है—वह सेना के एक अधिकारी के समान अनुभव करता है। तो क्या इसका यह अर्थ हुआ कि यदि वह यूनिफॉर्म में न हो तो वह युद्ध नही कर सकता? जी नही। उसी प्रकार भगवद्-भावनामृत को रोका नही जा सकता—इसे किसी भी परिस्थिति में जाग्रत किया जा सकता है—परन्तु कुछ विशेष अवस्थाएँ इसमे सहायक है। इसलिए हम निर्धारित करते है कि आप एक विशेष ढंग से रहिए, एक ढंग की वेष-भूषा पहनिए, एक विशेष ढंग से भोजन कीजिए इत्यादि-इत्यादि। ये वस्तुएँ श्रीकृष्णभावनामृत का अभ्यास करने मे सहायक है, परन्तु ये आवश्यक नही है।

बिल—तो क्या इसका यह अर्थ हुआ कि कोई भी श्रीकृष्णभावनामृत का साधक हो सकता है और साथ ही साथ अपना सामान्य दैनिक जीवन भी व्यतीत कर सकता है?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ।

बिल—मादक (नशीले) पदार्थों के विषय में आपके क्या विचार हैं ? क्या वे भगवद्-साक्षात्कार की विधि मे सहायता करते है ?

श्रील प्रभुपाद—यदि नशीले पदार्थ (ड्रग्स) भगवद्-साक्षात्कार में सहायता कर पाते तो वे भगवान् से अधिक शक्तिशाली होते । हम इसको कैसे स्वीकार कर सकते है ? नशीली औषधियाँ रसायनिक पदार्थ है, जो प्राकृत (भौतिक) वस्तुएँ है । एक भौतिक वस्तु श्रीभगवान् का साक्षात्कार करने मे कैसे सहायता कर सकती है, क्योंकि भगवान् तो पूर्ण अप्राकृत (आध्यात्मिक) है । यह असम्भव है । नशीली वस्तुएँ लेने के कारण मनुष्य जो अनुभव करता है वह केवल एक प्रकार का नशा अथवा मायिक (इन्द्रजाल) है, यह भगवद्-साक्षात्कार नही है ।

बिल—क्या आप सोचते है कि प्राचीन युग के महान् योगियो ने वास्तव में चिन्मय स्फुलिंग को देखा है, जिसका आपने पहले वर्णन किया था ?

श्रील प्रभुपाद—'योगियो' से आपका क्या तात्पर्य है ?

बिल—यह शब्द केवल उन लोगो का संकेत करता है जिनको कि एक दूसरे स्तर की वास्तविकता का अनुभव हो चुका है ।

श्रील प्रभुपाद—हमलोग तो 'योगिक' शब्द का प्रयोग नही करते । हमारी वास्तविकता तो भगवद्-साक्षात्कार है । भगवद्-साक्षात्कार होते ही हम आध्यात्मिक स्तर पर आ जाते है । जब तक हमारी देहात्म-बुद्धि है, तब तक हमारा ज्ञान एक प्रकार से इन्द्रियतृप्ति है, क्योंकि शरीर इन्द्रियो से बना हुआ है । जब हम दैहिक स्तर से ऊपर उठते है तो हम मन को ऐन्द्रिक कार्य-कलापो के केन्द्र के रूप मे देखते है और मन को साक्षात्कार की अन्तिम अवस्था के रूप में मान बैठते है । यह भी मानसिक स्तर है । मानसिक स्तर से हम बौद्धिक स्तर पर आते है और बौद्धिक स्तर से हम इन्द्रियातीत स्तर तक उन्नति कर सकते है अन्ततः हम इस इन्द्रियातीत स्तर से भी ऊपर उठ कर आध्यात्मिक स्तर पर आ सकते है, जो एक प्रौढ अवस्था है । श्रीभगवान् के साक्षात्कार की ये विभिन्न अवस्थाएँ है । किन्तु, इस युग मे लोग इतने पतित है इसलिए शास्त्र विशेष रूप से इसका अनुमोदन करते है कि लोग भगवन्नाम .

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे ॥

के केवल कीर्त्तन मात्र से सीधे ही आध्यात्मिक स्तर पर आ सकते है । यदि आध्यात्मिक स्तर पर हम इस साधन का अभ्यास करे, तो हम तत्काल ही अपने आध्यात्मिक स्वरूप का साक्षात्कार कर सकते है और तब भगवद्-साक्षात्कार की विधि बहुत ही शीघ्र सफल हो जाती है ।

बिल—आजकल बहुत से लोग यह कह रहे है कि हमें सत्य का अन्वेषण 'अपने मे' करना चाहिए, बाहरी संसार मे नही।

श्रील प्रभुपाद—'अपने मे' अन्वेषण करने का यह अर्थ है कि आप जाने कि आप एक आत्मा हैं। जब तक आप यह नही समझते कि आप शरीर नही वरन् आत्मा हैं, तब तक आन्तरिक दृष्टि का कोई प्रश्न ही नही उठता। सर्वप्रथम तो हमे यह अध्ययन करना है, "क्या मैं यह शरीर हूँ अथवा मैं इस शरीर के भीतर स्थित कोई वस्तु हूँ" दुर्भाग्य से, किसी भी विद्यालय, महाविद्यालय अथवा विश्वविद्यालय मे इस विषय की शिक्षा नही दी जाती। सभी लोग सोच रहे है, "मैं यह शरीर हूँ।" उदाहरण के लिए, विश्व मे सभी स्थानो पर लोग सोच रहे है, "मैं दक्षिणी अफ्रीकन हूँ, वे भारतीय हैं, वे ग्रीक है," इत्यादि-इत्यादि। वास्तव मे सारे विश्व के लोगो की देहात्म-बुद्धि है। श्रीकृष्णभावनामृत का आरम्भ तभी होता है जब मनुष्य इस देहात्म-बुद्धि से ऊपर उठ जाता है।

बिल—तो इसका अर्थ है कि चिन्मय स्फुलिंग को पहचानना पहला कदम है ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ। शरीर के भीतर स्थित आत्मा के अस्तित्व को पहचानना पहला कदम है। जब तक मनुष्य इस साधारण-से तथ्य को नही समझ पाता तब तक आध्यात्मिक विकास का कोई प्रश्न ही नही है।

बिल—क्या यह केवल बौद्धिक दृष्टिकोण से समझनें का प्रश्न है ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, आरम्भ मे यह भले ही बौद्धिक दृष्टिकोण पर आधारित हो सकता है। ज्ञान के दो विभाग होते है—सैद्धान्तिक (सिद्धान्त सम्बन्धी) और व्यवहारिक। पहले हमे आध्यात्मिक विज्ञान को सिद्धान्त के रूप मे समझना है; उसके पश्चात् उस आध्यात्मिक स्तर पर कार्य करते हुए, हम व्यवहारिक स्तर पर आ जाते हैं। दुर्भाग्यवश आजकल प्रायः सभी लोग देहात्म-बुद्धि के अन्धेरे मे है। इसलिए यह अभियान बहुत महत्वपूर्ण है, क्योकि यह सभ्य मनुष्यो को उस अँधेरे से उठा सकता है। जब तक लोगो के जीवन मे देहात्म-बुद्धि की धारणा रहती है, तबतक वे पशुओ से श्रेष्ठ नही हैं। 'मै कुत्ता हूँ', 'मै बिल्ली हूँ', 'मै गाय हूँ।' पशु ऐसा ही सोचते है। जैसे ही कोई पास से निकलता है कुत्ता यह सोचते हुए भौकने लगेगा, "मै कुत्ता हूँ। मुझे यहाँ प्रहरी के रूप मे नियुक्त किया गया है।" उसी प्रकार, यदि मै कुत्ते की प्रवृत्ति अपना कर विदेशियो को चुनौती देता हूँ—"आप इस देश मे क्यो आए है ? आप मेरे क्षेत्र में क्यो आए है ?" तब फिर कुत्ते मे और मुझमे अन्तर ही क्या रह गया ?

बिल—कोई अन्तर नही रहेगा। अब इस विषय मे थोड़ा-सा परिवर्त्तन करे, क्या आध्यात्मिक जीवन का साधन करने के लिए यह आवश्यक है कि भोजन सम्बन्धी कुछ विशेष आदतो का पालन किया जाय ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, सम्पूर्ण विधि ही हमको शुद्ध करने के लिए बनाई गई है और भोजन उस शुद्धिकरण का एक अंग है। मैं सोचता हूँ कि एक कहावत है, **"जैसा खाओ अन्न वैसा बने मन"** और यह एक तथ्य है। हमारी शारीरिक बनावट और मानसिक स्तर इसके आधार पर जाने जाते है कि हम कैसे और क्या भोजन करते है। अतः शास्त्र यह सलाह देते है कि कृष्ण-भक्त बनने के लिए आपको कृष्ण-प्रसाद अर्थात् श्रीकृष्ण के द्वारा किए गए भोजन का अवशेष ही खाना चाहिए। यदि टी. बी. (क्षयरोग) का रोगी कुछ भोजन करे और आप उसके बचे हुए भोजन को खा ले तो आपमें भी टी. बी. के जीवाणु आ जाएँगे। उसी प्रकार, यदि आप कृष्ण-प्रसाद ग्रहण करे, तो आपमे भी श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात कृष्ण-भक्ति अपने आप ही हो जाएगी। इस प्रकार हमारी विधि यह है कि हम कोई भी वस्तु तत्काल नही खा लेते। पहले हम श्रीकृष्ण को भोजन समर्पण करते है, फिर उसे ग्रहण करते है। ऐसा करने से हमे श्रीकृष्णभावनामृत के विकास मे सहायता मिलती है।

बिल—आप सब लोग शाकाहारी है?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, क्योकि श्रीकृष्ण शाकाहारी है। श्रीकृष्ण कुछ भी खा सकते है, क्योकि वे भगवान् है परन्तु भगवद्गीता [६ २६] मे वे कहते है: **पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।** "भक्त प्रेमा भक्ति के साथ पत्र, पुष्प, फल, जल आदि जो कुछ भी मुझे अर्पण करते है, उसे मै प्रीति सहित खाता हूँ।" भगवान् कभी नही कहते, "मुझे मांस और शराब दो।"

बिल—और तम्बाकू के विषय में?

श्रील प्रभुपाद—तम्बाकू भी एक नशीली वस्तु है। हम लोग देहात्म-बुद्धि की धारणा के कारण पहले से ही नशे मे है और हम लोग इस नशे को और बढ़ाते जाएँ तो हमारा सर्वनाश सुनिश्चित है।

बिल—आपका तात्पर्य क्या यह है कि मांस, मदिरा और तम्बाकू जैसी वस्तुएँ दैहिक भावना को सुदृढ करती है।

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ। कल्पना कीजिए आपको कोई रोग है और आप उसकी चिकित्सा करना चाहते है, तो आपको चिकित्सक के निर्देशो का पालन करना ही पड़ता है। यदि वह कहता है, "इसे मत खाओ; केवल इस वस्तु का भोजन करो तो आपको उसका निर्देश मानना ही पड़ता है। उसी प्रकार हमारे पास भी देहात्म-बुद्धि रूपी रोग से मुक्त होने के लिए एक रामबाण है—हरे कृष्ण कीर्त्तन, कृष्ण-लीला का श्रवण और कृष्ण-प्रसाद ग्रहण। श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात कृष्ण-भक्ति का साधन करना ही चिकित्सा है। हरे कृष्ण।

सामाजिक
दोषोंका
समाधान

अपराध : क्यों और उसका निराकरण

"जुलाई सन् १९७५ मे हुए इस साक्षात्कार मे, शिकागो पुलिस विभाग के जन-सम्पर्क अधिकारी लेफ्टिनेन्ट डेविट मौजी पूछते हैं कि किस प्रकार अमेरिका मे होने वाले अपराधो की उत्तरोत्तर वृद्धि को कम किया जाय। श्रील प्रभुपाद उत्तर देते हैं, "यदि मनुष्यो को भगवान् के विषय मे शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा नही दी जाती तो ये कुत्ते और बिल्लियो के स्तर पर बने रहते हैं। आप कुत्ते और बिल्लियो के समाज मे शान्ति नही ला सकते। . चोर और हत्यारे पहले से ही कानून को जानते हैं, यद्यपि वे अपने अस्वच्छ हृदय के कारण हिसक अपराध करते ही रहते हैं। अत हमारी विधि हृदय को स्वच्छ करना है।"

डेविड—मै समझता हूँ कि आपकी कुछ ऐसी योजनाएँ है, जो अपराधों को रोकने के हमारे प्रयास मे सहायक हो सकती है। मेरी उन योजनाओ मे अत्यन्त रुचि है।

श्रील प्रभुपाद—एक पुण्यात्मा ,और अपराधी मे यह अन्तर है कि एक का हृदय शुद्ध है और दूसरे का अशुद्ध। अपराधी के हृदय में अनियंत्रित काम एवं लोभ के रूप मे यह धूल एक रोग के समान है। साधारणतया आजकल सभी व्यक्ति इस रोगी दशा मे है और इस प्रकार अपराध अत्यन्त व्यापक स्तर पर हो रहे है। जब लोगो का हृदय शुद्ध होगा तो अपराधो का भी अन्त हो जाएगा शुद्धिकरण की सबसे अधिक सरल विधि यह है कि सामूहिक रूप से भगवन्नाम कीर्त्तन करना। इसे सकीर्त्तन कहते है और हमारे श्रीकृष्णभावनामृत अभियान का यही आधार है। तो यदि आप अपराधो को रोकना चाहते है, तो आप अधिक से अधिक यथा-सम्भव सख्या मे व्यापक सकीर्त्तन के लिए अवश्य एकत्र हो। सामूहिक रूप से किया जाने वाला यह भगवन्नाम कीर्त्तन सभी के हृदय से अस्वच्छ वस्तुओ को दूर कर देगा। और तब फिर और अपराध नही होगे।

डेविड—क्या आप सोचते है कि यहाँ होने वाले अपराध आपके अपने देश भारत मे होने वाले अपराधो से भिन्न है?

श्रील प्रभुपाद—अपराध की आप क्या परिभाषा देते है?

डेविड—एक व्यक्ति के द्वारा दूसरे व्यक्ति के अधिकारो को छीन लेना।

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ। हमारी भी यही परिभाषा है। उपनिषदो मे यह आता है, **ईशावास्यमिदं सर्वं**, "प्रत्येक वस्तु श्रीभगवान् की है।" तो, सभी लोगो का यह अधिकार है कि भगवान् के द्वारा उसको दी गई वस्तुओ का वह सदुपयोग करे, उसको दूसरे की सम्पत्ति पाने की अनधिकार चेष्टा नही करनी चाहिए। यदि कोई ऐसा करे तो वह अपराधी बन जाता है। वास्तव मे पहला अपराध तो यही है कि आप अमेरिकन लोग सोच रहे है कि यह अमेरिका की भूमि आपकी है। यद्यपि दो सौ वर्ष पहले यह आपकी नही थी, आप विश्व के दूसरे भागो से आए है और अब यह दावा करते है कि यह आपकी भूमि है। वास्तव मे यह भगवान् की भूमि है और इसलिए यह प्रत्येक प्राणी की है, क्योकि प्रत्येक जीव भगवान् की सन्तान है। परन्तु अधिकाश लोगो को श्रीभगवान् की कोई धारणा हो नही है। व्यवहारिक रूप से, सभी लोग भगवद्-विहीन भावनाओ से परिपूर्ण है। अत. उनको भगवान् से प्रेम करने की शिक्षा दी जानी चाहिए। अमेरिका मे, आपके शासन का एक नारा है "हम भगवान् मे विश्वास करते है।" क्या यह सही है ?

डेविड—जी हाँ।

श्रील प्रभुपाद—परन्तु कहाँ है वह शिक्षा जो भगवान् के विषय मे दी जाती है ? भगवान् मे विश्वास करना बहुत अच्छा है, परन्तु केवल विश्वास अधिक समय तक नही वर्त्तमान रहेगा, जब तक कि वह भगवान् के वैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित न हो। कोई भले ही यह जाने कि उसके एक पिता है, परन्तु जब तक वह यह नही जानता कि उसके पिता कौन है, तब तक उसका ज्ञान अपूर्ण है। और भगवान् के विज्ञान मे दी जाने वाली इस शिक्षा की यह कमी है।

डेविड—क्या आप अनुभव करते है कि यह कमी केवल यहाँ अमेरिका मे ही है।

श्रील प्रभुपाद—जी नही। सभी देशो मे है। यह युग जिसमे हम निवास कर रहे है वह कलियुग अर्थात् भगवान् को भूल जाने वाला युग कहलाता है। यह भ्रम और कलह का समय है और लोगो का हृदय गन्दी वस्तुओ से भरा पड़ा है। परन्तु भगवान् इतने शक्तिशाली है कि हम उनका नाम कीर्त्तन करे तो हम शुद्ध हो जाते है। जैसे मेरे शिष्य अपने दुर्व्यसनो से मुक्त हो चुके है। हमारा अभियान भगवन्नाम कीर्त्तन के इसी सिद्धान्त पर आधारित है। हम बिना किसी भेदभाव के सभी को अवसर देते है। वे हमारे मन्दिर मे आ सकते है, हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्त्तन कर सकते है, थोड़ा सा कृष्ण प्रसाद ले सकते है और इस प्रकार धीरे-धीरे शुद्ध बन सकते है। तो शासन के अधिकारी हमे कुछ सुविधाएँ दे तो हम व्यापक कीर्त्तन का आयोजन कर सकते है। तब, नि सन्देह सम्पूर्ण समाज मे परिवर्तन हो जाएगा।

डेविड—यदि मैं आपको ठीक से समझा हूँ, श्रीमान् जी, तो आप यह कह रहे है कि हमे धार्मिक सिद्धान्तो की ओर लौटने के लिए बल देना चाहिए।

श्रील प्रभुपाद—निश्चय ही। धार्मिक सिद्धान्तो के बिना एक कुत्ते और मनुष्य मे अन्तर ही क्या रह जाता है? मनुष्य धर्म समझ सकता है, परन्तु कुत्ता नही। दोनो मे यही अन्तर है। तो यदि मानव समाज कुत्ते और बिल्लियो के स्तर पर बना रहे, तो आप कैसे एक शान्ति पूर्ण समाज की आशा कर सकते है यदि आप एक दर्जन कुत्तो को एक कमरे मे साथ रख दे, क्या यह सम्भव होगा कि वे शान्त बने रहे? उसी प्रकार, यदि मानव समाज ऐसे मनुष्यो से भरा हुआ है जिनकी प्रवृत्ति कुत्तो के स्तर की है, तो आप कैसे शान्ति की आशा कर सकते है?

डेविड—यदि कुछ मेरे प्रश्न असम्मान पूर्ण लगते है, तो वह केवल इसलिए कि मै आपके धार्मिक सिद्धान्तो को पूर्ण रूप से नही समझ सका हूँ। मेरा किसी भी प्रकार से अनादर करने का कोई विचार नही है।

श्रील प्रभुपाद—जी नही, यह मेरे धार्मिक विश्वासो का प्रश्न नही है। मै तो केवल मनुष्य और पशु जीवन के अन्तर को स्पष्ट कर रहा हूँ। पशु सम्भवतया श्रीभगवान् के विषय मे कुछ नही सीख सकते, परन्तु मनुष्य ऐसा कर सकते है। किन्तु, यदि मनुष्यो को भगवान् के विषय की शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा नही दी जाती, तो वे कुत्ते और बिल्लियो के स्तर पर बने रहते है। आप कुत्ते और बिल्लियो के समाज मे शान्ति स्थापित नही कर सकते। इसलिए शासन के अधिकारियो का यह कर्त्तव्य है कि वे देखे कि लोगो को इसकी शिक्षा दी जा रही है कि वे किस प्रकार श्रीभगवान् के भक्त बने। नही तो, अशान्ति होगी ही, क्योकि भगवद्भावनामृत के बिना कुत्तो और मनुष्यो मे कोई अन्तर नही है। कुत्ता भोजन करता है और हम भोजन करते है, कुत्ता सोता है और हम सोते है, कुत्ता मैथुन करता है और हम मैथुन करते है, कुत्ता अपनी आत्मरक्षा करने का प्रयत्न करता है और हम अपनी आत्मरक्षा करने का प्रयत्न करते है। तो यह तथ्य पशु और मनुष्य दोनो मे ही विद्यमान है। अन्तर केवल यह है कि कुत्ते को भगवान् के साथ उसके सम्बन्ध की शिक्षा नही दी जाती, परन्तु मनुष्य को दी जा सकती है।

डेविड—धर्म पर लौटने के लिए क्या शान्ति एक प्रारम्भिक कदम नही है, हमें क्या पहले शान्ति स्थापित नही करनी चाहिए?

श्रील प्रभुपाद—नही-नही, यही तो कठिनाई है। वर्त्तमान मे, कोई वास्तव में धर्म का अर्थ जानता ही नही है। धर्म का अर्थ है श्रीभगवान् के नियमो का पालन करना, जैसे एक अच्छी नागरिकता का अर्थ है शासन के नियमो का पालन करना। किसी व्यक्ति को भगवान् का कोई ज्ञान तो है नही, इसलिए कोई भी भगवान् के नियमो को अर्थात् धर्म के अर्थ को नही जानता। आज के समाज मे लोगो की यह

वर्तमान दशा है। वे लोग धर्म को भूल रहे हैं, उसे एक प्रकार का 'विश्वास' मान रहे हैं। विश्वास तो अन्ध-विश्वास भी हो सकता है। विश्वास (धर्म) का यथार्थ वर्णन नही है। धर्म का अर्थ है श्रीभगवान् के द्वारा दिए गये नियम, और जो भी इन नियमों का पालन करता है वह धार्मिक है—चाहे वह क्रिश्चयन, हिन्दू या मुसलमान हो।

डेविड—पूर्ण सम्मान के साथ क्या मैं यह प्रश्न कर सकता हूँ कि क्या यह सत्य नहीं है कि भारत मे जहाँ धार्मिक नीतियों का अनेकानेक शताब्दियो से पालन होता आया है, हम यह अवलोकन कर रहे है कि लोग आध्यात्मिक जीवन की ओर नही वरन् उससे दूर जा रहे है ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, परन्तु यह केवल खराब नेतृत्व के कारण है। नही तो अधिकांश भारतीय लोग श्रीभगवान् के प्रति पूर्ण रूप से सचेत है और वे भगवान् के नियमो का पालन करने का प्रयत्न करते है। यहाँ पश्चिम मे, महाविद्यालय के वड़े-वड़े प्रोफेसर तक भी भगवान् मे या मृत्यु के पश्चात् जीवन मे विश्वास नही करते। परन्तु भारत मे सवसे अधिक निर्धन मनुष्य भी भगवान् और अगले जीवन मे विश्वास करता है। वह जानता है कि यदि वह पाप करेगा तो उसे कष्ट होगा और यदि वह पुण्य करेगा तो सुख भोगेगा। आज भी ग्रामीणो मे यदि कोई असहमति हो जाय तो वे मन्दिर मे जाकर सुलझा लेते है। क्योकि सभी लोग जानते है कि भगवान् की श्रीमूर्ति के सामने असत्य बोलने मे विरोधी दल को असमजस होगा। तो अधिकाश रूप से, भारत मे अभी भी ८०% लोग धार्मिक है। यह भारत में जन्म लेने का विशेष विशेषाधिकार है और विशेष उत्तरदायित्व भी। भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा है—

भारत भूमि ते हइल मनुष्य जन्म यार।
जन्म सार्थक करि कर पर उपकार॥

[श्रीचैतन्य चरितामृत, आदि ९.४१]

जिसने भी भारतवर्ष मे जन्म लिया है उसे कृष्ण-भक्त बन कर अपना जीवन सार्थक करना चाहिए। तत्पश्चात् उसको सम्पूर्ण विश्व मे श्रीकृष्णभावनामृत का वितरण करना चाहिए।

डेविड—श्रीमान् जी एक क्रिश्चयन दृष्टान्त है कि धनी मनुष्य के लिए भगवान् के सिंहासन के सामने आने की तुलना मे ऊँट के द्वारा सूई के छेद से निकल जाना अधिक सरल है। क्या आप सोचते है कि अमेरिका एवं अन्य पश्चिमी देशो की सम्पत्ति आध्यात्मिक विश्वास प्राप्त करने के मार्ग मे एक बाधा है।

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ। बहुत अधिक धन एक बाधा ही है। भगवान् श्रीकृष्ण भगवद्गीता [२.४४] मे कहते है :.

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धि समाधौ न विधीयते ।।

यदि कोई भौतिक दृष्टिकोण से अत्यन्त वैभवशाली है, तो वह श्रीभगवान् को भूल जाता है । इसलिए बहुत अधिक भौतिक सम्पत्ति भगवान् को समझने के लिए अयोग्यता है । यद्यपि यह नियम नही है कि केवल निर्धन मनुष्य ही भगवान् को समझ सकते है । यदि कोई असाधारण रूप से धनी हो, तो उसकी एकमात्र अभिलाषा धन प्राप्त करने की रहती है और उसके लिए यह कठिन है कि वह आध्यात्मिक शिक्षाओ को समझ सके ।

डेविड—अमेरिका मे, जो क्रिश्चयन मत के है वे भी इन वस्तुओ मे विश्वास करते है । मै एक धार्मिक समूह के आध्यात्मिक विश्वासो मे और दूसरे धार्मिक समूह के आध्यात्मिक विश्वासो मे कोई बड़ा भेद नही देखता हूँ ।

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, समस्त धर्मो का सार तो एक ही है । हमारा प्रस्ताव तो केवल इतना है कि व्यक्ति को अपनी धार्मिक पद्धति के पालन के द्वारा भगवान् को समझने का और उनसे प्रेम करने का प्रयत्न करना चाहिए । यदि आप क्रिश्चयन है, तो हम यह नही कहते कि "यह मत अच्छा नही है, आप हमारे समान अवश्य ही बनिए ।" हमारा तो केवल यही प्रस्ताव है कि चाहे आप क्रिश्चयन, मुस्लिम या हिन्दू हो, भगवान् को समझने का और उनसे प्रेम करने का प्रयत्न कीजिए ।

डेविड—मेरे यहाँ आने का मूल उद्देश्य यह है कि मै जान सकूँ कि आप अपराधो को कम करने मे क्या सलाह दे सकते है ? मै स्वीकार करता हूँ कि इस विषय मे पहला और सर्वाधिक महत्वपूर्ण ढग भगवान् की ओर लौटना होगा, जैसा कि आप कहते है । इसमे तो कोई सन्देह नही । परन्तु क्या कोई ऐसा मार्ग है जिससे हम अपराधी प्रवृत्ति को फैलने से रोकने के लिए तत्काल ही कुछ कर सके ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ । जैसे कि मैने अपनी चर्चा के आरम्भ मे पहले ही रूपरेखा प्रस्तुत की है, आप हमे भगवन्नाम कीर्त्तन और कृष्ण-प्रसाद वितरण करने की सुविधा दे । इसके द्वारा जनसाधारण मे अपूर्व परिवर्तन आएगा । मै भारत से अकेला आया था और मेरे अब अनेक अनुयायी है । यहाँ आकर मैने क्या किया, मैंने उनके साथ हरे कृष्ण महामन्त्र की कीर्त्तन किया, उसके पश्चात् थोडा सा प्रसाद बाँटा । यदि यह एक व्यापक स्तर पर किया जाता है, तो सम्पूर्ण समाज बहुत सुखी हो जाएगा । यह एक तथ्य है ।

डेविड—क्या आप ऐसे कार्यक्रम को धनी वर्ग मे अथवा निर्धनता के क्षेत्र मे आरम्भ करना चाहते है ?

श्रील प्रभुपाद—हम ऐसा कोई भेदभाव नही रखते । कोई भी स्थान जहाँ सभी प्रकार के मनुष्य आ सके, संकीर्त्तन करने के लिए अत्यन्त उपयुक्त होगा । ऐसा

कोई प्रतिबन्ध नही है कि केवल निर्धन मनुष्यो को ही लाभ की आवश्यकता है, परन्तु धनी लोगो को नही। सभी को शुद्ध होने की आवश्यकता है। क्या आप सोचते है कि अपराध करने की प्रवृति केवल समाज के निर्धन वर्ग मे पाई जाती है ?

डेविड—जी नही। परन्तु यह प्रश्न पूछने का मेरा अभिप्राय यह था कि यदि इस कार्यक्रम को धनी क्षेत्र की तुलना मे अपेक्षाकृत निर्धन क्षेत्र मे किया जाय तो अधिक लाभकारी होगा। समुदाय अधिक बलवान बनेगा।

श्रील प्रभुपाद—हमारी चिकित्सा आध्यात्मिक दृष्टिकोण से रोगी व्यक्तियो के लिए है। जब किसी व्यक्ति को रोग होता है, तो निर्धन और धनवान के बीच में कोई भेद नही रखा जाता। दोनो को ही एक चिकित्सालय मे भर्ती किया जाता है। जिस प्रकार चिकित्सालय एक ऐसे स्थान पर होना चाहिए, जहाँ निर्धन और धनवान दोनों प्रकार के मनुष्य सरलता से आ सके, उसी प्रकार संकीर्त्तन करने की सुविधा का स्थान भी सभी लोगो के प्रवेश के लिए खुला रहना चाहिए। सभी लोग भौतिक दृष्टिकोण से दूषित है, अत. सभी को सकीर्त्तन का लाभ उठाना चाहिए।

कठिनाई तो यह है कि धनी मनुष्य सोचता है कि वह पूर्ण रूप से स्वस्थ है, किन्तु वह सबसे बडा रोगी है। परन्तु पुलिस अधिकारी होने के कारण आप भली-भाँति जानते है कि धनी और निर्धन दोनो ही प्रकार के मनुष्यो मे अपराध करने की प्रवृत्ति समान है। तो यह कीर्त्तन की विधि सभी के लिए है, क्योकि यह हृदय को स्वच्छ करती है, चाहे वह मनुष्य वैभव मे हो या निर्धनता मे। अपराध-पूर्ण आदतो को स्थाई रूप से बदलने का एकमात्र ढग है अपराधी के हृदय मे परिवर्तन लाना। जैसा कि आप जानते है कि बहुत से चोर कई बार बन्दी बनाए जाते है और कारागार मे रखे जाते है। यद्यपि वे जानते है कि यदि वे चोरी करेगे तो कारागार मे रखे जाएँगे, फिर भी वे अपने अस्वच्छ हृदय के कारण चोरी करने के लिए बाध्य होते है। अत. अपराधी के हृदय को स्वच्छ किए बिना अधिक कठोर कानून व्यवहार मे लाने के द्वारा आप अपराध को नही रोक सकते है। चोर और हत्यारो को पहले से ही कानून का ज्ञान है, फिर भी वे अपने अस्वच्छ हृदय के कारण बारम्बार हिंसक अपराध करते है। तो हमारी विधि हृदय को स्वच्छ करना है तब इस संसार की सभी समस्याएँ हल हो जाएँगी।

डेविड—श्रीमान्, यह एक बहुत कठिन कार्य है।

श्रील प्रभुपाद—यह कठिन तो नही है, केवल आप सबको निमन्त्रण दीजिए—"आइए हरे कृष्ण कीर्त्तन कीजिए, नृत्य कीजिए और स्वादिष्ट कृष्ण-प्रसाद पाइए।" इसमे क्या कठिनाई है ? हम अपने केन्द्रो मे इस कार्यक्रम को कर रहे है और लोग इसमे सम्मिलित हो रहे है। परन्तु क्योकि हमारे पास बहुत कम धन है,

अतः हम संकीर्त्तन केवल एक छोटे से स्तर पर कर सकते है। हम सभी को निमन्त्रण देते है तथा धीरे-धीरे लोग हमारे मन्दिरो मे आ रहे है और भक्त बन रहे है। यदि शासन हमको बड़े पैमाने पर सुविधा दे, तो हम असीमित रूप से इस कार्यक्रम का विस्तार कर सकते है। और समस्या तो निश्चय ही बड़ी है : नही तो राष्ट्रीय समाचारो के लेख क्यो इस समस्या का हल करने के लिए कहते ? कोई भी राज्य अपराध करने की इस प्रवृत्ति को नही चाहता। यह एक तथ्य है। परन्तु नेता लोग यह जानते ही नहीं कि इसको किस प्रकार रोका जाए। किन्तु यदि वे हमको सुने, तो हम उन्हे उत्तर दे सकते है। अपराध क्यो होते है क्योकि लोग भगवद्-भावना से रहित है। और इसका हल क्या है ? हरे कृष्ण कीर्त्तन कीजिए और कृष्ण प्रसाद ग्रहण कीजिए। यदि आप चाहे तो आप संकीर्त्तन की इस विधि को स्वीकार कर सकते है। नही तो, हम इसे छोटे स्तर पर ही करते रहेंगे। हम लोग एक ऐसे निर्धन चिकित्सक के समान है जिसकी छोटी प्राइवेट प्रैक्टिस है, पर यदि उसको सुविधा दी जाए तो वह चिकित्सालय खोल सकता है। इस योजना को कार्यरूप देना शासन के ऊपर है। यदि वह हमारी सलाह से संकीर्त्तन की विधि को स्वीकार कर ले तो अपराध की समस्या हल हो जाएगी।

डेविड—अमेरिका मे अनेक क्रिश्चयन संस्थाएँ है जो प्रभु-भोज देती है। यह प्रभाव-शाली क्यो नही होता ? यह हृदय को स्वच्छ क्यो नही कर रहा है ?

श्रील प्रभुपाद—स्पष्ट कहूँ तो मुझे एक भी सच्चा क्रिश्चयन पाने मे कठिनाई होती है। तथाकथित क्रिश्चयन बाईबिल की आज्ञाओ का पालन नही करते है। बाईबिल मे दिए गए दस आदेशो मे से एक है, "तुम हत्या नही करोगे।" परन्तु कहाँ है वह क्रिश्चयन जो गौ मास खाने के द्वारा हत्या न करे ? भगवन्नाम कीर्त्तन और कृष्ण-प्रसाद वितरण की विधि तभी प्रभावित होगी, जब यह उन व्यक्तियो के द्वारा पालन की जाय जो वास्तव मे धर्म का अभ्यास कर रहे है। मेरे शिष्यगण धार्मिक सिद्धान्तो का दृढता के साथ पालन करने के लिए प्रशिक्षित किए गए है। और इसलिए उनके द्वारा किया गया भगवन्नाम कीर्त्तन अन्य लोगो के कीर्त्तन से भिन्न है। हरे कृष्ण भक्तो की केवल रबड़ की मोहर वाली स्थिति नही है। उन्होने भक्ति के साधन के द्वारा भगवन्नाम की शुद्धिकारक शक्ति की अनुभूति कर ली है।

डेविड—श्रीमान्‌जी, क्या यह कठिन नही है कि पुजारी और भक्तो का एक छोटा-सा क्षेत्र धार्मिक सिद्धान्तो का भले ही पालन करे, परन्तु जो कनिष्ठ लोग है वे विचलित हो सकते है और समस्या खडी कर सकते है ? उदाहरण के लिए, कल्पना कीजिए कि हरे कृष्ण अभियान एक विशाल रूप धारण कर ले, जैसे क्रिश्चयनिटी का है तो जो लोग अभियान के एक किनारे पर है उनके साथ-साथ क्या आपको समस्या

नही होगी ? अर्थात् ऐसे लोग जो अनुयायी होने का स्वांग तो करते हैं वस्तु वास्तव में अनुयायी नही है।

श्रील प्रभुपाद—यह सम्भावना तो सदैव रहती है, परन्तु मैं तो केवल इतना कह रहा हूँ कि यदि आप सच्चे क्रिश्चयन नही है तो आपका प्रचार प्रभावशाली नही होगा। और क्योकि हम दृढ़ता के साथ धार्मिक नियमो का पालन कर रहे है, अतः भगवद्-भावनामृत के प्रसार-प्रचार में और अपराध की समस्या को हल करने में हमारा प्रचार प्रभावशाली रहेगा।

डेविड—श्रीमान्‌जी, समय देने के लिए आपको धन्यवाद है। मैं यह टेप रिकार्डिंग अपने उच्च अधिकारियो को दे दूँगा। मैं आशा करता हूँ कि यह उसी प्रकार प्रभावशाली होगी जिस प्रकार आप प्रभावशाली है।

श्रील प्रभुपाद—आपको भी हार्दिक धन्यवाद है। हरे कृष्ण।

क्या हम समाज को पशु-समाज बनने से रोक सकते हैं?

"श्रील प्रभुपाद हमारे देश की एक पत्रिका "भवन्स" के प्रतिनिधि से कहते हैं, भोजन की सामग्री देखकर कुत्ता आता है, मैं कहता हूँ, "हट" और वह चला जाता है। पर वह फिर से लौट आता है क्योकि इसमे स्मरण शक्ति नही है। इसी प्रकार जब हम श्रीभगवान् का विस्मरण कर देते हैं, तब हमारे मानवीय गुण भी कम होने लगते हैं। वहाँ कोई धर्म नही रहता केवल रह जाती है पशु प्रतियोगिता। एक श्वान चार पैरो पर दौडता है और आप दौडते हैं चार पहियो की गाडी पर—बस यही अन्तर है। और आप सोचते हैं कि चार पहियो पर दौडने की यह प्रतियोगिता सस्कृति और सभ्यता की प्रगति की सूचक है।"

प्रश्नकर्त्ता—मेरा प्रथम प्रश्न है कि क्या आधुनिक युग में धर्म का प्रभाव कम होता जा रहा है ? और यदि यह सत्य है तो क्या यही कारण है कि आज चारों ओर भ्रष्टाचार की वृद्धि हो रही है और हमारे नैतिक मूल्यो का ह्रास अथवा अवनति ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, धर्म का प्रभाव कम हो रहा है। श्रीमद्‌भागवत में इस वर्त्तमान स्थिति को देखा जा सकता है। [१२. २. १] :

ततश्चानुदिनं धर्मः सत्यं शौचं क्षमा दया।
कालेन बलिना राजन् नङ्‌क्ष्यत्यायुर्बलं स्मृतिः ॥

"कलियुग में धर्म, सत्य, स्वच्छता, दया, आयु, शारीरिक शक्ति और स्मरण शक्ति कम हो जाएगी।" ये मानवीय गुण ही मनुष्य को पशु से पृथक् करते हैं। पर जब मनुष्यो मे दया नही होगी, सत्य नही होगा, स्मरण शक्ति क्षीण होगी और जीवन की अवधि भी कम हो जाएगी, धर्म भी नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगा तो इसका अर्थ हुआ कि हम धीरे-धीरे पशुओ के स्तर पर आ जाएँगे।

प्रश्नकर्त्ता—धर्म नष्ट हो जाएगा, हम पशुओ के स्तर पहुँच जाएँगे ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, धर्म रहित जीवन पशु-जीवन के समान ही होता है। कोई भी साधारण व्यक्ति इस बात को समझ सकता है कि कुत्ते को धर्म का कोई ज्ञान नही होता, वह नही जानता कि धर्म क्या है। यद्यपि वह भी एक जीव है पर

भगवद्‌गीता या श्रीमद्‌भागवत को समझने मे उसकी कोई रुचि नही है। मनुष्य और पशु मे यही अन्तर है। मनुष्य धर्म को समझ मकता है और पशु उससे अनभिज्ञ है। अत. जब मनुष्य धर्म से दूर होने लगते है तब उनमे और पशुओ मे कोई अन्तर नही रह जाता। और पशु-समाज मे भला किस प्रकार सुख और शान्ति की कल्पना की जा सकती है? पर ये लोग वर्त्तमान सभ्य समाज के तथाकथित कर्णधार मनुष्यों को पशुओ के समान रखना चाहते है और "सयुक्त राष्ट्र सघ" जैसी संस्थाओं की स्थापना कर रहे है। यह कैसे सम्भव है? और उनका यह प्रयत्न ठीक उसी प्रकार है जैसे कोई संयुक्त पशु समाज के लिए सामूहिक पशु सघ की स्थापना करे। बस इसी प्रकार की व्यवस्थाएँ की जा रही है। पर इन सब से क्या लाभ होगा?

प्रश्नकर्त्ता—पर क्या आपको आशा कोई किरण नजर आती है?

श्रील प्रभुपाद—कम से कम इन्होने यह तो अनुभव कर लिया है कि धर्म का पतन हो रहा है और यह एक अच्छी बात है। पतन का अर्थ है वे अब पशुओ के स्तर पहुँचने वाले है। तर्क शास्त्र मे कहा जाता है कि मनुष्य एक विवेकपूर्ण बुद्धिमान प्राणी है पर यदि उसका विवेक नष्ट हो जाए तो वह मनुष्य न रह कर पशु मात्र रह जाएगा। आप चाहे जिस धर्म को माने, ईसाई, मुसलमान, बौद्ध, हिन्दू, पर धर्म को अवश्य माने, उसमे विश्वास रखे और उसके अनुसार आचरण करे। धर्म रहित मानव समाज पशु-समाज के ही समान है, यह एक साधारण-सा तथ्य है। आज क्यो लोग इतने दु:खी है, केवल इसलिए कि वे धर्म के महत्व को न समझ कर उसकी उपेक्षा कर रहे है।

एक सज्जन ने मुझे पत्र लिखा कि टॉल्सटॉय (रूसी विचारक) ने एक बार कहा था, "जब तक गिरजाघरो के नीचे डायनामाइट नही रखा जाएगा तब तक शान्ति का प्रश्न ही नही उठता," और आज भी रूस की सरकार ईश्वर और ईश्वरीय भावना के एकदम विरुद्ध है क्योंकि उसके अनुसार धर्म ने ही सारे सामाजिक वातावरण को दूषित किया है।

प्रश्नकर्त्ता—क्या ऐसा नही लगता कि इस बात मे भी कुछ सत्य हो सकता है?

श्रील प्रभुपाद—हो सकता है कि धर्म का दुरुपयोग किया गया हो पर इसका अर्थ यह नही कि धर्म को अस्वीकार ही कर दिया जाय। धर्म के सही स्वरूप को स्वीकार करना ही चाहिए। यदि कुछ तथाकथित लोगो ने धर्म का उपयोग या प्रयोग ठीक से नही किया तो इसका अर्थ यह नही हुआ कि हम धर्म को ही अस्वीकार कर दे। उदाहरण के लिए यदि मेरे नेत्र मे मोतियाबिन्द के कारण कष्ट है तो क्या मुझे अपने नेत्र ही बाहर निकाल देने चाहिए? नही, मुझे अपने मोतियाबिन्द की चिकित्सा करवानी चाहिए। यही श्रीकृष्णभावना है।

प्रश्नकर्त्ता—मै समझता हूँ कि इतिहास में ऐसे कई सन्दर्भ मिलते है जो बताते है कि लोगो ने वास्तव मे धर्म का दुरुपयोग किया है क्या यह तथ्य सही नही है ?

श्रील प्रभुपाद—जो लोग धर्म का दुरुपयोग करते है या कर रहे है वे स्वयं नही जानते कि भगवान् क्या है ? पर वे धर्म का प्रचार कर रहे है। धर्म क्या है ? **धर्म्म तु साक्षाद् भगवत्प्रणीतम्** : "धर्म का मार्ग तो स्वयं भगवान् ने प्रतिपादित किया है।" पर लोगो का भगवान् के बारे मे कोई जानकारी नही है फिर भी वे किसी न किसी धर्म का प्रचार कर रहे है। पर इस प्रकार कृत्रिम रूप से कब तक चलेगा ? अन्तत ऐसे धर्म का पतन तो होगा ही।

यही वर्त्तमान स्थिति है। पर जो यही नही जानते कि भगवान् क्या है ? वे भगवान् की आज्ञा को भला क्या समझेगे ? धर्म का अर्थ ही है भगवान् के आदेश। उदाहरण के लिए कानून का अर्थ है राज्य की आज्ञा। पर यदि राज्य ही नही है तो आज्ञा का प्रश्न ही कहाँ है ? हमको भगवान् अर्थात् श्रीकृष्ण की स्पष्ट अवधारणा या जानकारी है। वे आदेश देते है और हम उनका पालन करते है, उन्हे स्वीकार करते है, हमारा यह धर्म बिलकुल स्पष्ट है। यदि भगवान् नही है, उनकी कोई धारणा नही है, तब धर्म का प्रश्न ही कहाँ उठता है ? जब शासन ही नही है फिर कानून का प्रश्न कहाँ ?

प्रश्नकर्त्ता—ऐसी स्थिति मे समाज मे कोई कानून नही होगा और समाज मे अव्यवस्था फैल जाएगी।

श्रील प्रभुपाद—आज हर व्यक्ति अपनी मनमानी कर रहा है। धर्म के विषय में अपने काल्पनिक विचारो का निर्माण करना हठधर्म नही तो और क्या है ? किसी भी धर्म सम्प्रदाय से पूछिए कि भगवान् के विषय मे उनकी धारणा क्या है ? क्या कोई इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट रूप से दे सकता है ? नही दे सकता। पर हम तुरन्त कह सकते है—

वेणुं क्वणन्तमरविन्ददलायताक्षं बर्हावतंसमसिताम्बुदसुन्दराङ्गम्।
कन्दर्पकोटिकमनीयविशेषशोभं गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

"मै उस आदिपुरुष श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ, जो वेणुवादन मे सुनिपुण है, जिनके नेत्र कमल की कर्णिका के सदृश अत्यन्त सुन्दर एव सुकुमार है और जिनके शिर पर मोरमुकुट अत्यन्त सुशोभित है एवं नील जलधर के समान जिनकी श्याम कान्ति है तथा जो कोटि-कोटि कामदेवो से भी अधिक मनोहर है।" जो धर्म यह नही बता सकता कि भगवान् कैसे है ? वह किस प्रकार का धर्म है ?

प्रश्नकर्त्ता—मै नही जानता।

श्रील प्रभुपाद—वह झूठा धर्म है। क्योकि लोगो को भगवान् की कोई धारणा नहीं है। इसीलिए उनमे धर्म की भी कोई समझ या जानकारी नही है। और यही पतन

है। और जैसे-जैसे धर्म का पतन हो रहा है वैसे-वैसे मनुष्य भी अधिकाधिक पशुवत् होते जा रहे है।

पशु का अर्थ होता है वह प्राणी जिसमें कोई स्मरण शक्ति नही होती। भोजन की सामग्री देखकर एक कुत्ता आता है, मै कहता हूँ 'हट' और वह चला जाता है। पर वह फिर लौट आता है क्योकि उसमे स्मरण शक्ति नही है। इसी प्रकार जब हम भगवान् का विस्मरण कर देते है तब हमारे मानवीय गुण भी कम होने लगते है। कलियुग मे इन मानवीय गुणो की कमी होगी अर्थात् मनुष्य कुत्ते-बिल्लियो की तरह व्यवहार करेगे।

प्रश्नकर्त्ता—अब प्रस्तुत है दूसरा प्रश्न, परम्परा से वैदिक सभ्यता और सस्कृति पर यह आरोप लगाया जाता है कि वह भाग्यवादी है। यह मनुष्यो को इस विश्वास का सेवक बनाती है कि उनका भाग्य पूर्वनियत है, इस विचारधारा के अनुसार प्रगति मे बाधा पहुँचती है अर्थात् प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। यह आरोप कहाँ तक सही है ?

श्रील प्रभुपाद—यह प्रगति क्या है ? एक पशु की उछल-कूद को क्या प्रगति कहा जा सकता है ? एक पशु अपने चार पैरो पर इधर-उधर भागता है और आप लोग चार पहियो वाली गाड़ी पर इधर-उधर भागते है ? क्या यही प्रगति है ? यह वैदिक संस्कृति नही है। वैदिक सभ्यता के अनुसार मनुष्यो मे कुछ शक्ति अवश्य होती है पर मनुष्य की चेतना पशु की चेतना से अधिक जाग्रत होती है इसलिए उनकी शक्ति पशु की शक्ति से अधिक महत्वपूर्ण है।

प्रश्नकर्त्ता—शायद इस पर किसी को असहमति नही होगी कि मनुष्यो को अधिक स्वतन्त्रता है और उनका उत्तरदायित्व भी पशुओ से अधिक होता है।

श्रील प्रभुपाद—इसलिए मनुष्य की शक्ति का उपयोग आध्यात्मिक उन्नति के लिए किया जाना चाहिए, न कि पशुओ के साथ प्रतियोगिता करने मे। जो लोग सात्त्विक स्वभाव के होते है वे पशुओ के समान व्यस्त नही रहते। आज लोग यह सोचते है कि पशुओ के समान यह मशीनी भाग-दौड़ ही जीवन है, पर वास्तव मे देखा जाय तो आध्यात्मिक उन्नति ही यथार्थ जीवन है। इसीलिए हमारे वैदिक ग्रन्थो में कहा गया है—

तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः।
तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं कालेन सर्वत्र गभीररंहसा॥

"बुद्धिमान् एवं दार्शनिक व्यक्ति को उसी वस्तु के लिए प्रयास करना चाहिए जो पाताल लोक से लेकर ब्रह्मलोक तक भ्रमण करने के पश्चात् भी अप्राप्य हो। जहाँ तक इन्द्रिय सुखो का सम्बन्ध है वह तो कालक्रम के अनुसार स्वत. ही प्राप्त होना

रहता है, जिस प्रकार हमें समय के प्रभाव से बिना इच्छा किए दुःख भी प्राप्त होते है।" [श्रीमद्भागवत १. ५. १८]

प्रश्नकर्त्ता—क्या आप इसे थोड़े विस्तार से समझाने का कष्ट करेंगे ?

श्रील प्रभुपाद—मनुष्य को अपनी शक्ति का उपयोग उस वस्तु के लिए करना चाहिए जो उसे अनेक जन्म लेने पर भी प्राप्त नही हुई। पिछले अनेक जन्मों में हमारी आत्मा अनेक प्रकार की योनियो मे रही है कुत्ता, बिल्ली, पशु, पक्षी, देवता इत्यादि। जीवो की कुल चौरासी लाख योनियाँ है। इस प्रकार आत्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर मे प्रवेश करने का क्रम न जाने कब से चला आ रहा है। और हर योनि का एक ही प्रयोजन है इन्द्रियतृप्ति।

प्रश्नकर्त्ता—इसका तात्पर्य ?

श्रील प्रभुपाद—उदाहरण के लिए कुत्ते को लीजिए। वह हमेशा इन्द्रियतृप्ति मे ही व्यस्त रहता है : भोजन कहाँ है, घर कहाँ है और आत्मरक्षा कहाँ है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य भी भिन्न-भिन्न ढग से यही कार्य कर रहा है। और यह क्रम अनेक जन्मोंसे चला आ रहा है। यह अनेक जन्मों से चल रहा है। एक छोटे से छोटा कीडा भी इन्द्रियो के इन्ही विषय-सुखो मे व्यस्त है। सभी प्राणी इन्द्रिय तृप्ति के लिए सघर्ष कर रहे है, खाना कहाँ है, घर कहाँ है, काम-सुख कहाँ है ? वैदिक साहित्य यही कहता है कि हम इन्ही वस्तुओ के लिए कई जन्मो से हम संघर्ष करते आ रहे है और यदि इस मनुष्य योनि मे भी अस्तित्व के संघर्ष से मुक्त नही हो सके तो फिर से हमे कई जन्मो तक यही सब कुछ करना होगा।

प्रश्नकर्त्ता—अब बात मेरे लिए कुछ स्पष्ट होती जा रही है। मै समझ रहा हू।

श्रील प्रभुपाद—हाँ, यह सब बन्द होना चाहिए। प्रह्लाद महाराज ने कहा है—

सुखमैन्द्रियकं दैत्या देहयोगेन देहिनाम्।
सर्वत्र लभ्यते दैवाद्यथा दुःखमयत्नतः॥

"हे दैत्य मित्रो, अपने प्रारब्ध के अनुसार शारीरिक सम्पर्क से प्राप्त होने वाले इन्द्रियो के सुख तो किसी भी योनि मे प्राप्त किए जा सकते है, इस प्रकार का सुख तो बिना किसी प्रयत्न के हमे स्वत. ही प्राप्त हो जाता है, जिस प्रकार अपने-आप हमको दु.ख प्राप्त हुआ करता है।" [भागवत ७. ६ ३]

कुत्ता भी एक शरीरधारी प्राणी है और मै भी, इसलिए मेरे और कुत्ते के काम-सुख मे कोई अन्तर नही है। कामाचार से प्राप्त होने वाले सुख मे अन्तर केवल इतना ही है कि कुत्ते को सडक पर भी कामाचार करने मे भय नही है, और हम उसे छिपाते है। लोग सोचते है कि एक अच्छे घर मे काम-क्रीडा करना प्रगति का लक्षण है। जबकि यह प्रगति नही है और इसी तथाकथित प्रगति के लिए मनुष्य

पशुओं के समान व्यवहार कर रहे है। लोग यह नही जानते कि मिले हुए शरीर के आधार पर उनका शारीरिक सुख पहले से ही निर्धारित है।

प्रश्नकर्त्ता—इस बात से आपका क्या तात्पर्य है कि उनका शारीरिक सुख पहले से ही निर्धारित है ?

श्रील प्रभुपाद—इसे भाग्य कहते है। एक सूकर के पास एक विशेष शरीर है और उसका आहार है विष्ठा, अगर आप उसे हलवा दीजिएगा तो उसे वह नही खाएगा। यह सम्भव नही है, क्योकि जिस प्रकार का शरीर उसे मिला है उसमे वह विष्ठा खाने के लिए बाध्य है। क्या कोई भी वैज्ञानिक सूकर के इस जीवन स्तर मे सुधार कर सकता है ?

प्रश्नकर्त्ता—मुझे इसमे सन्देह है।

श्रील प्रभुपाद—इसीलिए प्रह्लाद महाराज ने कहा है कि हर प्राणी का सुख पूर्व निश्चित है। मूलतया सुख एक ही सा होता है बस अपने शरीर के अनुसार उसमें थोड़ा-सा अन्तर होता है। जगलो मे रहने वाले असभ्य आदिवासी भी यही सब करते हैं।

आजकल लोग समझते है कि सभ्यता का अर्थ है गगनचुम्बी भवनो का निर्माण करना, पर वैदिक सभ्यता के अनुसार इसे प्रगति नही माना जाता। मनुष्य जीवन की वास्तविक उन्नति इसमे है कि उसने कितना अपने वास्तविक स्वरूप को को पहचाना है, इसमे नही कि उसने ऊँचे भवनो का निर्माग कर लिया है।

प्रश्नकर्त्ता—लेकिन आप जो यह कह रहे है क्या वे तथ्य अधिकाश लोगो को समझ मे नही आता ?

श्रील प्रभुपाद—कभी-कभी लोग इसका गलत अर्थ लगा बैठते है। उदाहरणार्थ उच्च न्यायालय का न्यायाधीश (जज) अपनी कुर्सी पर चुपचाप बैठा है और बाह्य रूप में कुछ नही कर रहा है, पर ऊँचा वेतन प्राप्त कर रहा है। उसे देख कर कोई सोचता है, "इसी न्यायालय मे मै रबर की मोहर लगाता हूँ फिर भी इस जज के वेतन का दसवाँ अंश भी मुझे नही मिलता।" वह सोचता है, "वह व्यक्ति (जज) सिर्फ कुर्सी पर बैठा रहता है और इतना अच्छा वेतन मिलता है जबकि मै पूरा दिन मेहनत करता हूँ, इतना व्यस्त रहता हूँ फिर भी मुझे इसकी तुलना मे इतना कम वेतन मिलता है।" यह परिस्थिति है। वैदिक सभ्यता का उद्देश्य है आत्म-साक्षात्कार, पशु-प्रतियोगिता नही।

प्रश्नकर्त्ता—फिर भी साधारणतया, कठिन परिश्रम करना और सघर्ष करके बाधाओ को पार कर लेना क्या सम्मान की बात नही समझी जाती ?

श्रील प्रभुपाद—'कर्मी' अर्थात् फल की इच्छा से कर्म करने वाले व्यक्तियो को भगवद्गीता में 'मूढ़' कह कर सम्बोधित किया गया है। मूढ़ अर्थात् महामूर्ख

(गधा)। ऐसे व्यक्तियों की तुलना गधों से क्यों की गई है, क्योंकि गधा दिन भर कठोर परिश्रम करता है, अपनी पीठ पर भार ढोता है और बदले मे उसका स्वामी उसे देता है, थोड़ी-सी घास। अपने स्वामी धोबी के दरवाजे पर खड़ा होकर वह उस घास को खाता है कि तभी धोबी फिर उसकी पीठ पर सामान लाद देता है। उसमे यह सोचने की बुद्धि नही है, "यदि मै इस धोबी के घर से बाहर चला जाऊँ तो कही भी पेट भरने को घास मिल जाएगी, फिर मैं क्यो इतना भार उठा रहा हूँ।"

प्रश्नकर्त्ता—मै जानता हूँ कि कुछ लोग इस प्रकार सोचते हैं।

श्रील प्रभुपाद—फल की इच्छा से कर्म करने वाले व्यक्ति की भी यही स्थिति होती है। वह अपने कार्यालय मे बहुत व्यस्त रहता है। अगर आप उससे मिलना चाहे तो वह कहेगा, "मै बहुत व्यस्त हूँ।" पर उसकी इस व्यस्तता का फल क्या निकलता है? किसलिए वह इतना व्यस्त रहता है? वह सिर्फ दो टोस्ट खाता है और एक कप चाय पीता है। और केवल इसीलिए वह इतना व्यस्त रहता है।" वह स्वयं यह नही जानता कि वह क्यो इतना व्यस्त रहता है? अपने खाते में जब वह देखता है कि पहले उसकी सम्पत्ति एक लाख रुपया थी और अब दो लाख हो गई है तो वह सन्तुष्ट हो जाता है। किन्तु उसका धन चाहे कितना ही बढ़ जाए, वह लेगा वही दो टोस्ट और एक कप चाय। फिर भी वह दिन-रात कठिन परिश्रम करेगा। कर्मी का यही अर्थ है, गधे जैसा जीवन बिना किसी उद्देश्य के दिन रात व्यर्थ ही कठोर परिश्रम करते रहना।

. किन्तु वैदिक संस्कृति इससे भिन्न है। उस पर जो आरोप लगाया जाता है वह सही नही है। वे व्यस्त रहते है पर किसी उच्च उद्देश्य के लिए। प्रह्लाद महाराज इस तथ्य पर बल देते है कि यह व्यस्तता इतनी महत्वपूर्ण है कि हर व्यक्ति के बाल्यकाल से ही इसका आरम्भ हो जाना चाहिए। **कौमार आचरेत् प्राज्ञः** हमे एक क्षण भी व्यर्थ नही खोना चाहिए। यही वैदिक सभ्यता है। जो मूढ होते है, गधो के समान वे सोचते है कि हम कर्मो से बच रहे है। हाँ हम बच रहे है, पर तुम्हारे निष्फल कर्मो के प्रयत्नो से, क्योकि वैदिक सभ्यता का उद्देश्य है आत्म-साक्षात्कार।

प्रश्नकर्त्ता—वैदिक सभ्यता पर क्या आप और थोडा प्रकाश डालने का कष्ट करेगे?

श्रील प्रभुपाद—वैदिक सभ्यता वर्णाश्रम प्रणाली से आरम्भ होती है। वर्णाश्रम प्रणाली मे समाज को चार वर्णों मे विभक्त किया जाता है, ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इसके अलावा उसमे जीवन के चार आश्रम होते है—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। वर्ण और आश्रम की इस प्रणाली का अन्तिम लक्ष्य होता

है भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा। यदि आप श्रीकृष्ण की पूजा करेगे तो समझिए कि आप ब्राह्मण के रूप मे अपना कर्त्तव्य कर रहे है।

प्रश्नकर्त्ता—यदि लोगो को वास्तव मे किसी ऐसी जीवन पद्धति का पता होता जो अधिक स्वाभाविक और लाभदायक है, तो फिर कोई समस्या ही नही। जैसा आप कह रहे है वे उसे अवश्य ग्रहण कर लेगे।

श्रील प्रभुपाद—परन्तु उनको यह पता ही नही है और इसीलिए आज कोई धर्म नही है, केवल पशुओ की भागदौड है। एक पशु चार पैरो पर दौड़ता है, और आप चार पहियो वाली गाडी पर, और आप समझते है कि चार पहियो पर दौड़ना ही सभ्यता के विकास का सूचक है।

इसलिए आधुनिक सभ्यता का कोई अर्थ नही है। जो आपके भाग्य मे लिखा है वह आपको अवश्य मिलेगा चाहे आप कही भी रहे। इससे तो अच्छा है कि आप श्रीकृष्णभावनामृत को ग्रहण करे प्रह्लाद महाराज ने एक उदाहरण दिया है कि आप कोई भी अरुचिकर वस्तु ग्रहण करना नही चाहते, फिर भी आपको उसका सामना करना ही पडता है। इसी प्रकार जो सुख आपके भाग्य मे लिखा है उसे आप न चाहे तो भी वह आपको मिलेगा ही। आपको अपनी शक्ति भौतिक सुखो की खोज मे नष्ट नही करनी चाहिए। जितना भौतिक सुख आपके भाग्य मे है उससे अधिक आपको प्राप्त नही हो सकता।

प्रश्नकर्त्ता—आप यह बात इतने विश्वास के साथ कैसे कह सकते है ?

श्रील प्रभुपाद—कैसे मैं इतने विश्वास के साथ कह सकता हूं ? क्योकि जीवन मे कई ऐसी निराशजनक स्थितियाँ आती है जिन्हें हम नही जानते। उदाहरण के लिए राष्ट्रपति कैनेडी की अपने ही देश के एक नागरिक के हाथो मृत्यु हुई। इसे कौन चाहता था और ऐसा क्यो हुआ ? वे एक महान् व्यक्ति थे, इतने लोग उनकी रक्षा करते थे पर फिर भी उनके भाग्य मे इस प्रकार की मृत्यु लिखी थी। यदि भाग्य मे ऐसा ही लिखा हो तो आपकी कौन रक्षा कर सकता है ?

अतः जिस प्रकार अनचाहा दु.ख जीवन मे भाग्यवश आता है उसी प्रकार भाग्यवश सुख भी आएगा ही। फिर क्यो इस प्रकार के सुधारो मे हम अपना जीवन नष्ट करे ? क्यो नही हम अपनी शक्ति का उपयोग श्रीकृष्ण-भक्ति के लिए करे ? बुद्धिमता यही है। भाग्य पर किसी का वश नही होता। हर व्यक्ति को जीवन मे सुख और दु ख भोगना पडता है। कोई भी निरन्तर सुख नही भोगता। यह सम्भव नही है।

जिस प्रकार आप अपनी विपत्तियो को आने से नही रोक सकते उसी प्रकार सुख को भी नही रोक सकते। वह स्वत. ही आएगा। इसलिए इन सब बातो के लिए व्यर्थ अपना समय मत नष्ट कीजिए।

प्रश्नकर्त्ता—क्या एक कृष्ण-भक्त उन्नित के लिए प्रयत्न नही करेगा ?

श्रील प्रभुपाद—बात यह है कि यदि आप झूठी, व्यर्थ प्रगति के लिए प्रयत्न करेंगे तो उससे क्या लाभ होगा ? अगर यह सत्य है कि कोई अपने भाग्य को नही बदल सकता तो उससे फिर प्रयत्न करने का अर्थ ही क्या है ? जो भी सुख-दुःख हमारे भाग्य मे लिखा है उसी को प्राप्त कर हमें सन्तुष्ट रहना चाहिए।

वैदिक सभ्यता का उद्देश्य है भगवद्-साक्षात्कार, और यही तत्त्व की बात है। आज भी अपने देश मे आप देखेंगे कि महत्वपूर्ण पर्वो पर लाखो लोग गंगा स्नान करते है क्योकि उनकी मुक्त होने मे रुचि है वे आलसी नही हैं। वे हजारो मील दूर से चलकर आते है, केवल गंगा स्नान करने के लिए। आप केवल उन्हे इसी लिए सुस्त नही कह सकते कि वे पशुओ की दौड़ मे भाग नही ले रहे है। वे अपने जीवन के बाल्यकाल से ही आत्म-साक्षात्कार करने मे व्यस्त है।" **कौमार आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह**। और वे इस कार्य में इतना अधिक व्यस्त हैं कि वे इसे कुमारावस्था से ही आरम्भ कर देते है। इसीलिए यह सोचना कि वे मन्द हैं, गलत है।

प्रश्नकर्त्ता—अब प्रश्न उठता है कि यदि भाग्य का लिखा मिटाया नही जा सकता तब हर नवजात शिशु को क्यो नही ऐसे ही पशु के समान छोड दिया जाता, क्योकि जो उसके भाग्य मे लिखा है वह तो होगा ही।

श्रील प्रभुपाद—नही, मानव योनि मे जन्म लेने का लाभ यही है कि आप उसे आध्यात्मिक रूप से प्रशिक्षित कर सकते है। इसीलिए कहा गया है—"**तस्यैव हेतो प्रयतेत कोविद**" तुम्हे अपनी शक्ति का उपयोग आत्म-साक्षात्कर के लिए करना चाहिए। अहैतुकी अप्रतिहता श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् भक्ति को नही रोक जा सकता। जिस प्रकार भौतिक भाग्य को नही रोका जा सकता उसी प्रकार यदि आप उसके लिए प्रयत्न करें तो आध्यात्मिक जीवन मे भी आपकी प्रगति को कोई नही रोक सकता।

वास्तव मे श्रीकृष्ण तो भाग्य मे लिखा भी बदल देते है, पर मात्र अपने भक्तो के लिए। वे कहते है—"**अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि**—अर्थात् मैं तुम्हे सभी पापो से मुक्त कर दूँगा, तुम्हारी रक्षा करूँगा। [गीता १८.६६] उदाहरण के लिए यदि किसी अपराधी को न्यायालय मृत्यु-दण्ड देती है तो उसे कोई नही रोक सकता। स्वयं वह न्यायाधीश जिसने दण्ड दिया है वह भी अपने निर्णय को नही बदल सकता। पर अभियुक्त यदि राजा से प्रार्थना करे, जो सब कानूनो से परे है तो केवल राजा उसको क्षमा कर सकता है।

अतएव हमारा एकमात्र प्रयोजन श्रीकृष्ण की शरण लेना है। यदि हम आर्थिक प्रगति के द्वारा कृत्रिम रूप से और अधिक सुखी बनना चाहते है तो यह

सम्भव नही है। कितने ही मनुष्य कठोर परिश्रम कर रहे है, परन्तु इसका क्या यह अर्थ हुआ कि सभी लोग टाटा या बिड़ला बन जाएँगे ? प्रत्येक व्यक्ति सर्वोत्तम रूप से प्रयत्न कर रहा है। बिड़लाजी के भाग्य में धनवान् मनुष्य बनना था, परन्तु इसका क्या यह अर्थ है कि वे सभी मनुष्य जिन्होने बिडला के समान कठिन परिश्रम किया है, वे भी बिड़ला के समान ही धनी हो जाएँगे, जी नही। यह व्यवहारिक दृष्टिकोण है। आप केवल गधों और कुत्तो के समान कठोर परिश्रम करके अपने भाग्य को नही बदल सकते। परन्तु आप अपनी उस शक्ति का सदुपयोग अपनी श्रीकृष्णभावनामृत की अभिवृद्धि करने में कर सकते है।

प्रश्नकर्त्ता—यह श्रीकृष्णभावनमृत वास्तव मे है क्या ? क्या आप इस विषय पर थोड़ा प्रकाश डालेगे।

श्रील प्रभुपाद—श्रीकृष्णभावनामृत का अर्थ है भगवद्-प्रेम। यदि आपने भगवान् से प्रेम करने की शिक्षा नही ग्रहण की, तब फिर आपके धर्म का अर्थ ही क्या रहा ? जब आप वास्तव मे भगवद् प्रेम के स्तर पर आते है, तब आपको भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध का ज्ञान हो जाता है—"मै भगवान् का अंश हूँ।" तत्पश्चात् आप पशुओ से भी प्रेम करने लगते है। यदि आप वास्तव में भगवान् से प्रेम करे, तो आप एक कीटाणु से भी प्रेम करेगे। आपको ज्ञात हो जाता है, "इस कीटाणु का शरीर अवश्य भिन्न है, परन्तु वह भी मेरे पिता का ही अंश है, अतः वह मेरा भाई है।" उस समय आप पशु-वधशला नही चला सकते। यदि आप पशु-वधशाला का सचालन करे तथा स्वय को क्रिश्चयन या हिन्दू कहलाने की घोषणा करे, तो यह धर्म नही है। यह तो केवल व्यर्थ समय नष्ट करना है—आपको भगवान् का ही ज्ञान नही है अत आप मे भगवद्-प्रेम भी नही है और आप अपने ऊपर किसी मत विशेष की मोहर लगाये हुए है। परन्तु यह वास्तविक धर्म नही है। सम्पूर्ण विश्व मे धर्म के नाम पर यही स्वाग किया जा रहा है।

प्रश्नकर्त्ता—हम इस स्थिति का निराकरण कैसे कर सकते है ?

श्रील प्रभुपाद—परम ईश्वर श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् है। यदि आप श्री कृष्ण को परम पुरुष के रूप मे स्वीकार नही करते तो कृष्ण तत्त्व को समझने का प्रयत्न कीजिए। वही शिक्षा है : कोई सर्वोच्च सत्ता है, श्रीकृष्ण भारतीय नही है; वे भगवान् है। भारत मे सूर्योदय पहले होता है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं हुआ कि सूर्य भारतीय है उसी प्रकार, यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण भारत मे प्रगट हुए, तथापि इस श्रीकृष्णभावनामृत अभियान के माध्यम से पश्चिमी देशो मे भी उनका पदार्पण हो चुका है। हरे कृष्ण।

परम कल्याणकारी कार्य

श्रील प्रभुपाद हैदराबाद की आन्ध्र-प्रदेश राहत कोष समिति के सचिव के साथ पत्र-व्यवहार करते हैं– " यदि केवल धन एकत्रित करने के द्वारा राहतकार्य करना चाहते हैं, तो मैं सोचता हूँ कि वह सफल न होगा। आपको सर्वोच्च अधिकारी (भगवान्) को प्रसन्न करना होगा और सफलता का यही मार्ग है। उदाहरण के लिए हरे कृष्ण महामन्त्र के सकीर्तन के कारण यहाँ हैदराबाद मे, दो वर्ष के अकाल के पश्चात् वर्षा होनी आरम्भ हो गई है ।"

पूज्य स्वामी जी,

इस जुड़वा नगर के निवासी अत्यन्त प्रसन्न है कि उनको आपसे एवं आपके सम्मानित अनुयायियो से भेंट करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। आप इससे परिचित ही होगे कि पिछले दो वर्षों से अपर्याप्त वर्षा के कारण और इस वर्ष पूर्ण रूप से वर्षा न होने पर आधे से अधिक हमारा राज्य गम्भीर दुर्भिक्ष (अकाल) से ग्रस्त है। इस विपदा से पूर्ण रूप से युद्ध करने के लिए शासन के प्रयत्नों मे सहायता देने के दृष्टिकोण से, जीवन के विविध क्षेत्रो से नागरिको की एक केन्द्रीय स्वयं सेवक सस्था बनाई गई है। इस सस्था के सदस्यो ने अकाल से पीडित क्षेत्रों का निरीक्षण किया है। वहाँ की स्थिति दयनीय है। ऐसे अनेक गाँव हैं जहाँ पीने का जल मीलो तक प्राप्य नही है। चारे के अभाव मे, पशुओं के स्वामी अपने पशुओं को बहुत साधारण मूल्य पर दे रहे है। चारा और जल न प्राप्त होने के कारण अनेक भटके हुए पशुओ की मृत्यु हो रही है। भोजन की समस्या भी बहुत गम्भीर है। खुले बाजार मे अन्न के ऊँचे मूल्य के कारण, बाजार के दामो पर अन्न खरीद पाना निर्धन ग्रामीणो की पहुँच के परे है। परिणाम स्वरूप कम से कम पचास-साठ लाख लोग कठिनाई से दिन मे एक बार भोजन पा रहे है। कई ऐसे भी हैं जो भुखमरी की स्थिति पर पहुँच चुके है। सम्पूर्ण स्थिति अत्यधिक दयनीय एवं हृदय विदारक है।

अतएव हम, आप माननीय श्रीमान् से अपील करते है कि आप यह विचार करे कि किस प्रकार आपका संघ इन लाखो प्राणियो की, इस अकल्पनीय विपत्ति

से सर्वोत्तम ढंग से रक्षा कर सकता है। कमेटी यह सुझाव देना चाहती है कि आपके संघ के सदस्य आपके प्रवचनो मे आने वाले भक्तो से आन्ध्र प्रदेश राहत कोष मे आर्थिक सहयोग देने की अपील करें।

कमेटी आपके संघ के सदस्यो के साथ अपने प्रतिनिधियो को उन स्थानो पर भेजने को तैयार है, जहाँ कही भी आप राज्य के लाखों भूखे लोगो को प्रसाद देना चाहे।

मानव-सेवा, माधव-सेवा है, अत. कमेटी को विश्वास है कि आपके दयालु संघ के द्वारा किया गया एक अल्प प्रयास भी इन सैकडो-हजारो लोगो के कष्ट को दूर करने मे पर्याप्त प्रभावशाली सिद्ध होगा।

आपका ही, भगवान् की सेवा मे,
टी० एल० कतिदिया, सचिव
आन्ध्र-प्रदेश राहत कोष समिति
हैदराबाद, आन्ध्र-प्रदेश

प्रिय श्री कतिदिया जी,

कृपया मेरा आशीर्वाद ग्रहण कीजिए। आपके पत्र के एवं आपसे हुए व्यक्तिगत साक्षात्कार के सन्दर्भ मे, मैं अत्यन्त विनीत भाव से आपको यह सूचित करता हूँ कि भगवान् को प्रसन्न किए बिना, कोई भी सुखी नही हो सकता। दुर्भाग्यवश लोग यही नही जानते कि श्रीभगवान् कौन है और उनको किस प्रकार प्रसन्न किया जाय। इसलिए हमारा श्रीकृष्णभावनमृत अभियान लोगो के सामने प्रत्यक्ष रूप से भगवान् को प्रस्तुत करने के लिए बनाया गया है। जैसे श्रीमद्भागवत [७.६.२५] मे आता है—

तुष्टे च तत्र किमलभ्यमनन्त आद्ये
किं तैर्गुणव्यतिकरादिह ये स्वसिद्धा.।

इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि भगवान् को प्रसन्न करने के द्वारा हम सभी को सन्तुष्ट करते है और तब अभाव का कोई प्रश्न ही नही रह जाता। क्योंकि लोग इस सफलता के रहस्य को नही जानते, अत: वे सुखी होने के लिए अपनी स्वाधीन योजनाएँ बना रहे है। किन्तु, इस ढग से सुख प्राप्त करना सम्भव ही नही है। आपकी कमेटी के पत्र (लेटर-हेड) पर मैं इस देश के अनेक महत्वपूर्ण व्यक्तियो का नाम देखता हूँ, जिनकी लोगो को कष्ट से मुक्त कराने मे रुचि है। परन्तु इन लोगो को निश्चय ही यह ज्ञात होना चाहिए कि भगवान् को प्रसन्न किए बिना

उनके सब प्रयास निरर्थक ही होगे। एक रोगी मनुष्य कुशल चिकित्सक और दवा की सहायता के बल पर ही केवल जीवित नही रह सकता। यदि ऐसा होता, तो किसी धनवान् मनुष्य की कभी मृत्यु ही नहीं होती। हमे भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा अवश्य ही प्राप्त करनी चाहिए।

अतएव यदि आप केवल धन एकत्रित करने के द्वारा राहत कार्य करना चाहते है, तो मै सोचता हूँ कि यह सफल न होगा। आपको सर्वोच्च अधिकारी (श्रीभगवान्) को प्रसन्न करना पडेगा और सफलता पाने का यही मार्ग है। उदाहरण के लिए, यहाँ सकीर्त्तन के कारण, दो वर्षो के अकाल के पश्चात् वर्षा हुई है। दिल्ली मे जब हमने पिछली बार हरे कृष्ण महोत्सव का आयोजन किया था, तब पाकिस्तान के द्वारा युद्ध घोषित होने का निकट भविष्य मे सकट था। और जब एक पत्रकार इस पर मेरी राय जानने के लिए आया, तो मैंने कहा कि युद्ध अवश्य ही होगा, क्योकि दूसरा पक्ष आक्रमणकारी है। किन्तु, हमारे संकीर्त्तन अभियान के कारण भारत विजयी हुआ। उसी प्रकार, जब हमने कलकत्ता मे हरे कृष्ण महोत्सव का आयोजन किया, तो नक्सलवादी आन्दोलन रुक गया। यह सब तथ्य है। सकीर्त्तन अभियान के माध्यम से न केवल हम जीवन की सभी सुविधाएँ प्राप्त कर सकते है, वरन् अन्त मे अपने घर, भगवान् के धाम मे भी लौट सकते है। जो आसुरी प्रवृत्ति के लोग है वे इसको नही समझ सकते, परन्तु यह एक तथ्य है।

अतएव समाज के अग्रणी सदस्यो के रूप मे, मैं आपसे विनती करता हूँ कि आप इस अभियान मे सम्मिलित हो जाइए। हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्त्तन करने से किसी प्रकार की भी हानि नही होती, परन्तु लाभ महान् है। भगवद्गीता के अनुसार जो नेताओ के द्वारा स्वीकार किया जाता है उसे साधारण मनुष्य भी मान लेते है [३. २१]:

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

"महापुरुष जो-जो आचरण करता है, साधारण मनुष्य उसका अनुसरण करते है। वह पुरुष अपने उदाहरण स्वरूप कर्मों से जो आदर्श स्थापित कर देता है, सम्पूर्ण विश्व उनके अनुसार कार्य करता है।"

श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति का यह सकीर्त्तन अभियान अत्यधिक महत्वपूर्ण है अतः, आपके माध्यम से मै भारत के सभी अग्रणी मनुष्यो से यह अपील करना चाहता हूँ कि वे लोग इस अभियान को अत्यन्त गम्भीरता पूर्वक ग्रहण करे और हमे इस अभियान का सम्पूर्ण विश्व मे प्रचार-प्रसार करने के लिए

सभी प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करे। तब न केवल भारत में, वरन् सम्पूर्ण विश्व में सुख और समृद्धि का राज्य छा जाएगा।

आशा करता हूँ कि आप स्वस्थ होंगे।

आपका शाश्वत शुभेच्छु,
ए० सी० भक्तिवेदान्त स्वामी

भगवान् पर अपनी निर्भरता की घोषणा

भगवद्दर्शन पत्रिका के अधिकारियो के साथ हुए एक वार्तालाप मे, श्रील प्रभुपाद अमेरिकन क्रान्ति की चर्चा करहे हैं, "अमेरिकन कहते हैं कि वे ईश्वर मे विश्वास करते हैं। परन्तु भगवद्-तत्त्व विज्ञान के बिना, वह विश्वास केवल कपोल-कल्पित है सर्वप्रथम तो श्री भगवान् के विज्ञान को अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक ग्रहण कीजिए तब उनमे विश्वास कीजिए वे लोग शासन करने के लिए अपने ही ढग की रचना कर रहे हैं। और यही उनका दोष है। वे कभी भी सफल नही होगे एक के पश्चात् दूसरी क्रान्तियाँ सदैव होती रहेगी। शान्ति स्थापित न हो सकेगी।"

भगवद्दर्शन—थॉमस जेफरसन अमेरिकन क्रान्ति के आधारभूत दर्शन को स्वाधीनता की घोषगा मे इस प्रकार प्रस्तुत करते है। उस समय के महत्वपूर्ण मनुष्य, जिन्होंने इस सविधान पर हस्ताक्षर किए, सहमत थे कि निश्चय ही कुछ सुस्पष्ट अर्थात् स्वत. सिद्ध सत्य है। इनमे से सबसे पहला सत्य तो यह कि—सभी मनुष्य समान बनाए गए है। इसके द्वारा उनका तात्पर्य था कि मनुष्य (कानून) के सामने है और कानून के द्वारा सुरक्षा प्राप्त करने का उनको समान अवसर है।

श्रील प्रभुपाद—हाँ, उस दृष्टिकोण से जैसा कि आप कहते है, मनुष्य समान बनाए गए है।

भगवद्दर्शन—स्वाधीनता की घोषगा मे दूसरी वस्तु यह है कि भगवान् के द्वारा सभी मनुष्यो को कुछ विशिष्ट स्वाभाविक अधिकार प्रदान किए गए है और उन अधिकारो को मनुष्यो से छीना नही जा सकता। ये अधिकार है जीवित रहने के, स्वाधीनता के और...

श्रील प्रभुपाद—परन्तु पशुओ को भी जीवित रहने का अधिकार है। पशुओ को जीवित रहने का क्यो अधिकार नही है? उदाहरण के लिए, शशक (खरगोश) अपने ढग से वन मे रह रहे है। शासन शिकारियो को क्यो आज्ञा देता है कि वे वन मे जाएँ और उनकी हत्या करे?

भगवद्दर्शन—उसमे केवल मनुष्यो के विषय मे चर्चा की जा रही थी।

श्रील प्रभुपाद—तब तो उनका कोई यथार्थ दर्शन नही है। यह संकीर्ण विचार

अपराधी प्रवृत्ति का सूचक है। "मेरा परिवार अथवा मेरे भाई तो अच्छे है, परन्तु मैं दूसरो की हत्या कर सकता हूँ।" उदाहरणार्थ मैं अपने परिवार के लिए आपके पिता की हत्या करता हूँ। क्या यह कोई दर्शन है? यथार्थ दर्शन है **सुहृदं सर्व भूतानाम्**—सभी प्राणियो से मित्रता। निश्चय ही यह मनुष्यो के लिए प्रयुक्त होता है, परन्तु यदि आप अनावश्यक रूप से एक पशु की हत्या करे, तो मैं तत्काल ही विरोध करूँगा, "आप यह क्या मूर्खता कर रहे है?"

भगवद्दर्शन—अमेरिका के संस्थापको ने कहा कि दूसरा स्वाभाविक अधिकार है स्वाधीनता या मुक्त रहने का। इस दृष्टि से शासन को यह कोई अधिकार नही है कि वह आपसे कहे कि आप किस प्रकार का कार्य करेगे।

श्रील प्रभुपाद—हाँ, यदि शासन पूर्ण नही है, तो इसे यह अनुमति नही दी जानी चाहिए कि वह लोगो से कहे कि वे किस प्रकार का कार्य करे। परन्तु यदि शासन पूर्ण है, तो वह ऐसा कह सकता है।

भगवद्दर्शन—तीसरा स्वाभाविक अधिकार उन्होने वर्णन किया है कि प्रत्येक मनुष्य को सुखी रहने का अधिकार है।

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ। परन्तु आपके सुख का स्तर मेरे स्तर से भिन्न हो सकता है। आप मास खाना पसन्द करते है, और मैं घृणा करता हूँ तो आपके सुख का स्तर मेरे सुख के स्तर के समान कैसे हो सकता है?

भगवद्दर्शन—तो क्या सभी लोग, जिस-जिस स्तर का सुख चाहते है उसको प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने मे स्वतन्त्र कर दिए जाएँ?

श्रील प्रभुपाद—नही, व्यक्तियो के गुणो के अनुसार सुख का स्तर निर्धारित किया जाना चाहिए। आप सम्पूर्ण समाज को चार वर्णों (समूह) मे अवश्य विभाजित करे, एक समूह ब्राह्मण के गुण वाले मनुष्यो का, दूसरा क्षत्रिय के गुणो का, तीसरा वैश्य के गुणो का और चौथा शूद्र के गुणों का। सभी को अपने स्वाभाविक गुणो के अनुसार कार्य करने के लिए अच्छी सुविधाएँ प्राप्त होनी चाहिए। आप एक बैल को घोड़े के कार्य मे नही लगा सकते और न ही एक घोडे को बैल के कार्य मे। आज कल व्यवहारिक रूप से सभी लोग महाविद्यालय की शिक्षा प्राप्त कर रहे है। परन्तु इन महाविद्यालयो मे क्या शिक्षा दी जाती है? अधिकांशत. तकनीकी (टेक्नीकल) ज्ञान, जो शूद्रो की शिक्षा है। वास्तविक उच्चतर शिक्षा का तो अर्थ है वैदिक ज्ञान सीखना। यह शिक्षा ब्राह्मणो के लिए है। केवल शूद्रो की ही शिक्षा देने से एक अस्त-व्यस्त स्थिति उत्पन्न होती है। सभी लोगो का इस विषय मे परीक्षण किया जाना चाहिए कि वे किस प्रकार की शिक्षा पाने के उपयुक्त है। कुछ शूद्रों को भले ही तकनीकी शिक्षा दी जा सकती है, परन्तु अधिकाश शूद्रो को कृषि-क्षेत्र (फार्म) मे कार्य करना चाहिए। क्योकि सभी लोग यह सोच कर कि हम अधिक धन प्राप्त

कर सकते है, शिक्षा पाने के लिए नगरों में आ रहे हैं, इसलिए खेती की उपेक्षा की जा रही है। अब भोजन का अभाव इसीलिए है, क्योंकि कोई भी सुन्दर भोज्य पदार्थों को उत्पन्न करने में संलग्न नही है। यह सभी असामान्यताएँ खराब शासन के कारण उत्पन्न हुई है। यह शासन का कर्त्तव्य है कि वह देखे कि सभी लोग अपने स्वाभाविक गुणो के अनुसार कर्म करने में लगे हुए हैं या नही। तभी लोग सुखी होगे।

भगवद्दर्शन—तो यदि शासन कृत्रिम भाव से सभी मनुष्यो को एक समूह में रखती है, तो सुख की प्राप्ति नही हो सकती।

श्रील प्रभुपाद—जी नही, यह अस्वाभाविक है और इससे अव्यवस्था फैलेगी।

भगवद्दर्शन—अमेरिका के संस्थापक पिता लोगो ने वर्गों को पसन्द नही किया क्योकि उन लोगों का इस विषय में बहुत कटु अनुभव था। क्रान्ति के पहले, अमेरिकन लोग राजाओ के द्वारा शासित किए जाते थे, परन्तु राजा लोग सदा ही निरकुश और अन्यायी होते थे।

श्रील प्रभुपाद—इसका कारण यह है कि उन राजाओं को राजर्षि (राजाओ के बीच ऋषि) के रूप मे प्रशिक्षण नही दिया गया था। वैदिक सभ्यता में, बालकों को जीवन के आरम्भ से ही प्रथम श्रेणी के ब्रह्मचारियो के रूप में प्रशिक्षण दिया जाता था। वे गुरुकुल अर्थात् गुरु महाराज के विद्यालय मे जाते थे और आत्म नियन्त्रण, स्वच्छता, सत्यता तथा और ऋषियो के कई गुणों को सीखते थे। उसमें से सर्वोत्तम बालक बाद मे देश का शासन करने के योग्य होते थे।

अमेरिकन क्रान्ति का कोई विशेष महत्व नही है। मुख्य बात तो यह है कि जब लोग दु:खी हो गए, तो उन्होने क्रान्ति कर दी। अमेरिका में यही हुआ था और यही फ्रांस तथा एशिया मे भी हुआ।

भगवद्दर्शन—अमेरिकन क्रान्तिकारियो ने कहा था कि यदि शासन लोगो पर ठीक से नियन्त्रण करने मे असफल रहे, तो लोगो को यह अधिकार है कि उस शासन को वे भंग कर दे।

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ। जैसे निक्सन का उदाहरण ले—लोगों ने उनको पद से हटा दिया। परन्तु यदि वे एक निक्सन के स्थान पर दूसरा निक्सन रख देते है, तो उसका क्या महत्व? उनको यह अवश्य ज्ञान होना चाहिए कि निक्सन के स्थान पर किस प्रकार ऋषि के गुणो से युक्त नेता चुना जाय। क्योकि लोगो मे न तो उस प्रकार का प्रशिक्षण और न ही संस्कृति है, वे एक निक्सन के बाद दूसरे निक्सन को चुनते जाएँगे और कभी भी सुखी नही होगे। लोग सुखी बन सकते है। सुखी बनने का सूत्र भगवद्गीता मे है। पहली वस्तु तो यह है कि उनको यह अवश्य ज्ञात हो कि यह भूमि श्रीभगवान् की है। अमेरिकन लोग यह क्यो दावा करते है

कि यह भूमि उनकी है ? जब लोग सबसे पहले अमेरिका पहुँचे, तो उन्होने कहा, "यह भूमि ईश्वर की है, अतः हमें यहाँ रहने का अधिकार है।" तो अब यह लोग दूसरो को इस भूमि पर रहने की अनुमति क्यो नही दे रहे है। यह उनका कैसा दर्शन है ? बहुत से आवश्यकता से अधिक घनी आबादी वाले देश है। अमेरिकन शासन को चाहिए कि वे उन लोगो को अमेरिका मे रहने दें और उनकी भूमि को तैयार कर अन्न उत्पन्न करने की सुविधाएँ प्रदान करे। ये लोग ऐसा क्यो नही कर रहे है ? इन लोगों ने दूसरो की सम्पत्ति बलपूर्वक छीन ली है और अब बल के द्वारा ही दूसरो को यहाँ आने से रोक रहे है। इसके पीछे कौन सा दर्शन है ?

भगवद्दर्शन—कोई दर्शन नही है।

श्रील प्रभुपाद—शठता ही उनका दर्शन है। वे स्वयं तो बलपूर्वक सम्पत्ति छीन लेते है और उसके पश्चात् कानून बनाते है, कि और कोई दूसरे की सम्पत्ति बलपूर्वक नही ले सकता। तो यह लोग चोर है। यह लोग भगवान् के पुत्रो के द्वारा भगवान् की सम्पत्ति का उपयोग करने पर कोई प्रतिबन्ध नही लगा सकते। अमेरिका और संयुक्त राष्ट्र सघ के अन्य देशो को इस पर सहमत होना चाहिए कि जहाँ भी पर्याप्त भूमि हो, उसका उपयोग मानव समाज के द्वारा भोजन उत्पन्न उत्पन्न करने के लिए किया जा सकता है। शासन कह सकता है, "ठीक है, आपके यहाँ घनी आबादी है। आपके लोग यहाँ आ सकते है। हम उनको भूमि देगे और वे भोजन उत्पन्न कर सकते है।" हम देखेगे इसका कितना अद्भुत परिणाम होगा। परन्तु क्या वे ऐसा करेगे। नही। तब फिर उनका क्या दर्शन रहा ? शठता। "मैं बलपूर्वक भूमि छीन लूंगा और तब मैं दूसरो को यहाँ आने की अनुमति नही दूंगा।"

भगवद्दर्शन—एक अमेरिकन नारा है "ईश्वर के अधीन एक राष्ट्र।"

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, यह श्रीकृष्णभावनामृत है। न केवल श्रीभगवान् के अधीन एक राष्ट्र होना चाहिए, वरन् श्रीभगवान् के अधीन एक विश्वव्यापी शासन भी होना चाहिए। प्रत्येक वस्तु भगवान् की है और हम सब उनके पुत्र है। तो इस प्रकार के दर्शन की आवश्यकता है।

भगवद्दर्शन—परन्तु अमेरिका मे लोग केन्द्रीय शासन से बहुत भयभीत है, क्योकि वे सोचते है कि जब कभी भी एक शक्तिशाली शासन होगा, तो सदा ही तानाशाही चलेगी।

श्रील प्रभुपाद—यदि नेता उचित रूप से प्रशिक्षित किए जाएँ, तो तानाशाही नही हो सकती।

भगवद्दर्शन—परन्तु शासन की अमेरिकन प्रणाली का एक आमुख वाक्य यह है कि

यदि एक नेता के पास अत्यधिक शक्ति हो, तो वह अनिवार्य रूप से भ्रष्टाचारी बनेगा ही।

श्रील प्रभुपाद—आपको उसे इस प्रकार मे प्रशिक्षण देना है कि वह भ्रष्टाचारी नही बन सके।

भगवद्दर्शन—वह प्रशिक्षण की विधि क्या है ?

श्रील प्रभुपाद—वह प्रशिक्षण है वर्णाश्रम धर्म। समाज को गुणो के अनुसार विभाजित कीजिए और लोगो को इस सिद्धान्त के आधार पर प्रशिक्षित कीजिए कि प्रत्येक वस्तु भगवान् की है और इसलिए भगवान् की सेवा मे प्रयोग की जानी चाहिए। तभी "भगवान् के अधीन एक राष्ट्र" वास्तव मे बनाया जा सकता है।

भगवद्दर्शन—परन्तु यदि समाज को विभिन्न वर्गों मे विभाजित कर दिया जाता है, तो क्या आपस मे ईर्ष्या नही होगी ?

श्रील प्रभुपाद—नही, नही। जैसे कि मेरे शरीर मे विभिन्न अग है, परन्तु वे मिलजुल कर कार्य करते है, उसी प्रकार समाज के विभिन्न अंग हो सकते है, जो एक ही लक्ष्य के लिए कार्य करे। मेरा हाथ मेरे पैर से भिन्न है। परन्तु जब मैं हाथ से कहता हूँ, "एक ग्लास जल जाओ, "तो पैर सहायता करेगा। पैर और हाथ दोनो की ही आवश्यकता है।

भगवद्दर्शन—परन्तु पश्चिमी देशो मे एक श्रमिक वर्ग है और एक पूंजीपति लोगों का वर्ग है, और इन दोनो वर्गो के बीच सदा ही युद्ध चलता रहता है।

श्रील प्रभुपाद—हाँ। पूंजीपति वर्ग की भी आवश्यकता है और श्रमिक वर्ग की भी।

भगवद्दर्शन—परन्तु वे तो आपस मे झगडा करते है।

श्रील प्रभुपाद—क्योकि उनको प्रशिक्षण नही मिला है, इसीलिए उनका लक्ष्य एक नही है। यद्यपि हाथ पैर विभिन्न रूप से कार्य करते है, परन्तु उनका लक्ष्य एक है और वह है शरीर का निर्वाह करना। यदि आप ऐसा एक लक्ष्य खोज सके जो पूंजीपति और श्रमिक दोनो ही वर्गो के लिए हो, तो फिर झगडे नही होगे। परन्तु यदि आप उस "एक लक्ष्य" को नही जानते, तो सदैव झगड़े होते रहेगे।

भगवद्दर्शन—क्रान्ति ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ।

भगवद्दर्शन—फिर सबसे अधिक महत्वपूर्ण वस्तु यह हुई कि उस 'एक लक्ष्य' को खोजना जो लोगो को एक सूत्र में बाँध सके ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, जैसे हमारे कृष्ण-भक्तो के सघ मे आप प्रत्येक कार्य-कलाप के विषय मे मुझसे सलाह लेने आते हैं, क्योकि मै आपको 'एक लक्ष्य' दे सकता हूँ। नही तो, लड़ाई होगी ही। शासन को जीवन का लक्ष्य जानने मे बहुत कुशल होना चाहिए, और उन लोगो को उस 'एक लक्ष्य' की प्राप्ति के लिए कार्य करने के हेतु

प्रशिक्षण दे। तब सुख और शान्ति होगी। परन्तु यदि लोग केवल निक्सन जैसे धूर्त लोगो का चुनाव करेंगे, तो वे कभी भी 'एक लक्ष्य' नही पा सकेंगे। कोई भी धूर्त किसी न किसी प्रबन्ध द्वारा वोट पाकर शासनाध्यक्ष बन जाता है। चुनाव के प्रत्याशी रिश्वत दे रहे है, धोखा दे रहे है, और चुनाव जीतने के लिए हर प्रकार का प्रोपेगंडा कर रहे है। एवं किसी न किसी प्रकार वे वोट पा जाते है और प्रधान पद पर अधिकार जमा बैठते हैं। यह प्रणाली अच्छी नही है।

भगवद्दर्शन—तो यदि हम अपने नेता लोगो को जनप्रिय चुनाव के द्वारा नही चुनेंगे, समाज का संचालन कैसे किया जाएगा ?

श्रील प्रभुपाद—आपको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रो की आवश्यकता है। जैसे जब आप किसी भवन का निर्माण करना चाहते है, तो आपको यन्त्री (इंजीनियर) की आवश्यकता पड़ती है। आपको तब उस कार्य के लिए भंगियो की आवश्यकता नही है। क्या ऐसा नही है ? वहाँ भंगी क्या करेगा ? नही, उस कार्य के लिए यन्त्रियो की आवश्यकता है। तो यदि आप इस वर्णाश्रम प्रणाली के विभाजन का पालन करे, तो केवल क्षत्रियो को शासन करने की अनुमति दी जाएगी। और विधान सभा के लिए केवल योग्य ब्राह्मण ही रहेगे। अब कसाई विधान सभा मे है। वह कानून बनाने के विषय मे जानता ही क्या है ? वह तो एक कसाई है, परन्तु वोटो के आधार पर विजयी होने के कारण वह एक सांसद बन गया है। वर्त्तमान मे, लोकप्रिय जनमत के सिद्धान्त पर, एक कसाई विधान सभा मे जाता है। प्रत्येक वस्तु प्रशिक्षण पर निर्भर करती है। हमारे कृष्ण-भक्तो के साथ मे हम वास्तव मे यह प्रशिक्षण दे रहे है, परन्तु राजनीति के क्षेत्र में वे लोग इस प्रशिक्षण को भूल गए है। समाज मे केवल एक वर्ग हो ही नही सकता। यह मूर्खता है क्योंकि हमें विभिन्न प्रकार के मनुष्यो को विभिन्न कार्यों मे संलग्न करना पड़ेगा। यदि हम यह कला नही जानते तो हम असफल होगे। क्योकि जब तक कार्य का विभाजन नही होगा, तब तक अव्यवस्था बनी ही रहेगी। श्रीमद्भागवत मे हमने राजा के उत्तरदायित्वो की चर्चा की है। समाज के विभिन्न वर्गो को आपस मे उसी प्रकार सहयोग करना चाहिए, जैसा कि शरीर के विभिन्न अंग करते है। यद्यपि प्रत्येक अग विभिन्न उद्देश्यो के लिए बनाए गए है, फिर भी वे सब एक लक्ष्य के लिए कार्य करते है—और वह लक्ष्य है—शरीर का उचित रूप निर्वाह करना।

भगवद्दर्शन—शासन का वास्तविक कर्त्तव्य क्या है ?

श्रील प्रभुपाद—शासन का कर्त्तव्य यह है कि इसे समझना कि श्रीभगवान् क्या चाहते है और यह देखना कि समाज उस लक्ष्य को दृष्टि मे रखता हुआ कार्य करे। तभी लोग सुखी होगे। परन्तु यदि लोग गलत दिशा मे कार्य करे, तो वे कैसे सुखी हो सकते हैं ? शासन का यह देखना कर्त्तव्य है कि वे लोग ठीक दिशा मे कार्य

कर रहे हैं। कार्य करने की ठीक दिशा यह है कि श्रीभगवान् को जानना और उनके उपदेशों के अनुसार कर्म करना। परन्तु यदि नेता लोग स्वयं ही भगवान् की सर्वोच्चता पर विश्वास नहीं करें और वे यह न जानें कि भगवान् क्या करना चाहते हैं या भगवान् हमसे क्या करवाना चाहते हैं, तब देश में अच्छा शासन हो ही कैसे सकता है? नेता लोग मार्गभ्रष्ट हैं और वे दूसरे लोगों को भी मार्गभ्रष्ट कर रहे हैं। यह अव्यवस्थित दशा आजकल सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है।

भगवद्दर्शन—अमेरिका में परम्परा से ही चर्च और शासन अलग रखे जाते हैं।

श्रील प्रभुपाद—मैं चर्च (गिरजाघर) के विषय में नहीं कह रहा हूँ। चर्च का प्रश्न नहीं है। मुख्य वस्तु तो यह है कि नेता लोग यह अवश्य स्वीकार करें कि एक परम ईश्वर (नियन्त्रक) है वे इसको अस्वीकार कैसे कर सकते हैं? प्रकृति से श्रीभगवान् के नियन्त्रण में प्रत्येक वस्तु का संचालन हो रहा है। नेता लोग प्रकृति पर नियन्त्रण नहीं कर सकते, तो वे परम ईश्वर भगवान् को क्यों नहीं स्वीकार कर लेते हैं? समाज का यही तो दोष है। सभी प्रकार के नेता गण यह अनुभव कर रहे हैं कि एक परम ईश्वर अवश्य ही होना चाहिए और इस पर भी वे श्रीभगवान् को अस्वीकार रहे हैं।

भगवद्दर्शन—परन्तु कल्पना कीजिए कि शासन नास्तिक है...

श्रील प्रभुपाद—तब फिर अच्छे शासन का प्रश्न ही नहीं उठता। अमेरिकन कहते हैं कि वे ईश्वर में विश्वास करते हैं। परन्तु भगवद्-तत्त्व विज्ञान के बिना, यह विश्वास केवल कपोल-कल्पित है। सर्वप्रथम तो आप श्रीभगवान् के विज्ञान को अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक ग्रहण कीजिए, तब उनमें अपना विश्वास स्थापित करें। वे लोग यही नहीं जानते कि श्रीभगवान् क्या है, परन्तु हम जानते हैं। हम लोग वास्तव में श्रीभगवान् में विश्वास करते हैं।

वे लोग शासन करने के लिए अपने ही ढंग की रचना कर रहे हैं। और वही उनका दोष है। वे कभी भी सफल नहीं होंगे। और यदि वे अपने ढंग और मार्ग की रचना करते जाएँगे तो वे अपूर्ण हैं। एक के पश्चात् दूसरी क्रान्तियाँ सदैव होती रहेंगी। शान्ति कभी स्थापित नहीं होगी।

भगवद्दर्शन—लोगों द्वारा पालन किए जाने वाले धर्म के नियमों को कौन निश्चित करता है?

श्रील प्रभुपाद—श्रीभगवान्। वे निश्चित करते हैं। वेदों के अनुसार भगवान् सभी चेतन प्राणियों के नेता हैं (**नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्**)। हम उनसे भिन्न हैं, क्योंकि वे सब दृष्टि से पूर्ण हैं और हम नहीं। हम लोग बहुत लघु हैं। हममें भगवान् के गुण हैं, परन्तु बहुत ही अल्प मात्रा में। इसलिए हमें केवल अल्प ज्ञान है, बस और कुछ नहीं। अल्प ज्ञान के द्वारा आप ७४७ वायुयान का निर्माण कर सकते

हैं, परन्तु आप एक मच्छर की रचना नही कर सकते। श्रीभगवान् ने मच्छर के शरीर की रचना की है, वह शरीर भी एक 'वायुयान' है। तो भगवान् मे और हममें यह तो अन्तर है—हमको ज्ञान है, परन्तु वह भगवान् के ज्ञान के समान पूर्ण नही है। इसलिए शासन के नेता लोगो को भगवान् से सलाह लेनी पडेगी, तब वे पूर्ण रूप से शासन कर पाएँगे।

भगवद्दर्शन—क्या भगवान् ने भी सर्वाधिक पूर्ण शासन की कोई युक्ति निकाली है।

श्रील प्रभुपाद—क्यो नही, अवश्य। क्षत्रिय लोग वैदिक काल मे शासन करते थे। जब युद्ध होता था, तो राजा युद्ध की प्रथम पंक्ति मे रहता था। जैसे कि आपके जॉर्ज वाशिंगटन—उन्होंने युद्ध मे भाग लिया था। परन्तु आज कल किस प्रकार के राष्ट्रपति शासन कर रहे है? जब युद्ध होता है, तो वे अत्यन्त सुरक्षा के घेरे मे बैठकर दूरभाष (टेलीफोन) के द्वारा आदेश देते है। वे राष्ट्रपति होने के योग्य नही हैं। जब युद्ध होता है, तो राष्ट्रपति को सबसे आगे आकर युद्ध का नेतृत्व करना चाहिए।

भगवद्दर्शन—परन्तु यदि मनुष्य छोटा और अपूर्ण है, तो वह कैसे पूर्ण शासन के लिए भगवान् के द्वारा दिए गए पूर्ण आदेशो का पालन कर सकता है?

श्रील प्रभुपाद—यद्यपि आप भले ही अपूर्ण हो, क्योकि आप मेरी आज्ञा का पालन कर रहे है, अतः आप पूर्ण बन रहे है। आपने मुझे अपना नेता स्वीकार किया है और मैं श्रीभगवान् को अपना नेता स्वीकार करता हूँ। इस प्रकार समाज का पूर्ण रूप से शासन किया जा सकता है।

भगवद्दर्शन—तो उत्तम शासन का अर्थ है, सर्वप्रथम परम पुरुष भगवान् को वास्तविक शासक स्वीकार करना?

श्रील प्रभुपाद—आप परम पुरुष श्रीभगवान् को प्रत्यक्ष स्वीकार नही कर सकते। प्रारम्भ मे आपको परम पुरुष भगवान् के दासो को स्वीकार पडेगा अर्थात् ब्राह्मण अथवा वैष्णवो को मार्गदर्शक के रूप मे अवश्य ही स्वीकार करना पडेगा। शासन करने वाले मनुष्य क्षत्रिय है—अर्थात् द्वितीय श्रेणी के व्यक्ति। क्षत्रियो को ब्राह्मण अथवा वैष्णवो से परामर्श लेना चाहिए और तदनुसार कानून बनाने चाहिए। वैश्यो को क्षत्रियो की आज्ञा व्यवहारिक रूप से पालन करनी चाहिए। और शूद्रो को इन तीनो वर्णों के आदेशो का पालन करना चाहिए। तब समाज पूर्ण बन पाएगा।

शान्ति-सूत्र

"यह पृथ्वी श्रीभगवान् की सम्पत्ति है, परन्तु हम प्राणी लोग, विशेष कर तथाकथित सभ्य मनुष्य, भगवान् की सम्पत्ति को अपनी सम्पत्ति घोषित कर रहे हैं। यह घोषणा व्यक्तिगत और सामूहिक दोनो ही दृष्टिकोण से मिथ्या धारणा पर आधारित है। यदि आप शान्ति चाहते हैं, तो आपको इस मिथ्या धारणा को अपने मन से एव विश्व से दूर करना होगा "

आधुनिक सभ्यता की महान् त्रुटि यह है कि दूसरो की सम्पत्ति पर अनाधिकार चेष्टा करना, जैसे सम्पत्ति उसी व्यक्ति की हो और इस प्रकार प्रकृति के नियमो के पालन में अनावश्यक अशान्ति की सृष्टि करना। प्रकृति के नियम अत्यन्त कठोर हैं। कोई भी जीव इनको भग नही कर सकता। जो कृष्ण-भक्त हैं, केवल वे ही प्रकृति के नियमो की कठोरता पर सरलता से विजय प्राप्त कर सकते है और इस प्रकार संसार मे सुखी और शान्त बन सकते हैं।

जिस प्रकार एक राज्य की सुरक्षा कानून और रक्षा विभाग के द्वारा की जाती है, उसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड रूपी राज्य की जिसका पृथ्वी केवल एक नगण्य अंश है, रक्षा प्रकृति के नियमो के द्वारा होती है। यह भौतिक प्रकृति भगवान् की विभिन्न शक्तियो मे से एक है। श्रीभगवान् प्रत्येक वस्तु के सर्वोच्च स्वामी है। अतएव, यह पृथ्वी श्रीभगवान् की सम्पत्ति है, परन्तु हम, प्राणी लोग विशेष कर तथा-कथित सभ्य मनुष्य, भगवान् की सम्पत्ति को अपनी सम्पत्ति घोषित कर रहे है। यह घोषणा व्यक्तिगत और सामूहिक दोनो ही दृष्टिकोणो से मिथ्या धारणा पर आधारित है। यदि आप शान्ति चाहते है, तो आपको इस मिथ्या धारणा को अपने मन से और विश्व से दूर करना होगा। पृथ्वी पर इस मानव जाति के द्वारा यह स्वामित्व की मिथ्या घोषणा ही आशिक या पूर्ण रूप से पृथ्वी पर अशान्ति का कारण है।

मूर्ख और नाममात्र के सभ्य मनुष्य भगवान् की सम्पत्ति पर अपने अधिकार की घोषणा कर रहे है, क्योंकि वे अब भगवद्भावनामृत से विहीन हो चुके है। भगवद्भावनामृत से रहित समाज मे आप सुखी और शान्त नही रह सकते।

भगवद्गीता मे भगवान् श्रीकृष्ण कहते है कि वे जीवो के सभी कार्य-कलापों के वास्तविक भोक्ता (सुख लेने वाले) है, वे समस्त लोको के महेश्वर हैं, और वे सभी प्राणियों के शुभ चिन्तक मित्र है। जब विश्व के लोग इसे शान्ति-सूत्र के रूप में जानेंगे, तभी शान्ति की स्थायी रूप से स्थापना हो सकेगी।

अतएव, यदि आप शान्ति स्थापित करना ही चाहते है, तो आपको अपनी भावना को श्रीकृष्णभावनामृत मे बदलना पड़ेगा। व्यक्तिगत और सामूहिक दोनो रूपों मे ही यह परिवर्त्तन होना चाहिए और परिवर्त्तन की यह विधि बहुत ही साधारण है और वह है भगवन्नाम कीर्त्तन। विश्व मे शान्ति प्राप्त करने की यह एक प्रामाणिक एवं आदर्श विधि है। इसलिए हम सलाह देते है कि सभी लोग निम्नलिखित मन्त्र का कीर्त्तन करे और श्रीकृष्णभावनाभावित हो जाएँ।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे॥

यह विधि व्यवहारिक, सरल और सर्वोत्कृष्ट है। लगभग ५०० वर्ष पहले श्रीधाम नवद्वीप (पं० बगाल) मे भगवान् श्रीचैतन्य के द्वारा इस शान्ति सूत्र का आरम्भ किया गया गया था। उपरोक्त वर्णन की गई कीर्त्तन की सरल विधि को ग्रहण कीजिए, और भगवद्गीता-यथानुरूप के अध्ययन के द्वारा अपनी वास्तविक स्थिति का साक्षात्कार कीजिए और श्रीकृष्ण अर्थात् भगवान् के साथ अपने विस्मृत सम्बन्ध को पुनर्स्थापित कीजिए। इतना करने के परिणाम स्वरूप विश्व में तत्काल ही शान्ति और समृद्धि स्थापित हो जाएगी।

आध्यात्मिक साम्यवाद

"सोवियत यूनियन की अपनी यात्रा के अन्तर्गत श्रील प्रभुपाद यू एस एस आर विज्ञान अकादमी मे भारत विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर जी कोटोव्स्की से वार्ता करते हैं, "चाहे आप राजतन्त्र, सामन्तवाद अथवा एकाधिपतिवाद की शरण ग्रहण करें, तथ्य तो यही है कि आपको शरण लेनी पडेगी। शरणागति के बिना जीवन का अस्तित्व नही है। अतएव हम लोगो को शिक्षा दे रहे हैं कि वे सर्वोच्च नियन्ता की शरण ले, जिनमे हमे सर्वविध सुरक्षा प्राप्त होती है इसके अतिरिक्त किसी अन्य की शरण को क्रान्ति के द्वारा परिवर्तित करना पडेगा। परन्तु जब आप श्रीकृष्ण के शरणागत होते हैं तो यह पर्याप्त है, आप सन्तुष्ट हो जाते हैं।"

श्रील प्रभुपाद—उस दिन मैं 'मॉस्कोन्यूज' समाचार पत्र पढ रहा था। कम्युनिस्ट कांग्रेस हुई थी और अध्यक्ष ने घोषणा की थी, हम सुधार के लिए दूसरों के अनुभव से लाभ उठाने को तत्पर है," तो मैं सोचता हूँ कि समाजवाद अथवा साम्यवाद की वैदिक विचार-धारा, साम्यवादी विचार-धारा मे काफी सुधार कर सकती है। उदाहरणार्थ, एक समाजवादी राज्य मे यह धारणा होती है कि किसी को भी भोजन का अभाव न हो और हर व्यक्ति को उसका भोजन अवश्य प्राप्त हो। इसी प्रकार वैदिक विचार-धारा के गृहस्थ जीवन मे निर्देश है कि एक गृहस्थ को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसके घर मे एक छिपकली अथवा साँप की भी भूख से मृत्यु न होने पाए। इन प्राणियो तक को भी भोजन दिया जाना चाहिए और सभी मानवो को तो निश्चित रूप से दिया जाना चाहिए। यहाँ तक निर्देश है कि एक गृहस्थ भोजन ग्रहण करने के पूर्व मार्ग पर खड़ा होकर घोषणा करे, "यदि कोई अभी भूखा है तो कृपया आ जाय, भोजन तैयार है।" जब कोई उत्तर नही मिलता तो गृहस्वामी अपना भोजन करता है। आधुनिक समाज जनता को पूर्ण अथवा किसी राज्य का स्वामी मानता है, किन्तु वैदिक विचारधारा मे है—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्॥

हर वस्तु के स्वामी ईश अर्थात् परम ईश्वर श्रीभगवान् है। भगवान् ने तुम्हे जो कुछ

दिया है उसका उपयोग करो, किन्तु दूसरे की सम्पत्ति का हरण मत करो। यह है ईशोपनिषद । वैदिक साहित्य में साम्यवाद के बारे मे धन के सुन्दर सिद्धान्त है। अतएव मैंने सोचा कि इन विचारो को आपके अत्यन्त विचारशील लोगो के मध्य वितरित किया जाय। इसीलिए मैं वार्त्ता के लिए उत्सुक था।

प्रो० कोटोवस्की—मनोरंजक तथ्य तो यह है कि यहाँ हमारे देश मे प्राचीन से प्राचीन विचारधारा के इतिहास मे भी आज बड़ी अधिक रुचि ली जा रही है। इसी दृष्टिकोण से हमारे संस्थान ने महान् भारतीय संस्कृति के अनेक साहित्यिक ग्रन्थों का रूसी भाषा में अनुवाद प्रकाशित किया है। आपको यह जान कर प्रसन्नता होगी कि हमने कुछ पुराणो और रामायण के खण्डो को भी प्रकाशित किया है। रूसी भाषा में महाभारत के खण्ड हैं और सम्पूर्ण महाभारत का दूसरा एक संस्करण भी है। हमने संस्कृत टीकाओं के साथ मनुस्मृति का पूरा अनुवाद प्रकाशित किया है। इन प्रकाशनो में लोगो की इतनी अधिक रुचि थी कि वे एक सप्ताह में ही बिक गए। अब वे स्टॉक में बिल्कुल नहीं है। एक सप्ताह के बाद पुस्तक बाजार मे उनका मिलना असम्भव था। यहाँ मास्को की तथा सोवियत रूस की पठनशील जनता मे प्राचीन वैदिक संस्कृति के प्रति गहरी रुचि है और इसी दृष्टिकोण से हमने ऐसी अनेक पुस्तकें प्रकाशित की है।

श्रील प्रभुपाद—इन पुस्तको में श्रीमद्भागवत को महापुराण कहा जाता है।

प्रो० कोटोव्स्की—महापुराण ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, हमने इस ग्रन्थ का भी अनुवाद किया है। सर्वप्रथम हम मूल सस्कृत श्लोक, उसका शब्दार्थ फिर अनुवाद और श्लोक का तात्पर्य या भावार्थ प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार श्रीमद्भागवत मे १८ हजार श्लोक है। हमने ग्रन्थ का शब्दशः अनुवाद किया है। आप देख सकते है। इसी प्रकार सम्पूर्ण भागवत-पुराण के एक-एक श्लोक का अनुवाद किया गया है। आचार्यों और बड़े-बड़े ऋषि-मुनियो का जो भागवत दर्शन के उपदेशक है, मत है—**निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्**। वैदिक कल्पवृक्ष का यह पका हुआ फल है। सभी भारतीय पण्डितो ने इसे स्वीकार किया है और भगवान् श्रीचैतन्य देव ने विशेष रूप से इस भागवत का ही उपदेश दिया है। तो हमारे पास अंग्रेजी मे अनुवादित भागवत है। यदि आप देखना चाहे तो मैं दिखा सकता है।

प्रो० कोटोव्स्की—मुझे प्रतीत होता है कि मास्को और लेनिनग्राड के पुस्तकालयो में वेदो सहित सभी प्रमुख ग्रन्थ है और मूल संस्कृत श्लोक भी साथ मे है। उदाहरणार्थ हमारे सस्थान की लेनिनग्राड शाखा में मनुस्मृति का ८ वाँ संस्करण है। इस संस्थान की स्थापना साम्राज्यवादी रूस के समय लेनिनग्राड मे हुई थी, अतः

लेनिनग्राड में हमारे संस्थान की एक शाखा है जहाँ मुख्यतः एशियाई संस्कृति के इतिहास के सम्बन्ध में कार्य होता है। आप यहाँ देख सकते हैं कि भारतीय धर्म के इतिहास और आज के हिन्दू भारत में तथा हिन्दूवाद की स्थिति पर क्या-क्या अनुवाद और क्या-क्या अध्ययन हो रहा है।

श्रील प्रभुपाद—'हिन्दूवाद' एक जटिल विषय है।

प्रो० कोटोव्स्की— जी हाँ (दोनो व्यक्ति हँसते है), वास्तव में मेरे विचार से यूरोपीय दृष्टिकोण के अनुसार यह कोई धर्म नही है, एक जीवन पद्धति है, धर्म, दर्शन, जीवन पद्धति, चाहे कुछ भी कह लीजिए।

श्रील प्रभुपाद—यह हिन्दू शब्द संस्कृत शब्द नहीं है। यह मुसलमानों की देन है। आप जानते है एक नदी है 'इण्डस' जिसे संस्कृत में सिन्धु कहते हैं। मुसलमानों ने इसे हिन्दू बना दिया। तो हिन्दू एक ऐसा शब्द है, जो संस्कृत शब्दकोश में नहीं मिलता, किन्तु इसका उपयोग होने लगा है। किन्तु वास्तविक सांस्कृतिक संस्था 'वर्णाश्रम' कही जाती है। चार वर्ण (सामाजिक विभाजन) हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और चार आश्रम (आध्यात्मिक विभाजन) हैं—ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। जीवन की वैदिक विचार-धारा के अनुसार, जब तक लोग चार वर्णों और चार आश्रमो की इस प्रणाली या प्रथा को स्वीकार नही करते, तब तक वे वस्तुतः सभ्य मानव नही बनते। मनुष्य को वर्ण और आश्रम की इस प्रणाली को स्वीकार करना होगा। भारतीय संस्कृति युग-प्राचीन इस वैदिक प्रणाली पर आधारित है।

प्रो० कोटोव्स्की—वर्णाश्रम ?

श्रील प्रभुपाद—हाँ वर्णाश्रम। और भगवद्गीता में कदाचित्, आपने भगवद्गीता का अध्ययन किया है ?

प्रो० कोटोव्स्की—जी हाँ।

श्रील प्रभुपाद—भगवद्गीता में वर्णन है—**चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं**—इस पद्धति की रचना भगवान् श्रीविष्णु ने की। क्योकि वर्णाश्रम के स्रष्टा स्वयं परब्रह्म भगवान् हैं, अतएव इसे बदला नही जा सकता। यह तो सर्वत्र प्रचलित है। यह सूर्य के समान है। सूर्य का निर्माण श्रीभगवान् ने किया है। सूर्य का प्रकाश अमेरिका, भारत, रूस सर्वत्र है। इसी प्रकार यह वर्णाश्रम प्रणाली किसी न किसी रूप में सर्वत्र विद्यमान है। उदाहरणार्थ, ब्राह्मण मानव समाज का सबसे बुद्धिमान् वर्ग है। वह समाज का मस्तिष्क है। क्षत्रियों का प्रशासनिक वर्ग है, वैश्यों का उत्पादक वर्ग है और शूद्रो का श्रमिक वर्ग है। मानव समाज के ये चारो वर्ग विभिन्न भागो में सर्वत्र विद्यमान हैं। इनके मूल रचयिता स्वयं भगवान् हैं, अतएव यह वर्णाश्रम धर्म सर्वत्र प्रचलित है।

प्रो० कोटोव्स्की—मनोरंजक बात तो यह है कि कतिपय यूरोपीय और प्राचीन रूसी विद्वानो के मत मे इस वर्णाश्रम धर्म की रचना बाद मे हुई है और यदि आप वैदिक साहित्य के ग्रन्थो का अध्ययन करेंगे तो आपको एक अत्यन्त सरल कृषक समाज का पता चलता है। इन विद्वानो का मत है कि भारतीय समाज मे वर्णाश्रम धर्म की स्थापना वैदिक युग के उत्तर काल मे हुई, न कि प्रारम्भिक काल में। और यदि आप प्राचीन ग्रन्थो का विश्लेषण करे तो आपको मालूम होगा कि प्राचीन भारत मे वह इतना अधिक व्यापक नही था।

श्रील प्रभुपाद—जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है, भगवद्‌गीता में इसका उल्लेख है। **चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं**, भगवद्‌गीता पाँच हजार वर्ष पूर्व कही गई थी और भगवद्‌गीता में कहा गया है, "भगवद्‌गीता का यह ज्ञान मैंने सूर्य देवता को दिया था।" तो यदि आप उस युग का अनुमान लगाएँ तो यह चार करोड़ वर्ष पूर्व आता है। क्या यूरोपीय विद्वान् पाँच हजार वर्ष पूर्व के इतिहास का पता लगा सकते है? क्या वे चार करोड़ वर्ष पीछे जा सकते है? हमारे पास प्रमाण है कि यह वर्णाश्रम धर्म कम से कम पाँच हजार वर्ष से प्रचलित है। विष्णु पुराण मे भी वर्णाश्रम धर्म का उल्लेख है, "**वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्**।" वर्णाश्रम धर्म आधुनिक युग में अनुमानित ऐतिहासिक युग की घटना नही है। श्रीमद्‌भागवत मे उपमा दी गई है कि जिस प्रकार शरीर के चार विभाग हैं—मस्तिष्क, भुजा, उदर और पाँव—उसी प्रकार स्वाभाविक रूप से सामाजिक शरीर मे भी चार विभाग है। मानवो का एक वर्ग मस्तिष्क माना जाता है, एक वर्ग राज्य की भुजाएँ माना जाता है, एक वर्ग उत्पादक माना जाता है इत्यादि। इतिहास का पता लगाने की आवश्यकता नही है। यह तो सृष्टि के आदि से ही स्वाभाविक रूप से विद्यमान है।

प्रो० कोटोव्स्की—आपका कहना है कि किसी समाज मे चार विभाग हैं, किन्तु उनकी पहचान करना उतना सरल नही है। उदाहरणार्थ, किसी समाज मे कोई भी विभिन्न सामाजिक वर्गों और व्यवसायिक वर्गों को चारो भागो मे विभाजित कर सकता है इसमे कोई कठिनाई नही है। उदाहरणार्थ, कठिनाई है तो समाजवादी समाज मे—हमारे देश मे तथा अन्य समाजवादी समाजो मे उत्पादक वर्ग और श्रमिक वर्ग में कैसे भेद कर सकते है?

श्रील प्रभुपाद—उदाहरण के लिए हमारा सम्बन्ध बुद्धिजीवी वर्ग से है। यह एक विभाग है।

प्रो० कोटोव्स्की—बुद्धिजीवी वर्ग अर्थात् ब्राह्मण और आप सभी बुद्धिजीवियो को एक साथ उसी विभाग मे रख सकते है।

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ।

प्रो० कोटोव्स्की—और फिर प्रशासनिक वर्ग?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ।

प्रो० कोटोव्स्की—किन्तु वैश्य और शूद्र कौन है ? यही कठिनाई है। क्योंकि अन्य सभी श्रमिक है—कारखानो के श्रमिक, सामूहिक फार्मों के श्रमिक इत्यादि। अतः इस दृष्टिकोण से तो मेरे विचार से, समाजवादी समाज और समाजवाद के पूर्व के सभी समाज के बीच महान् अन्तर है, क्योंकि पश्चिमी आधुनिक समाज मे आप सभी सामाजिक और व्यवसायिक वर्गों को इन चार विभागो मे विभाजित कर सकते हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र : बुद्धिजीवी वर्ग, उत्पादन प्रणाली के स्वामी उत्पादक वर्ग और निम्न श्रमिक। किन्तु यहाँ आपको वैश्य नही मिलेंगे क्योंकि कारखानो मे प्रशासनिक कर्मचारी है और आप उन्हे क्षत्रिय कह सकते हैं और फिर शूद्र आते है स्वय श्रमिक, किन्तु कोई माध्यमिक वर्ग नही है।

श्रील प्रभुपाद—कहा गया है कलौ शूद्रसम्भवः। इस युग मे यथार्थतः सभी लोग शूद्र हैं। किन्तु यदि केवल शूद्र ही रहते है तो सामाजिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाएगी। आपका शूद्र राज्य होते हुए भी यहाँ ब्राह्मण पाया जाता है और यह आवश्यक है। यदि सामाजिक व्यवस्था को आप इस प्रकार विभाजित नही करते है तो अराजकता फैलेगी। वेदो का यही वैज्ञानिक रूप है। आप शूद्र वर्ग के हो सकते है, किन्तु सामाजिक व्यवस्था के पालन के लिए आपको कुछ शूद्रो को प्रशिक्षित करके ब्राह्मण बनाना पड़ेगा। समाज शूद्रो पर निर्भर नही रह सकता और न आप ब्राह्मणो पर ही अवलम्बित रह सकते है। अपने शरीर की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए मस्तिष्क, भुजा, उदर और पॉव होने ही चाहिए सम्पूर्ण शरीर के उद्देश्य और कार्य की पूर्ति के लिए—पॉव, मस्तिष्क, भुजा सबमे सहयोग होना चाहिए। अतः किसी भी समाज मे आप देख सकते है कि यदि वहाँ ये चारो विभाग नही है तो अराजकता अवश्य फैलेगी। ठीक से कार्य नही चलेगा यह माया है अतः उपद्रव होगे। वहाँ मस्तिष्क का होना आवश्यक है, किन्तु वर्त्तमान समय मे मस्तिष्को का अभाव है। मैं आपके देश या अपने देश की चर्चा नही कर रहा हूँ अपितु सम्पूर्ण विश्व की बात कर रहा हूँ। भूतकाल मे भारत मे राजतन्त्र था। उदाहरणार्थ महाराजा परीक्षित क्षत्रिय राजा थे। मृत्यु के पूर्व उन्होने राज-सिंहासन का परित्याग कर दिया और आत्म-साक्षात्कार करने के लिए वन मे चले गए। यदि आप सम्पूर्ण विश्व समाज की शान्ति और समृद्धि चाहते है तो आपको अत्यन्त बुद्धिमानो का वर्ग बनाना होगा, प्रशासनिक विशेषज्ञो का वर्ग बनाना होगा और उत्पादन विशेषज्ञो एव श्रमिको के वर्ग बनाने होगे। यह आवश्यक है और आप इसमे मुँह नही मोड़ सकते। यह वैदिक विचारधारा है, मुखबाहूरुपादजाः [भागवत ११. १७. १३] मुख का अर्थ है मुँह, बाहु का अर्थ है भुजा, उरु का अर्थ है कमर और पाद का अर्थ है पाँव। आप कोई भी राज्य लीजिए, जब तक जीवन की

ये चार पद्धतियाँ सुव्यवस्थित ढंग से स्थापित नही की जाती तब तक राज्य या समाज का संचालन सुचारु रूप से नही हो पाएगा।

प्रो० कोटोव्स्की—सामान्यतः मुझे ऐसा लगता है कि इस पूरे वर्णाश्रम धर्म ने प्राचीन समाज में किसी सीमा तक श्रम का प्राकृतिक विभाजन कर दिया था, किन्तु अब किसी भी समाज के लोगो मे श्रम विभाजन कही अधिक जटिल और कृत्रिम हो गया है। अतएव उन्हे चार वर्गो मे विभाजित करना भ्रान्तिमूलक है।

श्रील प्रभुपाद—भ्रान्ति होने का कारण यह है कि भारत मे कुछ समय के पश्चात् एक ब्राह्मण के पुत्र ने, ब्राह्मण के गुण न रहते हुए भी ब्राह्मण होने का दावा किया और दूसरो ने अन्धविश्वास अथवा रूढिवश उसे ब्राह्मण स्वीकार कर लिया। अतएव भारतीय सामाजिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई। किन्तु हमारे श्रीकृष्ण-भावनामृत अभियान में हम सर्वत्र ब्राह्मणो को प्रशिक्षित कर रहे है क्योकि विश्व को एक ब्राह्मण के मस्तिष्क की आवश्यकता है। यद्यपि महाराजा परीक्षित, राजा थे, तथापि उनके राज दरबार में परामर्श के लिए ऋषि-मुनियो और ब्राह्मणो की एक परामर्श समिति थी। ऐसा नही है कि राजा स्वतन्त्र थे। इतिहास से ज्ञात होता है कि यदि कुछ राजाओं ने सुव्यवस्थित शासन नही किया तो ब्राह्मणो की परामर्श-समिति ने उन्हे राजसिंहासन से च्युत कर दिया। ब्राह्मण राजनीति मे भाग नही लेते थे, फिर भी वे राजा को राजकीय शासन-संचालन विधि के विषय में परामर्श देते थे। यह कोई बहुत पहले की बात नही है, सम्राट् अशोक कब थे?

प्रो० कोटोव्स्की—यह तो वही समय रहा होगा जिसे, हम अपने शब्दो मे, प्राचीन और मध्यकालीन भारत कहते है।

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ।

प्रो० कोटोव्स्की—आप ठीक कहते हैं, प्राचीन और सामन्ती भारत में यह व्यवस्था थी और विधान परिषद् मे अधिकाश उच्च प्रशासनिक अधिकारी ब्राह्मण ही होते थे। मुगल काल में भी मुस्लिम सम्राटो और प्रशासको के परामर्शदाता ब्राह्मण होते थे।

श्रील प्रभुपाद—यह सत्य है। ब्राह्मण मान्य थे। वे ही राजा की परामर्श समिति गठित करते थे। उदाहरणार्थ, उस समय के एक राजा चन्द्रगुप्त थे, जो सिकन्दर महान् के युग में थे। चन्द्रगुप्त से पहले सिकन्दर यूनान से भारत आया और एक भाग पर अधिकार कर लिया। सम्राट् बनने के पश्चात् चन्द्रगुप्त ने चाणक्य को अपना प्रधान-मन्त्री बनाया शायद चाणक्य का नाम सुना होगा।

प्रो० कोटोव्स्की—जी, हाँ।

श्रील प्रभुपाद—तो हाँ, चाणक्य एक महान् ब्राह्मण राजनीतिज्ञ थे और उन्ही के नाम पर नई दिल्ली का क्षेत्र, जहाँ सभी विदेशी दूतावास एक साथ स्थित हैं,

चाणक्यपुरी कहा जाता है। चाणक्य पण्डित एक महान् राजनीतिज्ञ और ब्राह्मण थे। वे प्रकाण्ड विद्वान् थे। उनके नैतिक उपदेश आज भी बड़े मूल्यवान् हैं। भारत में छात्रो को चाणक्य पण्डित के उपदेश पढ़ाये जाते हैं। प्रधानमन्त्री होते हुए भी वे ब्राह्मण-भावना से ओत-प्रोत थे तथा वेतन नही लेते थे। यदि एक ब्राह्मण वेतन लेता है तो समझा जाता है कि वह श्वान (कुत्ता) हो गया है। श्रीमद्भागवत मे ऐसा कहा गया है। वह मन्त्रणा दे सकता है, किन्तु नौकरी स्वीकार नही कर सकता। अतएव चाणक्य पण्डित एक कुटीर मे रहते थे, किन्तु वे वास्तव मे प्रधानमन्त्री थे। यह ब्राह्मणोचित संस्कृति और ब्राह्मणोचित मस्तिष्क वैदिक संस्कृति का मानदण्ड है। मनुस्मृति ब्राह्मणोचित संस्कृति के मानदण्ड का आदर्श है। आप इतिहास से पता नही लगा सकते कि मनुस्मृति कब लिखी गई, किन्तु उसे इतना पूर्ण माना जाता है कि वह हिन्दू अधिनियम बनी हुई है। सामाजिक व्यवस्था को सन्तुलित करने के लिए ससद सभा को प्रतिदिन नया-नया अधिनियम बनाने की आवश्यकता नही है। मनु ने जो अधिनियम दिए हैं, वे इतने पूर्ण हैं कि वे सर्वदा उपयुक्त रह सकते हैं। सस्कृत मे उन नियमो को **'त्रिकालाबाधित'** कहा गया है, जिसका अर्थ है अतीत, वर्त्तमान और भविष्य के लिए उपयोगी।

प्रो० कोटोव्स्की—हस्तक्षेप के लिए मुझे खेद है मेरी जानकारी के अनुसार १८वी शताब्दी के द्वितीयार्द्ध मे सारा भारतीय समाज ब्रिटिश शासन के आदेश से हिन्दू अधिनियम से भिन्न एक दूसरे अधिनियम के अन्तर्गत था। जिस हिन्दू अधिनियम का हिन्दू उपयोग करते थे, वह मूल मनुस्मृति से भिन्न था।

श्रील प्रभुपाद—अब परिवर्त्तन हो गए है। हमारे स्वर्गीय पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने स्वय अपनी हिन्दू-सहिता प्रस्तुत कर दी। उन्होने विवाह-विच्छेद (तलाक) का अधिकार आरम्भ कर दिया, किन्तु यह मनुस्मृति मे नही था। न जाने कितनी वस्तुओ मे उन्होने परिवर्त्तन कर दिए, किन्तु इस आधुनिक युग के पूर्व सारा मानव-समाज मनुस्मृति द्वारा शासित था। सच पूछा जाय तो आज के हिन्दू, हिन्दू-धर्म ग्रन्थो का सच्चाई से अनुसरण नही कर रहे है।

किन्तु हमारा उद्देश्य प्राचीन ढंग के हिन्दू समाज की पुनर्स्थापना नही है। वह असम्भव है। हम तो मूल सिद्धान्तो मे से सर्वोत्तम सिद्धान्तो को ग्रहण करना चाहते है। दृष्टान्त के रूप मे श्रीमद्भागवत मे साम्यवादी विचारधारा का वर्णन है, जो महाराज युधिष्ठिर को बताई गई है। यदि कोई उत्तम वस्तु है, अच्छा अनुभव है तो हम उसे ग्रहण क्यो न करे? यही हमारा दृष्टिकोण है। इसके अतिरिक्त आधुनिक संस्कृति एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण वस्तु भूलती जा रही है और वह है मानव जीवन का उद्देश्य। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मानव जीवन का उद्देश्य है, आत्म-साक्षात्कार (**आत्मतत्व**)। कहा जाता है कि जब तक मानव समाज के

सदस्य आत्म-साक्षात्कार के स्तर तक नही पहुँचते, तब तक वे अपने किसी भी कार्य **में सफल** नही हो सकते । वास्तव मे, सारी आर्थिक प्रगति के होते हुए भी आधुनिक **समाज** में यह सब हो रहा है । शान्ति और सुख स्थापित करने के स्थान पर लोग संघर्ष कर रहे है, व्यक्तिगत रूप मे, सामाजिक रूप मे, राजनीतिक रूप मे और राष्ट्रीय रूप में । यदि हम शान्त चित्त से इस पर विचार करे तो हम देख सकते है कि ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रो मे पर्याप्त उन्नति के होते हुए भी, हमारी वही प्रवृत्ति बनी हुई है, जो निम्न पशु-समाज मे दृष्टिगोचर होती है । श्रीमद्भागवतम् के अनुसार, हमारा निष्कर्ष है कि मानव शरीर इन्द्रियतृप्ति के हेतु कठोर श्रम करने के लिए नही बना है, किन्तु लोग इन्द्रियतृप्ति से परे कुछ जानते ही नही । वे अगले जीवन के विषय मे कुछ नही जानते । इस शरीर के अन्त होने के पश्चात् क्या होता है, इसका अध्ययन करने के लिए ज्ञान का कोई वैज्ञानिक विभाग नही है, जबकि यह एक महान् ज्ञान-विभाग है ।

भगवद्गीता मे कहा है, "**देहिनोऽस्मिन्यथा देहे** ।" देह का अर्थ है यह शरीर । देहिनः का अर्थ है जो इस शरीर का स्वामी है । **देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा** ।" शरीर का स्वामी उसके भीतर है और शरीर अपना रूप बदलता रहता है । शिशु का शरीर विशेष प्रकार का होता है और जब वह बडा होता है तो उसका रूप दूसरे प्रकार का हो जाता है, किन्तु शरीर का स्वामी सर्वथा वैसे ही स्थित रहता है । इसी प्रकार जब यह शरीर पूर्ण रूप से बदल जाता है तब हम एक दूसरा शरीर ग्रहण कर लेते है । लोग इसे नही समझते । इस जीवन मे भी हम भिन्न-भिन्न शरीर धारण करते चले जाते है, शैशवावस्था से बाल्यावस्था, बाल्यावस्था से किशोरावस्था और किशोरावस्था से युवावस्था तक । यह एक तथ्य है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति जानता है । मै एक बालक था, किन्तु बाल्यावस्था का शरीर नही रह गया, और अब एक भिन्न शरीर प्राप्त हो गया है । अब यह समझने मे क्या कठिनाई है कि जब यह शरीर नही रहेगा तो हमे एक दूसरा शरीर ग्रहण करना पड़ेगा ? यह एक महान् विज्ञान है ।

प्रो० कोटोव्स्की—जैसा कि आप जानते है, इस समस्या तक पहुँचने के लिए दो परस्पर विरोधी मार्ग है । विभिन्न धर्मो के अनुसार, इन मार्गो मे थोडा-थोडा अन्तर है, किन्तु साथ ही साथ सभी धर्म स्थान-परिवर्त्तन, अनुभूति या पुनर्जन्म को मानते है और उसके लिए खोज करते है । किश्चयन मत जुड़ावाद मे...

श्रील प्रभुपाद—मै आपके साथ धर्मों की चर्चा नही कर रहा हूँ । मैं विज्ञान और दर्शन की चर्चा कर रहा हूँ । कोई धर्म कोई भी एक मार्ग स्वीकार कर सकता है । उससे हमारा कोई सम्बन्ध नही है । हमारा तात्पर्य यही है कि यदि शरीर के विभिन्न परिवर्त्तनो के पश्चात् भी शरीर का स्वामी शाश्वत है तो यह समझने में

चाणक्यपुरी कहा जाता है। चाणक्य पण्डित एक महान् राजनीतिज्ञ और ब्राह्मण थे। वे प्रकाण्ड विद्वान् थे। उनके नैतिक उपदेश आज भी बड़े मूल्यवान् हैं। भारत में छात्रों को चाणक्य पण्डित के उपदेश पढ़ाये जाते हैं। प्रधानमन्त्री होते हुए भी वे ब्राह्मण-भावना से ओत-प्रोत थे तथा वेतन नही लेते थे। यदि एक ब्राह्मण वेतन लेता है तो समझा जाता है कि वह श्वान (कुत्ता) हो गया है। श्रीमद्भागवत मे ऐसा कहा गया है। वह मन्त्रणा दे सकता है, किन्तु नौकरी स्वीकार नही कर सकता। अतएव चाणक्य पण्डित एक कुटीर मे रहते थे, किन्तु वे वास्तव मे प्रधानमन्त्री थे। यह ब्राह्मणोचित संस्कृति और ब्राह्मणोचित मस्तिष्क वैदिक संस्कृति का मानदण्ड है। मनुस्मृति ब्राह्मणोचित संस्कृति के मानदण्ड का आदर्श है। आप इतिहास से पता नही लगा सकते कि मनुस्मृति कब लिखी गई, किन्तु उसे इतना पूर्ण माना जाता है कि वह हिन्दू अधिनियम बनी हुई है। सामाजिक व्यवस्था को सन्तुलित करने के लिए संसद सभा को प्रतिदिन नया-नया अधिनियम बनाने की आवश्यकता नही है। मनु ने जो अधिनियम दिए है, वे इतने पूर्ण हैं कि वे सर्वदा उपयुक्त रह सकते है। संस्कृत मे उन नियमो को **'त्रिकालाबाधित'** कहा गया है, जिसका अर्थ है अतीत, वर्त्तमान और भविष्य के लिए उपयोगी।

प्रो० कोटोव्स्की—हस्तक्षेप के लिए मुझे खेद है मेरी जानकारी के अनुसार १८वी शताब्दी के द्वितीयार्द्ध मे सारा भारतीय समाज ब्रिटिश शासन के आदेश से हिन्दू अधिनियम से भिन्न एक दूसरे अधिनियम के अन्तर्गत था। जिस हिन्दू अधिनियम का हिन्दू उपयोग करते थे, वह मूल मनुस्मृति से भिन्न था।

श्रील प्रभुपाद—अब परिवर्त्तन हो गए है। हमारे स्वर्गीय पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने स्वय अपनी हिन्दू-संहिता प्रस्तुत कर दी। उन्होंने विवाह-विच्छेद (तलाक) का अधिकार आरम्भ कर दिया, किन्तु यह मनुस्मृति में नही था। न जाने कितनी वस्तुओ मे उन्होने परिवर्त्तन कर दिए, किन्तु इस आधुनिक युग के पूर्व सारा मानव-समाज मनुस्मृति द्वारा शासित था। सच पूछा जाय तो आज के हिन्दू, हिन्दू-धर्म ग्रन्थो का सच्चाई से अनुसरण नही कर रहे है।

किन्तु हमारा उद्देश्य प्राचीन ढंग के हिन्दू समाज की पुनर्स्थापना नही है। वह असम्भव है। हम तो मूल सिद्धान्तो मे से सर्वोत्तम सिद्धान्तो को ग्रहण करना चाहते है। दृष्टान्त के रूप मे श्रीमद्भागवत मे साम्यवादी विचारधारा का वर्णन है, जो महाराज युधिष्ठिर को बताई गई है। यदि कोई उत्तम वस्तु है, अच्छा अनुभव है तो हम उसे ग्रहण क्यो न करे? यही हमारा दृष्टिकोण है। इसके अतिरिक्त आधुनिक संस्कृति एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण वस्तु भूलती जा रही है और वह है मानव जीवन का उद्देश्य। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मानव जीवन का उद्देश्य है, आत्म-साक्षात्कार (**आत्मतत्व**)। कहा जाता है कि जब तक मानव समाज के

सदस्य आत्म-साक्षात्कार के स्तर तक नही पहुँचते, तब तक वे अपने किसी भी कार्य में सफल नही हो सकते। वास्तव मे, सारी आर्थिक प्रगति के होते हुए भी आधुनिक समाज में यह सब हो रहा है। शान्ति और सुख स्थापित करने के स्थान पर लोग संघर्ष कर रहे है, व्यक्तिगत रूप मे, सामाजिक रूप मे, राजनीतिक रूप मे और राष्ट्रीय रूप मे। यदि हम शान्त चित्त से इस पर विचार करे तो हम देख सकते है कि ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रो मे पर्याप्त उन्नति के होते हुए भी, हमारी वही प्रवृत्ति बनी हुई है, जो निम्न पशु-समाज में दृष्टिगोचर होती है। श्रीमद्भागवतम् के अनुसार, हमारा निष्कर्ष है कि मानव शरीर इन्द्रियतृप्ति के हेतु कठोर श्रम करने के लिए नही बना है, किन्तु लोग इन्द्रियतृप्ति से परे कुछ जानते ही नही। वे अगले जीवन के विषय मे कुछ नही जानते। इस शरीर के अन्त होने के पश्चात् क्या होता है, इसका अध्ययन करने के लिए ज्ञान का कोई वैज्ञानिक विभाग नही है, जबकि यह एक महान् ज्ञान-विभाग है।

भगवद्गीता मे कहा है, ""**देहिनोऽस्मिन्यथा देहे**।" देह का अर्थ है यह शरीर। देहिन: का अर्थ है जो इस शरीर का स्वामी है। **देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा**।" शरीर का स्वामी उसके भीतर है और शरीर अपना रूप बदलता रहता है। शिशु का शरीर विशेष प्रकार का होता है और जब वह बडा होता है तो उसका रूप दूसरे प्रकार का हो जाता है, किन्तु शरीर का स्वामी सर्वथा वैसे ही स्थित रहता है। इसी प्रकार जब यह शरीर पूर्ण रूप से बदल जाता है तब हम एक दूसरा शरीर ग्रहण कर लेते है। लोग इसे नही समझते। इस जीवन में भी हम भिन्न-भिन्न शरीर धारण करते चले जाते है, शैशवावस्था से बाल्यावस्था, बाल्यावस्था से किशोरावस्था और किशोरावस्था से युवावस्था तक। यह एक तथ्य है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति जानता है। मैं एक बालक था, किन्तु बाल्यावस्था का शरीर नही रह गया, और अब एक भिन्न शरीर प्राप्त हो गया है। अब यह समझने मे क्या कठिनाई है कि जब यह शरीर नही रहेगा तो हमे एक दूसरा शरीर ग्रहण करना पड़ेगा ? यह एक महान् विज्ञान है।

प्रो० कोटोव्स्की—जैसा कि आप जानते है, इस समस्या तक पहुँचने के लिए दो परस्पर विरोधी मार्ग है। विभिन्न धर्मो के अनुसार, इन मार्गो मे थोडा-थोडा अन्तर है, किन्तु साथ ही साथ सभी धर्म स्थान-परिवर्त्तन, अनुभूति या पुनर्जन्म को मानते है और उसके लिए खोज करते है। किश्चयन मत जुड़ावाद मे...

श्रील प्रभुपाद—मैं आपके साथ धर्मों की चर्चा नही कर रहा हूँ। मैं विज्ञान और दर्शन की चर्चा कर रहा हूँ। कोई धर्म कोई भी एक मार्ग स्वीकार कर सकता है। उससे हमारा कोई सम्बन्ध नही है। हमारा तात्पर्य यही है कि यदि शरीर के विभिन्न परिवर्त्तनो के पश्चात् भी शरीर का स्वामी शाश्वत है तो यह समझने मे

कठिनाई नही होनी चाहिए कि इस शरीर के बदल जाने पर उसका स्वामी एक दूसरा शरीर धारण कर लेगा।

प्रो० कोटोव्स्की—एक दूसरा मार्ग यह है कि विच्छेद होता ही नही। दो दृश्य नही है—शरीर और उसका स्वामी दोनो एक ही है।

श्रील प्रभुपाद—(दृढतापूर्वक) नही।

प्रो० कोटोव्स्की—जब शरीर मरता है तो उसके स्वामी की मृत्यु हो जाती है।

श्रील प्रभुपाद—नही, नही। किन्तु इस तथ्य का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करने के लिए विश्वविद्यालय मे ज्ञान-विभाग क्यो नही है? यह मेरा सुझाव है, इसका अभाव है। आप जैसा कहते है, वह हो सकता है अथवा मैं जैसा कहता हूँ, वह हो सकता है, किन्तु इसके अध्ययन के लिए एक ज्ञान-विभाग होना चाहिए। कुछ समय पूर्व टोरण्टो (केनेडा) मे एक डॉक्टर (कार्डियोलाजिस्ट) ने स्वीकार किया है कि आत्मा होती है। मैंने उसके साथ पत्र व्यवहार किया था, और उनका दृढ विश्वास है कि आत्मा है। तो यह एक दूसरा दृष्टिकोण है, किन्तु हम तो प्रामाणिक ज्ञान स्वीकार करने की प्रक्रिया मे है। इस विषय मे भगवान् श्रीकृष्ण का कथन है और वह प्रामाणिक है। सभी आचार्यो ने भगवान् श्रीकृष्ण को अधिकारी (महाजन) माना है। समस्त विश्व के बौद्धिक और दार्शनिक क्षेत्रो मे भगवद्गीता को स्वीकार किया गया है—भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं [२. १३]:

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

"जिस प्रकार आत्मा बाल-शरीर को त्याग कर किशोर-शरीर और फिर युवा-शरीर धारण करती है, उसी प्रकार वह इस शरीर को त्याग कर कोई अन्य शरीर धारण करती है।" ज्ञान की परम्परा के अनुसार, सर्वोच्च अधिकारी भगवान् श्रीकृष्ण का यह वक्तव्य है। हम इस वक्तव्य को बिना तर्क-वितर्क के स्वीकार करते हैं। वेद को समझने का यही मार्ग है।

प्रो० कोटोव्स्की—कठिनाई तो यह है कि बिना तर्क-वितर्क के हम किसी भी वस्तु पर विश्वास नही करते। हम तो तर्क के आधार पर ही किसी चीज में विश्वास करते है।

श्रील प्रभुपाद—हाँ, यह तो है। यह भगवद्गीता [४. ३४] में भी कहा गया है, **तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया**। तर्क की अनुमति है, किन्तु आत्मा को चुनौती देने मे नही, आत्मा को समझने मे। तर्क की अस्वीकार नही किया जाता। किन्तु, जहाँ तक वैदिक वक्तव्यो का सम्बन्ध है, वे अद्वय है और वेदो के पण्डित उन्हे उसी रूप मे स्वीकार करते है। उदाहरणार्थ, गाय का गोबर पशु का मल है। अब वैदिक कथन यह है कि यदि आप किसी पशु के मल को स्पर्श करते है, यहाँ

तक कि यदि आप अपने मल को भी स्पर्श करते है तो आप अशुद्ध हो जाते हैं और आप को स्नान करके शुद्ध होना पड़ता है। हिन्दू प्रथा के अनुसार, लोगो को मल त्याग करने के पश्चात् स्नान करना पड़ता है।

प्रो० कोटोव्स्की—यह तो स्वास्थ्य-विज्ञान है, जिसे समझ सकते है।

श्रील प्रभुपाद—ठीक है ?

प्रो० कोटोव्स्की—हाँ, यह ठीक है।

श्रील प्रभुपाद—किन्तु एक दूसरे स्थान पर कहा गया है कि गाय का गोबर यद्यपि पशु का मल है, तथापि वह शुद्ध है। यदि उसे किसी अशुद्ध स्थान पर लगा दिया जाय तो वह स्थान भी शुद्ध हो जाता है। कितना विरोधाभास है। एक स्थान पर तो कहा जाता है कि पशु का मल अशुद्ध होता है और उसे स्पर्श करते ही आपको शुद्ध होना पड़ता है और दूसरे स्थान पर कहा जाता है कि गाय का गोबर शुद्ध है। हमारी जानकारी के अनुसार, यह विरोधात्मक है, किन्तु फिर भी वेदो के अनुयायी उसे स्वीकार करते हैं। और तथ्य तो यह है कि यदि गाय के गोबर का विश्लेषण किया जाय तो ज्ञात होगा कि उसमे सभी रोगाणु नाशक गुण होते है।

प्रो० कोटोव्स्की—यह तो मैं नही जानता।

श्रील प्रभुपाद—हाँ। एक मेडिकल कालेज के प्राध्यापक ने इसका विश्लेषण किया है और उसे ज्ञात हुआ है कि गाय का गोबर रोगाणुनाशक गुणो से भरा हुआ है। तो वैदिक कथन प्रतिकूल पाये जाने पर भी, सूक्ष्म अध्ययन करने पर अनुकूल सिद्ध होगे। कोई अपवाद हो सकता है, किन्तु यह स्वीकार किया जाता है और वैज्ञानिक विश्लेषण एवं अन्वेषण से यह सत्य सिद्ध होता है।

प्रो० कोटोव्स्की—हाँ, यदि आप वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण करते है तो ठीक है।

श्रील प्रभुपाद—दूसरे दृष्टान्त भी है। जैसे शख को लीजिए, शख किसी जीव की हड्डी होती है और वैदिक निर्देश के अनुसार, यदि आप किसी पशु की हड्डी स्पर्श करते है तो आप अशुद्ध हो जाते है और शुद्ध होने के लिए आपको स्नान करना पड़ेगा। किन्तु इस शख को देव मन्दिर मे रखा जाता है क्योकि वेदो ने इसे शुद्ध स्वीकार किया है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि वैदिक नियमो को हम बिना तर्क के स्वीकार करते है। पण्डित लोग इस सिद्धान्त का अनुसरण करते है। यदि आप वेदो के उद्धरण से अपने कथनो को सिद्ध कर सकते है तो वे स्वीकार कर लिए जाएँगे। अन्य प्रकार से उन्हे सिद्ध करने की आवश्यकता नही है। प्रमाण भी विभिन्न प्रकार के होते है। वैदिक उद्धरण का प्रमाण श्रुति-प्रमाण कहा जाता है। जिस प्रकार किसी न्यायालय मे यदि आप किसी अधिनियम की पुस्तक से कोई वक्तव्य देते है तो वह स्वीकार कर लिया जाता है, उसी प्रकार श्रुति-प्रमाण

समर्थित सभी वक्तव्यो को विद्वान स्वीकार कर लेते है। मैं समझता हूँ, आप वेदो को श्रुति के नाम से जानते है।

प्रो० कोटोव्स्की—जी, हाँ।

श्रुतिस्मृतिपुराणादिपंचरात्रविधिं विना।
ऐकान्तिकी हरेर्भक्तिरुत्पातायैव कल्पते॥

[ब्रह्म-यामल]

श्रील प्रभुपाद—कोई भी धर्म हम स्वीकार करे, उसे श्रुति, स्मृति, पुराण और पंचरात्र के प्रमाणो का समर्थन प्राप्त होना ही चाहिए। इन प्रमाणो से जो सिद्ध नही होता वह भ्रान्ति है।

प्रो० कोटोव्स्की—मै एक बात और कहूँ? वेदो मे जो कुछ है उसे वैज्ञानिक ढग से भी सिद्ध किया जा सकता है। आज, मान लीजिए, एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला है। प्रयोगशाला कहती है, वह सत्य है। उसके गुण-अवगुण पर विचार न करके आप उसे स्वीकार करते है। मान लीजिए आपका कोई वैज्ञानिक संस्थान है, यदि यह सस्थान कहता है, "यह अच्छा नही है," तो साधारण समिति उसे मान लेगी, हाँ, वैज्ञानिक संस्थान ने ऐसा कहा है, अत: यह ठीक है।"

श्रील प्रभुपाद—इसी प्रकार अधिकृत वैदिक वक्तव्यो को आचार्यो (महान् गुरुओ) ने स्वीकार किया है। भारत मे आचार्य—रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, शकराचार्य का प्रभाव है। वे वेदो को स्वीकार करते है और उनके अनुयायी उन्हे स्वीकार करते है। लाभ यह है कि गाय का गोबर शुद्ध है या अशुद्ध, इसके अन्वेषण मे मैं अपना समय नष्ट नही करता, क्योकि वेदो मे उसे शुद्ध बताया गया है, अत: मै इसे स्वीकार करता हूँ। श्रुति-प्रमाण को स्वीकार कर मैं अपना समय बचा लेता हूँ। वैसे तो समाज विज्ञान, और राजनीति अथवा किसी भी वस्तु के विषय मे वेदो में विभिन्न वक्तव्य है, क्योकि वेद का अर्थ है ज्ञान।

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मत्त. स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्॥

[गीता १५ १५]

प्रो० कोटोव्स्की—मैं आपसे एक बात पूछ सकता हूँ? क्या आपके श्रीकृष्णभावनामृत सघ की विश्व मे अनेक शाखाएँ है?

श्रील प्रभुपाद—हाँ।

प्रो० कोटोव्स्की—आपका प्रमुख केन्द्र कहाँ है और सघ की शाखाएँ कहाँ-कहाँ है?

श्रील प्रभुपाद—निस्सन्देह, हमारी ६५ से अधिक शाखाएँ है।

प्रो० कोटोव्स्की—६५ शाखाएँ?

श्रील प्रभुपाद—हाँ, और मैने मुख्य केन्द्र लॉस ऐन्जिलस में बनाया है। अब हम

भारत में भी एक महत्वपूर्ण केन्द्र श्रीमायापुर में स्थापित कर रहे हैं, जो भगवान् श्रीचैतन्यदेव का जन्म स्थान है। आप भारत गए हैं ?

प्रो० कोटोव्स्की—६ या ७ बार। बंगला देश से आये शरणार्थियों के कारण, अब कलकत्ता में बड़ी विकट स्थिति हो गई है।

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ। किन्तु हमने १० दिनों तक सकीर्त्तन किया था और वह बड़ा आश्चर्यजनक रहा। प्रतिदिन ३० हजार से कम की भीड़ नही होती थी। हमारे व्याख्यानों में उनकी बडी रुचि थी, क्योकि हम श्रीमद्भागवतम् और भगवद्गीता से ही प्रवचन करते है। विश्व के कोने-कोने से लोग अनुकूल उत्तर दे रहे हैं, विशेषकर अमेरिकी युवक और युवतियाँ। वे विशेष रुचि ले रहे हैं, और ब्रिटेन, जर्मनी तथा फ्रान्स के लोग भी। यहाँ से मेरी पेरिस जाने की योजना है। उस स्थान का नाम क्या है ?

एक शिष्य—पेरिस मे ? ओ, फोटेन आॅक्स रोजेज् ?

श्रील प्रभुपाद—हाँ। उन्होंने एक सम्पूर्ण गृह ले रखा है, सुन्दर गृह, तो हमारी विधि बड़ी सरल है। हम अपने शिष्यो को चार निषेधात्मक सिद्धान्तो का पालन करने का उपदेश देते हैं—अवैध स्त्री संग नही, मासाहार नही, जिसमे मछली, अण्डा आदि आते है, जुआ नही और मादक द्रव्यो का सेवन नही, जिसमे सिगरेट, चाय, कॉफी भी आ जाते है। सभी भक्तो को इन चार सिद्धान्तो का पालन करना होता है तथा हरेकृष्ण महामन्त्र का जप और कीर्त्तन करना पड़ता है और आपको ज्ञात होना चाहिए कि इस सरल विधि से ही इन युवक युवतियो मे कितना सुधार हो रहा है। विधि बहुत ही सरल है। इसके अतिरिक्त हजारो ग्रन्थ है—ग्रन्थो के अनेक खण्ड—श्रीमद्भागवत् और भगवद्गीता। इन दिनो मैंने चार सौ पृष्ठो के लगभग एक दर्जन ग्रन्थ लिखे है,लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण दो भागो मे,श्रीमद्भागवतम् ६ भागो मे, भगवान् श्रीचैतन्य का शिक्षामृत एक भाग मे और श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु एक भाग में। इस प्रकार हम श्रीकृष्णभावनामृत के प्रसार का प्रयास कर रहे हैं।

प्रो० कोटोव्स्की—क्या आपकी ६५ शाखाओ मे लोग सम्मिलित हो रहे है।

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, एक हजार से अधिक लोग दीक्षित हो चुके है और बाहर भी बहुत से लोग है। एक हजार लोगो ने इन शिष्यों की भाँति सिद्धान्त स्वीकार कर लिए है। [श्रील प्रभुपाद अपने दो सचिवो की ओर संकेत करते है।]

प्रो० कोटोव्स्की—तो क्या इसका अर्थ है, ये छात्र सामान्य पश्चिमी, यूरोपीय विश्वविद्यालयो मे नही जा रहे है ? उदाहरणार्थ, क्या सामान्य ढग से किसी विश्वविद्यालय के व्याख्यानो मे सम्मिलित होने वाला साधारण छात्र भी दीक्षा ग्रहण कर आपके सम्प्रदाय मे स्थान प्राप्त कर सकता है ?

श्रील प्रभुपाद—यदि आप हमारे समुदाय मे रहना और दीक्षा ग्रहण करना चाहें

तो हम आपका स्वागत करेंगे। अन्यथा, आप हमारा दर्शन समझने का प्रयास कीजिए, हमारे ग्रन्थ पढ़िए, अनेकानेक ग्रन्थ, पत्रिकाएँ और प्रश्नोत्तर है। दर्शन को समझने का प्रयास कीजिए यह तो है नही कि कोई छात्र सहसा आकर हमारा शिष्य बन जाता है। सर्वप्रथम वह आता है, भक्तो का संगति करता है और सिद्धान्तों को समझने का प्रयास करता है। हम दबाव नही डालते। वह स्वेच्छा से से शिष्य बनने की इच्छा व्यक्त करता है।

प्रो० कोटोव्स्की—मान लीजिए कोई शिक्षित न हो वरन् युवा श्रमिक या युवा कृषक हो तो क्या होता है ? क्या वह अपने सम्पूर्ण जीवन से विरक्त होकर किसी निश्चित केन्द्र पर आपके सम्प्रदाय में सम्मिलित हो जाएगा ? वह अपना पोलन-पोषण कैसे करेगा ?

श्रील प्रभुपाद—जैसा कि मैंने कहा, इस प्रकार के प्रचार का उद्देश्य है, सम्पूर्ण विश्व मे ब्राह्मणो का निर्माण करना क्योंकि ब्राह्मण-तत्त्व का आज अभाव है। जो गम्भीरता से हमारे पास आता है, उसे ब्राह्मण बनना पड़ता है। तो उसे एक ब्राह्मण का व्यवसाय अपनाना होगा और क्षत्रिय या शूद्र का कर्म छोड़ना पड़ेगा। किन्तु यदि कोई अपने व्यवसाय मे ही रहना चाहता है और साथ ही साथ, हमारे अभियान को भी समझना चाहता है तो इसकी अनुमति दी जाती है। हमारे अभियान के अनेक अनुयायी प्राध्यापक है। ओहियो स्टेट यूनिवर्सिटी में एक प्रोफेसर है हावर्ड-ह्वीलर (हयग्रीवदास) जो मेरे शिष्य है। वे प्राध्यापक का कार्य कर रहे है, किन्तु उन्हे जो कुछ वेतन मिलता है, उसे वे इस श्रीकृष्णभावनामृत अभियान पर ही व्यय कर देते है। जो गृहस्थ है, उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी आय का पचास प्रतिशत हमारी संस्था को दान करेंगे, पच्चीस प्रतिशत अपने परिवार मे खर्च करेंगे और पचीस प्रतिशत अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं के लिए रखेंगे। किन्तु भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु का उपदेश है, गृहस्थ हो या संन्यासी, ब्राह्मण हो या शूद्र, इससे कोई अन्तर नही पड़ता। भगवान् श्रीचैतन्य देव कहते है, जिसको भी भगवान् श्रीकृष्ण के विज्ञान की जानकारी है, वह गुरु बन जाता है। बंगाली में वास्तविक शब्द है—**किवा विप्र किवा न्यासी शूद्र केने नय** आपको बंगाली भाषा का कुछ ज्ञान है ?

प्रो० कोटोव्स्की—बहुत थोडा।

श्रील प्रभुपाद—फिर भी शब्दो का प्रभाव तो पड़ेगा ही अतः अगली पंक्ति सुनिए "**येई कृष्ण तत्त्ववेत्ता सेई गुरु हय।**" जो भी कृष्ण-विज्ञान समझ जाता है, वही गुरु हो सकता है [चैतन्यचरितामृत मध्य ८ १२८]।

प्रो० कोटोव्स्की—किन्तु समाज के विभिन्न वर्गो से ब्राह्मणो का निर्माण करके आप हिन्दू शास्त्रो की प्राचीन मान्यताओ का ही खण्डन कर रहे हैं।

श्रील प्रभुपाद—नही, मैं उसे सिद्ध कर रहा हूँ।

प्रो० कोटोव्स्की—पुराण आदि सभी धर्मग्रन्थो के अनुसार, इन चार वर्णों में से किसी वर्ण के सदस्य का उसी वर्ण में पुनर्जन्म होना निश्चित है।

श्रील प्रभुपाद—नही, नही, नही, नही।

प्रो० कोटोव्स्की—सभी वर्णो का यही आधार है।

श्रील प्रभुपाद—नही, नहीं, मुझे खेद है।

प्रो० कोटोव्स्की—अभी वर्णो का आधार......

श्रील प्रभुपाद—आप सही नही कह रहे हैं। अत्यन्त सम्मान के साथ मेरा निवेदन है कि आप सही नही बोल रहे हैं। भगवद्गीता मे कहा है, **चातुर्वर्ण्यं मयासृष्टं गुणकर्मविभागशः**। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारो वर्णो की सृष्टि मैंने गुण और कर्म के अनुसार की है। जन्म का तो कही उल्लेख नही है।

प्रो० कोटोव्स्की—मै आपसे सहमत हूँ कि यह तो बाद के ब्राह्मणो का योगदान है जिन्होंने इन वर्णों को स्थायित्व प्रदान करने की चेष्टा की।

श्रील प्रभुपाद—इसने तो भारतीय संस्कृति की ही हत्या कर दी है, अन्यथा भारत को विभाजित कर पाकिस्तान बनाने की आवश्यकता नही थी। इतना ही नही, ऐतिहासिक दृष्टिकोण से, समस्त विश्व कभी भारतवर्ष था, जिसका नियन्त्रण महाराजा परीक्षित के समय तक एक झण्डे के अन्तर्गत होता था। धीरे-धीरे वह विभाजित होता गया। यही इतिहास है। हाल मे उन्होने पाकिस्तान को पृथक कर दिया। तो भारतवर्ष बँटते-बँटते एक छोटा सा भूखण्ड रह गया है। अन्यथा, वैदिक ग्रन्थो के अनुसार यह सम्पूर्ण विश्व भारत वर्ष था। पहले वह "इलावर्त वर्ष", कहा जाता था! जब सम्राट भरत ने इस लोक पर शासन किया तब से यह भारतवर्ष कहलाया। तो श्रीकृष्णभावनामृत की यह संस्कृति सदा और सर्वदा रही है। ईसाई, मुस्लिम, यहूदी, किसी भी धर्म पर विचार कीजिए। ये अधिक से अधिक दो से तीन हजार वर्ष प्राचीन है। किन्तु आप वैदिक संस्कृति के प्रारम्भ का पता नही लगा सकते। इसीलिए यह सनातन व शाश्वत कही जाती है। यह सम्पूर्ण मानव समाज की संस्कृति है। यह कोई धार्मिक मत नही है। धार्मिक मत को आप बदल सकते है, किन्तु वास्तविक धर्म को कभी भी नही बदल सकते। भगवान् श्रीकृष्ण को समझने का प्रयत्न कीजिए। भगवद्गीता मे वे कहते है, "**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज,**" "सभी प्रकार के धर्मो का परित्याग कर मेरी शरण मे आ जाओ।" यही है यथार्थ ज्ञान—श्रीभगवान् के आप हो या मैं अथवा कोई भी हो, सभी किसी के शरणागत है। यह तथ्य है। शरणागति ही हमारा जीवन है। क्या, आप इससे सहमत नही ?

प्रो० कोटोव्स्की—कुछ अंशो मे सभी को शरण लेनी पडती है।

श्रील प्रभुपाद—जी नही। पूर्णरूप से।

प्रो० कोटोव्स्की—आपको समाज की शरण लेनी पड़ती है, सम्पूर्ण मानव समाज की।

श्रील प्रभुपाद—हाँ, पूर्ण समाज की, या राज्य की, या राजा के शासन की, जो कुछ भी कह ले। यह शरणागति होनी ही चाहिए।

प्रो० कोटोव्स्की—कठिनाई यह है कि हम किसी राजा या सरकार की अर्थ-शरण नही ले सकते। मुख्य भेद है किसी राजा या व्यक्ति अथवा समाज के शरणागत होने का।

श्रील प्रभुपाद—नही। यह तो केवल वर्ण का अन्तर है, किन्तु शरणागत का सिद्धान्त भी है। चाहे आप राजतन्त्र, प्रजातन्त्र, सामन्तवाद या एकाधिपतिवाद की शरण ग्रहण करे, तथ्य तो यही है कि आपको शरण लेनी पडेगी। विना समर्पण के जीवन नही है। यह असम्भव है। अतएव हम लोगो को शिक्षा दे रहे है, कि वे सर्वोच्च सत्ता की शरण ले, जिनसे हमे सर्वविध सुरक्षा प्राप्त होती है। जैसा कि भगवान् श्रीकृष्ण कहते है "**सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।**" यह कोई नहीं कह सकता, "नही, मैं किसी की शरण मे नही हूँ।" एक व्यक्ति भी ऐसा नही कह सकता। प्रश्न है, वह 'कहाँ' शरण ग्रहण करता है। शरणागति का अन्तिम लक्ष्य है भगवान् श्रीकृष्ण। अतएव भगवद्गीता मे भगवान् श्रीकृष्ण कहते है, **बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।** जन्म जन्मान्तर तक अनेक वस्तुओ की शरण लेने के पश्चात् जब मनुष्य को वस्तुतः ज्ञान होता है तो वह मेरी शरण लेता है। "**वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।**" ऐसा महात्मा बहुत दुर्लभ होता है।

प्रो० कोटोव्स्की—किन्तु साथ ही साथ मुझे लगता है कि समर्पण के साथ विद्रोह भी आता है। मानव समाज के इतिहास से सिद्ध है कि मानव समाज का विकास किसी न किसी के समर्पण के विद्रोह के बाद ही हुआ है। मध्यकालीन युग मे फ्रान्सीसी क्रान्ति हुई थी। यह समर्पण के विरुद्ध विद्रोह था। किन्तु यह क्रान्ति स्वयं साधारण जनता के प्रति समर्पित थी, आप सहमत है?

श्रील प्रभुपाद—हाँ।

प्रो० कोटोव्स्की—तो पूर्णविराम तक पहुँचना ही पर्याप्त नही है। समर्पण के साथ किसी के विरुद्ध विद्रोह आएगा और फिर दूसरे लोगो के प्रति समर्पित होना होगा।

श्रील प्रभुपाद—किन्तु जब यह समर्पण भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति होगा तो शरणागति की वही पूर्णता है।

प्र० कोटोव्स्की—क्या?

श्रील प्रभुपाद—वहीं पूर्ण विराम है। अब और शरण लेने की आवश्कता नही। किसी अन्य प्रकार की शरणागति का आपको क्रान्ति द्वारा परिवर्तन करना हो,

किन्तु जब आप भगवान् श्रीकृष्ण के पास पहुँच जाते है तो यही पर्याप्त है। आप सन्तुष्ट हो जाते है। मैं आपको एक उदाहरण देता हूँ। एक शिशु रोता है, तो लोग उसे एक के पश्चात् दूसरे की गोद मे देते है, किन्तु वह चुप नही होता। ज्योही वह माता की गोद मे जाता है तो...

प्रो० कोटोव्स्की—वह चुप हो जाता है।

श्रील प्रभुपाद—हाँ। पूर्ण सन्तुष्टि। तो यह शरणागति और ये परिवर्त्तन विभिन्न श्रेणियों मे चलते रहेगे। किन्तु इनमे से कुछ प्रकार का सर्म्पण माया के प्रति समर्पण है अतएव, भगवद्गीता मे कहा गया है कि भगवान् श्रीकृष्ण की शरण के अतिरिक्त सब प्रकार के समर्पण माया है। आप इसकी शरण ले या उसकी किन्तु अन्तिम शरणागति, भगवान् श्रीकृष्ण की लेना है और तभी आप सुखी होगे। शरणागति की पद्धति है, किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण करने से सभी को अलौकिक सुख और सन्तोष प्राप्त होता है।

प्रो० कोटोव्स्की—क्या भारत मे कट्टर हिन्दुओ या ब्राह्मणो ने आपके उपदेशो का प्रतिरोध नही किया है ?

श्रील प्रभुपाद—हमने उन्हे परास्त कर दिया है।

प्रो० कोटोव्स्की—अच्छा।

श्रील प्रभुपाद—कोई भी हठधर्मी हिन्दू आकर चुनौती दे सकता है, किन्तु हमारे अपने अस्त्र है वैदिक साहित्य। कोई नही आया है। अमेरिका मे क्रिश्चयन पादरी भी मुझसे प्रेम करते है। वे कहते है, "ये शिष्य अमेरिकन, क्रिश्चयन, ईसाई और यहूदी है। अब ये भगवान् के इतने भक्त हो गए है। किन्तु हम उनका उद्धार नही कर सके।" वे यह स्वीकार कर रहे है। उनके माता-पिता हमारे पास आते है और श्रद्धापूर्वक कहते है, "स्वामीजी, यह हमारा सौभाग्य है कि आप भगवद्-भक्ति का उपदेश देने के लिए आप यहाँ आए।" इस प्रकार हमारा स्वागत किया जा रहा है। भारत मे भी जैसा कि आपने भारत के बारे मे पूछा है, दूसरे सम्प्रदायो के लोग स्वीकार करते है कि मेरे पहले कितने ही स्वामी पश्चिमी देशो मे गए किन्तु वे एक भी कृष्णभक्त नही बना सके। लोग आज यह स्वीकार कर रहे है। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मै इसमे अपना कोई श्रेय नही मानता, किन्तु मेरा विश्वास है, क्योकि मैं वैदिक ज्ञान को यथानुरूप प्रस्तुत कर रहा हूँ, अतएव वह प्रभावकारी सिद्ध हो रहा है। यही मेरा विश्वास है। यदि आपके पास कोई उचित औषधि है और आप उसे किसी रोगी को देते है तो आपको विश्वास रहेगा कि रोगी स्वस्थ हो जाएगा।

प्रो० कोटोव्स्की—आपके एक हजार शिष्यो मे से कितने भारत में है ? भारत मे आपके सम्प्रदाय के कितने लोग है ?

श्रील प्रभुपाद—भारत में ?
प्रो० कोटोव्स्की—हाँ।
श्रील प्रभुपाद—भारत में तो कृष्णभावनाभावित व्यक्ति बहुत है—लाखो-करोड़ो है। भारत मे तो कोई प्रश्न ही नही है। वहाँ एक भी हिन्दू नही मिलेगा जो कृष्ण-भक्त नही है।
प्रो० कोटोव्स्की—हाँ। मै जानता हूँ।
श्रील प्रभुपाद—वैष्णव, इसे वैष्णव समुदाय कहते है। आप भारत मे रह चुके हैं। साधारणतया सब को मालूम है कि वहाँ करोड़ो वैष्णव हैं। उदाहरणतया, ये महोदय (वहाँ उपस्थित एक भारतीय सज्जन) एयर इण्डिया के कमाण्डर है। ये मेरे शिष्य नही है, किन्तु ये कृष्णभक्त वैष्णव है। इसी प्रकार भारत मे कोटि-कोटि कृष्णभावनाभावित व्यक्ति है। गोरखपुर विश्वविद्यालय मे एक मुसलमान प्राध्यापक है जो भगवान् श्रीकृष्ण के महान् भक्त है। तो यह स्वाभाविक है। श्रीचैतन्य चरितामृत मे कहा गया है कि श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-प्रेम सर्वत्र है, हर व्यक्ति के हृदय मे है। उसे इस विधि द्वारा जाग्रत करना है। बस। वह आपके हृदय मे है। वह आपके लिए कोई विजातीय वस्तु नही है। हर व्यक्ति के हृदय में सुप्त श्रीकृष्णभावनामृत है। इस विधि से उसे जागृत करना है। वह सूर्योदय की भाँति है। यह तो नही है कि सूर्य अचानक कहीं से निकल आता है। सूर्य है और वह प्रात.काल में उदय होता है। उसी प्रकार यह श्रीकृष्णभावनामृत सर्वत्र है किन्तु किसी न किसी प्रकार वह आवृत्त है। इस विधि से वह जागृत होती है और संगति से वह दृढ होती है।
प्रो० कोटोव्स्की—आप कल ही मास्को आए। मास्को मे आपने कुछ देखा है ?
श्रील प्रभुपाद—नही। दृश्यावलोकन मे मेरी कोई रुचि नही है।
प्रो० कोटोव्स्की—किन्तु जो भी हो, एक प्राचीन ढंग के होटल ठहरना, रुचिकर नही लगता होगा और आप परसो यहाँ से जा रहे है ?
श्रील प्रभुपाद—यही मेरा कार्यक्रम है।
प्रो० कोटोव्स्की—आप अमेरिका जा रहे है या यूरोप ?
श्रील प्रभुपाद—हाँ, यूरोप जा रहे है, पेरिस। और लन्दन तथा सेन फ्रान्सिस्को मे हमारे दो बहुत बडे-बड़े समारोह है। लोग रथयात्रा-महोत्सव की तैयारी कर रहे है। यह रथयात्रा-महोत्सव जगन्नाथ पुरी मे मनाया जाता है। आप जगन्नाथ पुरी गए है ?
प्रो० कोटोव्स्की—हाँ। यह रथयात्रा-महोत्सव चिरकाल से मनाया जाता रहा है। बड़ी ही प्राचीन परम्परा है। बडे-बड़े रथ।
श्रील प्रभुपाद—हाँ, अब यह पश्चिमी देशो मे भी लन्दन और सेन फ्रान्सिस्को में

मनाया जाने लगा है। सम्भव है, धीरे-धीरे यह अन्य देशो में भी मनाया जाने लगे।

प्रो० कोटोव्स्की—लन्दन में तो बहुत बड़ी संख्या मे भारतीय हैं।

श्रील प्रभुपाद—नही, नही। इसका आयोजन, अंग्रेज और अमेरिकन करते हैं। लन्दन और सेन फ्रान्सिस्को में रहने वाले भारतीय आप तो जानते हैं—'साहब' बनने का का प्रयास कर रहे है।

प्रो० कोटोव्स्की—(हँसते है) पाश्चात्यकृत (दोनो व्यक्ति हँसते है) विश्वविद्यालय के एक महान् सामाजिक मानवविज्ञान विशेषज्ञ ने बड़ी ही मनोरंजक बात लिखी है। उसने कहा है, दो प्रक्रियाएँ है—ब्राह्मणो मे, मुख्यतः उच्चतर वर्ग में पाश्चात्यीकरण की प्रक्रिया और संस्कृतीकरण की प्रक्रिया, जो ब्राह्मण-कर्मकाण्ड आदि की प्रक्रिया है जिसे निम्नतर वर्ग के लोग तथा अस्पृश्य भी अपना रहे है। आज तो भारत मे यह बड़ी मनोरंजक प्रक्रिया है। किन्तु, दुर्भाग्य से भारत की स्थिति समस्यापूर्ण है।

श्रील प्रभुपाद—कठिनाई यह है कि भारत कही का नही है। लोग पाश्चात्य जीवन का अनुकरण कर रहे है, किन्तु भौतिकवादी अथवा तकनीकी दृष्टि से वे सौ वर्ष पीछे है।

प्रो० कोटोव्स्की—हाँ। बिल्कुल ठीक। किन्तु भारत के लिए क्या किया जाय ?

श्रील प्रभुपाद—मैं एक बात का अनुभव कर रहा हूँ। यदि भारत की आध्यात्मिक सम्पत्ति का वितरण किया जाय तो भारत का सम्मान बढ जाएगा, क्योकि जहाँ कही भी मैं जाता हूँ, लोग भारतीय संस्कृति का आज भी आदर करते है। यदि भारत के आध्यात्मिक ज्ञान-भण्डार का समुचित वितरण किया जाय तो कम से कम भारत के बाहर के लोग सोचेंगे कि उन्हें भारत से कुछ प्राप्त हो रहा है।

प्रो० कोटोव्स्की—निस्सन्देह आप ठीक कहते हैं। भारतीय सास्कृतिक परम्परा का प्रसार सर्वत्र होना चाहिए। किन्तु साथ ही साथ स्वयं भारतीय जनता इससे किस प्रकार लाभान्वित होगी। लोग भारत मे बैठे हुए है और समस्त विश्व मे भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के प्रसार से उन्हे कोई लाभ नही होने वाला है। भारतीय ग्रामों को खाद, ट्रैक्टर आदि की आवश्यकता है।

श्रील प्रभुपाद—हाँ, इस पर हमे आपत्ति नही है।

प्रो० कोटोव्स्की—हाँ, मैं जानता हूँ आपको इस पर आपत्ति नही है। किन्तु साथ ही साथ भारत मे कुछ करना होगा। इसे, कोई पाश्चात्यीकरण भले ही कहे, किन्तु औद्योगिक-तकनीकी क्रान्ति की भारतीय जीवन के हर क्षेत्र मे—कृषि उद्योग आदि मे—आवश्यकता है।

श्रील प्रभुपाद—भगवद्‌गीता समझने के पूर्व अर्जुन एक योद्धा थे और भगवद्‌गीता समझने के बाद भी वे योद्धा ही रहे। तो हम स्थिति को बदलना नही चाहते।

उदाहरणार्थ, आप एक सम्माननीय प्राध्यापक है, शिक्षक है। हम नही कहते कि आप अपनी स्थिति बदल दीजिए। हम तो अपने 'दर्शन' को समझाने के लिए आपके यहाँ आये है। इससे अधिक कुछ नही। अर्जुन युद्ध करने से अस्वीकार कर रहे थे। "हे कृष्ण। मै अपने सम्बन्धियो की हत्या करना नही चाहता। मैं यह राजपाट नही चाहता।" किन्तु उन्हे भगवद्गीता की शिक्षा दी गई और अन्त मे जब भगवान् श्रीकृष्ण ने पूछा, "अब तुम्हारा क्या निर्णय है।" तो उन्होने कहा, **"करिष्ये वचनं तव"** "हाँ, मै आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।" अर्थात् उनकी चेतना मे परिवर्त्तन आ गया। वे योद्धा थे और योद्धा ही रहे, किन्तु उनकी भावना बदल गई। हम वही चाहते है। हम वर्त्तमान सामाजिक स्थिति मे कोई उत्पात उत्पन्न करना नही चाहते। हम तकनीकी (टेक्नोलाजी) के विरुद्ध नही है। नही, किन्तु हम उन्हे इस कृष्णभक्ति को समझाना चाहते है। यही हमारा कार्यक्रम है।

प्रो० कोटोव्स्की—निस्सन्देह, साथ ही साथ किसी भी विचारधारा का अन्तिम लक्ष्य समाज-परिवर्त्तन होना चाहिए—अपेक्षाकृत उत्तम समाज का निर्माग।

श्रील प्रभुपाद—यह तो स्वाभाविक है।

प्रो० कोटोव्स्की—वास्तव मे मै इससे प्रसन्न नही हूँ कि अन्तिम लक्ष्य समाज को उद्वेलित करना नही है, क्योकि आधुनिक समाज मे चेतना के माध्यम से अनेक वस्तुओ को परिवर्तित करना पडता है।

श्रील प्रभुपाद—सयम-नियम के अन्तर्गत प्रारम्भिक परिवर्त्तन करना होगा। जैसे, मादक द्रव्यो का सेवन मत करो।

प्रो० कोटोव्स्की—मादक द्रव्यो आदि का सेवन निषिद्ध, सीधा जीवन इत्यादि।

श्रील प्रभुपाद—तो यदि कोई इस विधि को ग्रहण करता है...

प्रो० कोटोव्स्की—तो दूसरे अपने आप आ जाएंगे।

श्रील प्रभुपाद—व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन मे परिवर्त्तन आ जाएगा, क्योकि अवैध स्त्री सग, मादक द्रव्य, मासाहार और जुआ—ये चार बाते सामाजिक उत्थान मे अत्यन्त बाधक है।

प्रो० कोटोव्स्की—उससे तो जीव अपने आप सरल हो जाएगा, क्योकि जो व्यक्ति अवैध मैथुन, मादक द्रव्यो के सेवन आदि मे लिप्त नही होगा, उसे अपेक्षाकृत सरल जीवन व्यतीत करना होगा।

श्रील प्रभुपाद—उस दिन मै बम्बई मे एक माननीय सज्जन से चर्चा कर रहा था। मैने उनसे कहा कि भगवान् श्रीकृष्ण कहते है [गीता ९ ३२].

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

"हे पार्थ, मेरी शरण मे आकर तो पाप योनि वाले स्त्री, वैश्य, शूद्र परम गति

को प्राप्त होते हैं।" अब हिन्दू समाज के उच्चतर वर्ग के लोगो ने भगवद्गीता के इस आदेश की उपेक्षा क्यो की है? मान लीजिए कोई पापयोनि अर्थात् निम्न वर्ग का है और भगवान् श्रीकृष्ण कहते है कि उनकी शरण मे आकर वह परम गति को प्राप्त हो सकता है। तो उच्चतर वर्ग के लोगो ने इस सन्देश को प्रसारित क्यो नही किया जिससे तथाकथित निम्न वर्ग के लोगो का भी उद्धार हो सके? उन्हे वे क्यों ठुकराते है? परिणाम यह हुआ कि मुसलमानो को स्वीकार करने के स्थान पर भारतीयो ने उन्हे ठुकरा दिया। और अब तो उन्हे विभाजित भी कर दिया गया है। अब वे भारत के नित्य शत्रु बन गए है। तो हम मनुष्यो को, चाहे वे म्लेच्छ ही क्यों न हो, कृष्णभावनामृत की परम गति को पहुँचाने के लिए पहली बार प्रयत्नशील है। आत्मा पवित्र है। वेदो में कहा गया है कि आत्मा भौतिक दूषण से प्रभावित नही होती। वह केवल अस्थायी रूप से प्रच्छन्न रहती है। इस प्रच्छन्नता को ही दूर करना है। तब व्यक्ति शुद्ध हो जाता है। मानव जीवन का उद्देश्य है इस भौतिक परिवेश से अपने को मुक्त करना, आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करना और भगवान् श्रीकृष्ण के शरणागत होना। तभी हमारा जीवन पूर्ण है।

आधुनिक विज्ञान का नन्हा-सा जगत्

वैनिस बीच, लॉस एन्जिलिस, मे अप्रैल १९७३ मे किये गए एक प्रात.कालीन भ्रमण मे श्रील प्रभुपाद आधुनिक विज्ञान और उसके उच्च उपासको की चर्चा करते हैं "वे लोग घोषणा करते हैं कि उनके पास करोडो रुपयो के मूल्य के बराबर ज्ञान है, परन्तु यदि आप उनसे एक प्रश्न पूछे, तो वे केवल आपको एक भावीतिथि वाला चेक दे देते हैं। हम उस चेक को क्यो स्वीकार करे? वे अपने जीव सम्बन्धी अथवा रासायनिक प्रयोगो के माध्यम मे एक घास का तृण भी उत्पन्न नही कर सकते। इतना ही नही, वे यह घोषणा कर रहे हैं कि सृष्टि रासायनिक अथवा जीव सम्बन्धी विधि के द्वारा उत्पन्न हुई है। इन सब निरर्थक चर्चाओ के सम्बन्ध मे कोई प्रश्न क्यो नही करता है?"

श्रील प्रभुपाद—विज्ञान एवं तकनीकी का सम्पूर्ण जगत् ही इस मिथ्या विचार पर क्रियाशील है कि जीवन की उत्पत्ति पदार्थ से हुई है। हम निरर्थक सिद्धान्त को चुनौती दिए बिना नही रह सकते। जीवन पदार्थ से नही उत्पन्न होता। पदार्थ की उत्पत्ति जीवन से हुआ करती है। यह कोई सिद्धान्त नही है: यह तथ्य है। विज्ञान एक गलत सिद्धान्त पर आधारित है, अतः इसकी सम्पूर्ण गणनाएँ और निष्कर्ष गलत है और लोग इसी कारण कष्ट पा रहे हैं। जब यह सब आधुनिक परन्तु गलत वैज्ञानिक सिद्धान्त सही कर दिए जाएँगे, तो लोग सुखी हो जाएँगे। तो हमे वैज्ञानिको को अवश्य ही चुनौती देना चाहिए और उनको पराजित करना चाहिए। अन्यथा, वे सम्पूर्ण समाज को मार्गभ्रष्ट कर देगे।

पदार्थ का ६ अवस्थाओ मे परिवर्त्तन होता है: जन्म, वृद्धि, पालन, उप फल का उत्पादन, क्षय और मृत्यु। परन्तु पदार्थ के भीतर जीवन अर्थात् आत्मा नित्य नित्य है. उसमें कोई परिवर्त्तन नही होता। हमे भले ही ऐसा प्रतीत होता हो कि जीवन का विकास हो रहा है और क्षय हो रहा है, परन्तु वास्तव मे वह केवल इन ६ पक्षो मे प्रवेश करता जाता है। ऐसा तब तक होता है जब तक भौतिक शरीर का निर्वाह हो सके। उसके बाद जीर्ण शरीर की मृत्यु होती है और आत्मा एक नवीन शरीर मे प्रवेश करती है। जब हमारे वस्त्र पुराने और जीर्ण-शीर्ण हो जाते है, तो हम उनको बदल लेते हैं। उसी प्रकार, जब एक दिन हमारा शरीर पुराना और उनुपयोगी हो जाता है, तो हम एक नए शरीर मे चले जाते है। जैसे श्रीकृष्ण भागवद्गीता [२.१३] मे कहते हैं—

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ।।

"जिस प्रकार इस शरीर में बद्ध जीव को इस देह में क्रम से कौमार्य, यौवन, वृद्धावस्था की प्राप्ति होती है, उसी भाँति मृत्यु होने पर उसे अन्य देह की प्राप्ति होती है।" और उसी अध्याय [२ १८] मे आता है—

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ।।

इसका अर्थ यह हुआ कि अविनाशी और नित्य जीव का केवल भौतिक शरीर ही नष्ट होता है। यह भौतिक शरीर विनाशी है, परन्तु शरीर के भीतर, जीवन (आत्मा) नित्य है।

वेदो के अनुसार, शरीर के भीतर आत्मा का परिमाण केश के अगले भाग का दस हजारवाँ हिस्सा माना गया है। यह परिमाण बहुत छोटा है : वास्तव मे यह परमाणु का माप है। ऐसा होने पर भी उसी आणविक आध्यात्मिक शक्ति के कारण मेरा शरीर कार्य कर रहा है। क्या यह समझना बहुत कठिन है ? कल्पना कीजिए कि एक मनुष्य सोचता है कि वह बहुत बलवान् है। वह क्यो बलवान् है ? केवल क्योकि उसके शरीर मे एक छोटा-सा चिन्मय स्फुलिंग है। परन्तु जैसे ही वह चिन्मय स्फुलिंग चला जाता है, मनुष्य के शरीर की मृत्यु हो जाती है और उसका बल और तेज शून्य हो जाता है। यदि वैज्ञानिक कहते है कि पदार्थ ही जीवन का कारण और मूल है तो वे एक मृत मनुष्य को रसायनो का इंजेक्शन दे कर जीवित करे तो सही। परन्तु वे ऐसा नही कर सकते है।

डॉ० सिंह—(भक्ति स्वरूप दामोदर स्वामी श्रील प्रभुपाद के एक दीक्षा प्राप्त भारतीय शिष्य, जिन्होने अमेरिका से रसायन शास्त्र मे पी एच डी किया है)—क्योकि वैज्ञानिक आत्मा को देख नही सकते, अत. वह कहते है कि इसका अस्तित्व अत्यन्त सन्देहजनक है।

श्रील प्रभुपाद—वे इसको देख ही कैसे कहते है। आत्मा इतनी छोटी है कि हम उसको देख नही सकते। देखने की ऐसी शक्ति है ही किसके पास ?

डॉ० सिंह—फिर भी, वे किसी साधन से इनकी इन्द्रिय-प्रतीति करना चाहते है।

श्रील प्रभुपाद—यदि आप विष की एक बूंद किसी के शरीर मे डाल दे, तो वह तत्काल मर जाता है। कोई भी यह नही देख सकता कि वह विष किस प्रकार कार्य करता है। परन्तु विष की क्रिया न देखे जा सकने पर भी वह कार्य तो करता ही है। उसी प्रकार, वेद कहते है, क्योकि एक शुद्ध क्षुद्र कण जिसे आत्मा कहा जाता है शरीर के भीतर है, अत· सम्पूर्ण शरीर सुन्दर ढग से कार्य कर रहा है। यदि मै चुटकी काटूं, तो मुझे तत्काल ही उसका अनुभव होता है, क्योकि मै सम्पूर्ण

त्वचा मे चेतन हूँ। परन्तु जैसे ही आत्मा अनुपस्थित हो जाती है (जो कि मेरे शरीर के मृत होने पर होता है), तो आप उसी चर्म को काटकर टुकडे-टुकड़े कर सकते है और कोई भी प्रतिरोध नही करेगा। इतनी साधारण-सी वस्तु को समझने मे क्या कठिनाई है? क्या इससे आत्मा का पता नही लग सकता?

डॉ० सिंह—वह तो आत्मा के विषय मे है। परन्तु भगवान् के विपय में क्या विचार है?

श्रील प्रभुपाद—इससे पहले हम आत्मा को तो समझे। आत्मा एक अत्यधिक लघु रूप मे ईश्वर है। तो यदि आप उदाहरण को समझ जाएँ, तो आप सम्पूर्ण वस्तु को भी समझ सकते है।

उदाहरण के लिए, यहाँ एक पदार्थ है। [श्रील प्रभुपाद अपनी छडी से एक मृत वृक्ष की ओर सकेत करते है।] पहले इस वृक्ष मे पत्तियाँ और डालियाँ उग रही थी। अब वे क्यो नही उग रही है? क्या वैज्ञानिक इस प्रश्न का उत्तर दे सकते है?

[इस स्थान पर श्रील प्रभुपाद के दो शिष्य ब्रह्मानन्द स्वामी और कर्णधरदास भी चर्चा में सम्मिलित हो जाते है।]

कर्णधरदास—वैज्ञानिक कहेगे कि रासायनिक रचना बदल गई है।

श्रील प्रभुपाद—ठीक है, यदि वे रसायन शास्त्र के ज्ञान मे इतने उन्नत है, तो वे यथोचित रसायनो का प्रयोग करे और डालियो एवं पत्तियो को फिर से उगा दे।

ब्रह्मानन्द स्वामी—ज्ञान का अर्थ यह है कि मनुष्य को अपने सिद्धान्त को प्रयोग के द्वारा प्रदर्शन करने मे अवश्य ही योग्य होना चाहिए। वैज्ञानिकों को अपनी प्रयोगशालाओ मे यह दिखाने मे योग्य होना चाहिए कि रसायनो के मिश्रण से जीवन उत्पन्न होता है।

श्रील प्रभुपाद—हाँ, वैज्ञानिक विधि का अर्थ होता है पहले निरीक्षण, फिर उप-कल्पना (सिद्धान्त) और उसके पश्चात् प्रयोग के द्वारा प्रदर्शन। परन्तु ये वैज्ञानिक अपनी उप-कल्पना का प्रयोग के द्वारा प्रदर्शन नही कर सकते है। वे केवल निरीक्षण करते है और निरर्थक चर्चा करते है।

वैज्ञानिक कहते है कि जीवन का कारण रसायन है। परन्तु जिस समय वृक्ष जीवित था, उस समय जो रसायन उपस्थित थे, वे अभी भी वृक्ष मे उपस्थित है। और जीवन शक्ति भी उसमे है। वृक्ष मे हजारो कीटाणु है और वे सभी प्राणी है। कोई भी यह दावा नही कर सकता कि वृक्ष के शरीर मे जीवन-शक्ति का अभाव है।

डॉ० सिंह—परन्तु वृक्ष की स्वय जीवन-शक्ति के विषय मे आप क्या कर सकते है?

श्रील प्रभुपाद—हाँ, यही तो अन्तर है। जीवन-शक्ति व्यक्तिगत है और वृक्ष मे जो विशिष्ट व्यक्तिगत जीव था वह वृक्ष को छोड़ चुका है। इसका अवश्य ही कारण

होना चाहिए, क्योकि जीवन वर्तमान रखने के लिए जो रसायन आवश्यक है वे सभी उपस्थित है, फिर भी वृक्ष मृत है ।

यहाँ एक दूसरा उदाहरण है—कल्पना कीजिए कि मैं एक घर मे रह रहा हूँ और फिर मैं उसको छोड देता हूँ । मैं चला गया हूँ, परन्तु अनेक प्राणी वहाँ अभी भी हैं—चीटी, मकड़ी इत्यादि । यह सत्य नही कि क्योकि केवल मैने घर छोड दिया है, इसलिए उसमे और जीवन की सम्भावना नही है । दूसरे जीव अभी भी वहाँ निवास कर कर रहे है । केवल मैने—एक व्यक्तिगत जीव—ने वह स्थान छोडा है । वृक्ष में पाए जाने वाले रसायन घर के समान है । वे व्यक्तिगत जीवन-शक्ति—के क्रियाक्षेत्र है । इस प्रकार वैज्ञानिक, रासायनिक प्रयोगशाला मे कभी भी जीवन, आत्मा—उत्पन्न करने में योग्य नही हो सकेंगे ।

यह तथाकथित वैज्ञानिक कहते हैं कि जीवन रसायनो से आरम्भ होता है । परन्तु वास्तविक प्रश्न तो यह है, "ये रसायन आते कहाँ से है ?" रसायन जीवन से उत्पन्न होते है । इसका अर्थ हुआ कि जीवन मे रहस्यमयी शक्ति है । उदाहरण के लिए, एक सन्तरे के पेड़ मे अनेक सन्तरे होते है और प्रत्येक सन्तरे मे अम्ल (एसिड) इत्यादि रसायन होते है । ये रसायन कहाँ से आए ? स्पष्ट है कि ये वृक्ष के भीतर पाए जाने वाले जीवन से आए है । वैज्ञानिक लोग रसायन पदार्थों के स्रोत (उद्गम) की खोज नही कर रहे हैं । उन्होने अपना अनुसन्धान रसायनो से आरम्भ किया है, परन्तु वे रसायन पदार्थो के स्रोत को नही पहचान सकते । रसायन पदार्थ परम चेतन (जीवन) भगवान् से आते है । जिस प्रकार मनुष्य का शरीर अनेक रसायन पदार्थ उत्पन्न करता है, उसी प्रकार परम चेतन भगवान् वातावरण मे, जल मे, मनुष्यो मे, पशु और पृथ्वी मे पाए जाने वाले सभी प्रकार के रसायन पदार्थो को उत्पन्न कर रहे है । और इसे ही रहस्यमयी शक्ति कहते है । जब तक श्रीभगवान् की रहस्यमयी शक्ति को स्वीकार नही किया जाय, तब तक जीवन की स्रोत सम्बन्धी समस्या का कोई हल नही निकल सकता ।

डॉ० सिंह—वैज्ञानिक लोग उत्तर देंगे कि वे रहस्यमयी शक्ति मे विश्वास नही कर सकते ।

श्रील प्रभुपाद—परन्तु उनको रसायन पदार्थो के स्रोत की व्याख्या अवश्य ही करनी चाहिए कोई भी देख सकता है कि एक साधारण-सा वृक्ष अनेक रसायन पदार्थो को उत्पन्न कर रहा है । वैज्ञानिक लोग इसको अस्वीकार नही कर सकते । परन्तु वह इन रसायन पदार्थो की उत्पत्ति किस प्रकार करता है ? परन्तु वे इस प्रश्न का उत्तर नही दे सकते, उन्हे यह अवश्य ही स्वीकार करना चाहिए कि जीवन मे रहस्यमयी शक्ति है । मै यह नही समझा सकता कि किस प्रकार मेरा नाखून मेरी उँगली से निकल रहा है . यह हमारे मस्तिष्क की शक्ति के परे है । दूसरे शब्दो मे,

यह अचिन्त्य शक्ति के द्वारा बढ रहा है। तो यदि अचिन्त्य शक्ति एक साधारण से जीव में होती है, तो कल्पना कीजिए कि भगवान् मे कितनी अधिक अचिन्त्य शक्ति होगी।

श्रीभगवान् में और मुझमे अन्तर यह है कि यद्यपि मुझमे भगवान् के समान ही शक्तियाँ है, किन्तु मैं रसायन-पदार्थो की केवल एक छोटी-सी मात्रा उत्पन्न कर सकता हूँ। जबकि भगवान् रसायन पदार्थो की प्रचुर मात्रा उत्पन्न कर सकते हैं। मैं स्वेद (पसीने) के रूप मे थोड़ा सा जल उत्पन्न कर सकता हूँ, परन्तु भगवान् समुद्र उत्पन्न कर सकते है। समुद्र के जल की एक बूंद का विश्लेषण, बिना किसी त्रुटि के ही, आपको पूरे समुद्र का गुणात्मक विश्लेषण दे देता है। उसी प्रकार, साधारण जीव भगवान् का विभिन्न अंश है। इन जीवो का विश्लेषण करने के द्वारा हम भगवान् को समझना आरम्भ कर सकते है। भगवान् मे महान् रहस्यमयी शक्ति है। भगवान् की रहस्यमयी शक्ति अविलम्ब कार्य करती है, जैसे कि एक विद्युत-यन्त्र (इलेक्ट्रिक मशीन) किसी विशेष शक्ति के द्वारा संचालित होते है और वे इतने सुन्दर ढग से बनाए गए है कि सभी कार्य केवल एक बटन के दबाने मात्र से ही हो जाते है। उसी प्रकार, भगवान् ने कहा, "सृष्टि हो जाए," और सृष्टि हो गई। इस प्रकार विचार करने से, हम देख सकते है कि प्रकृति के कार्यो को समझने मे कोई बहुत कठिनाई नही है। भगवान् की इतनी अद्भुत शक्तियाँ है कि केवल उनकी आज्ञा से ही तत्क्षण सृष्टि हो जाती है।

ब्रह्मानन्द स्वामी—वैज्ञानिक लोग भगवान् अथवा अचिन्त्य शक्ति को नही मानते।

श्रील प्रभुपाद—यह उनकी शठता है। भगवान् और उनकी अचिन्त्य शक्ति भी है।

कर्णधरदास—वैज्ञानिक कहते है कि जीवन जीव-रसायन की क्रिया-प्रतिक्रिया के द्वारा उत्पन्न हुआ था।

श्रील प्रभुपाद—और मै उनसे कहता हूँ: "आप जीवन की उत्पत्ति क्यो नही कर लेते है? आपका यह विज्ञान और रसायन शास्त्र अत्यधिक विकसित है, तो आप क्यो नही जीवन की उत्पत्ति कर लेते है?

कर्णधरदास—वे कहते है कि वे भविष्य मे जीवन उत्पन्न कर लेगे।

श्रील प्रभुपाद—भविष्य मे कब? यदि वैज्ञानिको को सृष्टि करने की विधि ज्ञात है, तो वे अभी जीवन की सृष्टि क्यो नही कर सकते? यदि जीवन का स्रोत जीव-रसायन है और यदि जीव-रसायन शास्त्री और रसायन शास्त्री इतने अधिक उन्नत है, तो वे अपनी प्रयोग शालाओ मे जीवन की सृष्टि क्यो नही कर लेते? जब यह विषम प्रश्न उठाया जाता है, तो वे कहते है, "हम भविष्य मे कर लेगे।" भविष्य मे क्यो? यह निरर्थक है। भविष्य चाहे कितना ही सुखद क्यो न हो उसमें

विश्वास मत कीजिए। उनके विकास का अर्थ ही क्या है? वे केवल निरर्थक चर्चा कर रहे है।

कर्णधरदास—वे कहते है कि वे जीवन की सृष्टि करने की स्थिति में लगभग पहुँच चुके है।

श्रील प्रभुपाद—परन्तु वह भी एक भिन्न दृष्टिकोण से भविष्य की ही बात हुई। उन्हें यह अवश्य स्वीकार करना चाहिए कि उनको जीवन के स्रोत-सम्बन्धी सत्य का पता नही है। क्योंकि वे यह आशा कर रहे है कि भविष्य में वे जीवन की सृष्टि करने में योग्य हो सकेंगे, तो वर्त्तमान मे उनका ज्ञान अवश्य ही अपूर्ण है। उनका प्रस्ताव एक गततिथि (पोस्टडेटेड) चेक के समान है। कल्पना कीजिए मुझे आपको दस हजार रुपए देने हैं और मैं कहता हूँ, "जी हाँ, मैं आपको सम्पूर्ण धन इस पोस्ट डेटेड चेक के द्वारा दे दूँगा। क्या यह ठीक है? यदि आप बुद्धिमान् हैं, तो आप उत्तर देंगे, "अभी केवल मुझे कम से कम १० रुपये नगद दे दीजिए, तब मैं आगे कुछ वास्तविकता देख सकता हूँ।" उसी प्रकार, वैज्ञानिक जीव-रसायन के द्वारा घास का एक तृण भी उत्पन्न नही कर सकते, फिर भी वे दावा करते है कि जीवन पदार्थ से उत्पन्न हुआ है। यह कैसा निरर्थक दावा है? कोई इस पर प्रश्न क्यों नही कर रहा है? हम सिद्ध कर सकते है कि जीवन, जीवन से आरम्भ हुआ है। यहाँ उसका प्रमाण है—जब एक पिता सन्तान उत्पन्न करता है, तो पिता चेतन है और सन्तान भी चेतन है। परन्तु वैज्ञानिको के पास इसका प्रमाण कहाँ है—कि जीवन पदार्थ से आता है। हम सिद्ध कर सकते है कि जीवन जीवन से आरम्भ होता है और हम सिद्ध कर सकते है कि मूल जीवन (चेतन) श्रीकृष्ण है। परन्तु इसका प्रमाण कहाँ है कि एक शिशु आज तक मृत पत्थर से उत्पन्न हुआ हो? वैज्ञानिक सिद्ध नही कर सकते है कि जीवन पदार्थ से आता है। वे इसे भविष्य के लिए छोड़े दे रहे है।

कर्णधरदास—वैज्ञानिकों द्वारा पुकारी जाने वाली "वैज्ञानिक सत्य निष्ठा" का आधार यह है कि वे केवल उसी वस्तु के विषय मे चर्चा करते है जिसका वे अपनी इन्द्रियो के माध्यम से अनुभव कर सके।

श्रील प्रभुपाद—वास्तव मे वे लोग अपने "डॉक्टर कूप मण्डूक के सिद्धान्त" के कारण कष्ट पा रहे है। एक कूपमण्डूक था जिसने अपना सम्पूर्ण जीवन एक कुंए मे व्यतीत किया। एक दिन उसका एक मित्र आया और उसने एटलान्टिक सागर के अस्तित्व के विषय मे उस मेढक को जानकारी दी।

"अरे, यह एटलॉन्टिक सागर क्या होता है?" कुंए मे रहने वाले मेढक ने पूछा।

"यह जल का एक विशाल भण्डार है।" उसके मित्र ने उत्तर दिया।

"कितना विशाल ?" क्या वह इस कुएं के आकार का दुगुना है ?"

"अरे नही, इससे भी बहुत बडा", उसके मित्र ने उत्तर दिया।

"कितना बडा ? इस कुँए से दस गुना बड़ा ?"

इस प्रकार वह कूप मण्डूक गणना करता गया। परन्तु क्या कभी इस बात की सम्भावना थी कि वह महासागर की गहराई और आकार के विषय मे कभी भी समझ सके ? हमारी क्षमता, अनुभव और अनुमान करने की शक्ति सदा ही सीमित है। वह कूपमण्डूक हमेशा अपने कुँए के अनुपात की तुलना मे सोचता रहा। इसके अतिरिक्त और कुछ विचार करने की उसमे शक्ति ही नही थी। उसी प्रकार, वैज्ञानिक लोग सब कारणो के कारण, परम सत्य भगवान् के विषय मे अपनी अपूर्ण इन्द्रियो और मन के द्वारा अनुमान लगा रहे है। और इस प्रकार उन लोगो का भ्रमित होना अवश्यम्भावी है। इन नाममात्र के वैज्ञानिको का सबसे बडा दोष यह है कि उन्होने अपने निष्कर्षों पर पहुँचने के लिए आगमनात्मक विधि को स्वीकार किया है। उदाहरण के लिए, यदि एक वैज्ञानिक आगमनात्मक विधि के द्वारा यह पता लगाना चाहता है कि मनुष्य नश्वर (मरणशील) है कि नही, तो उसे एक-एक मनुष्य का अवश्य ही अध्ययन करना पड़ेगा। उसे प्रत्येक मनुष्य के द्वारा यह खोज करने का प्रयत्न करना पडेगा कि कुछ या उनमें से एक मनुष्य अविनाशी भी हो सकता है। वैज्ञानिक कहता है "मैं इस स्वयं-सिद्ध प्रस्ताव को स्वीकार नही कर सकता कि सभी मनुष्य नश्वर है। कुछ ऐसे मनुष्य भी हो सकते है जो अविनाशी हो। मैंने अभी तक सभी मनुष्यो का परीक्षण नही किया है। अत: मैं यह कैसे स्वीकार कर सकता हूँ कि मनुष्य नश्वर है ? इस विधि को आगमनात्मक विधि कहते है। और निगमनात्मक विधि का अर्थ है कि आपके पिता, आपके शिक्षक या आपके गुरु कहते है कि मनुष्य नश्वर है और आप उसको स्वीकार कर लेते है।

डॉ० सिंह—तो ज्ञान प्राप्त करने की एक आरोह पद्धति (आगमनात्मक) और एक अवरोह पद्धति (निगमन) पद्धति है ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, आरोह पद्धति कभी भी सफल नही होगी, क्योकि यह इन्द्रियो पर निर्भर रहती है। ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन्द्रियाँ अपूर्ण है। इसलिए हम अवरोह पद्धति को स्वीकार करते हैं।

श्री भगवान् आगमनात्मक पद्धति से नही जाने जा सकते है। अत. उनको अधोक्षज कहा जाता है, जिसका अर्थ है "प्रत्यक्ष प्रतीति के द्वारा अज्ञेय" वैज्ञानिक कहते है कि भगवान् नही है क्योकि वे भगवान् को सीधे प्रत्यक्ष ज्ञान से समझना चाहते है, परन्तु वे अधोक्षज है, इसलिए वैज्ञानिक भगवान् के प्रति अज्ञानी है। उनको भगवान् को जानने की पद्धति का ज्ञान नही है। अप्राकृत विज्ञान को समझने के लिए सभी को प्रामाणिक गुरु के पास जाना चाहिए, विनम्रतापूर्वक उनके

वचनामृत सुनने चाहिए और उनकी सेवा करनी चाहिए भगवद्गीता के चौथे अध्याय के [४ ३४] श्लोक मे भगवान् श्रीकृष्ण ने यही बताया है :

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।

डॉ० सिह—'प्रकृति' नामक एक वैज्ञानिक पत्रिका है जिसमे प्राकृतिक फल जैसे कि वृक्ष, पशुओ के सम्बन्ध मे लेख होते है, लेकिन यह भगवान् का उल्लेख तक नही करती। सिर्फ प्रकृति का ही।

श्रील प्रभुपाद—हम यथार्थ निरीक्षण से देखते है कि वृक्ष प्रकृति से उत्पन्न होते है परन्तु हमे यह पूछना चाहिए, "किसने प्रकृति को उत्पन्न किया है ?" यह प्रश्न पूछना बुद्धिमत्ता है।

डॉ० सिह—वैज्ञानिक इसका कुछ नही सोचते।

श्रील प्रभुपाद—अत: वे मूर्ख है। जैसे ही हम प्रकृति के विषय में चर्चा करे तो अगला प्रश्न होना चाहिए, "किसकी प्रकृति ?" उदाहरण के लिए, मै कहता हूँ कि 'मेरी' प्रकृति और आप कहते है "आपकी" प्रकृति। इसलिए जैसे ही प्रकृति का वर्णन आवे, अगला प्रश्न होना चाहिए, "किसकी प्रकृति ?"

प्रकृति का अर्थ होता है शक्ति। जब हम शक्ति की चर्चा करते है तो शक्ति के स्रोत को भी अवश्य स्वीकार करना पड़ता है। जैसे विद्युत शक्ति का स्रोत बिजली घर (पावर हाउस) है। विद्युत अपने आप उत्पन्न नही हो जाती। हमे बिजलीघर और उत्पादक (जेनेरेटर) की स्थापना करनी पड़ती है। उसी प्रकार, वेदो मे कहा गया है कि प्रकृति श्रीकृष्ण के निर्देशन मे कार्य कर रही है।

डॉ. सिंह—क्या आपके कहने का आशय है—विज्ञान ने मध्य से कार्य आरम्भ किया है, मूल से नही ?

श्रील प्रभुपाद—हाँ, यही तो तथ्य है। वे मूल तत्त्व से पूर्णरूपेण अनभिज्ञ है। वैज्ञानिक एक बिन्दु से आरम्भ करते है, किन्तु वह बिन्दु आया कहाँ से ? गहन अनुसन्धान के पश्चात् भी वे यह अभी तक नही जानते। अब उन्हे स्वीकार करना चाहिए कि उत्पत्ति का कारण श्री भगवान् है। वे सब दिव्य शक्तियो से पूर्ण है और उनसे प्रत्येक का जन्म होता है। वे स्वय कहते है [गीता १० ८] **अहं सर्वस्य प्रभवो मत्त: सर्वं प्रवर्तते।** "मै आध्यात्मिक और भौतिक जगत् का कारण हूँ, प्रत्येक वस्तु मुझसे उत्पन्न होती है।" हमारा निर्णय किसी अन्धविश्वास पर आधारित नही है। यह पूर्ण वैज्ञानिक निर्णय है। पदार्थ जीवन से आता है। परम जीवन भगवान् मे, असीम साधन है।

आधुनिक विज्ञान का अन्वेषण साख्य दर्शन के सिद्धान्त के समान है, जो तत्त्वो का विश्लेषण करता है। साख्य का अर्थ है गिनना, कुछ सीमा तक हम भी साख्य दार्शनिक है क्योकि हम भी भौतिक तत्त्वो की गणना करते है। यह है पृथ्वी,

यह है प्राणी, यह है वायु, यह है सूर्य किरण, यह है अग्नि इससे आगे भी हम अपने मन और अहङ्कार की गिनती कर सकते है। अहङ्कार से परे हम गणना नही कर सकते। परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण कहते है—अहङ्कार से परे भी किसी का अस्तित्व है और वह अस्तिव भी जीवन-शक्ति आत्मा है, जिसे वैज्ञानिक नही जानते। वे सोचते है कि जीवन तो साधारण या रासायनिक तत्त्वो का मिश्रण मात्र है। किन्तु श्रीकृष्ण इसे अस्वीकृत करते है **अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृति विद्धि मे पराम्।** [गीता ७ ५] इस अपरा प्रकृति के परे मेरी परा प्रकृति भी है। "यह अपरा प्रकृति भौतिक तत्त्व है और परा प्रकृति जीवात्मा।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

"पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहङ्कार ऐसे यह आठ प्रकार की मेरी भिन्न (अपरा) प्रकृति है।" [गीता ७.४] भगवान् श्रीकृष्ण समझाते हैं कि वायु उनसे आती है, वायु से आकाश सूक्ष्म है। मन से सूक्ष्म बुद्धि है और बुद्धि से सूक्ष्म आत्मा है। लेकिन वैज्ञानिक उसे नही जानते। वे तो सिर्फ स्थूल तत्त्वो का ही विवेचन कर सकते है। वे वायु का वर्णन करते है लेकिन वायु कहाँ से आती है, गैस कहाँ से आती है?

डॉ. सिंह—इसका उत्तर वे नही दे सकते।

श्रील प्रभुपाद—किन्तु हम उत्तर दे सकते है—हमे ज्ञान है कि गैस (वायु) आकाश से आती है, आकाश मन से आता है, मन बुद्धि से आता है, बुद्धि भगवान् की परा प्रकृति, आत्मा से आती है।

डॉ. सिंह—साख्य दर्शन मे इन दोनो प्रकार की परा और अपरा प्रकृतियो का वर्णन किया गया है।

श्रील प्रभुपाद—नही। साख्य दार्शनिक परा शक्ति (प्रकृति) को नही जानते। वे सिर्फ भौतिक तत्त्वो का विश्लेषण मात्र करते है। जैसा कि वैज्ञानिक करते है। न वैज्ञानिक और न साख्य दर्शनिक ही "आत्मा" के सम्बन्ध मे कुछ जानते है।

डॉ. सिह—किन्तु वे क्रियाशील तत्त्वो का विश्लेषण तो करते है।

श्रील प्रभुपाद—भौतिक तत्त्व क्रियाशील नही होते, आत्मा क्रियाशील है। केवल भौतिक तत्त्वो से कोई जीव की सृष्टि नही हो सकती। सृष्टि की शक्ति तो आत्मा मे है। आप एक जीवात्मा है अत. हाइड्रोजन-ऑक्सीजन को मिलाकर पानी पैदा कर सकते है। अगर आप एक बोतल मे हाइड्रोजन और दूसरी बोतल मे ऑक्सीजन भरकर दोनो बोतलो को पास-पास रख दे, क्या वे आपकी सहायता के बिना आपस मे मिल जाती है।

डॉ. सिह—जी नही। उनको मिलाना पडता है।

श्रील प्रभुपाद—हाँ, परा प्रकृति जीवात्मा की आवश्यकता है। ऑक्सीजन और हाइड्रोजन अपरा शक्ति हैं, अशक्त हैं, परन्तु जब पराशक्ति के द्वारा मिलाई जाती है तब उनसे पानी बनता है।

अपरा प्रकृति के तत्त्व तक कोई बल नही रहता जब तक परा प्रकृति का उससे सम्बन्ध नही होता। यह समुद्र (प्रशान्त सागर की ओर सकेत) शान्त है और स्थिर। किन्तु जब परा प्रकृति वायु स्पर्श करती है तो ज्वार-भाटा आ जाता है। परा प्रकृति के बिना समुद्र में कुछ बल नहीं है। उसी प्रकार एक और बल है जो वायु से भी श्रेष्ठ है, उससे भी श्रेष्ठ दूसरा बल। अन्त मे हम श्रीकृष्ण तक पहुँचते है जो बल अथवा सर्वश्रेष्ठ सच्ची शक्ति है। यही वास्तविक शोध है। मान लीजिए एक रेलगाड़ी चलनी आरम्भ कर रही है, इजन एक डिब्बे को ढकेलता है, जो दूसरे को और वह तीसरे को, इस प्रकार सारी गाडी चल पड़ती है। परन्तु मूल मे गतिशीलता का स्रोत जीवात्मा अर्थात् यन्त्री है। उसी प्रकार विश्व की सृष्टि मे भगवान् श्रीकृष्ण प्रथम प्रारम्भ कर्त्ता है और तत्पश्चात् क्रिया-प्रति-क्रियाओ के द्वारा सारा विश्व चल पड़ता है। यह भगवद्गीता [९ १०] मे कहा गया है—**मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्**। "हे कुन्ती पुत्र, यह अपरा प्रकृति (माया) मेरी अध्यक्षता मे कार्य करती हुई सम्पूर्ण चराचर प्राणियो को रचती है।" और भी कहा गया है [गीता १४ ४]—

सर्व योनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥

"हे अर्जुन, सब प्रकार की योनियो मे जितने भी शरीर उत्पन्न होते है, उनकी उत्पत्ति अर्थात् माता, प्रकृति है और मै बीज का गर्भाधान कराने वाला पिता हूँ।"

सब जीव योनियाँ सम्भव है। उदाहरण के लिए, हम एक पीपल का बीज बोएँ, इसमे से एक बहुत बड़ा वृक्ष धीरे-धीरे निकल आता है और साथ ही हजारो-करोड़ो बीज उत्पन्न होते है और इन हजारो, करोडो बीज से अरबो नए बीज उत्पन्न हो जाते है। अतः भगवान् श्रीकृष्ण ही मौलिक, बीज देने वाले पिता है।

दुर्भाग्य से वैज्ञानिक केवल तात्कालिक कारण को ही देखते है, वे दूरस्थ कारण को समझने का प्रयत्न नही करते। दो कारण है एक तात्कालिक और दूसरा दूरस्थ। भगवान् श्रीकृष्ण को वेदो मे **"सर्वकारणकारणम्"** वर्णित किया गया है। श्रीकृष्ण सभी कारणो के कारण है। यदि आप सभी कारणो के कारण को समझ लेते है तो आपने सभी कुछ समझ लिया है। **"यस्मिन् विज्ञाते सर्वमेवं विज्ञातम् भवति"** यदि आप आदि या मूल कारण जानते है तो माध्यमिक कारण अपने आप ही समझ मे आ जाता है। यद्यपि वैज्ञानिक आदि कारण को ढूंढ रहे है और जब

वेद जिनमें आदि कारण का (सम्पूर्ण) ज्ञान है हमे वह ज्ञान देते हैं तब वे उसे नही मानेंगे, वे अपने अधूरे पक्षपाती अपूर्ण ज्ञान पर ही अडिग रहते है।

डॉ. सिह—वैज्ञानिक लोग ऊर्जा (शक्ति) के स्रोतो के विषय मे चिन्तित है और अब वे सौर ऊर्जा का प्रयोग करने की दिशा मे कार्य कर रहे है। वे लोग सौर ऊर्जा का प्रयोग भोजन पकाने मे, प्रकाश तथा विविध उद्देश्यो के लिए करेंगे वे आशा कर रहे है कि जब ऊर्जा के सब स्रोतो का उनके द्वारा व्यय किया जा चुकेगा, तब वे सौर ऊर्जा का प्रयोग करने के योग्य होगे।

श्रील प्रभुपाद—यह भी कोई बहुत नया सिद्धान्त नही है। सभी जानते है क्योकि वृक्ष की जड़ें सूर्य की शक्ति एकत्र करके रखती है, अतः वृक्ष से अग्नि प्राप्त करना सम्भव होता है। ये वैज्ञानिक लोग नन्हे से प्राणी है, परन्तु उनको अत्यधिक गर्व (घमण्ड) है। हम उनको कोई श्रेय नही देते, क्योकि वे केवल वह वस्तु कह रहे हैं जो सभी लोग जानते है। जैसे ही आप एक वृक्ष को काटे, तो आप उससे अग्नि नही प्राप्त कर सकते। उसे सूर्य मे सुखाना पड़ेगा। जब सूर्य से ऊर्जा एकत्रित हो जाती है, तो उस वृक्ष का उपयोग अग्नि के लिए हो सकता है। वास्तव मे प्रत्येक वस्तु का निर्वाह सूर्य की शक्ति के द्वारा होता है, परन्तु वैज्ञानिक यह नही जानते कि सूर्य की शक्ति कहाँ से आती है। भगवद्गीता [१५ १२] मे भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं :

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥

"जो तेज सूर्य मे स्थित होकर सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है, वह मुझसे आता है। और चन्द्रमा से जो तेज (चाँदनी) है, अग्नि मे जो तेज है, उसको भी तुम मेरा मेरा ही तेज जानो। श्रीकृष्ण कहते है, **ज्योतिषां रविरंशुमान्**......"ज्योतियो मे मै प्रकाशवान् सूर्य हूँ। [गीता १० २१] और भी भगवद्गीता के ग्यारहवे अध्याय में अर्जुन श्रीकृष्ण से कहते है **शशिसूर्यनेत्रम्**"सूर्य और चन्द्रमा आपके महान् एवं असीम नेत्र है।" यह ज्ञान भगवद्गीता मे है, परन्तु वैज्ञानिक अपने अनुमान के द्वारा इस ज्ञान को प्राप्त नही कर सकते। क्या वे प्राप्त कर सकते है ?

डॉ. सिह—यह सम्भव नही है।

श्रील प्रभुपाद—और उनका ज्ञान है ही क्या ? शास्त्र कहते है कि यदि आप पृथ्वी पर धूलि के समस्त कणो को गिन ले, फिर भी आप श्रीभगवान् को समझने के योग्य नही होगे। भौतिक गणना का अर्थ यह नही हुआ कि आपमे अनन्त को समझने का सामर्थ्य है। इतना ही नही, सभी भौतिक वस्तुओ की गणना भी उनकी सामर्थ्य के परे है। वैज्ञानिको को अपनी शक्ति और सामर्थ्य पर इतना गर्व क्यो है ? वे भौतिक वस्तुओ तक को तो जानते नही, आध्यात्मिक वस्तुओ के विषय मे तो कहना ही

क्या ? जहाँ तक वैज्ञानिको और दूसरे जीवो का सम्बन्ध है, उनका ज्ञान सीमित है। परन्तु श्रीकृष्ण का ज्ञान ऐसा नही है। यदि हम श्रीकृष्ण से ज्ञान प्राप्त करते है, तो वह ज्ञान पूर्ण है। शास्त्रो मे हम जानकारी प्राप्त करते है कि जल मे नौ लाख योनियाँ है। शास्त्र मे दी गई जानकारी यथार्थ है, क्योकि यह श्रीकृष्ण से प्राप्त होती है और जैसा श्रीकृष्ण स्वयं कहते है—"भगवान् होने के कारण, मै भूतकाल मे जो कुछ हुआ था, वर्त्तमान मे जो रहा है और भविष्य मे जो होने वाला है, उन सब के विषय मे जानता हूँ।"

डॉ. सिंह—हमें परम ज्ञानी से ज्ञान प्राप्त करना पड़ेगा।

श्रील प्रभुपाद—पूर्ण ज्ञान के लिए हमे एक श्रेष्ठ व्यक्ति अर्थात् एक गुरु का आश्रय लेना पड़ता है। हम भले ही एक विषय को ग्रन्थो के अध्ययन द्वारा घर पर सीखने का प्रयत्न करें, परन्तु हम महाविद्यालय मे जाकर एक शिक्षक के आश्रय मे उसी विषय को श्रेष्ठ रूप मे सीख सकते है। उसी प्रकार, हमे एक गुरु का आश्रय लेना पड़ता है। निःसन्देह, यदि एक मिथ्या गुरु से हमारा सामना हो जाय, तो हमारा ज्ञान भी मिथ्या होगा। परन्तु यदि हमारे गुरु पूर्ण है, तो हमारा ज्ञान भी पूर्ण होता है। हम श्रीकृष्ण को अपने गुरु के रूप मे स्वीकार करते है। यदि वे ज्ञान मे पूर्ण है, तो हमारा ज्ञान भी पूर्ण है। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है, हमे स्वयं पूर्ण होने की आवश्यकता नही है, परन्तु यदि हम पूर्ण पुरुष से ज्ञान प्राप्त करें, तो हमारा ज्ञान भी पूर्ण है। यह नही कह सकते कि समुद्र मे नौ लाख योनियाँ है, इस तथ्य को हम इसलिए समझे है क्योकि हमने सम्पूर्ण समुद्र का अध्ययन कर लिया है। परन्तु, हम कहते है कि हम शास्त्रो से यह जानकारी ग्रहण की है और इसलिए यह पूर्ण है। यही वैदिक पद्धति है।

वैज्ञानिक लोग भले ही कितना भी अनुसन्धान कार्य क्यो न करते रहे, परन्तु एक वैज्ञानिक कितना महान् क्यो न हो, फिर भी उसकी इन्द्रियाँ अपूर्ण है। इसलिए उसका ज्ञान पूर्ण नही हो सकता। हमारे नेत्रो का मूल्य ही क्या है ? हम सूर्य के प्रकाश के बिना कुछ देख ही नही सकते और हमारे नेत्रो ने जिन उपकरणो की खोज की है वे भी अपूर्ण है। अब यह कैसे सम्भव है कि हम पूर्ण ज्ञान प्राप्त करे ? क्योकि जीवात्मा सीमित है, उसका ज्ञान भी सीमित है। बालक भले ही यह जान सकता है कि दो धन दो चार होते है, परन्तु जब वह उच्चतर गणित के विषय में २+२=४ बोलता है तो हम उसको गम्भीरता के साथ नही लेते जिन इन्द्रियो के माध्यम से वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करता है, वे सीमित और अपूर्ण है : अतएव उसका ज्ञान भी सीमित एवं अपूर्ण है। अपनी अज्ञानता मे वे भले ही कुछ जानने का दावा करे, परन्तु वह केवल एक निरर्थक दावा है।

एक अन्धा मनुष्य भले ही दूसरे अन्धे मनुष्य का नेतृत्व कर सकता है, परन्तु

उनको क्या प्राप्त होगा जब दोनो ही गड्ढे मे गिर पड़ते है ? प्रकृति के नियमो ने हमे प्रबल रूप से बाँध रखा है, फिर भी हम सोचते है कि हम अनुमान करने मे स्वाधीन है । यह भ्रम है । यद्यपि व्यक्ति प्रकृति के अनेकानेक नियमो द्वारा बद्ध है, फिर भी एक धूर्त्त सोचता है कि वे लोग मुक्त है । इतना होने पर भी यदि आकाश मे बादल है, तो वे सूर्य तक को नही देख सकते । हमारे पास देखने की क्या शक्ति है ? जब प्रकृति के नियम हमे कुछ सुविधा देते है केवल तभी हम देखने मे समर्थ होते है । निःसन्देह, हम विशिष्ट दशाओ के भीतर ही केवल प्रयोग कर सकते है और यदि अवस्थाएँ अनुकूल नही है, तो हमारा प्रयोग असफल हो जाता है । तब हमे प्रायोगिक ज्ञान पर इतना अधिक गर्व क्यो है ?

प्रयोग करने की आवश्यकता ही क्या है ? पहले से ही सब वस्तुएँ है । सूर्य की शक्ति है, जिसे श्रीभगवान् ने हमें उपयोग करने के लिए दिया है । इसके अतिरिक्त हमे और क्या जानना है । वृक्ष से इतने सेव गिरते है । गुरुत्वाकर्षण के नियम को और आगे समझने की आवश्यकता है ? वास्तव में वैज्ञानिको मे सामान्य बुद्धि का अभाव है । वे केवल "वैज्ञानिक" व्याख्याओ से ही सम्बद्ध है । वे कहते है कि गुरुत्वाकर्षण का नियम केवल कुछ विशिष्ट अवस्थाओ मे ही कार्य करता है, परन्तु इन अवस्थाओ को किसने बनाया है ? जब श्रीकृष्ण भगवान् श्री रामचन्द्र के रूप में प्रकट हुए, तो उन्होने जल के ऊपर पत्थर फेके और पत्थर तैरने लगे थे । गुरुत्वाकर्षण का नियम वहाँ क्यो नही प्रयुक्त हुआ था । इसलिए गुरुत्वाकर्षण का नियम केवल भगवान् के निर्देशन के भीतर कार्य करता है । नियम अपने आप मे पूर्ण अथवा अन्तिम नही है । राजा भले ही एक नियम बनाए, परन्तु वह उस नियम को तत्काल ही बदल सकता है । नियमो के सर्वोच्च निर्माता श्रीकृष्ण है और केवल उनकी इच्छा के कारण ही एक नियम कार्य करेगा । वैज्ञानिक लोग भगवान् की इच्छा को अनेक ढंग से समझने का प्रयत्न कर करते है, परन्तु क्योकि ये माया (भ्रम) के द्वारा बद्ध है, वे केवल एक प्रेतग्रस्त मनुष्य के समान ही चर्चा कर सकते है । अच्छा मुझे यह तो बताइए कि विविध प्रकार के वृक्षो के पीछे क्या वैज्ञानिक व्याख्या है ?

कर्णधर दास—वे कहते है कि प्रकृति मिश्रण करके इतने प्रकार के वृक्ष बनाती है ।

श्रील प्रभुपाद—तब तो यह प्रकृति की इच्छा हुई और वह इच्छा क्या है ? क्या भूमि की कोई इच्छा होती है ।

कर्णधर दास—यह तो ठीक है, परन्तु उनके विचार इस विषय पर बहुत अधिक अस्पष्ट है ।

श्रील प्रभुपाद—उसका अर्थ तो यह हुआ कि उनको पूर्ण ज्ञान नही है । वे नही जानते है कि प्रकृति के पीछे श्रीकृष्ण की इच्छा कार्य करती है ।

डा. सिंह—वे व्याख्या करते है कि इन विभिन्न पेड़ो की रासायनिक रचना भिन्न है। यह ठीक है, परन्तु इन रासायनिक रचनाओ को किसने बनाया ? जैसे ही आप कहते है "रासार्यनिक रचना", तत्काल ही आपको भगवान् की आवश्यकता पड़ती है।

कर्णधर दास—वे कहते है कि भगवान् की कोई आवश्यकता नही है क्योकि यदि आप दो रसायन पदार्थो को मिला दें...

श्रील प्रभुपाद—भगवान् की आवश्यकता हो या नही हो, परन्तु कोई इच्छा का होना आवश्यक है। इसी प्रकार की चेतना अवश्य ही होनी चाहिए। दो रसायन पदार्थ मिलते है और कई प्रकार के फल उत्पन्न होते हैं। परन्तु उनको कौन मिलाता है ? चेतना उपस्थित रहती है तो, वह चेतना श्रीकृष्ण है। चेतना प्रत्येक स्थान पर है और जैसे ही आप चेतना को स्वीकार करते हैं, वैसे ही आपको व्यक्ति के रूप में चेतना स्वीकार करनी पड़ेगी। इसलिए, हम श्रीकृष्ण चेतना (भावनामृत) की चर्चा करते है। भगवद्गीता में आता है कि चेतना (आत्मा) सर्वव्याप्त है। आप मे चेतना है और मुझमें चेतना है, परन्तु है जो सर्वव्याप्त है। मेरी चेतना मेरे शरीर तक सीमित है और आपकी चेतना आपके शरीर तक, परन्तु एक दूसरी चेतना है जो मुझ मे भी है आप मे है और सभी लोगो में है। वह चेतना श्रीकृष्ण-चेतना अर्थात् श्रीकृष्ण भावनामृत है।

वास्तव मे इस संसार में प्रत्येक वस्तु सापेक्ष है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है। हमारा शरीर, जीवन, बुद्धि और प्रत्येक वस्तु यहाँ सापेक्ष है। हमारी दृष्टि में एक चीटी का जीवन बहुत छोटा है, परन्तु चीटी के लिए उसका जीवन सौ वर्षों का है। वे सौ वर्ष चीटी के शरीर के सापेक्ष है। उसी प्रकार, ब्रह्माजी, जो हमारे दृष्टि से अनोखे रूप से लम्बे समय तक जीवित रहते है, वे उनकी दृष्टिकोण से केवल सौ वर्ष है। यह सापेक्षता है।

कर्णधरदास—तब तो सापेक्षता हमारी व्यक्तिगत स्थिति पर आधारित है।

श्रील प्रभुपाद—हाँ। अतः यह कहा जाता है कि एक मनुष्य का भोजन दूसरे के लिए विष है। लोग सोच रहे है, क्योकि वे चन्द्रमा पर नही रह सकते, इसलिए दूसरे प्राणी भी वहाँ नही रह सकते। सभी लोग अपने ढंग से एक सापेक्ष दृष्टिकोण से विचार कर रहे है। इसका अर्थ हुआ वही "कूपमण्डूक दर्शन।" मेढक अपने कुँए के अनुपात के अनुसार ही प्रत्येक वस्तुओ पर विचार करता है। उसके पास इतनी शक्ति नही है कि वह एटलान्टिक सागर की प्रतीति कर सके, क्योकि उसको केवल अपने कुँए का ही अनुभव है। भगवान् है, परन्तु हम अपने आधार पर भगवान् की महानता का विचार कर रहे है—सापेक्ष महानता के आधार पर। कुछ कीटाणु रात्रि मे जन्म लेते है, रात्रि मे बढ़ते है रात्रि में सन्तान उत्पन्न करते है

और रात्रि मे ही मर जाते है। वे सूर्य का दर्शन भी कभी नही कर पाते, इसलिए वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि दिन नाम की कोई वस्तु ही नही होती। यदि आप उस कीटाणु से प्रातःकाल के विषय मे पूछे, तो वह कहेगा, "प्रात.काल कभी हो ही नही सकता।" उसी प्रकार शास्त्रो से, लोग जब ब्रह्माजी की लम्बी आयु के विषय मे सुनते है तो उनको विश्वास नही होता। वे कहते है, "इतने लम्बे समय तक कोई कैसे जीवित रह सकता है ?" भगवद्गीता मे श्रीकृष्ण कहते है [८. १७]—

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः॥

"मनुष्य की गणना के अनुसार ब्रह्माजी के एक दिन की अवधि, एक हजार चतुर्युग है और इतनी ही बड़ी उनकी रात्रि है।"

इस प्रकार ब्रह्माजी, इन गणनाओं के अनुसार, अनेक अरब और खरब वर्षो तक जीवित रहते है। हम यह विश्वास नहीं कर सकते, यद्यपि शास्त्रो मे प्रमाण किया गया है। दूसरे शब्दो मे, हम यह निष्कर्ष निकाल बैठते है कि श्रीकृष्ण निरर्थक चर्चा कर रहे है, जबकि हम प्रामाणिक व्यक्तियो के समान चर्चा करते है। यहाँ तक कि महान् दार्शनिक भी कहते है कि यह शास्त्रीय कथन केवल अनुमान ही है। यद्यपि ऐसे मनुष्य धूर्त के अतिरिक्त और कुछ भी नही है, फिर भी उनको माननीय विद्वान् माना जाता है। वे अपौरुषेय शास्त्रो मे किए गए श्रीभगवान् के कथनो को अस्वीकार करने या खण्डन करने के द्वारा स्वय को भगवान् से श्रेष्ठ सिद्ध करते है। इस प्रकार वैज्ञानिको और दार्शनिको के रूप मे अनेकानेक मूर्ख लोग सम्पूर्ण विश्व को मार्गभ्रष्ट कर रहे है।

डॉ. सिंह—नि.सन्देह, डारविन के सिद्धान्त के ऊपर बहुत अधिक लिखा जा चुका है। किसी भी पुस्तकालय मे उसके सिद्धान्तो पर सैकडो पुस्तके है।

श्रील प्रभुपाद—क्या, लोग उन सिद्धान्तों को स्वीकार करते या अस्वीकार ?

डॉ. सिंह—प्रायः लोग उसको स्वीकार करते है, परन्तु कुछ ऐसे लोग भी है जो उन सिद्धान्तो के तीव्र आलोचक है।

श्रील प्रभुपाद—डारविन विभिन्न प्रकार के जीवो के क्रमिक विकास के सम्बन्ध मे बोलता है परन्तु उसे आध्यात्मिक विकास की कोई यथार्थ जानकारी नही है। उसे निम्न योनियो से उच्च योनियो मे आत्मा की उन्नति के विषय मे कुछ मालूम नही है। वह दावा करता है कि मनुष्य बन्दरो से विकसित हुआ है, परन्तु हम देख सकते है कि बन्दरो का अभी भी विलय नही हुआ है। यदि बन्दर मनुष्य के तात्कालिक पूर्वज है, तो बन्दर अभी भी क्यो वर्त्तमान है ?

डॉ. सिंह—डारविन कहता है कि योनियो की सृष्टि स्वाधीन रूप मे नही हुई है, परन्तु एक योनि से दूसरी योनि ने जन्म लिया है।

श्रील प्रभुपाद—यदि स्वाधीनता का प्रश्न नही है, तो वह कैसे सहसा ही एक विशिष्ट योनि से अपना सिद्धान्त आरम्भ कर सकता है ? उसे यह अवश्य ही समझाना चाहिए कि कैसे मौलिक योनि अस्तित्व मे आई ?

कर्णधरदास—वैज्ञानिक लोग दावा करते है कि जीव-विज्ञान सम्बन्धी रसायन पदार्थो द्वारा पृथ्वी की सृष्टि हुई थी और वे महाविद्यालय इत्यादि मे यह शिक्षा देकर अस्वीकार करते है कि भगवान् ने पृथ्वी की सृष्टि की। क्योकि वे सोचते है कि ऐसा करने से सभी लोग उनको मूर्ख समझेगे।

श्रील प्रभुपाद—यदि उनका जीवन-विज्ञान और रसायन शास्त्र इतना अधिक विकसित है, तो वे क्यो नही किसी वस्तु की सृष्टि कर लेते है ? वे दावा करते है कि भविष्य में जीवन की सृष्टि करने मे वे समर्थ हो सकेंगे, परन्तु भविष्य मे क्यो ? जीवन की सृष्टि पहले से ही हो चुकी है। विज्ञान क्या भविष्य पर आधारित है ? हमे भविष्य पर विश्वास नही करना चाहिए, चाहे वह भले ही कितना सुखद क्यो न हो ? सभी लोग सोच रहे है कि भविष्य बहुत सुखद होगा, परन्तु उसका क्या भरोसा ? उन्हे यह तो स्वीकार करना पडेगा कि उनको यह मालूम नही कि वास्तव में सत्य क्या है। वे अपने जीव-विज्ञान सम्बन्धी अथवा रासायनिक प्रयोगों से घास के एक तृण की भी सृष्टि नही कर सकते। ऐसी वास्तविकता होने पर भी वे दावा कर रहे है कि सृष्टि किसी रासायनिक या जीव-विज्ञान सम्बन्धी विधि के द्वारा उत्पन्न हुई है। कोई इस निरर्थक दावे के विषय मे प्रश्न क्यो नही करता है ?

डा. सिंह—अत: जब वे जीवन के स्रोत के विषय मे विचार करते है, तो अन्तिम विश्लेषण मे वे कहते हैं कि प्रत्येक वस्तु का आरम्भ पदार्थ से हुआ है। दूसरे शब्दो में, जीवित पदार्थ मृतपदार्थ से आ रहा है [चेतन पदार्थ अचेतन (जड) पदार्थ से आ रहा है]।

श्रील प्रभुपाद—अभी वर्त्तमान मे यह चेतन पदार्थ कहाँ से आ रहा है ? क्या यह भूतकाल मे ही जड़ पदार्थ से उत्पन्न हुआ था और अब वर्त्तमान मे नही हो रहा है ? एक चीटी किस प्रकार उत्पन्न हो रही है ? क्या वह धूल से प्रकट हो रही है ? एक चीटी तक भी जड़ पदार्थ से उत्पन्न होती है। इस सिद्धान्त के विषय मे उनके पास प्रमाण ही क्या है ? डारविन दावा करता है कि सुदूर भूतकाल मे वास्तव में कोई बुद्धिमान् मनुष्य नही थे, क्योकि मनुष्य बन्दरो से विकसित हुआ है। यदि भूतकाल मे कोई बुद्धिमान् मस्तिष्क के लोग नही थे, तो यह कैसे हुआ कि हजारो-हजारों वर्ष पूर्व यह वैदिक शास्त्र लिखे गए ? वे लोग श्रीव्यासदेव जैसे ऋषि के विषय में क्या स्पष्टीकरण देते है।

डा. सिंह—उनके पास कोई स्पष्टीकरण नही है। वे केवल यह कह देते है कि यह वन में रहने वाले अज्ञात ऋषि है।

श्रील प्रभुपाद—श्रीव्यासदेव उनके लिए भले ही अपरिचित हो, परन्तु वे वहाँ उपस्थित थे। उनको इस प्रकार का मस्तिष्क कैसे प्राप्त हुआ? वे भले ही आप अथवा मुझसे अपरिचित हो, परन्तु फिर भी उनके मस्तिष्क का कार्य वर्त्तमान है—उनका दर्शन, भाषा, भाषाविषयक ज्ञान, पद्य-रचना और मौखिक बल। आप व्यक्ति को भले ही न जाने, परन्तु आप मस्तिष्क को समझ सकते हैं।

डा. सिंह—क्या यह नही है कि सभी प्रकार के पशुगण आरम्भ से ही अस्तित्व मे थे?

श्रील प्रभुपाद—हाँ। भगवद्गीता के द्वारा समकालीन सृष्टि की पुष्टि होती है। सभी प्रकार के पशु और मनुष्य के साथ ही साथ देवता लोग आरम्भ से ही अस्तित्व मे थे। एक जीव विशिष्ट प्रकार का शरीर चाहता है और श्रीकृष्ण उसे वह शरीर प्रदान करते है। क्योकि वह वस्तुओ को एक विशिष्ट ढग से चाहता है, अत. वह प्रकृति के विशिष्ट गुणो का सग करता है। उसके संग के अनुसार, वह विशेष प्रकार का शरीर पाता है। मनोविज्ञान सम्बन्धी बल, मन, विचार, अनुभव और इच्छा के आधार पर यह निर्धारित होता है कि जीवात्मा किस प्रकार की विशेष स्थिति और शरीर प्राप्त करेगी। क्रमिक-विकास की विधि है, परन्तु यह योनियो का विकास नही है। ऐसा नही कि एक योनि का जीवन दूसरी योनि से विकसित होता है, जैसे कि श्रीकृष्ण कहते है:

अव्यक्ताद्व्यक्तय: सर्वा: प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके॥

"ब्रह्मा का दिन आने पर यह जीव समूह अव्यक्त से व्यक्त (प्रकट) होता है और ब्रह्मा की रात्रि होने पर फिर उसी मे उसका लय हो जाता है।" [गीता ८. १८]

क्रमिक-विकास का आध्यात्मिक स्वरूप है। व्यक्तिगत जीव का जीवन की विभिन्न योनियो से आध्यात्मिक रूप मे क्रमिक-विकास होता है। यदि कोई मछली के शरीर मे प्रवेश करता है, तो उसको धीरे-धीरे क्रमिक-विकास की पद्धति का सामना करना पड़ता है। यदि कोई सबसे ऊपर की सीढी पर है और वह किसी प्रकार गिर जाए, तो उसे फिर से एक-एक सीढी करके ऊपर चढना पडेगा। नि.सन्देह, वैज्ञानिक लोग अनुसन्धान करने मे इतना अधिक व्यस्त है कि वे इसको समझ ही नही सकते। यदि आप उनसे कहे कि अपने अगले जन्म में वे वृक्ष होने जा रहे हैं, तो वे सोचेंगे कि आप निरर्थक चर्चा कर रहे है। अन्ततः, अनुसन्धान के द्वारा हम क्या सीख सकते है? जब सब कारणो के कारण श्रीभगवान् का ज्ञान होता है, तब प्रत्येक ज्ञेय वस्तु का ज्ञान हो जाता है और कुछ भी अज्ञात नही रहता। जैसे कि वेद कहते है—**यस्मिन् विज्ञाते सर्वमेवं विज्ञातं भवति।**

यदि हम परम सत्य भगवान् को जान ले, तो और दूसरे सत्यो को हम जान जाते हैं, परन्तु यदि हम परम सत्य भगवान् को नही जानते, तो हम अज्ञानता मे है। व्यक्ति भले ही एक औपचारिक वैज्ञानिक या दार्शनिक न हो, परन्तु वह किसी को भी चुनौती दे सकता है और साहसपूर्वक चर्चा कर सकता है, यदि उसे केवल श्रीकृष्ण का ज्ञान हो।

इस वर्त्तमान काल की सभ्यता को अपनी स्वाधीनता पर इतना गर्व है, परन्तु वास्तव मे यह तेल के ऊपर अत्यधिक निर्भर (पराधीन) है। यदि तेल का वितरण रुक जाए, तो ये शठ वैज्ञानिक क्या कर सकेंगे। वे कुछ नही कर सकते। वे परखनली मे तेल की रचना करने का प्रयत्न करें, जिससे उनको अपनी सभ्यता का संचालन करने के लिए पर्याप्त तेल प्राप्त हो सके। वर्त्तमान मे, भारतवर्ष मे जल का अभाव है। वैज्ञानिक इस विषय मे कर ही क्या सकते है वे भले ही जल की रासायनिक रचना जानते हो, परन्तु जल का महान अभाव होने पर वे जल उत्पन्न नहीं कर सकते। उनको जल के लिए बादलो की आवश्यकता पड़ती है और बादल भी श्रीभगवान् की देन है। वास्तव मे वें लोग कुछ भी नही कर सकते। वैज्ञानिक लोग चन्द्रमा पर गए हैं, परन्तु इतना सब कठोर परिश्रम करने के बाद वे चन्द्रलोक से थोडी-सी धूल और चट्टानें लाए है। शठो का शासन कर लेता है और उस धन को फिर अनावश्यक ही व्यय करता है। यह तो उनकी बुद्धि है। यह गधो का राज्य है और इससे अधिक कुछ भी नही। राजनीतिज्ञो के पास न सहानुभूति है और न ही दया। वे यह नही विचार करते कि लोगो से कठोर परिश्रम से प्राप्त किया गया धन आ रहा है और वे उसे दूसरे लोको मे बडे-बड़े अन्तरिक्ष यान भेजने में खर्च कर रहे हैं। उनका कार्य केवल इतना ही है कि यह वचन् देना कि वे और अधिक धूल लायेंगे पहले उनको थोड़ी-सी धूल मिली थी, परन्तु अब वे वचन देते है कि कई क्विटल धूल लाएँगे। इन सब का अर्थ ही क्या है?

कर्णधरदास—वे विश्वास करते है कि मंगल ग्रह मे जीवन हो सकता है।

श्रील प्रभुपाद—वे विश्वास करे या न करे—इससे लाभ क्या होना है। इतना तो जानते ही है कि यहाँ पर जीवन है। वे भी इसको जानते है, फिर भी वे लोग युद्ध करने मे और जीवन को नष्ट करने मे सलग्न है। यहाँ तो जीवन है। यहाँ मनुष्य है। नि:सन्देह यहाँ जीवन है। परन्तु वे लोग अपने बड़े-बड़े बमो के द्वारा इसे नष्ट करने का प्रयत्न करने मे व्यस्त है। यही उनके विज्ञान का विकास है।

डा. सिंह—वे यह जानने के लिए अत्यन्त उत्सुक है कि दूसरे लोको मे क्या हो रहा है?

श्रील प्रभुपाद—इसका अर्थ तो यह हुआ कि अपनी बालसुलभ उत्सुकता के कारण वे इतना अधिक धन खर्च कर रहे है। वे अपनी उत्सुकता को शान्त करने के लिए

इतना अधिक धन खर्च कर सकते है, परन्तु जब बहुत से निर्धन देश उनसे सहायता के लिए प्रार्थना करते है, तो वे कह देते है कि धन नही है। उनको चन्द्रलोक में जाने पर इतना अधिक घमण्ड है, परन्तु वे यह जानकारी क्यो नही लेते कि किस प्रकार श्रीकृष्ण के गोलोक वृन्दावन मे जाया जाय ? यदि वे वहाँ जाएँ, तो उनकी सभी उत्सुकताओ का उत्तर मिल जाएगा। वे सीखेंगे कि इस अपरा (बिम्ब) प्रकृति से परे एक परा (आध्यात्मिक) शक्ति है। यह भौतिक शक्ति स्वाधीनतापूर्वक कार्य नही कर सकती। आध्यात्मिक शक्ति का उसमे समावेश होना आवश्यक है। भौतिक तत्त्वो की अपने आप सृष्टि नही हुई है। यह आत्मा है जो क्रियाशील है। हम पदार्थों से भले ही कुछ बनाने का प्रयत्न करे, परन्तु पदार्थ अपने आप सृष्टि नही कर पाते। हाइड्रोजन और ऑक्सीजन तभी सम्पर्क मे आयेगी जब एक परा प्रकृति (शक्ति) द्वारा उनका संचालन किया जाएगा। केवल मूर्ख लोग ही यह आशा कर सकते है कि यह सम्पूर्ण जगत्, जो कि केवल पदार्थ है, उसकी स्वतः ही सृष्टि हो गई है। हमारे पास एक सुन्दर मोटर भले ही हो सकती है, परन्तु यदि चालक नही है, तो उस मोटर का क्या उपयोग ? जब तक एक मनुष्य यह नही जानता कि किस प्रकार के यन्त्र का उपयोग किया जाए, जब तक मनुष्य एक बटन नही दबाता, तब तक यन्त्र कार्य नही करता। उसी प्रकार, परा (श्रेष्ठ) शक्ति के बिना, भौतिक शक्ति कार्य नही कर सकती। इस अद्भुत सृष्टि के पीछे परा शक्ति का निर्देशन है। यह सब जानकारी शास्त्रो में दी गई है, परन्तु फिर भी लोग इसमें विश्वास नही करेंगे।

वास्तव में प्रत्येक वस्तु श्रीभगवान् की सम्पत्ति है, परन्तु लोग इसे अपनी अथवा अपने देश की सम्पत्ति बनाने का दावा कर रहे है। अब वे लोग बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या के विषय मे चर्चा कर रहे है, परन्तु तथ्य तो यह है कि भगवान् ने पर्याप्त रूप मे वस्तुएँ प्रदान की है। वास्तव मे, यदि उचित रूप से प्रयोग किया जाए, तो पर्याप्त भूमि है और पर्याप्त भोजन भी। लोग कृत्रिम रूप से समस्याओ की सृष्टि कर रहे है और वैज्ञानिक अनेकानेक विनाश के उपकरणो को उपलब्ध कराके उन लोगो की सहायता कर रहे है। वे केवल शठ एवं कुटिल लोगों को उत्साहित कर रहे है—ऐसे लोग भगवान् की सम्पत्ति का दुरुपयोग करने का प्रयत्न कर रहे है। यदि आप एक हत्यारे या चोर की सहायता करे, तो आप भी अपराधी हो जाते है। क्या ऐसा नही है ? विश्व मे इतनी अधिक समस्या इसलिए है, क्योंकि वैज्ञानिक लोग चोरो और धूर्तो की सहायता कर रहे है। इस प्रकार वे सभी लोग अपराधी है। **स्तेन एव सः**। जो परम ईश्वर भगवान् के स्वामित्व को नही मानता वह एक चोर है।

हमारा ध्येय इन शठ लोगो को सदबुद्धि प्रदान करना है तो हमें वह साधन

ढूंढ़ना है जिसके द्वारा यह कार्य किया जा सके। शठ लोग कष्ट पा रहे है, परन्तु क्योकि वे श्रीभगवान् की सही सन्तान है, अतः उनको कष्ट नही उठाना चाहिए। वे यही नही जानते कि भगवान् है अथवा कही सुख भी है। वे आनन्द अथवा शाश्वत जीवन के विषय मे कुछ भी नही जानते। वे लोग इतना अधिक अनुसन्धान कर रहे है और अधिक से अधिक पचास-साठ अथवा सत्तर वर्ष तक जीवित रहते है उसके पश्चात् उनको यह ज्ञात नही होता कि क्या होने वाला है। उनको इसका कोई ज्ञान नही है कि जीवन नित्य है। वास्तव मे उनकी स्थिति एक पशु के समान है। एक पशु को यह ज्ञात नही कि मृत्यु के पश्चात् क्या होता है, न ही वह मृत्यु पर चिन्तन करता है। पशु यह भी नही जानता कि वह क्यो यहाँ है और न ही उसे जीवन के मूल्य का ज्ञान है। माया के प्रभाव के कारण वह पशु केवल आहार, निद्रा, भय (आत्म-रक्षा) और मैथुन करते हुए मृत्यु को प्राप्त हो रहा है। इसके अतिरिक्त पशु को और कुछ ज्ञान नही है। लोग इतना कठिन प्रयास तो कर रहे है, परन्तु किस उद्देश्य के लिए? वे कहते है कि वे इतना कठिन सघर्ष अगली पीढी को सुख-सुविधाएँ प्रदान करने के लिए कर रहे है, परन्तु वे कौन-सी सुख-सुविधाएँ है? इसका वे उत्तर नही दे सकते। यह श्रीकृष्णभावनामृत अभियान जीवन को यथार्थ उपदेश प्रदान करने के लिए बनाया गया है। इस उद्देश्य की पूर्ति श्रीकृष्ण अर्थात् भगवान् को प्रत्येक वस्तु के केन्द्र के रूप मे स्थापित करने के द्वारा की जा सकती है। अतएव इसमे वैज्ञानिको का ही लाभ है कि वे इस महत्वपूर्ण अभियान का भली-भाँति ज्ञान प्राप्त करे।

सात

सनातन धर्म की ओर

एक विशुद्ध कृष्ण-भक्त

जगद्गुरु श्रील प्रभुपाद का अमेरिका में पदार्पण

१८ ९ १९६५ को जब भारतीय जलयान 'जलदूत' बोस्टन के कॉमन वेल्थ पीयर के समीप पहुँच रहा था, श्रील प्रभुपाद ने भगवान् श्रीकृष्ण से एक भावपूर्ण कविता मे प्रार्थना की । "मैं केवल आपकी दया की प्रार्थना कर रहा हूँ जिससे मैं इन लोगो को आपकी कथा के विषय मे प्रतीति करा सकूँ "

"मेरे प्रिय कृष्ण ! तुम इस निरुपयोगी एवं अधम जीव पर अत्यन्त दयालु हो पर मैं यह नहीं जानता कि तुम मुझे यहाँ पर क्यो ले आये हो । अब तुम जो चाहो वह मुझसे करवा सकते हो ।"

"परन्तु मैं अनुमान करता हूँ कि तुम्हारा कुछ न कुछ कार्य यहाँ अवश्य ही है अन्यथा इस उग्र स्थान पर तुम मुझे लाते ही क्यो ?

"यहाँ अधिकाशत: सभी लोग प्रकृति के तमो और रजोगुण से आच्छन्न हैं। सांसारिक विषय-भोगमय जीवन मे मग्न ये स्वयं को अत्यन्त सुखी एवं सन्तुष्ट मानते है अत: श्रीवासुदेव की दिव्य कथा मे इनकी कोई रुचि नही है। मैं नही जानता कि कैसे ये लोग इस कथा को समझने मे समर्थ हो सकेंगे ।"

"पर मै यह जानता हूँ कि तुम्हारी अहेतुकी कृपा (दया) से सभी कुछ सम्भव बना सकता है क्योंकि तुम परम कौतुकी (चतुर) योगी हो ।"

"भक्ति-रस का ज्ञान इनको किस प्रकार हो सकेगा ? प्रभो ! मै तुम्हारी कृपा के लिये प्रार्थना कर रहा हूँ जिसमे तुम्हारी कथा के विषय में इनको प्रतीति दिला सकूँ और सहमत करा सकूँ ।"

"तुम्हारी इच्छा से समस्त जीव माया के वश में है, अतएव यदि तुम चाहो तो तुम्हारी इच्छा से ही ये माया के पाश (बन्धन) से मुक्त भी किये जा सकते है ।"

"मेरी अभिलाषा यही है कि तुम इनका उद्धार कर दो । अत: यदि इनका

उद्धार कर देने की तुम्हारी इच्छा हो तो ये लोग निश्चय ही तुम्हारी कथा को समझने मे समर्थ होंगे।"

"श्रीमद्भागवत के शब्द तुम्हारे अवतार है, और यदि एक धीर व्यक्ति विनम्रतापूर्वक इसका बारम्बार श्रवण करे तो वह तुम्हारी कथा को समझने में समर्थ होगा।"

"श्रीमद्भागवत [१.२ १७-२१] यह कहा गया है : भगवान् श्रीकृष्ण परमात्मा रूप से सभी के हृदय मे स्थित है तथा अनन्य भक्तो के सुहृद् है। वे अपनी कथाओ का आस्वादन करने वाले भक्तो के हृदय से प्राकृत भोग-वासनाओ को नष्ट कर देते हैं। ऐसी कथा रूपी अमृत का यथार्थतः श्रवग एवं कीर्त्तन पवित्र करने वाला है।" "श्रीमद्भागवत के नियमित श्रवण तथा विशुद्ध भक्तो की सेवा से हृदय के समस्त अमंगलो का पूर्णरूपेण नाश हो जाता है और उत्तमश्लोक श्रीकृष्ण अर्थात् दिव्य स्तुतियो के द्वारा प्रशसित भगवान् की प्रेम भक्ति ही जीवन मे एक निष्ठामय तथ्य के रूप में स्थापित हो जाती है।" "हृदय मे निष्ठामयी प्रेम भक्ति के स्थापित होते ही हृदय से रजोगुण और तमोगुण के प्रभाव—काम, लोभ, इच्छा एव आकाक्षा इत्यदि समाप्त हो जाते है। तब भक्त शुद्ध सत्त्व मे स्थित हो पूर्ण रूप से प्रसन्न हो जाता है।" "इस प्रकार विशुद्ध सत्त्वगुण मे स्थित वह मनुष्य भगवान् की भक्ति के सम्पर्क के कारण प्रसन्न मन हुआ, प्राकृत-सग से मुक्त होकर भगवान् के सुनिर्णित तत्त्व-विज्ञान को प्राप्त कर लेता है।" "इस प्रकार हृदय की ग्रन्थि एवं समस्त संशय छिन्न-भिन्न हो जाते है। आत्मा का नियन्त्रक के रूप मे दर्शन करने से कर्मबन्धन की शृङ्खला का अन्त होता है।"

"उस धीर व्यक्ति का रजोगुण एवं तमोगुग के प्रभाव से निस्तार हो जाता है, इस प्रकार हृदय की गुफा मे एकत्रित समस्त अमंगलमय वस्तुओ का नाश होगा।"

"श्रीकृष्ण-भक्ति का यह सन्देश मैं इन लोगो को किस प्रकार समझाने में समर्थ हो सकूँगा? मैं अत्यन्त दुर्भाग्यशाली, क्षुद्र (अयोग्य), दीन, हीन और सर्वाधिक अधम हूँ। अतः मैं तुम्हारी कृपा-याचना कर रहा हूँ जिससे मैं श्रीकृष्ण-भक्ति के विषय मे इनको सुदृढ विश्वास करा सकूँ, क्योकि मुझमे स्वयं अपनी ओर से कुछ कर पाने की कोई भी शक्ति नही है।"

"अन्ततः, किसी न किसी प्रकार अपनी कथा कहलवाने के लिये तुम मुझे यहाँ ले आ चुके हो। अब तो यह तुम्हारी इच्छा पर ही है कि चाहे तुम मुझे सफल बनाओ अथवा असफल।"

"हे अखिल जगद्गुरु! मैं तो तुम्हारे कथामृतो की बारम्बार आवृत्ति मात्र ही कर सकता हूँ अतः यदि तुम चाहो तो मेरी वाक्-शक्ति को अलंकृत कर देने

की अपनी क्षमता का प्रदर्शन कर सकते हो, जिससे इन लोगो को तुम्हारा ज्ञान प्राप्त हो सके।"

"केवल तुम्हारी अहेतुकी कृपा से ही मेरे शब्द विशुद्ध बनेंगे। मुझे यह विश्वास है कि जब इस दिव्य कथा (सन्देश) का लोगो के हृदय मे अन्त: प्रवेश होगा तब निश्चय ही ये लोग आनन्दानुभव करेंगे और इस प्रकार जीवन के समस्त शोक एव दुखो का अन्त हो जायेगा।"

"हे प्रभो ! मै तुम्हारे हाथो की कठपुतली हूँ तथा यदि तुम मुझे यहाँ नचाने के लिये ले आये हो तो मुझे नचाओ। प्रभो ! जिस प्रकार तुम चाहो उसी प्रकार मुझे नचाओ।

"न मुझमे भक्ति है और न ही कोई ज्ञान परन्तु श्रीकृष्ण-नाम मे मेरी प्रगाढ़ निष्ठा अवश्य है। मुझे "भक्तिवेदान्त" की उपाधि दी गई है अतएव यदि तुम चाहो तो "भक्तिवेदान्त" नाम के वास्तविक तात्पर्य को सार्थक कर सकते हो।

"हस्ताक्षर—
सर्वाधिक दुर्भाग्यशाली, क्षुद्र भिक्षुक, ए० सी० भक्तिवेदान्त स्वामी,
जलदूत जलयान, कॉमनवेल्थ पियर,
बोस्टन, मैसाचूसेट्स, यू एस ए.।
दिनांक १८ सितम्बर, १९६५, शनिवार"

अपने राष्ट्र का निर्माण आध्यात्मिक आधार पर कीजिए

श्रील प्रभुपाद नैरोबी विश्वविद्यालय (अफ्रीका) मे भाषण देते—हैं, "आप अपना विकास करने का प्रयत्न कर रहे हैं, तो कृपया आध्यात्मिक रूप से भी अपना विकास कीजिए, क्योकि आध्यात्मिक विकास ठोस विकास है। अमरीकियो एव यूरोपियनो का अनुकरण मत कीजिए, जो कुत्ते और बिल्लियो के समान जीवन व्यतीत कर रहे हैं परमाणु बम पूर्व से वर्त्तमान है ही और जैसे ही अगले विश्वयुद्ध का आरम्भ होता है, उनसे समस्त गगनचुम्बी भवन और प्रत्येक वस्तु समाप्त हो जाएगी। आप इसको मनुष्य जीवन के यथार्थ दृष्टिकोण अर्थात् आध्यात्मिक दृष्टिकोण से समझने का प्रयास करे "

देवियो एवं सज्जनो,

श्रीकृष्णभावनामृत के प्रसार के लिए आयोजित इस सभा मे सम्मिलित होने के लिए आपको अत्यन्त धन्यवाद है। श्रीकृष्णभावनामृत अभियान मानव समाज को उस स्तर पर लाने का प्रयत्न कर रहा है, जहाँ सभी का जीवन सफल बन सकता है। आज का विषय है मानव जीवन का वास्तविक अर्थ। हम सम्पूर्ण विश्व को इस अर्थ के विषय में निर्देश देने का प्रयत्न कर रहे है।

क्रमिक-विकास के अनेकानेक लाखो वर्ष के पश्चात् मानव जीवन प्राप्त होता है। हमे यह स्मरण रखना चाहिए कि पद्म पुराण के अनुसार चौरासी लाख योनियाँ है। जीवन का आरम्भ जलचर प्राणियो से होता है, क्योकि हम वैदिक साहित्य से समझ सकते है कि सृष्टि के आरम्भ मे सम्पूर्ण लोग जलमग्न थे। यह भौतिक जगत् पंच भूत (स्थूल) तत्त्व—भूमि, जल, अग्नि, वायु और सम (आकाश) से बना हुआ है। इसके अतिरिक्त तीन सूक्ष्म तत्त्व है—मन, बुद्धि और अहकार। इन आवरण (पर्दे) के पीछे आत्मा है, जो इन आठ तत्त्वो से ढकी हुई है यह जानकारी भगवद्-गीता मे दी गई है।

मनुष्य ही केवल ऐसा प्राणी नही है कि जिनमे आत्मा होती हो। हम सब

में आत्मा है—पशु, पक्षी, सरीसृप (रेंगने वाले जीव), कीटाणु, वृक्ष, पौधे, जलचर इत्यादि। आत्मा केवल विभिन्न वस्त्रो से ढॅकी हुई है जैसे आप मे कुछ लोग श्वेत वस्त्र पहते है, तो कुछ हरे, तो कुछ लाल इत्यादि। परन्तु हम इस वस्त्र से सम्बद्ध नही है : हम आत्मा के रूप मे आपसे सम्बद्ध है। इस प्रकार भगवद्गीता मे आता है [५. १८] :

विद्याविनयसंम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥

"एक विनीत पण्डित ज्ञान की दृष्टि के द्वारा विद्या-विनय से युक्त ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल में समदर्शी होता है।"

ऋषि-गण रंग, बुद्धि या योनियो के आधार पर किसी प्रकार का कोई भेद-भाव नही रखते, वे सभी जीवो को आत्मा के लघु अश के रूप मे देखते है। यह कहा गया गया है :

केशाग्रशतभागस्य शतांशः सदृशात्मकः ।
जीवः सूक्ष्मस्वरूपोऽयं संख्यातीतो हि चित्कणः ॥

"चिन्मय परमाणु के असख्य अश है, जो केश के अगले भाग के हजारवे हिस्से के बराबर है।" हमारे पास आत्मा के परिमाण को नापने का कोई यन्त्र नही है, इसलिए आत्मा को इस ढंग से नापा जाता है। दूसरे शब्दो मे, आत्मा परमाणु से भी अधिक छोटी है। वह लघु अंश आपमे है, मुझमे है, हाथी मे है, विशालकाय पशुओ में है, सभी मनुष्यो मे है, चीटी मे है, वृक्ष मे है, सभी के अन्दर है। किन्तु वैज्ञानिक-ज्ञान आत्मा के माप को स्थापित नही कर सकता, न ही चिकित्सक (डॉक्टर) शरीर के भीतर आत्मा के स्थान का पता लगा सकता है। फलस्वरूप, भौतिक वैज्ञानिक निष्कर्ष निकाल लेते है कि आत्मा नाम की कोई वस्तु ही नही है, परन्तु यह तथ्य नही है। आत्मा है। एक जीवित और मृत शरीर का अन्तर आत्मा की ही उपस्थिति है। जैसे ही आत्मा शरीर को छोडती है, शरीर की मृत्यु हो जाती है। उसका कोई मूल्य नही रह जाता। कोई कितना ही महान् वैज्ञानिक या दार्शनिक क्यो न हो, उसे यह अवश्य स्वीकार करना पडेगा कि जैसे ही आत्मा शरीर को छोड़ती है, शरीर की मृत्यु हो जाती है। तब उसका कोई मूल्य नही है और उसे फेक देना पड़ता है। हमे उस तथ्य को समझने का प्रयत्न करना चाहिए, आत्मा का मूल्य है शरीर का नही। इस तथ्य को भगवद्गीता [२ २२] मे समझाया गया है कि आत्मा का देहान्तर हो रहा है :

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यान्यानि संयाति नवानि देही ॥

"तो जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रो को त्याग कर नये वस्त्र धारण करता है, उसी

प्रकार आत्मा पुराने जीर्ण शरीरों को त्याग कर नूतन देह ग्रहण करती है।"

जब एक कोट पुराना हो जाता है, तो हम उसे त्याग देते है और दूसरा कोट ग्रहण कर लेते हैं; उसी प्रकार इच्छा के अनुसार आत्मा वस्त्र परिवर्त्तन कर रही है। क्योंकि आत्मा श्रीभगवान् का अंश है, अतः उसमें भी दैवी गुण है। भगवान् परम इच्छा, परम शक्ति, परम स्वाधीन है और भगवान् का विभिन्न अंश होने के कारण हममे यह सब गुण अत्यधिक लघु मात्रा मे है। हममे इच्छा, विचार, अनुभव इत्यादि करने की शक्ति है। वेदो मे आता है कि भगवान् सभी चेतन प्राणियो के बीच परम चेतन बल (प्राणी) है (**चेतनश्चेतनानाम्**)। श्रीभगवान् ही सभी जीवो की आवश्यकताओं को पूर्ण कर रहे है।

हम असंख्य जीव है, हमारी सख्या की कोई सीमा नही है। किन्तु भगवान्, एक है। वे भी हमारे समान ही रह रहे है, परन्तु हम उस परम चेतन शक्ति के सूक्ष्म अश है। उदाहरण के लिए, सोने का एक अंश भी गुण की दृष्टि से सोने की खान के समान है। यदि हम जल की एक बून्द मे पाए जाने वाले तत्त्वो का रासायनिक विश्लेषण करे, तो हमे ज्ञात होगा कि उस बून्द मे वे सभी तत्त्व है जो विशाल सागर मे पाए जाते है। उसी प्रकार, हम भगवान् के अश होने के कारण उनसे अभिन्न है। यह ईश्वरीय अंश अर्थात् आत्मा (जीवन शक्ति) विभिन्न योनियो मे देहान्तरित हो रही है। जलचर से वृक्ष मे, फिर कीटाणु के जीवन मे, फिर सरीसृप (रेंगने वाले जीव) के जीवन मे, तत्पश्चात् पक्षी और पशु के शरीरो मे। डारविन का क्रमिक-विकास का सिद्धान्त आत्मा के देहान्तर की एक आंशिक व्याख्या हैं। डारविन ने वैदिक साहित्य से यह जानकारी तो ले ली, परन्तु उसमे आत्मा के प्रति कोई धारणा न थी। अन्तर यह है कि आत्मा एक योनि से दूसरी योनि मे देहान्तरित हो रही है—जलचर जीवन मे, वृक्ष मे, फिर कीटाणु जीवन मे, फिर पक्षी जीवन मे, फिर पशु जीवन मे, फिर मानव जीवन मे और मानव जीवन के भीतर आत्मा असभ्य जीवन से सभ्य जीवन इत्यादि मे आती है। मनुष्यो का सभ्य जीवन क्रमिक-विकास की समाप्ति का प्रतिनिधित्व करता है। यह एक सन्धि स्थान है, यहाँ से या तो हम क्रमिक-विकास की चक्रीय विधि मे पुनः नीचे जा सकते है, या हम अपने को दैवी जीवन तक उन्नति कर सकते है। इसका चुनाव हम पर निर्भर करता है। इसे भगवद्गीता मे दर्शाया गया है।

इस मानव जीवन का वास्तव मे अर्थ है—विकसित चेतना, इसलिए हमे अपना जीवन कुत्ते, बिल्लियो और सूकरो के समान व्यर्थ नष्ट नही करना चाहिए। मानव जीवन सन्धि स्थान है। यद्यपि यह शरीर कुत्ते या बिल्ली के शरीर के समान ही नश्वर है, परन्तु अन्तर इतना है कि हम इस शरीर मे सर्वोच्च सिद्धि को पा सकते है। हम श्रीभगवान् के अश है, परन्तु किसी न किसी प्रकार हम इस भव-

सागर मे गिर गए है। अब हमें इस प्रकार विकास करना है कि हम अपने घर, भगवान् के धाम को वापस लौट सके यही सर्वोच्च सिद्धि है।

वास्तव मे, एक दूसरा जगत् है जिसे वैकुण्ठ जगत् कहते है। जैसे कि भगवद्-गीता मे कहा गया है [८. २०] :

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥

"इस व्यक्त-अव्यक्त होने वाली जड़ प्रकृति से परे एक अन्य प्रकृति दिव्य और सनातन है। यह परा तथा अविनाशी है। इस जगत् के नष्ट हो जाने पर भी उसका विनाश नही होता।"

इस भौतिक प्रकृति मे, प्रत्येक वस्तु की सृष्टि होती है, वह कुछ समय वर्त्तमान रहती है, कुछ उपफल उत्पन्न करती है, उसका क्षय होता है और अन्त मे वह वस्तु नष्ट हो जाती है। किसी विशिष्ट क्षण मे मैथुन के द्वारा हमारे शरीर की सृष्टि होती है। पिता का वीर्य विकसित होकर मटर के दाने का रूप लेता है और जीव या आत्मा उस रूप मे आश्रय लेती है और क्योकि वह आश्रय लेती है, उसमे हाथ, पैर और नेत्र इत्यादि का विकास होता है। यह विकास सातवे मास मे पूरा हो जाता है और नौवे मास मे मनुष्य गर्भ से बाहर आता है। क्योकि आत्मा उपस्थित है इसलिए शिशु का विकास होता है। यदि आत्मा उपस्थित न हो, तो कोई विकास नही होता और मृत शिशु का जन्म होता है। हम इस मृत शरीर को लेकर रासायनिक पदार्थों मे सुरक्षित रख सकते है, परन्तु वह विकसित नही होगा। विकास का अर्थ है शरीर में परिवर्त्तन। हममे से सबका बालक शरीर था, परन्तु उन शरीरो का अस्तित्व नही रहा। शिशु का शरीर एक बालक के शरीर मे विकसित होता है, वह शरीर एक युवक के शरीर मे विकसित होता है, जो अन्ततः एक वृद्ध मनुष्य के शरीर मे बदल जाता है। फिर पूर्ण रूप से नष्ट हो जाता है। यह सम्पूर्ण सृष्टि अर्थात् इस भौतिक जगत् का विशालकाय स्वरूप भी इसी विधि के अनुसार कार्य कर रहा है। एक विशिष्ट समय मे इसकी सृष्टि होती है, यह विकसित होता है, इसका पालन किया जाता है और एक विशेष समय मे इसका लय हो जाता है। भौतिक जगत् की यही प्रकृति है। यह किसी विशेष समय में व्यक्त होता है और फिर से विलीन हो जाता है (**भूत्वा भूत्वा प्रलीयते**)।

भाव शब्द का अर्थ होता है, 'प्रकृति (स्वभाव)।' एक दूसरी प्रकृति है जिसका कभी लय नही होता, जो नित्य (शाश्वत) है। जीवात्मा होने के कारण हम भी नित्य है। इसे भगवद्गीता [२ २०] मे प्रामापित किया गया है :

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

"आत्मा किसी काल में न तो जन्मती है और न तो मरती ही है तथा एक बार होकर भी कभी नष्ट भी नही होती। यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत तथा पुरातन है। देह का वध होने पर आत्मा का वध नही होता।"

जिस प्रकार भगवान् का न जन्म होता है और न ही मृत्यु, उसी प्रकार हम जीवात्माओ का भी न जन्म होता है और न मृत्यु, परन्तु क्योकि हम सोचते है, "हम यह शरीर है," इसलिए हम सोचते है कि हमारा जन्म होता है और हम मरते है। ऐसा सोचना माया या भ्रम कहलाता है और जैसे ही हम आत्मा को शरीर मानने के भ्रम से दूर हो जाते है, हम ब्रह्मभूत अवस्था को प्राप्त कर लेते है। जब व्यक्ति को यह अनुभूति होती है **अहम् ब्रह्मास्मि** "मै यह शरीर नही हूँ, मै परमब्रह्म भगवान् का अश हूँ, अर्थात् मै आत्मा हूँ," तब उसे ब्रह्मानुभूति की प्राप्ति होती है। और जैसे ही ब्रह्मानुभूति होती है, वैसे ही व्यक्ति सुखी हो जाता है।

क्या यह सत्य नही है? यदि आप स्पष्ट रूप से समझ लें कि आपका न जन्म होता है और न मृत्यु, कि आप नित्य है, तो क्या आप सुखी नही हो जायेंगे? जी हाँ, निश्चय ही। इस प्रकार जब किसी को ब्रह्मानुभूति हो जाती है तो वह न किसी प्रकार की आकाक्षा करता है और न शोक ही। सम्पूर्ण जगत् केवल आकाक्षा और शोक से परिपूर्ण है। आप अफ्रीका के लोग यूरोपियन और अमेरिकन लोगों के समान होने की आकाक्षा कर रहे है, परन्तु यूरोपियन लोगो ने अपना साम्राज्य खो दिया है, तो अब वे शोक कर रहे है। तो इस प्रकार एक दल आकांक्षा कर रहा है और दूसरा शोक। उसी प्रकार, यह भौतिक जीवन केवल आकांक्षा और शोक का केवल एक मिश्रण है। हम उन वस्तुओ के लिए शोक कर रहे है जिनको हमने खो दिया है। हमारा भौतिक कार्य-कलाप यही है। किन्तु, यदि हम यह साक्षात्कार कर ले कि हम परब्रह्म भगवान् के अश है और हम ब्रह्म है, तो हम आकांक्षा और शोक के स्तर से परे हो जायेगे।

यह नाममात्र का विश्वव्यापी भाईचारा या एकता, जिसे सयुक्त राष्ट्र सघ प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा है वह केवल तभी सम्भव है जब आप आध्यात्मिक स्तर अर्थात् ब्रह्मानुभूति प्राप्त कर ले। ब्रह्मसाक्षात्कार मनुष्य जीवन का लक्ष्य है। अत: व्यक्ति को कुत्ते, बिल्लियो और सूकरो के समान कार्य नही करते रहना चाहिए। सूकर सदा ही दिन-रात मल ढूंढने मे व्यस्त रहता है और जब वह पा जाता है, तो उसको खाता है और कामोत्तेजित हो जाता है। सूकर बिना किसी भेद-भाव के कामाचार (मैथुन) करता है, वह अपनी माँ, बहन, बेटी या किसी के साथ भी मैथुन कर लेगा। यह है सूकर का जीवन। किन्तु, शास्त्र दिखलाते हैं कि मानव जीवन कुत्ते, बिल्लियो और सूकरो के समान इन्द्रियतृप्ति हेतु कठिन परिश्रम करने के लिए नही बनाया गया है। मनुष्य जीवन इसका साक्षात्कार करने

के लिए बनाया गया है, "मेरा इस भौतिक जगत् से कोई सम्बन्ध नही है। मै आत्मा हूँ और नित्य हूँ, परन्तु किसी न किसी प्रकार मै जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि से इस बद्ध जीवन मे गिर पड़ा हूँ।" मनुष्य जीवन—जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि इन चार भौतिक दु.खो का हल करने के लिए बनाया गया है। मनुष्य जीवन का लक्ष्य यही है। थोडा इसको समझने का प्रयत्न तो कीजिए कि यह मनुष्य जीवन सूकरो के समान कठिन परिश्रम करके, कुछ इन्द्रिय-तृप्ति प्राप्त करके और उसके बाद अचानक ही मर जाने के लिए नही बनाया गया है।

जो लोग आत्मा मे विश्वास नही करते उनकी दशा सबसे अधिक दुर्भाग्यशाली है। वे यही नही जानते कि वे कहाँ से आए और नही यह जानते है कि वे कहाँ जा रहे है। आत्मा का ज्ञान सर्वाधिक महत्वपूर्ण ज्ञान है, परन्तु किसी भी विश्वविद्यालय में इस ज्ञान की चर्चा नही की जाती है। वास्तव मे इस शरीर की बनावट क्या है? एक जीवित शरीर और मृत शरीर मे क्या अन्तर है? शरीर जीवित क्यो है? शरीर की दशा क्या है और शरीर का क्या मूल्य है? कोई भी व्यक्तिगत रूप से इन प्रश्नो का अध्ययन नही कर रहा है, परन्तु इस श्रीकृष्ण भावनामृत अभियान के द्वारा हम लोगो को यह शिक्षा देने का प्रयत्न कर रहे है। इस शिक्षा से लोग यह समझ सकते है कि वह यह शरीर नही, वरन् आत्मा है। मनुष्य जीवन का प्रयोजन कुत्ते और बिल्लियो के प्रयोजन से भिन्न है। यही हमारा सन्देश है।

जहाँ तक आत्मा का सम्बन्ध है, उसका क्रमिक-विकास भी व्यवहारिक रूप से चल रहा है। हम अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे है, नित्य जीवन के स्तर तक आने के लिए यह सघर्ष है। वह नित्य जीवन सम्भव है। यदि आप इस मनुष्य योनि मे सर्वोत्तम प्रयत्न करे तो अगले जीवन मे आपको एक आध्यात्मिक शरीर मिल सकता है। आपका आध्यात्मिक शरीर पहले से ही आपमे है और यह जैसे-जैसे विकसित होता जाएगा वैसे-वैसे आप इस भौतिक अस्तित्व (ससार) के दोष से मुक्त होगे। मनुष्य जीवन का यही लक्ष्य है। लोग यह जानते हो नही कि उनका वास्तविक स्वार्थ क्या है, वह स्वार्थ है स्वरूप का साक्षात्कार करना, यह साक्षात्कार करना, "मैं भगवान् का अश हूँ और मुझे पुन: उनके साथ भगवद्-धाम में लौटकर उनकी लीलाओ मे सहयोग देना है।"

जिस प्रकार यहाँ सामाजिक जीवन है, उसी प्रकार वैकुण्ठ जगत् मे श्रीभगवान् का भी एक सामाजिक जीवन है। आप उनके साथ वहाँ सम्मिलित हो सकते है। यह नही कि जब यह शरीर समाप्त हो जाता है, तो आप शून्य हो जाते है। जी नही। यह एक भ्रामक धारणा है। भगवद्गीता [२ १२] मे कुरुक्षेत्र के युद्ध के मैदान में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥

"न तो ऐसा ही है कि किसी समय में मैं नहीं था, तुम नही थे अथवा यह सब राजा नही थे और न ही ऐसा है कि आगे भविष्य मे हम सब नही रहेगे ।"

नित्य जीवन प्राप्त करने की विधि तो बहुत ही सरल है और फिर भी साथ ही साथ बहुत कठिन भी । यह कठिन इसलिए है, क्योकि आरम्भ में लोग आत्मा के देहान्तर मे विश्वास नहीं करते । किन्तु यदि हम अधिकारी (विशेषज्ञ) द्वारा दिए गए ज्ञान को केवल स्वीकार भर कर ले । तो विधि बहुत सरल हो जाती है । श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति की हमारी विधि है—सर्वाधिक पूर्ण पुरुष श्रीकृष्ण से ज्ञान प्राप्त करना । हम किसी ऐसे साधारग व्यक्ति से ज्ञान नही लेते जो प्रकृति के नियमो के द्वारा बद्ध है । बद्ध जीव से मिले ज्ञान का दोषपूर्ण होना सुनिश्चित है ।

बद्ध आत्मा के क्या दोष (त्रुटि) है ? उसमे चार दोष होते है—उसका त्रुटियाँ (गलतियाँ) करना निश्चित है (प्रमाद), भ्रम मे पडना निश्चित है (भ्रम), दूसरो को धोखा देना निश्चित है (वंचना) और उसकी इन्द्रियो का अपूर्ण होना निश्चित है (कर्णपाटव) । हम पूर्ण रूप से इसलिए ज्ञान नही पा सकते, क्योकि हम दूसरो को ठगना चाहते है और हमारी इन्द्रियाँ अपूर्ण है । यद्यपि हमारी इन्द्रियाँ अपूर्ण है फिर भी हम को अपने नेत्रो पर बहुत गर्व (घमण्ड) है और हम प्रत्येक वस्तु को देखना चाहते है । अतः कोई कह देता है, "क्या आप मुझे भगवान् दिखा सकते है ?" वास्तव मे उत्तर तो है' हाँ । आप पल-प्रतिपल भगवान् को क्यो नही देख सकते ? श्रीकृष्ण कहते है—**रसोऽहमप्सु कौन्तेय,** "मैं जल का स्वाद हूँ ।" [गीता ७ ८] सभी लोग जल पीते है और उसमे स्वाद है—यदि हम उस स्वाद को भगवान् के रूप मे सोचे, तो हम भगवद्-साक्षात्कार की विधि का आरम्भ कर सकते है । श्रीकृष्ण यह भी कहते है,— **प्रभास्मि शशिसूर्ययोः,** "मै सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश हूँ ।" हम सब प्रत्येक दिन सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश देखते है और यदि हम सोचे कि चन्द्रमा और सूर्य किस प्रकार प्रकाश दे रहे है तो हम अन्ततः भगवान् को प्राप्त कर लेंगे । ऐसे ही अनेकानेक उदाहरण है । यदि आप भगवद्-भक्त बनना चाहते है और भगवान् का साक्षात्कार करना चाहते है, तो यह बिल्कुल ही कठिन नही है । आप को केवल निर्धारित की गई विधियो का पालन करना पड़ेगा जैसे कि भगवद्गीता (१८ ५५) मे कहा गया है—**ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा** । हमे अवश्य ही भगवान् को तत्त्वतः (सत्य मे) समझने का प्रयत्न करना है और साथ ही साथ उनका अप्राकृत जन्म, एवं कर्म को भी समझने का प्रयत्न करना है । जब हम भगवान् को तत्त्वतः समझ लेते है, तो हम तत्काल ही भगवद्-धाम मे प्रवेश करते

करते है। इस शरीर को छोड़ने के पश्चात्, जो व्यक्ति भगवान् अर्थात् श्रीकृष्ण को समझ लेता है, उसे पुन: एक दूसरा भौतिक शरीर ग्रहण करने नही लौटना पड़ता। श्रीकृष्ण कहते है, **मामेति** "वह मेरे पास आ जाता है।" हमारा लक्ष्य यही है।

अत: हमें अपना समय कुत्ते और बिल्लियो के समान रहने में व्यर्थ ही नष्ट नही करना चाहिए। हम सुविधापूर्वक रहे, परन्तु साथ ही साथ हमें श्रीकृष्ण-भक्त अर्थात् भगवद्-भक्त होना चाहिए। यह हमें सुखी वनाने मे सहायता करेगा। भगवान् को समझे बिना और भगवान् के भक्त हुए बिना, शान्ति और सुख की कोई सम्भावना ही नही है। भगवद्गीता मे शान्ति और सुख का मार्ग दिया गया है।

यदि आप वास्तव मे भगवान् को समझना चाहते हैं, तो उनको समझना बहुत सरल है। भगवान् प्रत्येक वस्तु के स्वामी है। **ईशावास्यमिदं सर्वम्** दुर्भाग्यवश हम सोच रहे है, "मैं स्वामी हूँ।" आपके देश में उदाहरण के लिए, कुछ समय तक ब्रिटिश लोगों ने दावा किया किया कि वे स्वामी है और अव आप लोग स्वामी होने का दावा कर रहे है—और कौन जानता है कि भविष्य मे क्या होगा ? वास्तव में यह कोई भी नही जानता कि यथार्थ स्वामी कौन है। भूमि यहाँ है और यह भगवान् की सम्पत्ति है, परन्तु हम केवल सोच रहे है, "मैं स्वामी हूँ। यह वस्तु मेरी है, वह वस्तु मेरी है।" वास्तव में, यूरोप वासियो के आने के पहले भी अमेरिका था, परन्तु अब अमेरिकन लोग सोच रहे है, 'हम स्वामी है।' उसी प्रकार, उनसे पहले रेड इण्डियन सोच रहे थे, "हम स्वामी है।" वास्तविकता तो यह है कि कोई भी मनुष्य वास्तव मे स्वामी नही है, स्वामी तो केवल एक भगवान् हैं।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्॥

इस ब्रह्माण्ड मे जड अथवा चेतन जो कुछ भी है वह सब भगवान् के नियन्त्रण में है और उन्ही की सम्पत्ति है अतएव अपने लिए नियत की गई आवश्यक वस्तुओ को ही ग्रहण करनी चाहिये। दूसरो की वस्तुओ को ग्रहण न करे। भली-भाँति हमें यह ज्ञात होना चाहिए कि यह वस्तुएँ किनकी हैं।' [श्रीईशोपनिषद्]

इस अनुभूति का अभाव है। श्रीकृष्ण कहते है कि वे सभी प्रकार के रूप के स्वामी हैं—अमेरिकन रूप, अफ्रीकन रूप, बिल्ली का रूप, कुत्ते का रूप, वृक्ष का रूप इत्यादि और यह वास्तविकता है कि वे सबके स्वामी और परम पिता है। यदि केवल हम इसकी अनुभूति कर ले, तो हम भगवद्-साक्षात्कार कर लेगे। वास्तव मे यदि हम प्रामाणिक ग्रन्थो और वैदिक साहित्य मे निर्धारित की गई विधि के द्वारा भगवान् का साक्षात्कार कर ले, तो हम पाएंगे कि इस दल या उस दल के बीच मे झगडे नही हुआ करेंगे। प्रत्येक स्थान पर शान्ति स्थापित हो जाएगी।

प्रत्येक जीव को भगवान् की सम्पत्ति का उपयोग करने का अधिकार है, ठीक उसी प्रकार जैसे पुत्र को अपने पिता की सम्पत्ति पर, शास्त्रो में आता है कि घर मे रहने वाले एक छोटे से पशु को भी कुछ भोजन दिया जाना चाहिए। यह आध्यात्मिक साम्यवाद है। कोई भी भूखा न रहे, यहाँ तक कि एक सर्प भी। हम को सदा सर्पो से भय बना रहता है, परन्तु यदि हम देखे कि एक सर्प हमारे घर मे रह रहा है, तो हमारा यह कर्त्तव्य है कि साँप को भी भोजन मिले। भगवद्भावनामृत अर्थात् श्रीकृष्णभावनामृत की यही धारणा है—समः सर्वेषु भूतेषु। जो अप्राकृत (दिव्य) स्तर पर स्थित है वह सब प्राणियों के प्रति समान भाव रखता है। इस प्रकार भगवद्गीता हमे निर्देश करती है कि जब कोई परम ईश्वर भगवान् के अश के रूप मे सभी जीवो को समान दृष्टि से देखता है, तब वास्तव मे कही जा कर उसकी भक्ति का आरम्भ होता है। यह श्रीकृष्णभावनामृत अभियान एक प्रामाणिक ढग से सभी लोगो को यही समझाने का प्रयत्न कर रहा है कि वे क्या हैं और जीवन का लक्ष्य क्या है। हृदय को शुद्ध करने की यह विधि बहुत सरलता के साथ पालन की जा सकती है। हमे केवल—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे॥

इस महामन्त्र का कीर्त्तन मात्र करना है। यह वास्तव मे देखा भी जा सकता है कि इस अभियान मे विभिन्न देशो के, विभिन्न धर्मो के युवक और युवतियाँ है, परन्तु कोई भी किसी विशिष्ट वर्ग, देश अथवा धार्मिक मत से सम्बद्ध नही है। हमारा प्रयोजन यह है कि स्वयं का भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त किया जाय।

भगवान् परम स्वामी है और हम सभी उनके पुत्र या उनके दास है। इसलिए जैसा कि भगवद्गीता मे परामर्श दिया गया है कि हम सब स्वय को भगवान् की सेवा मे सलग्न करे। जैसे ही हम यह समझ जाते है कि भगवान् प्रत्येक वस्तु के स्वामी है, वैसे ही विश्व की समस्त समस्याओ का तात्कालिक हल हो जाएगा। यह समझने मे भले ही कुछ समय लग सकता है। यह आशा नही की जाती कि सभी लोग इस उच्च कोटि के दर्शन को समझ लेगे, परन्तु यदि सभी देश के बुद्धिमान व्यक्ति इसे समझने का प्रयत्न करे, तो इतना ही पर्याप्त होगा। भगवद्गीता [३.२१] मे आता है ·

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन.।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

"महापुरुष जो-जो आचरण करता है, साधारण मनुष्य उसका अनुसरण करते है। वह पुरुष अपने उदाहरण स्वरूप कर्मो से जो आदर्श स्थापित कर देता है, सम्पूर्ण विश्व उसके अनुसार कार्य करता है।"

अतएव हम विश्व के सर्वाधिक बुद्धिमान् मनुष्यो को निमन्त्रण देते है कि वे इस कृष्ण-भक्ति के दर्शन को समझे और तत्पश्चात् सम्पूर्ण विश्व मे इसका वितरण करने का प्रयत्न करे। अब हमारा अभियान इन अफ्रीकन देशो मे भी आ चुका है और मै अफ्रीका के सभी बुद्धिमान् मनुष्यो को निमन्त्रण देता हूँ कि आप इस दर्शन को समझने मे आगे बढे और इसका वितरण करे। आप स्वयं का विकास करने का प्रयत्न कर रहे है तो आध्यात्मिक दृष्टि से भी विकास कीजिए क्योकि आध्यात्मिक विकास ठोस विकास है। अमेरिकन एव यूरोपियन का अनुकरण मत कीजिए, जो कुत्ते और बिल्लियो का जीवन व्यतीत कर रहे है। इन्द्रिय तृप्ति पर आधारित ऐसी सभ्यता आधार रहित है। परमाणु बम पूर्व से वर्त्तमान है ही और जैसे ही अगले विश्वयुद्ध का आरम्भ होता है, अनेक समस्त गगनचुम्बी भवन और प्रत्येक वस्तु समाप्त हो जाएगी। आप इसको मनुष्य जीवन के यथार्थ दृष्टिकोण अर्थात् आध्यात्मिक दृष्टिकोण से समझने का प्रयास करे। तो श्रीकृष्णभावनामृत अभियान का सार-तत्त्व यही है। हम अतएव आपसे विनती करते है कि कृष्ण-भक्ति के इस दर्शन को समझने का आप लोग प्रयास करे। आपको हार्दिक धन्यवाद है। हरे कृष्ण।

भगवद्भक्त सदैव परदुखदुखी होते हैं

"उदाहरण के लिए, भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु के एक महान् भक्त श्रीवासुदेव दत्त जब प्रकट हुए थे तो लोगो को कष्टमय दशा मे देख कर अत्यन्त विकलित हो उठते थे। जो भी कृष्ण-भक्त हैं— चाहे वे किसी भी देश अथवा सम्प्रदाय के हो— वे कृपासिन्धु होते हैं "

हमारी विषय वस्तु—भगवन्नाम का यश-गान—सर्वाधिक उत्कृष्ट है। इस विषय की महाराज परीक्षित तथा श्रीशुकदेव गोस्वामी के मध्य चर्चा हुई थी। उन्होने विचार किया कि अजामिल ब्राह्मण जो अत्यधिक पतित एवं सब प्रकार के पापों में संलग्न था, उसकी रक्षा श्रीनारायण (कृष्ण) नाम का केवल कीर्त्तन करने से हो गई। यह कथा श्रीमद्भागवत के छठे स्कन्ध मे आती है। श्रीमद्भागवत श्रीव्यासदेव द्वारा रचित महापुराण है जिसमे भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओ का वर्णन है एवं श्रीकृष्णभावनामृत के दर्शन की विस्तार से व्याख्या है।

श्रीमद्भागवत के पचम स्कन्ध मे ब्रह्माण्ड के लोको का पूर्ण रूप से वर्णन किया गया है। ब्रह्माण्ड के अन्दर तीन लोक है—भु, भुवः, एव स्वर्लोक (निम्न, मध्यम एव उच्च लोक)। वास्तव मे, न केवल भागवत मे वरन् अन्य धर्म-ग्रन्थो मे भी नरक अथवा निम्न लोको का तथा उच्च या स्वर्ग लोको का वर्णन पाया जाता है। श्रीमद्भागवत प्रमाण देता है कि ये लोक कहाँ स्थित है और इस पृथ्वी से कितनी दूरी पर है। जिस प्रकार खगोल शास्त्रियो ने पृथ्वी से चन्द्र एव सूर्य तथा अन्य ग्रहों की दूरी की गणना की है, उसी प्रकार, भागवत मे विविध लोको का वर्णन पाया जाता है।

यहाँ तक कि इस पृथ्वीलोक मे भी हम विभिन्न जलवायु का अनुभव करते हैं। अमेरिका जैसे ठण्डे देश की जलवायु भारतवर्ष जैसे उष्ण कटिबन्ध वाले देश से भिन्न है। जिस तरह से इस लोक मे वातावरण तथा जलवायु मे अन्तर है उसी प्रकार दूसरे लोको मे भी भिन्न-भिन्न वातावरण एव जलवायु पाई जाती है। शुकदेव गोस्वामी से ऐसे लोको का वर्णन सुनने के पश्चात् परीक्षित महाराज ने कहा :

अधुनेह महाभाग यथैव नरकान्नरः।
नानोग्रयातनान्नेयात्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥

"महाभाग, मैने आपसे नरक के विषय में श्रवण किया। पापी मनुष्य वहाँ भेजे जाते है। जिन कर्मो के द्वारा उन भयंकर यातनापूर्ण नरको में जाना न पड़े, मुझे उनका उपदेश कीजिये।" [भागवत ६ १ ६]

परीक्षित महाराज एक वैष्णव-भक्त थे और वैष्गव सदैव दूसरो के कष्ट से दुखी रहते है। उदाहरण के लिये, जीसस क्राइस्ट जब प्रकट हुए तो लोगो की कष्टमय दशा देखकर अत्यन्त विकल हो उठते थे। इस प्रकार सभी वैष्णव या भक्त अर्थात् जो कोई भी भगवद्भक्त अथवा कृष्ण-भक्त है—चाहे किसी देश या सम्प्रदाय से सम्बन्धित हो वे सदा ही दयालु होते है। अत. एक वैष्गव अर्थात् भगवान् की महिमा के प्रचारक की निन्दा करना महान् अपराध है।

शुद्ध वैष्णवो के चरणकमल मे किए गए अपराध को श्रीकृष्ण कभी भी सहन नही करते। किन्तु, वैष्णव ऐसे अपराधों को सदैव क्षमा कर देने के लिये तत्पर रहते है। 'कृपाम्बुधि.' वैष्णव कृपा के सागर होते है। 'वाञ्छाकल्पतरु'—प्रत्येक के मन मे कोई न कोई वाञ्छा (इच्छा) रहती है परन्तु वैष्णव उन समस्त इच्छाओं को पूर्ण कर सकते है। कल्पतरु (कल्पवृक्ष) वैकुण्ठ-जगत् मे होता है, जिसके द्वारा सब इच्छाएँ पूर्ण हो सकती है। इस भौतिक-जगत् मे एक वृक्ष से एक विशेष फल ही प्राप्त किया जा सकता है परन्तु कृष्णलोक तथा चिदाकाश (परव्योम) के अन्य दूसरे लोको में समस्त वृक्ष अपाकृत है तथा इच्छानुरूप वस्तुये प्रदान करते है। इसका वर्णन ब्रह्म-सहिता में आया है **(चिन्तामणिप्रकरसद्मसुकल्पवृक्ष)** शुद्ध वैष्णव की तुलना कल्पवृक्ष से की जाती है क्योकि वे निश्छल शिष्य को एक अनुपम भेंट, कृष्ण-भक्ति—प्रदान कर सकते है।

वैष्णव को 'महाभाग' अर्थात् सौभाग्यशाली कहा जाता है। जो वैष्णव बन जाते है और भगवद्भाव की प्राप्ति करते है उनको महाभाग्यवान् समझा जाता हैं। इस युग में, श्रीकृष्णभावनामृत के प्रधान शिखर भगवान् श्रीमन् गौरसुन्दर महाप्रभु ने व्याख्या की है कि ब्रह्माण्ड के विविध लोको में जीवात्मा भिन्न-भिन्न योनियो में भ्रमण कर रहा है। जीव जहाँ चाहे स्वर्ग अथवा नरक—उस स्थान की तैयारी करके वहाँ जा सकता है। अनेक स्वर्गलोक, अनेक नरक तथा अनेक योनियाँ है। पद्म पुराण मे चौरासी लाख योनियों का वर्णन है और जीवात्मा अपने वर्त्तमान जीवन के मन की प्रवृत्ति के अनुसार शरीरो की रचना करता हुआ इन योनियो मे चक्कर काट रहा है। "जैसा बोना वैसा काटना," यह नियम यहाँ चरितार्थ होता है। श्रीचैतन्य महाप्रभु कहते है कि ब्रह्माण्ड मे भ्रमण करते हुए इन असख्य जीवो मे मे कोई एक भाग्यवान् जीवात्मा ही कृष्ण-भक्ति को ग्रहण कर पाता है। श्रीकृष्ण भावनामृत का सर्वत्र बिना किसी मूल्य के वितरण किया जाता है परन्तु विशेषकर, कलियुग मे सभी लोग इसको स्वीकार नही कर पाते। इसी कारण श्रीमद्भागवत

ग्रन्थ कलियुग के जीवो को विशेष रूप से मन्द भाग्य कहकर वर्णन करता है । अतः श्रीमन् गौराग महाप्रभु कहते है कि केवल भाग्यशाली लोग ही इस श्रीकृष्णभावनामृत को ग्रहण करते है और फलस्वरूप आनन्दमय ज्ञान का जीवन प्राप्त करते है ।

वैष्णव का यह कर्त्तव्य है कि वे घर-घर जाकर अभागे लोगो को सौभाग्यशाली बनाने का प्रयत्न करे । वैष्णव सोचते है, "किस प्रकार ये लोग इस नारकीय जीवन से छुटकारा पा सकते है ?" यही जिज्ञासा परीक्षित महाराज ने भी की । "महाभाग" उन्होने कहा, "आपने वर्णन किया कि मनुष्य के पापो के कारण उसे नारकीय जीवन मे अथवा नरको मे रखा जाता है । ऐसा व्यक्ति कैसे बचाया जा सकता है" यह अत्यधिक महत्वपूर्ण प्रश्न है । जब वैष्णव आते है, भगवान् प्रकट होते है या उनके पुत्र अथवा अत्यन्त अन्तरग भक्त आते है तो उन लोगो का एकमात्र उद्देश्य रहता है—कष्ट पाते हुए पापियो की रक्षा करना । यह रक्षा किस प्रकार करनी है, इसका ज्ञान उनको रहता है । जब प्रह्लाद महाराज को श्रीनृसिहदेव के दर्शन हुए तो उन्होने कहा :

नैवोद्विजे पर दुरत्ययवैतरण्यास्त्वद्वीर्यगायनमहामृतमग्नचित्तः ।
शोचे ततो विमुखचेतस इन्द्रियार्थमायासुखाय भरमुद्वहतो विमूढान् ॥

[भागवत ७.९.४३]

"प्रिय प्रभो," प्रह्लाद महाराज आरम्भ किए, "मुझे अपनी मुक्ति की तनिक भी उत्सुकता नही है ।" यह भाव मायावादी दार्शनिको की विचारधारा का विरोधी है । वे लोग सदैव बहुत सावधान रहते है कि उनके स्वय की मुक्ति मे बाधा न पड़े । वे प्रायः यह सोचते है, "यदि मै प्रचार करने जाऊँ तो दूसरो के सग के कारण मेरा पतन हो सकता है तब मेरी अनुभूति का भी अन्त हो जाएगा ।" अतएव वे प्रचार करने मे आगे नही आते । पतन होने के सकट के मूल्य पर भी केवल वैष्णव ही प्रचार के लिए तत्पर रहते है—यद्यपि उनका पतन कभी भी नही होता । वैष्णव वद्ध जीवो के उद्धार के लिये नरक मे भी जाने के इच्छुक रहते है । प्रह्लाद महाराज का भी यही उद्देश्य है । उन्होने आगे कहा, "मेरे लिए तो इस ससार मे कोई चिन्ता नही है । मुझे अपने लिए कोई भय नही है किसी न किसी प्रकार मुझे सदैव कृष्ण-भक्त बने रहने का प्रशिक्षण दिया गया है ।" क्योकि प्रह्लाद महाराज का चित्त कृष्णभावित था, अत' उन्हे यह विश्वास था कि अगले जीवन में वे श्रीकृष्ण का साक्षात् संग प्राप्त करेंगे । भगवद्गीता मे आता है कि यदि मनुष्य श्रीकृष्णभावनामृत के नियमो का सावधानीपूर्वक पालन करे तो यह निश्चय है कि अगले जीवन में वह परम गति (गन्तव्य) को प्राप्त करेगा । प्रह्लाद महाराज आगे कहते है, "मुझे केवल एक शोक है, जो कृष्ण-भक्त नही है उनके लिए मैं चिन्तित हूँ । मुझे स्वयं के लिये कोई भय नही है परन्तु मै उन लोगो के विषय मे सोच रहा

हूँ ।" अन्य लोग कृष्ण-भक्त क्यो नही है ? **मायासुखाय भरमुद्वहतो विमूढान्** ।विमूढ़ों ने अस्थायी इन्द्रिय सुख के लिये मायावी सभ्यता का निर्माण किया है ।

मायासुखाय—वास्तव मे यह तथ्य है । हम एक मायावी सभ्यता की रचना करने मे सफल हुए है । प्रत्येक वर्ष अनेक मोटरो का निर्माण होता है इसलिये अनेक सड़के बनायी जाती है तथा पुरानी सड़को की मरम्मत की जाती है । इससे केवल एक समस्या के बाद दूसरी समस्या खडी होती जाती है अतः यह **मायासुखाय** अर्थात् भ्रमपूर्ण सुख है । हम सुखी होने के लिए किसी विधि का निर्माण करने का प्रयत्न कर रहे है परन्तु हमे केवल समस्याओं की वृद्धि करने मे ही सफलता प्राप्त हुई है । सयुक्त राष्ट्र अमेरिका मे, मोटरो की सख्या विश्व मे सबसे अधिक है परन्तु इससे समस्या का हल नही निकलता । हमने मोटरो का निर्माण किया है जीवन की समस्याओ को सुलझाने मे सहायता के लिए परन्तु हम प्रायः यही अनुभव करते है कि इससे दूसरी समस्याये उत्पन्न होती जाती है । एक बार मोटर बना लेने का फल यह निकलता है कि अपने मित्र अथवा एक डॉक्टर से केवल भेट करने के लिए हमे तीस-चालीस मील की यात्रा करनी पड़ती है । हम जिस स्थान पर वायुयान से एक घण्टे से भी कम समय मे पहुँच सकते है, वही विमान तल (हवाई अड्डे) तक पहुँचने मे इससे अधिक समय लग जाता है । यही स्थिति **मायासुखाय** कहलाती है । माया का अर्थ है मिथ्या भ्रामिक । हम अत्यन्त सुविधाजनक स्थिति का निर्माण करने का प्रयत्न करते है परन्तु हमे केवल अन्य असुविधाजनक स्थितियाँ बनाने मे ही सफलता मिलती है । भौतिक जगत् मे यही होता है, यदि हम ईश्वर और प्रकृति के द्वारा दी गई प्राकृतिक सुविधाओ से सन्तुष्ट नही होते और कृत्रिम सुविधाओ की रचना करना चाहते है तो हमे असुविधाओ का भी निर्माण करना पड़ेगा । अधिकाश लोगो को इस वास्तविकता का ज्ञान नही है अत. वे सोचते है कि हम अत्यन्त सुविधापूर्ण स्थिति का निर्माण कर रहे है । परन्तु वास्तव मे इसका परिणाम अन्त मे यह निकलता है कि उन्हे जीवन के निर्वाह हेतु कार्यालय जाने के लिये पचास मील तथा घर लौटने के लिये पुन. पचास मील की यात्रा करनी पडती है ।

ऐसी दशाओ के कारण ही प्रह्लाद महाराज कहते है कि इन विमूढ (विषयी) लोगो ने केवल अस्थायी सुख के लिये अनावश्यक ही स्वयं के ऊपर बोझ लाद रखा है । **विमूढान् मायासुखाय भरमुद्वहतो** । इसलिये वैदिक सभ्यता मे इसका समर्थन किया जाता है कि मनुष्य अपने को सासारिक जीवन से मुक्त हो कर, संन्यास ग्रहण करे तथा निश्चितता के साथ भक्ति का साधन करे ।

किन्तु, संन्यास ग्रहण करना सदा आवश्यक नही होता । यदि कोई परिवार में रहकर श्रीकृष्णभावनामृत का साधन कर सकता है तो वह भी उचित है । यद्यपि श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर (१८३८-१९१४) एक गृहस्थ एव दण्डाधिकारी (मजिस्ट्रेट) थे

फिर भी उन्होंने अत्यन्त सुन्दर ढंग से भक्ति का साधन किया। ध्रुव और प्रह्लाद महाराज भी गृहस्थ थे परन्तु उन्होने अपने को इस प्रकार प्रशिक्षित कर लिया था कि गृहस्थ रहते हुए भी उनकी भगवद्सेवा मे बाधा नही पडी। अतएव प्रह्लाद महाराज ने कहा, "मैंने तो श्रीकृष्णभावनामृत मे सदैव मग्न रहने की कला सीख ली है।" वह कला क्या है ? **त्वद्वीर्यगायनमहामृतमग्नचित्तः** भगवान्' की वीरता एव लीलाओ का केवल यशगान करना। वीर्य शब्द का अर्थ है "अत्यन्त वीरतापूर्ण" श्रीमद्भागवत का पाठ करने से हम समझ सकते है कि भगवान् श्रीकृष्ण के कार्य, उनकी प्रसिद्धि, उनके पार्षद तथा उनसे सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु वीरतापूर्ण है। इस विषय में प्रह्लाद महाराज ने कहा, मुझे विश्वास है कि मै जहाँ भी जाऊँगा आपके वीरतापूर्ण कार्यो का गुणगान करके सुरक्षित रह सकता हूँ। मेरे पतन का प्रश्न ही नही उठता परन्तु मुझे केवल उन लोगो की चिन्ता है जिन्होने सदैव कठोर परिश्रम मे ही सलग्न रहने वाली सभ्यता का निर्माण किया है। मै उनके लिए सोच कर रहा हूँ।" प्रह्लाद महाराज आगे कहते है :

प्रायेण देव मुनयः स्वविमुक्तिकामा
मौनं चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठाः।
नैतान्विहाय कृपणान्विमुमुक्ष एको
नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये॥

"प्रिय प्रभो, अनेक ऋषि-मुनि है जो केवल स्वय की मुक्ति मे अत्यधिक रुचि रखते है। वे हिमालय पर्वत जैसे निर्जन स्थानो मे मौन व्रत लेकर वास करते है। उन्हे नगर के साधारण मनुष्यो के सग से, विचलित अथवा पतित हो जाने का भय बना रहता है। वे सोचते है, स्वयं की रक्षा करना श्रेष्ठ है।" मुझे इन सन्तो के व्यवहार पर खेद होता है—कि ये नगर मे नही आते है, जहाँ लोगो ने निरन्तर कठिन परिश्रम के आधार पर सभ्यता की रचना कर रखी है। ऐसे ऋषि-मुनि अत्यन्त कृपालु नही है परन्तु मुझे तो इन पतित जीवो की चिन्ता है जो केवल इन्द्रियो को तृप्त करने के लिए अनावश्यक ही कठोर परिश्रम कर रहे है।" [भागवत ७ ९ ४४]

यदि इतना कठोर परिश्रम करने मे कुछ सद्-उद्देश्य रहता भी हो तो लोग उसको जानते ही नही। उन्हे केवल काम वासना तथा उसको तृप्त करने के लिए वेश्यालयो भर का ज्ञान है। प्रह्लाद महाराज इन सबके प्रति दयालु है . **नैतान्विहाय कृपणान्विमुमुक्ष एको**। "मेरे स्वामी, मुझे अकेले मुक्ति नही चाहिए। मै इन मूर्खो को जब तक मुक्त नही करा लूँगा तब तक नही जाऊँगा।" इस प्रकार उन्होने सम्पूर्ण पतित जीवो को बिना साथ लिए वैकुण्ठ जाना अस्वीकार कर दिया। वैष्णव ऐसे ही होते है। **नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये**—"मैं उनको केवल आपकी शरण ग्रहण करने की शिक्षा मात्र देना चाहता हूँ। मेरा लक्ष्य बस यही है।"

इस प्रकार शरणागत होने पर बल दिया गया है क्योंकि वैष्णव जानते है कि जैसे ही वे शरण ले लेते है आगे का मार्ग स्वतः खुल जाता है :

नैवोद्विजे पर दुरत्ययवैतरण्यास्त्वद्वीर्यगायनमहामृतमग्नचित्तः ।

"किसी न किसी प्रकार उन्हे श्रीकृष्ण को प्रणाम करना है।" यह अत्यधिक साधारण विधि है। मनुष्य को श्रीकृष्ण के सामने श्रद्धापूर्वक केवल नमस्कार करके यह निवेदन करना चाहिए, "मेरे श्यामसुन्दर, मैं इतने जन्म-जन्मान्तर तक आपको भूले हुआ था। अब मुझे आपका स्मरण आया है। कृपया मुझे स्वीकार कर लीजिए।" बस इतना पर्याप्त है। यदि मनुष्य इस विधि को केवल सीख भर लेता है और निश्छलतापूर्वक भगवान् की शरण ग्रहण करता है तो उसकी प्रगति का मार्ग तत्काल ही खुल जाता है। सच्चे वैष्णव का लक्ष्य यही होता है।

वैष्णव सदैव सोचते रहते है कि इन पतित जीवो का उद्धार कैसे हो सकता है और वे सदा इस विषय मे योजनाएँ बनाते रहते है। भगवान् श्रीमन् गौरसुन्दर महाप्रभु के प्रधान शिष्य छः गोस्वामीवृन्द ऐसे ही वैष्णव थे। उनका वर्णन श्री श्रीनिवासाचार्य ने इस प्रकार किया है :

नानाशास्त्रविचारणैकनिपुणौ सद्धर्मसंस्थापकौ
लोकानां हितकारिणौ त्रिभुवने मान्यौ शरण्याकरौ।
राधाकृष्णपदारविन्दभजनानन्देनमत्तालिकौ
वन्दे रूपसनातनौ रघुयुगौ श्रीजीवगोपालकौ ॥

"श्री सनातन गोस्वामी, श्री रूप गोस्वामी, श्री रघुनाथ भट्ट गोस्वामी, श्री रघुनाथ दास गोस्वामी, श्री जीव गोस्वामी तथा श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी—ये छ. गोस्वामी सम्पूर्ण मानवो के हित के लिए, सनातन धर्म की स्थापना करने के उद्देश्य से विविध शास्त्रो का सूक्ष्म अध्ययन करने मे अति निपुग है। वे सदैव गोपीभाव मे निमग्न रहकर श्री श्रीराधाकृष्ण की अप्राकृत प्रेममयी सेवा करते रहते है।"

ऐसी ही वैष्णवोचित करुगावश परीक्षित महाराज ने शुकदेव गोस्वामी से कहा . "आपने विभिन्न प्रकार के नरको का अभी वर्णन किया। अब कृपया इनसे उद्धार का भी उपाय बतलाइए।"

अधुनेह महाभाग यथैव नरकान्नरः ।
नानोग्रयातनान्नेयात्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥

नर' शब्द का अर्थ है मनुष्य अर्थात् पतित जीव। **नरकान्नरः नानोग्रयात-नान्नेयात्तन्मे।** कैसे ये प्राणी इन घोर यातना एवं कष्टो से मुक्त हो सकते है। वैष्गव-हृदय की विशेषता यही है। महाराज परीक्षित ने यह भी कहा, किसी प्रकार से ये नारकीय जीवन मे फँस गए है परन्तु इसका अर्थ यह नही कि ये प्राणी उसी

दशा में पड़े रहें। उनकी मुक्ति का कोई न कोई उपाय अवश्य होगा, कृपया उन उपायो को समझाइए।" शुकदेव गोस्वामी ने उत्तर दिया :

न चेदिहैवापचितिं यथांहसः कृतस्य कुर्यान्मनउक्तिपाणिभिः।
ध्रुवं स वै प्रेत्य नरकानुपैति ये कीर्तिता मे भवतस्तिग्मयातनाः॥

"हाँ, मैं पहले ही इन घोर यातनापूर्ण विभिन्न नरको का वर्णन कर चुका हूँ। मुख्य बात यह है कि उन पापो स इसी जीवन मे मुक्त होना पडेगा।" [भागवत ६.१७]

यह किस प्रकार किया जा सकता है ? पाप करने के अनेक ढंग है। एक ढग है मन से पाप करना। यदि मनुष्य कोई पाप करने के लिए सोचता है और फिर उसकी योजना बनाता है—"मै उस व्यक्ति की हत्या करूँगा"—तो इसे भी पाप माना गया है। इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया शक्ति के द्वारा कार्य होता है। अमेरिका के कुछ भागो में यह कानून हैं, कि यदि एक कुत्ता मार्ग मे जाते हुए मनुष्य पर भोकता है तो कुत्ते का असली स्वामी इसका उत्तरदायी है। यद्यपि कुत्ता केवल भोकता है परन्तु उत्तरदायी स्वामी होता है। कुत्ते को उत्तरदायी नही माना जाता क्योंकि वह पशु है परन्तु कुत्ते के स्वामी ने उस पशु को अपना सर्वोत्तम मित्र बनाया है अतः कानून के द्वारा स्वामी उत्तरदायी है। जैसे एक कुत्ते का भोकना कानून के विरुद्ध है, वैसे ही अपमानजनक वाक्य कहना भी पाप माना जा सकता है क्योकि तब यह भोकने के समान ही है। ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि पाप अनेक प्रकार से किया जा सकता है—मन, वचन एव तन के द्वारा मनुष्य पाप कर सकता है। ये तीनो ही ढंग के पाप है। **ध्रुवं स वै प्रेत्य नरकानुपैति**—इन कार्यो के लिए दण्ड मिलना सुनिश्चित है।

लोग अगले जीवन मे विश्वास नही करते क्योकि वे कठिनाइयो तथा दण्ड से बचना चाहते है परन्तु अगला जन्म पाने से बचा नही जा सकता। सभी को यह भली-भाँति ज्ञात है कि यदि हम विधि-विधान (कानून) के अनुसार कर्म नही करेंगे तो हमे दण्ड मिलेगा ही। यदि अपराध किया जाता है तो शासन दण्ड अवश्य देगा। कभी-कभी अपराधी शासन के दण्ड से भले ही बच जाए परन्तु भगवान् के नियम से कोई नहीं बच सकता है। मनुष्य छल कर सकता है, चोरी करके छिप सकता है तथा इस प्रकार शासन के दण्ड से बच भी सकता है परन्तु वह प्रकृति के नियम—श्रेष्ठ नियम—से स्वयं को नही बचा सकता। यह कठिन है क्योकि अनेक साक्षी (गवाह) है. दिन का प्रकाश साक्षी है, चन्द्रमा की किरणे साक्षी है और फिर सर्वोच्च साक्षी तो श्रीकृष्ण है ही। अत. हम यह नही कह सकते, "मेरे पाप को कोई नही देख सकता है।" भगवान् श्रीकृष्ण सबके हृदय मे स्थित सर्वोच्च साक्षी है तथा न केवल वे हमारे चिन्तन एवं कार्यो को देखते है वरन् जीवो को ऐसी सुविधा भी देते है। यदि मनुष्य अपनी इन्द्रियो को सन्तोष देने के लिए कुछ करना

चाहता है तो श्रीकृष्ण सब सुविधा देते है। इसको भगवद्गीता में कहा गया है। **सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो**—"मै ही सब प्राणियो के हृदय मे स्थित हूँ।" **मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च**—"मुझसे ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन (विस्मृति) प्राप्त होता है।"

इस प्रकार श्रीकृष्ण हम सबको अवसर देते है। यदि हमें श्रीकृष्ण की कामना है तो वे हमे उनको प्राप्त करने का अवसर देंगे और यदि हम श्रीकृष्ण को नही पाना चाहते तो वे ही उनको भूल जाने का अवसर भी देगे। यदि हम श्रीकृष्ण को भूलकर. भगवान् को भूलकर, जीवन का भोग करना चाहते है तो वे हमें ऐसी सब सुविधाएँ देंगे जिनसे हम उनको भूल सके। परन्तु यदि हम श्रीकृष्णभावनामृत से युक्त जीवन के आनन्द मे मग्न होना चाहते है, तब श्रीकृष्ण हमे उस ओर प्रगति करने का अवसर देंगे। यह हम पर निर्भर करता है। यदि हम श्रीकृष्णभावनामृत (कृष्ण-भक्ति) के बिना ही सुखी हो सकते है तो श्रीकृष्ण को इस पर कोई आपत्ति नही है। **यथेच्छसि तथा कुरु**। अर्जुन को सलाह देने के पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने केवल यह कहा, "मैने अब तुम्हे प्रत्येक वस्तु समझा दी है। तुम्हारी जो इच्छा हो वह कर सकते हो।" अर्जुन तत्काल उत्तर देते है, **करिष्ये वचनं तव**—"मैं अब आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।" यही कृष्ण-भक्ति है।

भगवान् हमारी अल्प स्वाधीनता मे हस्तक्षेप नही करते। यदि हम उनकी आज्ञानुसार कर्म करना चाहते है तो वे हमारी सहायता करेंगे। कभी हमारा यदि पतन भी हो जाय परन्तु हम निष्कपट भाव से यह सोचे, "अब से मै श्रीकृष्ण-भावनामृत मे स्थित रहूँगा और भगवान् की आज्ञा-पालन करूँगा," तो श्रीकृष्ण हमारे सहायक होगे। हमारा पतन हो जाने पर भी, पूर्ण रूप से क्षमा कर दिया जाएगा तथा सद्बुद्धि प्रदान की जाएगी। वह बुद्धि हमसे कहेगी, "इसको मत करो। अब अपना कर्त्तव्य पालन करने लगो।" परन्तु, यदि हम श्रीकृष्ण को भूलना चाहते है, उनके बिना सुखी होने की इच्छा रखते है तो भगवान् अनेक अवसर देंगे जो हमे जन्म-जन्मान्तर तक उनको भूलने मे योग्य बनाये रखेंगे।

परीक्षित महाराज ने कहा. "यह सत्य नही है कि भगवान् नही है या जो कुछ हम कर रहे है। उसके उत्तरदायी हम नही है।" नास्तिक अपने पापो के कारण भगवान् को अस्वीकार करते है। यदि वे सोच ले कि भगवान् है तो उनको दण्ड के भय से कम्पन होने लगेगा, इसीलिए वे भगवान् के अस्तित्व को ही अस्वीकार कर देते है। चूहो पर जब बडे पशु आक्रमण करते है तो वे आँख बन्द कर सोचते रहते है, "मैं मरने वाला नही हूँ।" परन्तु वे हर प्रकार से मारे ही जाते है। उसी प्रकार भले ही हम भगवान् अथवा उनके नियमो को न माने फिर भी भगवान् एवं उनके नियम वर्त्तमान है। उच्च न्यायालय मे भले ही यह कहा जा सकता है, "मैं

शासन के विधि-विधान (कानून) की परवाह नही करता," परन्तु शासन के विधि-विधान को स्वीकार करने के लिए हमें बाध्य किया जाएगा। यदि कोई राज्य के कानून को भंग करता है तो उसको कारागार (जेल) मे डालकर दण्ड दिया जाएगा। उसी प्रकार मूर्खतावश हम भले ही भगवान् के अस्तित्व को विविध उपायो के द्वारा अस्वीकार करते रहें, ("भगवान् नही है") अथवा ("मै भगवान् हूँ"), परन्तु अन्त में हम अपने अच्छे एवं बुरे प्रत्येक कार्य के उत्तरदायी होगे।

कर्म के अथवा शासन के नियमानुसार यदि हम उचित रूप से कार्य करे और पुण्य कर्म करे तो हमको सौभाग्य प्राप्त होगा। यदि हम पाप कर्म करेंगे तो हमको कष्ट उठाना पड़ेगा। अतएव शुकदेव गोस्वामी कहते है :

तस्मात्पुरैवाश्विह पापनिष्कृतौ यतेत मृत्योरविपद्यताऽऽत्मना।
दोषस्य दृष्ट्वा गुरुलाघवं यथा भिषक् चिकित्सेत रुजां निदानवित्॥

"तुम्हें यह भली-भाँति ज्ञात रहे कि पाप के उत्तरदायी तुम हो और अपने पाम की गुरुता एवं लघुता के अनुसार मृत्यु के पूर्व शास्त्रो मे वर्णित कोई प्रायश्चित तुम्हें अवश्य स्वीकार करना चाहिए। जिस प्रकार कुशल चिकित्सक रोगो के कारणों और उनकी गम्भीरता के अनुसार तत्काल ही चिकित्सा कर डालता है।" [भागवत ६. १. ८]

जिस प्रकार रोग होने से चिकित्सक (डॉक्टर) खोजा जाता है उसी प्रकार वैदिक जीवन के अनुसार पापो के प्रायश्चित्त के लिए ब्राह्मणो के एक विशेष वर्ग के पास जाना चाहिए। कई प्रकार के प्रायश्चित्त होते है। मनुष्य किए गए पाप नष्ट करने के लिए जो तपस्या करता है उसे प्रायश्चित्त कहते है। क्रिश्चयनो (ईसाइयो) के धर्म-ग्रन्थ बाइबिल मे भी इसका उदाहरण है। श्रीशुकदेव जी कहते है कि पापो की गुरुता और लघुता के अनुसार मनुष्य को बताए गए प्रायश्चित्त करने पड़ते है। रोग की गम्भीरता के अनुसार चिकित्सक सस्ती अथवा महँगी औषधि (दवा) लिख सकता है। सिर दर्द के लिए वह ऐस्प्रो लिख दे परन्तु भयंकर रोग के लिए शल्य-चिकित्सा (ऑपरेशन) की सलाह दे सकता है जिसमें हजारो रुपये लग सकते है। उसी प्रकार पाप, रोग के समान होते है इसीलिए स्वस्थ होने के लिए मनुष्य को निर्धारित चिकित्सा करानी चाहिए।

जन्म-मृत्यु के चक्र मे पड़ने के कारण आत्मा रोगी अवस्था स्वीकार करती है। आत्मा के ऊपर जन्म, मृत्यु अथवा रोग का प्रभाव नही पड़ता क्योकि यह शुद्ध है। श्रीमद्भगवद्गीता [२ २०] मे भगवान् श्रीकृष्ण कहते है कि आत्मा का जन्म नही होता (**न जायते**) तथा इसका मरण भी नही है (**म्रियते**)।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यं शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

"आत्मा किसी भी काल में न तो जन्मती है और न मरती ही है तथा एक बार होकर यह कभी नष्ट भी नही होती। यह अजन्मा, नित्य शाश्वत तथा पुरातन है। देह का वध होने पर आत्मा का वध नही होता।"

आधुनिक सभ्यता को एक ऐसी शिक्षण संस्था की घोर आवश्यकता है जो मृत्यु के पश्चात् क्या होता है, इस बात की शिक्षा लोगो को दे। वास्तव मे वर्त्तमान शिक्षा की पद्धति अत्यधिक दोषपूर्ण है क्योकि जब तक यह ज्ञान नही है कि मृत्यु के बाद क्या होता है तब तक मनुष्य पशुओ के समान ही मरता है। पशु को यह ज्ञात नही कि उसकी मृत्यु होने वाली है अथवा उसको दूसरा शरीर मिलने जा रहा है। किन्तु, मनुष्य जीवन को तो इससे अधिक उन्नत होना चाहिए। हमे आहार, निद्रा, भय (आत्मरक्षा) एव मैथुन जैसे पशुओ के कार्यो मे ही केवल रुचि नही रखनी चाहिए। जीवो के पास आहार के लिए भले ही प्रचुर भोजन हो, सोने के लिए अनेक सुन्दर भवन हो, मैथुन के लिए उत्तम व्यवस्था हो अथवा आत्म-रक्षा के लिए पूर्ण प्रबन्ध हो, फिर भी इन सबका यह अर्थ नही कि वे मनुष्य है। उपरोक्त कर्मो पर आधारित सभ्यता पशुओ की सभ्यता है। क्योकि पशु भी इन्ही कर्मो मे रुचि रखते है, इसलिए यदि मानव इनसे परे नही जाता तो फिर मनुष्य जीवन और पशु जीवन मे अन्तर ही क्या रहा ?

अन्तर तभी हो सकता है जब मनुष्य को जिज्ञासा होती है, "मैं क्यो इस कष्टपूर्ण स्थिति मे हूँ ? क्या इनसे बचा जा सकता है ? क्या कही शाश्वत (नित्य) जीवन है। मै मरना नही चाहता और न ही कष्ट उठाना चाहता हूँ। मै अत्यन्त सुखी एवं शान्तिपूर्ण जीवन जीना चाहता हूँ। क्या इसको पाने का कोई अवसर है ? वह विधि अथवा विज्ञान क्या है जिसके द्वारा ऐसा जीवन प्राप्त किया जा सकता है ?" जब ये प्रश्न उठते है और इनका उत्तर पाने के लिए कदम उठाये जाते है तभी हमारी सभ्यता, मानव सभ्यता है। जहाँ ये प्रश्न पूछे ही नही जाते तो उसे पशुओ की सभ्यता माननी चाहिए। पशु और पशुओ के समान मनुष्य आहार, निद्रा, भय तथा मैथुन की विधि को बनाये रखने मे ही रुचि रखते है परन्तु वास्तविकता यह है कि उन्हे इन विधियो का त्याग करने के लिये बाध्य होना पड़ता है। तथ्य तो यह है कि सच्ची आत्म-रक्षा की ही नही जा सकती क्योकि कोई भी क्रूर मृत्यु के हाथो से अपनी रक्षा नही कर सकता। उदाहरण के लिये हिरण्यकशिपु, जिसने अमर होने के लिए अत्यन्त कठोर तपस्या की परन्तु अन्त मे भगवान् ने इसको असफल सिद्ध कर दिया। उन्होने श्रीनृसिंहदेव के रूप मे प्रकट होकर असुर हिरण्यकशिपु का अपने नखो से वध किया। नाम-मात्र के वैज्ञानिक आजकल दावा कर रहे है कि भविष्य मे कभी न कभी हम वैज्ञानिक उपायो के द्वारा मृत्यु को रोक देगे परन्तु यह घोषणा पागलपन की बकवास का एक और उदाहरण है। मृत्यु को रोकना सर्वथा असम्भव

है। हम भले ही विज्ञान के क्षेत्र में अनेक महान् प्रगति कर ले परन्तु जन्म, मृत्यु, जरा (बुढ़ापा) और व्याधि (बीमारी) इन चार कष्टो का कोई भी वैज्ञानिक हल नही है।

जो बुद्धिमान् है उन्हे जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि इन चार प्रधान समस्याओ को हल करने के लिए अधीर रहना चाहिए। कोई मरना नही चाहता परन्तु इसका हल नही है। सभी को मरना पड़ता है। सभी लोग गर्भपात की विधियो के द्वारा जन-संख्या की दिन-दूनी रात-चौगुनी प्रगति को रोकने के लिए अत्यधिक उत्सुक है परन्तु जन्म हो रहे है। न मृत्यु को रोका जा सकता है और न ही जन्म को। उसी प्रकार औषधियो के क्षेत्र में नवीनतम आविष्कारों के द्वारा न व्याधि रुक सकती है और न ही वृद्धावस्था।

मनुष्य भले सोच सकता है कि उसने अपने जीवन की सम्पूर्ण समस्याओ को सुलझा लिया है परन्तु जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि इन समस्याओ का हल कहाँ है? वह हल कृष्ण-भक्ति है। हममे से प्रत्येक अपना शरीर प्रतिपल त्याग रहा है और शरीर त्यागने का पथ मृत्यु कहलाता है। परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण यह भी कहते है :

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

"हे अर्जुन! मेरे जन्म एव कर्म की दिव्य प्रकृति को जो मनुष्य तत्त्व से जान लेता है वह देह को त्यागकर संसार में फिर जन्म नही लेता वरन् मेरे सनातन धाम को ही प्राप्त हो जाता है।" [गीता ४ ६]

ऐसे मनुष्य की क्या गति है? **मामेति**—वह श्रीकृष्ण के समीप पुनः लौट आता है। यदि हमे श्रीकृष्ण के समीप जाना है तो हमे अप्राकृत शरीर के निर्माण की अवश्य तैयारी करनी पड़ेगी। वह तैयारी है कृष्ण-भक्ति का साधन। यदि हम स्वयं को श्रीकृष्णभावनामृत से युक्त रखते है तो शनैः-शनै. अपने अप्राकृत शरीर का निर्माण कर लेते है जो हमे तत्काल कृष्णलोक ले जाता है जहाँ हम सच्चिदानन्द जीवन की प्राप्ति कर नित्य वास करते है।

भक्तों ने श्रीकृष्ण को सर्वस्व समर्पण किया है और यह कदापि एक भूल नहीं है।

लिने लुडविग को लिखे गए अपने पत्र मे श्रील प्रभुपाद निवेदन करते हैं, "मेरे शिष्यो को किसी धृष्टता अथवा रुक्ष व्यवहार करने के कारण दया करके क्षमा कर दीजिए। अन्तत , भगवान् की सेवा के लिए अपना जीवन पूर्णरूपेण अर्पित कर देना एक सरल वस्तु नही है और माया अर्थात् भ्रामक भौतिक शक्ति, इन व्यक्तियो को विशेष रूप से अपने बन्धन मे बनाए रखने के लिए अथक परिश्रम करती है, जिन्होने भगवान् का भक्त बनने के लिए माया की सेवा त्याग दी है। ये भक्त-गण माया के प्रेम अर्थात् काम से किंचित् अनासक्त हो गए हैं और वे अब कृष्ण-प्रेम चाहते हैं, आनन्द एव आदान-प्रदान मे परिपूर्ण हैं, परन्तु उनका अभी इस स्तर तक विकास नही हुआ है। इसके अतिरिक्त मैं और क्या कहूँ।"

आदरणीय स्वामी जी,

कृपया सप्रेम इस पत्र को स्वीकार कीजिए। हमने आपके दो युवकों (हरे कृष्ण-भक्तो) से भिन्न-भिन्न समय पर चर्चा की। दोनो का ही भेंट करने वाले लोगो के प्रति अत्यधिक नकारात्मक दृष्टिकोण है।

जो हुआ है उस पर आप को विश्वास नही करना चाहिए।

ये युवक भगवान् का प्रतिनिधित्व करते है। भगवद्भावना अन्तर्मन की वस्तु है। उनका दृष्टिकोण दया से अवश्य ही परिपूर्ण होना चाहिए। हम इसका अनुभव करते है, अत. स्वर्ग के इन छोटे से टुकड़ो को शान्ति के रूप मे लोगो के मध्य प्रस्तुत करते है। यदि ऐसा नही हुआ, तो आपके उद्देश्य की पराजय हो जाएगी।

प्रेम ही सब कुछ है। इसे यथावत् ही रहने दिया जाए। प्रेम और प्रेम, और कुछ नही।

मेरी प्रार्थनाएँ आपके साथ है......और मै आपकी प्रार्थना के लिए याचना करता हूँ।

आपका ही, भगवद्भावना में
लिने लुडविग

प्रिय लिने लुडविग,

कृपया मेरा आशीर्वाद ग्रहण कीजिए। विनम्र निवेदन है कि मुझे केलीफोर्निया से भेजा गया आपका पत्र प्राप्त हुआ मैने सावधानीपूर्वक पत्र के विवरण का अध्ययन किया। यद्यपि भारत में भ्रमण एवं प्रचार के अत्यधिक व्यस्त कार्यक्रम के कारण, मुझे अब तक आपके पत्र का सविस्तार उत्तर देने का अवसर न प्राप्त हो सका। आपको शिकायत है कि मेरे दो युवा शिष्यो से केलीफोर्निया मे आपको भेंट हुई और आपको वे लोग, "लोगो के प्रति अत्यधिक नकारात्मक दृष्टिकोण" रखने वाले प्रतीत हुए। निस्सन्देह, मै घटना और स्थिति को नही जानता हूँ, परन्तु मेरे प्रिय शिष्यो को किसी धृष्टता अथवा रुक्षता (भेदभाव) प्रदर्शित करने के कारण कृपा करके उनको क्षमा कर दीजिए। अन्ततः भगवान् की सेवा के लिए अपना जीवन पूर्ण रूपेण अर्पित कर देना एक सरल वस्तु नही है और माया अर्थात् भ्रामक भौतिक शक्ति, उन व्यक्तियो को विशेष रूप से अपने बन्धन मे बनाए रखने के लिए अथक परिश्रम करती है, जिन्होने भगवान् का भक्त बनने के लिए माया की सेवा त्याग दी है। इसलिए माया के आक्रमण को सहन करना और सभी प्रकार वे प्रलोभन की दशाओ में बलवान् बने रहने मे इन युवा अथवा अनुभव हीन भक्तो को कुछ समय तो लगेगा ही ये भक्त लोग भक्ति की कनिष्ठ (आरम्भिक) अवस्था पर है और उन वस्तुओ अथवा व्यक्तियो का जो सम्भवतः उनकी भक्ति-लता के लिए हानिकारक या अशुभ है, प्रतिरोध करने मे भक्तो को निश्चय ही कुछ समय लगेगा ही। ये प्रतिरोध की भावना मे आवश्यकता से अधिक मग्न हो जाएँ, जिससे ये स्वयं की माया से रक्षा कर सके। इस प्रकार उन लोगो को, जो माया की भौतिक शक्ति के द्वारा भक्तो से कही अधिक मोहित है, ऐसे अभक्तो को ये लोग नकारात्मक या निराशावादी प्रतीत होगे।

"परन्तु वास्तव मे तथ्य यही है कि यह संसार (भौतिक जगत्) दुःख से पूर्ण, नकारात्मक स्थान, पग-पग पर विपदाओ से भरा हुआ है। यह संसार दु.खालयं **अशाश्वतम्** है—जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि का अस्थायी स्थान और केवल दु:ख और कष्टो का घर है। इन वस्तुओ को यथानुरूप ढंग से समझ लेने के स्तर पर आ जाना कोई साधारण-सा कार्य नही है और इसीलिए जो व्यक्ति यह ज्ञान प्राप्त करते है उनको 'महात्मा' कह कर वर्णन किया जाता है।

मामुपेत्य पुनर्जन्म दु खालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धि परमां गताः ॥

[गीता ८.१५]

इसका अर्थ यह हुआ कि जिन्होने यह समझ लिया है कि भौतिक जगत् दु.खो मे पूर्ण एवं अस्थायी स्थान है वे लोग यहाँ कभी नही लौटते, क्योकि वे महात्मा है, अत. श्रीकृष्ण उनको अपने साथ रखते है। क्योकि ऐसे महात्मा लोगो ने श्रीकृष्ण के विशुद्ध भक्त बन कर अपने को इस अप्रिय स्थान से मुक्त करने योग्य बना लिया है। यह श्लोक श्रीकृष्ण अर्थात् स्वय भगवान् के द्वारा भगवद्गीता [८ १५] मे कहा गया है। भगवान् से बढ कर कौन अन्तिम अधिकारी (प्रमाण) हो सकता है ? मुख्य वस्तु तो यह है कि आध्यात्मिक जीवन मे उन्नति करने के लिए, हमे प्रत्येक भौतिक वस्तु को तब तक निराशापूर्ण नेत्र से ही देखना है, जब तक उसका प्रयोग श्रीकृष्ण की सेवा मे और उनको सन्तुष्ट करने के लिए न किया जाय। हम स्थूल पदार्थ के जगत् मे किसी प्रकार के चिर स्थायी आनन्द अथवा अपनी सर्वाधिक प्रबल लालसा को सन्तुष्ट करने के विषय मे बहुत अधिक आशावान् नही है।

आपने अपने पत्र मे 'प्रेम' शब्द का अनेक बार प्रयोग किया है, परन्तु वास्तव में तो तथ्य यही है कि इस ससार मे प्रेम नाम की कोई वस्तु है ही नही। यह केवल एक मिथ्या प्रचार (प्रॉपेगण्डा) है। जिसे लोग यहाँ प्रेम कहते हैं वह केवल काम अर्थात् अपनी इन्द्रिय तृप्ति की इच्छा है :

काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥

श्रीकृष्ण अपने शिष्य अर्जुन से कहते है, "कि यह केवल काम है...जो इस जगत् का सर्वभक्षक (कभी न तृप्त होने वाला) महापापी शत्रु है।" [गीता ३.३७] वैदिक भाषा मे सासारिक 'प्रेम' के लिये कोई शब्द नही है, जैसा कि हम वर्त्तमान मे प्रयोग किया करते है। काम शब्द का अर्थ भौतिक कामनाएँ (इच्छाएँ) है। प्रेम नही, परन्तु वेदो में 'वास्तविक प्रेम' के लिए जो शब्द हम पाते है वह है प्रेमा। इस प्रेमा का अर्थ केवल भगवान् के साथ प्रेम करना है। भगवान् से प्रेम करने के अतिरिक्त और किसी से प्रेम करने की कोई सम्भावना ही नही है। यहाँ केवल काम-इच्छाएँ भर है। जड पदार्थ के इस वातावरण मे मानव के कार्यों का समस्त क्षेत्र न केवल मानव, वरन् समस्त जीव मात्र के प्रत्येक कार्य—पर आधारित है। काम के कारण ही हमे कार्यों को करने के लिए आवेग प्राप्त होता है और इस प्रकार प्रत्येक वस्तु काम—इच्छा के कारण दूषित है। काम का अर्थ है स्त्री और पुरुष के बीच का आकर्षण। यह और कुछ नही केवल काम जीवन है। जिसकी धुरी पर यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड चक्कर काट रहा है—और कष्ट पा रहा है। यह एक (नग्न) सत्य है। यहाँ नाम

मात्र के प्रेम का अर्थ है कि "तुम मेरी इन्द्रियो को तृप्त करो, और मै तुम्हारी इन्द्रियो को तृप्त करूँगा।" और जैसे ही यह तृप्ति रुक जाती है तत्काल ही विवाह-विच्छेद (तलाक) झगड़ा और घृणा उत्पन्न हो जाते है। प्रेम की इस मिथ्या धारणा के भीतर बहुत सी घटनाएँ हो रही है। वास्तविक प्रेम का अर्थ तो भगवान् श्रीकृष्ण से प्रेम करना है।

प्रत्येक जीव अपनी प्रेम करने की प्रवृत्ति को किसी न किसी वस्तु मे लगाना चाहता है, जो उसकी मति के अनुसार प्रेम करने के योग्य है। परन्तु यहाँ प्रश्न केवल अज्ञानता का है। क्योकि लोगो को इसका ज्ञान ही नही है कि प्रेम करने की परम वस्तु (परम प्रेमास्पद) वास्तव मे कौन है ? जो वास्तव मे प्रेम को स्वीकार करने के और उसका आदान-प्रदान करने के योग्य है ? लोगो को इसका ज्ञान ही नही है। इसके विषय मे कोई उचित जानकारी भी नही है। जैसे ही आप को किसी भौतिक वस्तु के प्रति आसक्ति होती है, वह वस्तु आपके मुख पर आघात करेगी, उस वस्तु का क्षय हो जाएगा और निराशा ही केवल आपके हाथ लगेगी। इसके द्वारा आपका असन्तुष्ट एवं हतोत्साहित होना सुनिश्चित है। यह एक तथ्य है। परन्तु ये युवा बालक जो आपके देश मे ही नही, वरन् सम्पूर्ण विश्व मे है, वे स्वीकार कर रहे हैं, "हाँ, यह एक तथ्य है," और वे श्रीकृष्ण की सही जानकारी पा रहे है :

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥

"कई जन्म-जन्मन्तरो के पश्चात् यथार्थ ज्ञानवान् व्यक्ति मुझे समस्त कारणो के परम कारग और सर्वव्यापक जानकर मेरी शपथ ग्रहण करता है। ऐसा महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।" [गीता ७ १९] यहाँ फिर श्रीकृष्ण 'महात्मा' शब्द का प्रयोग करते है। इसलिए जिन भक्तो से आपकी भेंट हुई है वे साधारग युवक और युवती नही है। जी नही। उनको वास्तव मे बुद्धिमान् अर्थात् महात्मा माना जाना चाहिए, क्योकि उन्होने सासारिक जीवन के दुःख पूर्ण रोगो का (भव रोग) का अनेक जन्मो मे अनुभव कर लिया है और उस रोग से उनको घृणा हो चुकी है। इसलिए वे उच्चतर ज्ञान की खोज कर रहे है—वे किसी श्रेष्ठ वस्तु की खोज कर रहे है—और जब वे श्रीकृष्ण को पाते है और उनकी शरण ले लेते है, तो वे महात्मा बन जाते है। महात्मा का अर्थ हुआ जो वस्तुत. ज्ञान मे स्थित है। यह ससार एक जेल के समान है : यह दण्ड देने का स्थान हमारे लिए इसलिए बनाया गया है—जिससे हम विरक्ति के स्तर तक आ सके। और अन्त मे श्रीकृष्ण की शरण ले कर सच्चिदानन्दमय जीवन को अपने मौलिक स्वरूप मे स्थित कर सके। इसलिए इन

भक्तों को श्रेय मिलना चाहिए कि उन्होने जो कार्य किया है वह सुदुर्लभ है अर्थात् ऐसा होना मानव समाज के सभ्य मनुष्यो के वीच वहुत दुर्लभ है।

श्रीकृष्ण की शरण में जाने से, व्यक्ति को उस परम वस्तु की प्राप्ति होगी जिससे प्रेम किया जा सके अर्थात् भगवान् की प्राप्ति होगी। भगवद्-प्रेम सभी लोगो मे है, जिस प्रकार प्रयोग न की गई माचिस की एक तीली मे आग रहती है, परन्तु वह ढँकी रहती है। उसी ढग से यदि कोई किसी न किसी प्रकार खोए हुए अपने भगवद्-प्रेम को जाग्रत कर ले और श्रीकृष्ण उसके परम प्रेमास्पाद, परम सखा, परम स्वामी या परम प्रेमी बन जाते है, तो उस व्यक्ति को फिर कभी भी निराश या दुःखी नही होना पडेगा। वही दूसरी ओर क्यो कि उसकी प्रेम करने की प्रवृत्ति उचित स्थान पर लग गई है, इसलिए परम सन्तुष्ट हो जाएगा :

मच्चित्ता मग्दतप्राणा बोधयन्त: परस्परम्।
कथयन्तश्च मा नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥

जिन भक्तो का जीवन श्रीकृष्ज के प्रति शारणागत हो गया है वे सदा ही "महान् सन्तोष और आनन्द," का आस्वादन कर रहे है और वे नित्य निरन्तर ज्ञान के प्रकाश से युक्त है, उनका दृष्टिकोण सदैव आशाजनक है, निराशापूर्ण नही, जैसा कि आप कहते है [गीता १० ९]। महाभागवत (उत्तम भक्त) सभी के मित्र होते हैं। **यो युक्तो विशुद्धात्मा**—कृष्ण की प्रेमा भक्ति मे सलग्न शुद्ध आत्मा **सर्व भूतात्मा** है अर्थात् वे सबको प्रिय है और सब लोग उनको प्रिय है। दूसरे स्थान मे श्रीकृष्ण दावा करते है कि उनके भक्त, जो उनको अत्यन्त प्रिय है, **अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्र: करुणा एव च,** वे भक्त ईर्ष्यालु नही, परन्तु सभी जीवो के दयालु मित्र है। इतना ही नही, भक्त समदर्शी भी है। **पण्डिता. समदर्शिन:** वे कभी कोई भेद-भाव नही रखते। भक्त-गण यह नही कहते, "यह अच्छा है और वह बुरा।" जी नही।

श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति की उन्नत अवस्थाओ के ये लक्षण है। प्रौढ ज्ञान के विकास के द्वारा भक्त-गण इन लक्षणो की प्राप्ति करते है। वर्त्तमान मे हमारे बहुत से भक्त किशोर अवस्था मे है। वे लोग धीरे-धीरे सीख रहे हैं और विधि इतनी अधिक प्रभावशाली, सुनिश्चित और प्रामाणिक है कि यदि वे इस विधि का पालन करते जाएँ, तो वे जैसा कि आप कहते है, प्रेम के उचित स्तर पर आ जाएँगे। परन्तु वह प्रेम प्राकृत (भौतिक) नही है और इसलिए साधारण सांसारिक व्यवहारो के मिथ्या और भावुकता के आधार पर प्रेम के उस स्तर का निर्णय नही करना चाहिए। यह हमारा विचार है। अत: यह कहना कि हम प्रेम नही कर रहे है, भले ही सासारिक दृष्टिकोण से सत्य हो सकता है। इन किशोर बालको ने परिवार, मित्र, पत्नी, देश, जाति इत्यादि के प्रति स्नेह को त्याग दिया है। ऐसा स्नेह जीवन की देहात्म-बुद्धि पर अर्थात् चपल इन्द्रियतृप्ति पर ही आधारित है। ये

भक्त गण माया के प्रेम अर्थात् काम से किंचित् अनासक्त हो गए है और वे कृष्ण-प्रेम चाहते है जो आनन्द और पूर्ण रूप से आदान-प्रदान करने के योग्य प्रेम है, परन्तु अभी उन लोगो का उस स्तर तक विकास नही हुआ है। इसके अतिरिक्त मै और क्या कहूँ। हम यह आशा नही कर सकते कि आपके देशवासी जो अनेक प्रकार के दुर्व्यसनो से ग्रस्त है, वे अचानक ही मासाहार करना, मादक द्रव्य लेना, अवैध स्त्री या पुरुष सग करना और दूसरी अनेक घृणित वस्तुओ को अचानक ही त्याग देगे और एक रात मे महान् आत्मानुभूति युक्त मनुष्य बन जाएँगे। ऐसा सम्भव नही है। यह अव्यवहारिक है। परन्तु कृष्ण-भक्त के रूप मे केवल दीक्षा ग्रहण करने से ही व्यक्ति मनुष्यो की सर्वश्रेष्ठ श्रेणी मे आ जाता है। **स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृतस्नकर्मकृत:** "मानव समाज मे वह व्यक्ति बुद्धिमान् है। सब प्रकार के कार्यो मे संलग्न रहने पर भी उसकी स्थिति दिव्य है।" और यद्यपि ऐसे भक्त भले ही आध्यात्मिक ज्ञान के सर्वोच्च स्तर तक उन्नत न हुए हो, तद्यपि उनमे कोई अस्थायी निर्बलताएँ होने पर भी, सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति माना जाना चाहिए।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्य: सम्यग्व्यवसितो हि स. ॥

"यदि कोई अतिशय दुराचारी व्यक्ति भी मेरी अनन्य भक्ति मे सलग्न हो तो उसे साधु ही मानना चाहिए, क्योकि वह यथोचित रूप मे स्थित है।" [गीता ९.३०] जैसे कि आप कहेगे, "मनुष्य ही त्रुटि करता है।" अतएव आरम्भिक अवस्था मे हम कुछ त्रुटियो की आशा सदैव कर सकते है। आप कृपा करके वस्तुओ को इस प्रकाश मे देखिए और क्षुद्र त्रुटियो को क्षमा कर दीजिए। सर्वाधिक महान् वस्तु तो यह है कि उन्होने अपना सर्वस्व, यहाँ तक कि अपना जीवन भी श्रीकृष्ण को समर्पित कर दिया है—और ऐसा करना कदापि एक त्रुटि नही है।

आपका नित्य शुभाकाँक्षी,
ए० सी भक्ति वेदान्त स्वामी

सर्वोत्तम एवं सर्वाधिक सौन्दर्यमय वस्तु का बोध

सन् १९७४ के मई मे श्रील प्रभुपाद की प्रसिद्ध आयरिश कवि मि डेसमोन्ड जेम्स बर्नार्ड से रोम मे भेट होती है। मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि आप एक कवि हैं उन्गिगा भगवान् का वर्णन कीजिए। आप वर्णन करने मे प्रवीण हैं, अत मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि आप अपनी वृत्ति के द्वारा (कविताओ मे) कृपा करके श्रीभगवान् का वर्णन कीजिए। तब आपका जीवन सफल होगा ।

जेम्स—भगवद्गीता पर आपका संस्करण अत्यन्त सुन्दर है ।

श्रील प्रभुपाद—दो वर्षो मे यह पचम संस्करण है ।

जेम्स—किस देश मे यह हरे कृष्ण अभियान सबसे अधिक सफल रहा है ?

श्रील प्रभुपाद—प्रत्येक देश मे । अफ्रीका, अमेरिका, कनाडा, जापान एवं चीन इत्यादि मे । परन्तु वास्तव मे यह अमेरिका मे सबसे अधिक सफल रहा है । अनेक अमेरिकन लोगो ने इस श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति को ग्रहण किया है ।

जेम्स—यहाँ रोम मे क्या स्थिति है ? क्या पुलिस के साथ समस्याएँ नही खडी होती ?

श्रील प्रभुपाद—प्रत्येक स्थान पर हमको समस्याओ का सामना करना पडता है । पुलिस कभी-कभी हम लोगो को कष्ट देती है परन्तु प्राय वे लोग थक जाते है और अन्ततः कुछ नही कहते । (हास्य)

जेम्स—पुलिस छोड देती है ? यह तो चमत्कार है । मै स्वयं इस पुलिस प्रणाली से बहुत थका सा अनुभव करता हूँ । देश की वर्त्तमान क्रिया-कलापो मे कही न कही कुछ त्रुटि अवश्य है । सम्भवतया आप मुझे इस विषय पर कुछ परामर्श दे सकते है कि इस प्रणाली को किस प्रकार पराजित किया जाए ।

श्रील प्रभुपाद—आप आयरिश लोग । कभी भी युद्ध से नही थकते ।

जेम्स—जी नही । (हास्य) युद्ध करना हमारे रक्त मे है ।

श्रील प्रभुपाद—वास्तव में, युद्ध निरन्तर ही हो रहा है।

जेम्स—तो, आपकी क्या सलाह है कि मैं इस विषय पर क्या करूँ ? मेरा अभिप्राय है, क्या नैतिक रूप से यहाँ बैठे रहना मेरे लिए उचित है...

श्रील प्रभुपाद—जब तक हम देहात्म-बुद्धि के कारण अर्थात् यह सोचते हुए कि हम यह शरीर हैं, भ्रम में पड़े हुए है, तब तक युद्ध होता ही रहेगा। एक मनुष्य सोच रहा है "मै आयरिश हूँ," दूसरा सोच रहा है "मै इटालियन हूँ," "अमेरिकन हूँ," "भारतीय हूँ," इत्यादि। आप कुत्ते और बिल्लियो के बीच लड़ाई को नही रोक सकते। वे लड़ाई करते ही क्यो है ? कुत्ता केवल यह सोचता है, "मै एक बड़ा कुत्ता हूँ," और बिल्ली यह सोचती है, "मैं बडी बिल्ली हूँ।" उसी प्रकार, यदि हम सोचे, कि "मै एक आयरिश हूँ, या मै इंग्लिश हूँ," तब तो हम कुत्ते और बिल्लियो से श्रेष्ठ नही है। जब तक लोगो मे देहात्म-ब्रुद्धि बनी रहेगी, तब तक युद्ध होता रहेगा।

जेम्स—हाउस आफ कॉमन्स (लन्दन) में महात्मा गान्धी किस लिए युद्ध कर रहे थे ?

श्रील प्रभुपाद—वह भी देहात्म-बुद्धि ही थी। कुछ भी अन्तर नही है। कुत्ता सोचता है "मैं कुत्ता हूँ," क्योकि उसे यह कुत्ते का शरीर मिला है। मैं सोच रहा हूँ कि मै भारतीय हूँ, क्योकि यह शरीर भारतीय मिट्टी मे प्राप्त हुआ है, तो मै कुत्ते से किस रूप में भिन्न हूँ ? देहात्म-ब्रुद्धि केवल पशुवाद है। जब हम यह समझ जाएँगे कि हम यह शरीर नही, वरन् आत्मा है, तभी शान्ति हो पाएगी। नही तो किसी भी प्रकार की शान्ति नही हो सकती। **स एव गोखरः**। वैदिक साहित्य कहते है कि देहात्म-बुद्धि रखने वाला मनुष्य ठीक एक गाय या गधे के समान है। लोगो को आत्म परिचय की इस निकृष्ट धारणा से परे जाना होगा। यह कैसे हो सकता है ?

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

"जो पूर्ण रूपेण मेरी अव्यभिचारिणी भक्ति के द्वारा मेरी सेवा करता है, किसी भी स्थिति मे उससे पतित नही होता, वह अविलम्ब प्रकृति के गुणो का उल्लघन करके ब्रह्मभूत स्तर प्राप्त करता है।" [गीता १४ २६]

हमारे संघ मे, बहुत से मॅक्सिकन, कॅनेडियन, भारतीय, यहूदी और मुसलमान भक्त है, परन्तु अब वे अपने को मुसलमान, क्रिश्चयन, यहूदी या और कुछ नही मानते। वे सब श्रीकृष्ण के दास हैं। यह ब्रह्म-साक्षात्कार है।

जेम्स—हरएक का कुछ नाम भी है।

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, नाम तो अवश्य ही रखना चाहिए। परन्तु यद्यपि, उदाहरण के लिए आपका नाम किसी दूसरे आयरिश मनुष्य से भिन्न है फिर भी आप सब यह

अनुभव करते है कि आप लोग आयरिश है । व्यक्तियो के नाम भले ही भिन्न हो सकते है, परन्तु इससे कुछ अन्तर नही पडता । उसमें गुण एक होना चाहिए । इसी की आवश्यकता है । जब हम श्रीकृष्ण के गुण प्राप्त कर लेते है, तो नामो में भिन्नता रहने पर भी, शान्ति हो जाएगी । यह सोऽहम् कहलाता है । एक राष्ट्र मे भिन्न-भिन्न लोगो के नाम अलग-अलग हो सकते है, परन्तु सभी लोग यही अनुभव करते है कि उनकी राष्ट्रीयता एक है । विविध वस्तुएँ भले ही रहे, परन्तु यदि गुण एक है, तो वह समता अर्थात् ब्रह्मभूत अवस्था है ।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कङ्क्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषुमद्भक्तिं लभते पराम् ।।

"इस प्रकार जो मायातीत दिव्य स्तर मे स्थित है, वह तुरन्त परब्रह्म का साक्षात्कार करता है और पूर्णतः प्रसन्न हो जाता है । वह न तो शोक करता है न ही इच्छा करता है । वह सभी जीवो में समभाव रखता है । इस अवस्था मे उसे मेरी विशुद्ध भक्ति अर्थात् परा-भक्ति प्राप्त होती है ।" [गीता १८ ५४]

यह ससार भव रोगियो के लिए दु खो से भरा हुआ है । परन्तु जो भक्त है, उनके लिए तो सम्पूर्ण विश्व ही वैकुण्ठ के समान है । निराकारवादियो के लिए, ब्रह्म अवस्था को प्राप्त करना, परतत्त्व मे लीन हो जाना, ही अन्तिम शब्द है ।

जेम्स—क्या वह परम सत्य (परतत्त्व) बाह्य है अथवा आन्तरिक ?

श्रील प्रभुपाद—बाह्य या आन्तरिक इसका प्रश्न नही है । परम सत्य बिना किसी द्वैत के है ।

जेम्स—वह तो ठीक है, परन्तु एक स्तर पर...।

श्रील प्रभुपाद—हम लोग परम अथवा अद्वय नही है । जब हम अद्वय स्तर पर स्थिर हो जाते है, तब हम भी अद्वय है । किन्तु अभी हम सापेक्ष जगत् मे है । परम सत्य यहाँ भी है, परन्तु हमारी इन्द्रियाँ इतनी उन्नत नही है कि वे परम सत्य को समझ सके । जब तक हम काल (समय) के नियन्त्रण मे है, तब तक अद्वय बनने का कोई प्रश्न ही नही उठता ।

जेम्स—तो 'अद्वय' का अर्थ है वह जीवन जो काल के परे हो ?

श्रील प्रभुपाद—यह तो भगवद्गीता मे कहा गया [४. ९] :

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ।।

"हे अर्जुन, जो मेरे जन्म एव कर्म के दिव्य (अप्राकृत) स्वभाव को तत्त्वतः जान लेता है, वह भौतिक देह को त्याग कर पुनः ससार मे जन्म नही लेता, वरन् मेरे सनातन धाम को प्राप्त करता है ।"

अपने घर, भगवान् के धाम को लौट जाना ही परम वस्तु है । जब तक हम

इस भौतिक जगत् मे है और इस शरीर को अपना स्वरूप मानते है, तब तक हमें एक शरीर से दूसरे शरीर में जाना पड़ेगा। यह देहान्तर अद्वय नही है। इसे यहाँ स्पष्ट कहा गया है। जब हम वैकुण्ठ जगत् में लौट जाते है, तब हमें अद्वय स्थिति की प्राप्ति होती है।

जेम्स—वह तो ठीक है, परन्तु मेरा प्रश्न यह है कि क्या यहाँ बैठे रहना हमारे लिए पर्याप्त है—आप और हम यहाँ मित्र के रूप मे बैठे हुए है और वार्त्तालाप करने की सौम्य कला मे सलग्न है, जबकि समुद्र के उस पार...।

श्रील प्रभुपाद—आपने एक वस्तु पर ध्यान नही दिया है कि यद्यपि आप एक स्थान मे बैठे हुए है और मैं दूसरे स्थान पर, यह भेद हमारे वास्तविक अस्तित्व को प्रभावित नही करता। हम दोनो लोग ही मनुष्य है। 'आयरिश मनुष्य', 'इग्लिश मनुष्य', 'प्रोटेस्टेन्ट', 'कैथोलिक' इत्यादि-इत्यादि धारणाएँ कुछ नही परन्तु विभिन्न वस्त्र है। हमे इन उपाधियो से मुक्त होना पडेगा। इस प्रकार व्यक्ति जब मुक्त होता है, तब वह शुद्ध हो जाता है।

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।
हृषीकेण हृषीकेश सेवनं भक्तिरुच्यते॥

[भक्ति रसामृत सिन्धु १ १ १२]

जब आप अपनी इन्द्रियो को शुद्ध कर लेते है और उन शुद्ध इन्द्रियो को इन्द्रियो के स्वामी श्रीकृष्ण की सेवा मे संलग्न करते है, तो आपने अपना जीवन पूर्ण बना लिया है। यही अद्वय स्तर है, यही परम स्तर है।

जेम्स—परन्तु वर्तमान प्रणाली आग्रह करती है कि आप अपने को अमेरिकन, भारतीय, अफ्रीकन या किसी अन्य देश के निवासी के रूप मे सोचा करे।

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ। भौतिकतावादी समाज का अर्थ है द्वैत।

जेम्स—परन्तु यह अनिवार्य है। आप भौतक अस्तित्व से कैसे बच सकते है?

श्रील प्रभुपाद—श्रीकृष्णभावनामृत मे यह सम्भव है। कमल का पुष्प जल मे रहता है, परन्तु जल का स्पर्श नही करता।

जेम्स—मै यह नही सोचता कि आप क्षेत्र की उपमाओ के द्वारा समझ सकते है। आप अस्पष्ट आध्यात्मिक धारणाओ के आधार पर राजनीतिक समस्याओ पर किस प्रकार तर्क कर सकते है? दोनो की प्रकृति पूर्ण रूप से भिन्न है।

श्रील प्रभुपाद—कभी-कभी विविध उदाहरण हमे समस्याओ को और अच्छे ढग से समझने और उनका सही मूल्यांकन करने मे सहायक होते है। फूलदान मे विविध पुष्प होते है और यह विविधता हमे पुष्पो का और श्रेष्ठ मूल्याकन करने मे सहायक होती है। किसी भी दृष्टिकोण से, श्रीकृष्ण सब प्रकार की समस्याओ को हल कर सकते है। आयरिश मनुष्य या इग्लिश मनुष्यो की ही समस्याएँ क्यो? सभी प्रकार

की समस्याएँ। जिसे विविधता के मध्य एकत्व कहा जाता है। हमारे भक्त अलग-अलग पृष्ठभूमि से आए है, परन्तु क्योकि वे सभी श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति मे है, अत: वे एक है।

जेम्स—यह तो बहुत अच्छा है। जी हाँ, मै उसको स्वीकार करता हूँ, यद्यपि मै यह जानना चाहूँगा कि जब आप 'श्रीकृष्णभावनामृत,' कहते है तब उसमे और क्राइस्ट-भावना मे कोई अन्तर है क्या ?

श्रील प्रभुपाद—जी नही, कोई अन्तर नही। क्राइस्ट, भगवान् के सन्देश का प्रचार करने के लिए आए। आप अपने को वास्तव मे क्राइस्ट के अनुयायी मानते है, तो आप कृष्ण-भक्त भी मन जाते है।

जेम्स—और क्या कृष्ण-भक्त अथवा भगवद्भक्त बनने का अर्थ अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाता है ? अर्थात् यह जान लेना कि वास्तव मे हम कौन है ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, भगवद्-भावना मे आत्मज्ञान सम्मिलित है, परन्तु यह आवश्यक नही कि आत्मज्ञान भगवद्भावनामृत ही हो।

जेम्स—परन्तु वह भगवद्भावनामृत हो भी सकता है ?

श्रील प्रभुपाद—जी नही।

जेम्स—व्यक्ति भीतर से भगवद्भावना को प्राप्त कर सकता है।

श्रील प्रभुपाद—उसका अर्थ तो यह ही हुआ कि वह भगवान् का भक्त है। आप सभी सूर्य के प्रकाश मे है और सूर्य की चेतना मे आपके द्वारा देख पाने की शक्ति भी सम्मिलित है। अन्धेरे मे आप अपने को भी नही देख सकते। रात्रि मे आप अपने हाथ या पैरो को भी नही देख सकते, परन्तु यदि आप सूर्य के सामने आएँ, तो आप सूर्य को और अपने आपको देख लेते है। सूर्य के प्रकाश के बिना, भगवद्-भावना के बिना, आत्मज्ञान अपूर्ण है। किन्तु भगवद्भावना, आत्मज्ञान को बहुत स्पष्ट बना देती है।

जेम्स—हम अपने शिक्षण व्यवसाय मे अनेकानेक युवा लोगों से भेट करते है और हम उनको किसी प्रकार की उपदेशात्मक मुक्ति के विषय मे शिक्षा देने का प्रयत्न नही करते। हम उनको इस ओर बोध कराने के लिए निर्देश देने का अवश्य प्रयत्न करते है कि क्या सर्वोत्तम है और क्या सर्वाधिक सौन्दर्यमय वस्तु है और उस संसार मे आध्यात्मिक दृष्टिकोण से इन ऋषियो के सम्बन्ध मे सबसे अधिक पुष्टिवर्धक वस्तु क्या है। शिक्षा-प्रणाली हमको यही तक अनुमति देती है। प्राय. छात्र लोग आध्यात्मिक स्थिति के प्रति पर्याप्त रूप से उदासीन नही होते, वे लोग भावुक दृष्टिकोण की ओर अधिक झुके रहते है। हमे प्राय. इन मूलभूत प्रश्नो का सामना पड़ता है, "मैं कौन हूँ ?" या "यह ससार क्या है ?"

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ।

जेम्स—अथवा हम यह पूछते है, "मै क्यो यहाँ हूँ ?"

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ, यह तो बहुत अच्छा है।

जेम्स—हम लोगो से पूछा जाता है, "मुझे यहाँ क्यो रहना चाहिए ? आप कौन है, शिक्षक और आपको हमें यह कहने का क्या अधिकार है कि क्या सोचा जाय और क्या न सोचा जाय या हम क्या बनें ? मै शेक्सपियर का अध्ययन क्यो करूँ ? मै मॉजर्ट क्यो सुनूं ? मुझे बॉब अधिक पसन्द है।" ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार के प्रश्न एक अत्यधिक भ्रमित मन से उत्पन्न होते है। इन प्रश्नो का कारण असुरक्षा, अस्थिरता और वर्त्तमान समाज की सम्पूर्ण सरचना मे विश्वसनीयता का अभाव है। प्रायः हमे इन प्रश्नो का उत्तर विषम और अस्पष्ट ढग से देना पड़ता है। प्रत्यक्ष रूप से उत्तर देने के स्थान पर, हमे अप्रत्यक्ष रूप मे उत्तर देना पडता है, उस मनोवृत्ति के अनुसार जिसके कारण छात्र-गण यह प्रश्न पूछा करते है। क्या आप सोचते है कि हमे उनको और अधिक प्रत्यक्ष ढग से उत्तर देना चाहिए ?

श्रील प्रभुपाद—आप समस्या के विषय में चर्चा कर रहे है...।

जेम्स—आधुनिक शिक्षा की समस्या के विषय मे।

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ। बहुत से प्रश्न है, परन्तु आधुनिक शिक्षा के द्वारा उनका उत्तर नही दिया जाता। "मै यहाँ क्यो आया हूँ ? क्या उद्देश्य है ?" इन प्रश्नो का उत्तर पूर्ण रूप से दिया जाना चाहिए। इसलिए वेद आदेश देते है—**तद्विज्ञानार्थं स गुरुम् एवाभिगच्छेत्**। इन सब प्रश्नो का उत्तर पाने के लिए हमे एक विश्वसनीय (प्रामागिक) गुरु का आश्रय अवश्य ही लेना चाहिए।

जेम्स—तब क्या हो जब आपके पास एक भी विश्वसनीय गुरु न हो ? तब क्या हो यदि हम से कहा जाए कि मि निक्सन विश्वसनीय गुरु है ? तब हम क्या करेंगे ?

श्रील प्रभुपाद—जी नही, जी नही। (हास्य) विश्वसनीय गुरु का एक आदर्श स्तर है। अभी आपने श्लोक की केवल एक पक्ति सुनी है। गुरु कौन है ? अगली पक्ति है : **श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्** श्रोत्रिय शब्द का अर्थ होता है वह व्यक्ति जिसने एक दूसरे विश्वसनीय श्रोत से सुना हो। गुरु वह है जिसने एक दूसरे योग्य गुरु के द्वारा सन्देश ग्रहण किया हो। यह ठीक उसी चिकित्सक (डॉक्टर) के समान है जिसने चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा एक दूसरे चिकित्सक के द्वारा ग्रहण की हो। उसी प्रकार, विश्वसनीय गुरु को गुरु परम्परा की शृखला मे अवश्य आना चाहिये। मौलिक गुरु तो भगवान् है।

जेम्स—जी हाँ। मै यह मान लेता हूँ।

श्रील प्रभुपाद—जिसने भगवान् से सुना है, वह उसी सन्देश को अपने शिष्यो को समझाता है। यदि शिष्य उस सन्देश मे परिवर्त्तन न करे, तो वह एक विश्वसनीय (योग्य) गुरु है। हमारी विधि यही है। हम श्रीकृष्ण अर्थात् भगवान् से सुन कर

शिक्षा लेते है और उनसे ही यह समझते है कि कौन पूर्ण है। अथवा हम श्रीकृष्ण के प्रतिनिधि से श्रवण करते है, जो श्रीकृष्ण का विरोध नही करते और जिन्होने उनके सन्देश को आत्मसात कर लिया है। यह नही कि हम उपदेश कुछ और दे और आचरण कुछ और करे। जो ऐसा करता है वह गुरु नही है।

जेम्स—अब मेरे वृद्ध पिताजी है, जो पश्चिमी आयर लैण्ड मे निवास कर रहे हैं। एक साधारण वृद्ध मनुष्य, अब ७८ वर्ष के हो गए है, वे आपकी पीढ़ी के हैं। इस आयु मे उनको यह अनुभूति हो गई है कि वह कहते हैं, "मुझे बताओ, पुजारी लोग, मुझे बताओ कि अन्ततः यह भगवान् ही है जो सब कुछ जानते हैं। परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि भगवान् को किसने ज्ञान दिया।" तब वह मेरे पास आते हैं और कहते है, "तुम तो विद्यालय मे गए हो और ग्रन्थों का अध्ययन किया है। मुझे बताओ कि भगवान् को किसने ज्ञान दिया?" तो मेरे पास इसका कोई उत्तर नही है। ७८ वर्ष और ३९ वर्ष के मनुष्यो में यह अन्तर है।

श्रील प्रभुपाद—जी नही, यह आयु का अन्तर नहीं है। यह ज्ञान का अन्तर है। ब्रह्मसूत्र मे यह प्रश्न उठाया गया है. भगवान् कौन है? सबसे पहले तो यह प्रश्न उठता है।

जेम्स—भगवान् को किसने शिक्षा दी?

श्रील प्रभुपाद—जी नही। सबसे पहले प्रश्न यह है कि भगवान् कौन है। तब हम यह पूछेंगे कि भगवान् को किसने शिक्षा दी। वेदान्त सूत्र कहते है, **अथातो ब्रह्म जिज्ञासा** अब हम यह जिज्ञासा करें कि भगवान् कौन है। जब तक आप यह नही जानते कि भगवान् कौन है, तब तक आप यह प्रश्न कैसे उठा सकते है कि भगवान् को किसने शिक्षा दी? यदि आप भगवान् को ही नही जानते, तो यह प्रश्न ही नही उठता कि भगवान् को किसने शिक्षा दी, क्या ऐसा नही है?

जेम्स—जी हाँ।

श्रील प्रभुपाद—भगवान् कौन है इसकी व्याख्या ब्रह्मसूत्र मे की गई है। **जन्माद्यस्य यतः**; भगवान् वे व्यक्ति है जिनसे प्रत्येक वस्तु उत्पन्न हुई है। यह भगवान् की परिभाषा है—परम पुरुष (चेतन) जिनसे प्रत्येक वस्तु उत्पन्न होती है। अब, परम पुरुष की प्रकृति क्या है? क्या वे एक मृत पत्थर है या चेतन है? इसकी व्याख्या की गई है। **जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्** (श्रीमद्भागवत १ १ १] परम पुरुष पूर्ण रूप से, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे प्रत्येक वस्तु से परिचित है। जब तक वे प्रत्येक वस्तु से पूर्ण रूप से परिचित न हो, तब तक वे भगवान् हो ही नही सकते। इसके बाद वह प्रश्न आता है जो आपने किया। भगवान् को किसने शिक्षा दी? उसका भी उत्तर दिया गया है। "**स्वराट**" वे पूर्ण रूप से स्वाधीन है। उनको किसी से शिक्षा लेने की आवश्यकता नही होती। यह भगवान् का लक्षण है।

यदि किसी को दूसरो से शिक्षा लेने की आवश्यकता पडती है, तो वह भगवान् नही है। श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता कही और उनको किसी और से गीता का अध्ययन नही करना पडा। मैने गीता को अपने गुरु महाराज से सीखा है, परन्तु श्रीकृष्ण को इसे किसी और से सीखना नही पडा था। जिस व्यक्ति को दूसरो से शिक्षा लेने की आवश्यकता नही होती वह भगवान् है।

जेम्स—यह मानव प्रेम कहाँ से आता है?

श्रील प्रभुपाद—प्रत्येक वस्तु भगवान् से आती है। भगवान् के अश होने के कारण, हम आशिक प्रेम प्रकट करते है, क्योकि मौलिक प्रेम भगवान् मे है। किसी वस्तु का अस्तित्व तब तक नही हो सकता, जब तक कि वह भगवान् मे न हो। इसीलिए भगवान् में प्रेम भी है।

जेम्स—और प्रेम की अभिव्यक्ति क्या भगवान् की अभिव्यक्ति है?

श्रील प्रभुपाद—जब तक प्रेम करने की प्रवृत्ति भगवान् मे न हो, तब तक हम उस प्रवृत्ति को कैसे व्यक्त (प्रकट) कर सकते है? एक विशिष्ट पिता से उत्पन्न हुए पुत्र मे पिता के लक्षण होते है। क्योकि भगवान् मे प्रेम करने की प्रवृत्ति है, अत. हममे भी वही प्रवृत्ति है।

जेम्स—ऐसा भी हो सकता है कि आवश्यकता के कारण आपमे प्रेम उत्पन्न हुआ हो।

श्रील प्रभुपाद—जी नही, "ऐसा हो सकता है," का प्रश्न ही नही है। हम तो भगवान् की परिभाषा अद्वय (परम) आधार पर कर रहे है। **जन्माद्यस्य यतः** भगवान् वे है जिनसे प्रत्येक वस्तु उत्पन्न हुई है। युद्ध करने की प्रवृत्ति भी भगवान् मे है, परतु उनका युद्ध और उनका प्रेम दोनो ही अद्वय (परम) है। ससार (भौतिक जगत्) में हम अनुभव करते है कि युद्ध प्रेम के ठीक विपरीत है, परन्तु भगवान् मे युद्ध करने की प्रवृत्ति और प्रेम करने की प्रवृत्ति एक है और उसमे कुछ भी अन्तर नही है। 'अद्वय' का अर्थ यही है। हम वैदिक शास्त्रो से सीखते है कि जब भगवान् के नाम मात्र शत्रु का भगवान् के द्वारा वध किया जाता है, तो उन शत्रुओ को मुक्ति मिलती है।

जेम्स—क्या अकेले ही भगवान् के इस ज्ञान को प्राप्त करना सम्भव है?

श्रील प्रभुपाद—जी नही। इसलिए हमने उस श्लोक का उद्धरण दिया है—**तदविज्ञानार्थ स गुरुम् एवाभिगच्छेत्**। शब्द **अभिगच्छेत्** का अर्थ है 'अवश्य।' अकेले यह सम्भव नही है। सस्कृत व्याकरण मे इसे क्रिया का विधिर्लिग रूप कहते है और इस रूप का तब प्रयोग किया जाता है जब और कोई दूसरा उपाय न हो। अभीगच्छेत् शब्द का अर्थ है कि हमे अवश्य ही गुरु का आश्रय लेना चाहिए। यह वैदिक निष्कर्ष है। इसलिये भगवद्गीता मे आप देखेगे कि अर्जुन श्रीकृष्ण से चर्चा कर रहे थे, परन्तु जब उन्होने देखा कि उनके द्वारा वस्तुओ का समाधान नही हो

पा रहा है, तो उन्होने स्वय को श्रीकृष्ण के प्रति समर्पित कर दिया और उनको अपने गुरु के रूप मे स्वीकार किया।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वा प्रपन्नम्॥

"कृपणता के कारण अब मै अपने धर्म के सम्बन्ध मे भ्रमित हो गया हूँ और सब धैर्य भी खो बैठा हूँ। इसलिए मै आपसे पूछता हूँ, मेरे लिये जो निश्चय किया हुआ श्रेयस्कर साधन हो, वह कहिए। मै आपका शरणागत शिष्य हूँ। अतएव कृपया मुझको शिक्षा दीजिए।" [गीता २.७] तो यहाँ हम देख सकते है कि अर्जुन अपने कर्त्तव्य के विषय मे भ्रमित है।

जेम्स—क्या यह कर्त्तव्य आत्मा के प्रति है, दूसरो के प्रति है, या देश के प्रति है ?

श्रील प्रभुपाद—सैनिक का कर्त्तव्य है अपने शत्रु के साथ युद्ध करना। अर्जुन योद्धा थे और श्रीकृष्ण ने उनको सलाह दी, "विरोधी दल तुम्हारा शत्रु है और तुम एक योद्धा हो। तुम अहिसक बनने का प्रयत्न क्यो कर रहे हो ? यह अच्छा नही है।" तब अर्जुन ने कहा, "वास्तव मे, मै भ्रमित हूँ। इस भ्रम के कारण मै सही निर्णय नही ले सकता। इसलिए मै आपको अपना गुरु स्वीकार करता हूँ। कृपया मुझको यथोचित शिक्षा दीजिए। अव्यवस्थित दशा मे, जीवन की भ्रमपूर्ण अवस्था मे, हमें अवश्य ही एक ऐसे व्यक्ति का आश्रय लेना चाहिए, जिसे पदार्थ का पूर्ण ज्ञान है : आप एक अधिवक्ता (एडवोकेट) के पास विधि-सम्बन्धी (कानूनी) समस्याओ को हल करने जाते है और एक चिकित्सक (डॉक्टर) के पास रोग सम्बन्धी समस्याओ को हल करने जाते है। ससार मे सभी लोग अपने आध्यात्मिक स्वरूप के विषय मे भ्रमित है। इसलिए यह हमारा कर्त्तव्य है कि एक विश्वसनीय गुरु का आश्रय ले, जो हमे वास्तव मे यथार्थ ज्ञान दे सकते है।

जेम्स—मै अत्यन्त भ्रमित हूँ।

श्रील प्रभुपाद—तो आपको अवश्य ही एक गुरु का आश्रय लेना चाहिए।

जेम्स—और वे यह निर्णय लेगे कि मुझे इस भ्रम से बचने के लिए किस प्रकार से सहायता की जाए।

श्रील प्रभुपाद—जी हॉ, गुरु का अर्थ ही यही है जो सभी प्रकार के भ्रमो को हल कर दे। यदि गुरु अपने शिष्य को भ्रम से नही बचा सकते, तो वे गुरु नही है। गुरु की कसौटी तो यही है।

ससार दावानललीढलोक त्राणाय कारुण्यघनाघनत्वम्।
प्राप्तस्य कल्याणगुणार्णवस्य वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥

यह सम्पूर्ण भ्रमित संसार ही भयकर दावानल के समान है। दावानल (वन मे लगी हुई आग) मे सभी पशु भ्रमित रहते है। वे यह नही जानते कि अपने जीवन की

रक्षा करने के लिए कहाँ जाएँ । उसी प्रकार संसार रूपी दावानल मे सभी लोग भ्रमित है । यह भयंकर दावानल किस प्रकार से बुझाया जा सकता है ? आप के मनुष्य निर्मित अग्निशामक वाहन का उपयोग करना सम्भव नही है, न ही पानी से भरी बाल्टियों के द्वारा इस आग को बुझाना सम्भव है । उस दावानल का हल यही है कि जव मेघ से वर्षा होती है, केवल तभी वह आग बुझाई जा सकती है । आग वुझाने की वह सामर्थ्य आपके हाथो में नही, वरन् भगवान् की दया पर निर्भर है तो मानव समाज भ्रमित दशा मे है और वह समस्याओ का हल नही ढूँढ़ सकता । गुरु का अर्थ है जिन्होने भगवान् की दया प्राप्त की है और वे भ्रमित मनुष्यो की समस्याओ को हल कर सकते है जिसने भगवान् की दया प्राप्त कर ली है, वह एक गुरु वन सकता है और उस दया को दूसरे लोगो को भी दे सकता है ।

जेम्स—गुरु को ढूंढ़ना भी तो एक समस्या है ।

श्रील प्रभुपाद—यह कोई समस्या नही है । समस्या यह है कि आप निष्कपट है या नही । आपके सामने समस्याएँ है, परन्तु भगवान् आपके हृदय मे है : **ईश्वरः सर्वभूतानाम्** भगवान् दूर नही है । यदि आप निष्कपट है तो भगवान् आपके पास गुरु भेज देते है । इसलिए भगवान् को चैत्य गुरु अर्थात् हृदय के भीतर उपस्थित गुरु भी कहा जाता है । भगवान् भीतर और बाहर दोनो अवस्थाओ से सहायता करते है । इस प्रकार प्रत्येक वस्तु का वर्णन भगवद्‌गीता मे है । यह भौतिक शरीर एक यन्त्र के समान हैं, परन्तु हृदय मे आत्मा है और आत्मा के साथ परमात्मा रूप से श्रीकृष्ण भी है, जो निर्देश देते है । भगवान् कहते है, "तुम ऐसा करना चाहते थे, अव यहाँ पर अवसर है । जाओ और उसको करो ।" यदि आप निष्कपट है तो आप कहते है, "अब, भगवान् मुझे आपकी कामना है ।" तब भगवान् आपको निर्देश देंगे । "अच्छा, अब तुम आओ और मुझे इस प्रकार प्राप्त करो ।" यह उनकी दयालुता है । किन्तु, यदि हम कुछ और चाहते है तो ठीक है हम उसको भी पा सकते है । भगवान् बहुत दयालु है । जब मै कोई वस्तु चाहता हूँ, तो वे मेरे हृदय में निर्देश देते है और मुझे कहते है कि उस वस्तु को किस प्रकार प्राप्त किया जाए । तो वे इस विषय मे क्यो नही निर्देश देते कि किस प्रकार एक गुरु का आश्रय लिया जाए ? सर्वप्रथम हम अपनी भगवद्‌भावना को पुन. जाग्रत करने के लिए अधीर बने । तब भगवान् हमें गुरु की प्राप्ति भी करा देंगे ।

जेम्स—आप का हार्दिक धन्यवाद है ।

श्रील प्रभुपाद—आपको भी हार्दिक धन्यवाद । मेरी तो आपसे यही प्रार्थना है कि आप एक कवि है, और अन्त मे आपसे निवेदन करता हूँ कि आप अपनी वृत्ति के द्वारा कविताओ मे कृपा करके भगवान् का वर्णन कीजिए । तब आपका जीवन

सफल होगा। और जो आपसे श्रवण करेगा, उसका भी जीवन सफल हो जाएगा। वेदो का यही आदेश है :

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः ।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ।।

[भागवत १. ५. २२]

समाज मे अनेक नेता है जो कवि, वैज्ञानिक, धर्म-तत्त्व-वेत्ता, दार्शनिक, राजनैतिज्ञ इत्यादि है। जो इस प्रकार अत्यन्त प्रवीण है उनको यह आदेश दिया गया है, आपका कर्त्तव्य है कि आप परम पुरुष भगवान् के यश का वर्णन करने के द्वारा अपने व्यवसाय (वृत्ति) को पूर्ण बनाएँ।

जेम्स—मेरा तो यही अनुभव है कि कुछ असाधारण कारणों के लिए ही एक विशेष कार्य करने को एक व्यक्ति का चुनाव किया जाता है।

श्रील प्रभुपाद—वह कारण भी यहाँ दिया गया है। **अविच्युतः**। कभी व्यर्थ न जाने वाला चुनाव यही है : "ऐसे समस्त व्यक्ति भगवान् के यश का वर्णन करे।"

जेम्स—परन्तु आप कह रहे थे कि गुरु का चुनाव किया जाता है। गुरु, कवि, पुजारी इत्यादि भगवान् के द्वारा चुने जाते है। एक व्यक्ति को कविता लिखने के लिए चुना गया है और दूसरे को चित्रकारी के लिए अथवा संगीत के लिए।

श्रील प्रभुपाद—तो जब आप संगीत की रचना करे, तो भगवान् से सम्बन्धित संगीत रचे। यही आपकी सिद्धि है।

जेम्स—जब मनुष्य अपने व्यवसाय के द्वारा भगवान् के लिए कार्य करता है तो उसका व्यवसाय उसकी सिद्धि (पूर्णता) बन जाता है ?

श्रील प्रभुपाद—जी हाँ।

जेम्स—आपका पुन. हार्दिक धन्यवाद है। हरे कृष्ण !

आठ

जीवन की सिद्धि

मनुष्य जीवन भगवत्साक्षात्कार के लिए बनाया गया है

सन् १९६९ मे लन्दन के कॉनवे हॉल मे श्रील प्रभुपाद एक भाषण देते हैं ". .यदि कोई इस प्रकार विचार करता है कि– 'मैं भगवान् के अतिरिक्त और किसी का दास नही हूँ, मेरा प्रयोजन भगवान् की सेवा करना है,' तो वह व्यक्ति मुक्त है। उसका हृदय तत्काल ही स्वच्छ हो जाता है और वह मुक्त है। इस स्तर की प्राप्ति होने के पश्चात्, ससार की समस्त कुण्ठा और उत्सुकता समाप्त हो जाती है, क्योकि व्यक्ति को ज्ञात हो जाता है– 'मैं भगवान् का दास हूँ। भगवान् मेरी रक्षा करेगे। मुझे किसी भी वस्तु के लिए चिन्ता क्यो करनी चाहिए?' "

आज के भाषण का विषय है हमारा भगवान् के साथ सम्बन्ध। इस सम्बन्ध का ज्ञान होना ही आत्म-साक्षात्कार है। यह सकीर्तन अभियान आत्म-साक्षात्कार की सर्वाधिक सरल विधि है, क्योकि यह हृदय को स्वच्छ कर देती है। अपने स्वरूप के सम्बन्ध मे हमारी भ्रान्ति, चित्त रूपी दर्पण पर जमी हुई धूल के कारण है। एक दर्पण पर यदि धूल हो, तो हम अपने को नही देख सकते। परन्तु यदि वह दर्पण अत्यधिक स्वच्छ है, तो हम उसमें स्वयं को देख सकते है। तो ध्यान हृदय को स्वच्छ करने की एक विधि है। ध्यान का अर्थ यही है कि परतत्त्व भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध को समझने का प्रयत्न करना।

हमारे सम्पर्क मे आने वाली प्रत्येक वस्तु के साथ, हमारा कुछ न कुछ सम्बन्ध होता है। अभी क्योकि मै इस आसन पर बैठा हुआ हूँ, तो हमारा सम्बन्ध यह है कि मै बैठूँगा और आसन मुझे धारण करेगा। आपका भी सबके साथ सम्बन्ध है। आप लोग अँग्रेज मनुष्य या भारतीय है, तो इस प्रकार आपका समाज से, अपने परिवार से, अपने मित्रो सम्बन्ध है। तो अब हम इस पर विचार करे कि हमारा भगवान् के साथ क्या सम्बन्ध है?

आप यदि प्रत्येक व्यक्ति से यह प्रश्न पूछे, तो बहुत कम लोग ही भगवान् के

साथ अपने सम्बन्ध को समझाने में योग्य होगे। कुछ लोग तो यह भी कहते है, भगवान् क्या होता है ? भगवान् मृत है। भगवान् से सम्बन्ध की बात तो बहुत दूर, मैं उसमें विश्वास तक नही करता हूँ। "क्योकि ये मलिन वस्तुएँ उनके हृदय को ढँके हुए है, इसीलिए वे कुछ भी नही देख सकते। हमारा प्रत्येक वस्तु के साथ सम्बन्ध है—तो हम भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध को समझने का प्रयत्न क्यो नही करते ? क्या ये बहुत बुद्धिमानी है ? जी नही। यह तो अज्ञानता है। इस भौतिक जगत् मे प्रत्येक प्राणी प्रकृति के तीन गुणो के द्वारा ढँके हुए है। इसलिए वे भगवान् को नही देख सकते। वे भगवान् को नही समझ सकते और न ही वे उनको समझने का प्रयत्न करते है। परन्तु भगवान् है। इंगलैण्ड मे प्रातः काल के समय कुहरा होता है, तो आप उस कुहरे के पीछे स्थित सूर्य को नही देख सकते। परन्तु क्या इसका यह अर्थ हुआ कि सूर्य है ही नही ? आप उसको इसलिए नही देख सकते, क्योकि आपके नेत्र ढँके है। यदि आप विश्व के दूसरे भाग मे तार भेजे तो वे लोग कहेगे, हाँ, सूर्य यहाँ है। हम उसको देख सकते है। वह अत्यन्त प्रकाशवान् है। तो जब आप भगवान् के अस्तित्व को अस्वीकार करते है या आप भगवान् के साथ अपना सम्बन्ध निश्चित नही कर पाते, तो इसका यह अर्थ है कि आप मे ज्ञान का अभाव है। यह नही कि भगवान् है ही नही। हमारे भीतर अभाव है। सूर्य नही ढँका हुआ है। सूर्य ढँका भी नही जा सकता। कुहरा या बादल या धुन्ध के पास सूर्य को ढँकने की शक्ति नही है। जरा सूर्य के आकाश पर तो विचार कीजिए। वह इस पृथ्वी से कई गुना बड़ा है और बादल अधिक से अधिक दस, बीस या सौ मील के क्षेत्र को भी नहीं ढँक सकते। परन्तु वे आपके नेत्रो को ढँक सकते है जब खरगोश पर कोई शत्रु आक्रमण करने आता है और वह अपनी रक्षा नही कर सकता, तो खरगोश अपने नेत्र बन्द कर लेता है और सोचता है, "मेरा शत्रु तो अब चला गया है।" उसी प्रकार, हम भगवान् की बहिरगा शक्ति के द्वारा आवृत्त (ढँके) है और सोच रहे है, "भगवान् मृत है।" भगवान् की तीन प्रकार की शक्तियाँ है। विष्णुपुराण मे भगवान् की शक्तियो का वर्णन आता है और वेदो तथा उपनिषदो मे भी भगवान् की विविध शक्तियो का वर्णन है। **परास्य शक्तिर् विविधैव श्रूयते** [श्वेताश्वतर उपनिषद् ६ ८]। भगवान् की विविध शक्तियाँ है। वेद कहते है, "भगवान् को कोई भी कार्य नही करना पड़ता।" हमे इसलिए कार्य करना है कि हमारे पास अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए और कोई साधन नही है—हमे भोजन करना पड़ता है, हमारे मन मे उस वस्तु को भोगने की इच्छा है, परन्तु भगवान् क्यो कार्य करे ? भगवान् को कार्य नही करना पड़ता। तो हम कैसे कह सकते है कि भगवान् ने ब्रह्माण्ड की सृष्टि की ? क्या यह कार्य नही हैं। जी नही। तब यह कैसे प्रकट हो गया ? भगवान् की विविध शक्तियाँ इतनी शक्तिशाली

है कि वे न केवल स्वाभाविक रूप से कार्य कर रही है, वरन् वे ज्ञान से भी परिपूर्ण है। हम यह भी तो देख ही सकते है जैसे एक पुष्प खिलता है और इतने सुव्यवस्थित रूप से विभिन्न प्रकार के रंगो की उसमे अभिव्यक्ति होती है। एक ओर श्वेत रग तो दूसरी ओर अधिक गाढ़ा श्वेत रग। तितली भी ऐसी ही कलात्मक समरूपता का प्रदर्शन करती है। तो यह सब चित्रकारी की गई है, परन्तु इतने पूर्ण और शीघ्रतापूर्वक ढंग से हम यह नही देख सकते कि, "किस प्रकार।" हम यह नही समझ सकते कि यह कार्य किस प्रकार किया जाता है, परन्तु यह भगवान् की शक्ति के द्वारा किया जाता है।

यह केवल ज्ञान के अभाव के कारण ही है, जो लोग कहते हैं कि भगवान् मृत है, कोई भगवान् नही है और हमारा भगवान् के साथ कोई सम्बन्ध नही है। इन विचारो की तुलना एक प्रेत-ग्रस्त मनुष्य के विचारों से की गई है। जिस प्रकार एक प्रेत-ग्रस्त मनुष्य मूर्खता पूर्ण चर्चा करता है, उसी प्रकार जब हम भगवान् की माया शक्ति के द्वारा ढंक जाते है, तब हम कहते हैं कि भगवान् मृत है। परन्तु यह तथ्य नही है। इसलिए हमे अपने हृदय को स्वच्छ करने के लिए इस कीर्त्तन विधि की आवश्यकता है। हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्त्तन की इस साधारण-सी विधि को आप लोग ग्रहण करे। इस प्रकार अपने पारिवारिक जीवन मे, अपने क्लब में, अपने घर में, मार्ग पर—प्रत्येक स्थान पर—हरे कृष्ण कीर्त्तन कीजिए। और आपके हृदय को, आपकी वास्तविक स्थिति को ढँकने वाला यह अँधकार दूर हो जाएगा। तब आप अपनी वास्तविक (वैधानिक) स्थिति को समझ लेगे।

भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु ने परामर्श दिया है: **चेतोदर्पणमार्जनम्**। **मार्जनम्** का अर्थ होता है—"स्वच्छ (साफ) करना," और **दर्पणम्** का अर्थ है, "शीशा या आईना।" हृदय एक दर्पण है। यह एक कैमरा के समान है। जैसे कैमरा दिन और रात के सभी प्रकार के चित्र लेता है, उसी प्रकार हमारा हृदय चित्रो को ग्रहण कर उन्हे एक अचेतन अवस्था में रखे रहता है। मनोवैज्ञानिक इसको जानते है। हृदय कितने ही प्रकार के चित्र लेता है और इसीलिए वह ढँक जाता है। हम यह भी नही जानते कि इस ढँकने की विधि का आरम्भ कब से हुआ, परन्तु यह एक तथ्य है क्योकि हम भौतिक सम्पर्क मे है, हमारा वास्तविक स्वरूप ढँक गया है। इसलिए **चेतोदर्पणमार्जनम्**—हमे अपने हृदय को स्वच्छ करना है। हृदय को स्वच्छ करने की विभिन्न विधियाँ है—ज्ञानविधि, योगविधि, ध्यान-विधि, पुण्य कर्म इत्यादि। कर्म भी हृदय को स्वच्छ करते है। यदि कोई पुण्य करे तो उसका हृदय धीरे-धीरे स्वच्छ हो जाएगा। यद्यपि हृदय को स्वच्छ करने के लिए इन विधियो का अनुमोदन किया गया है, परन्तु इस युग मे इनका पालन करना बहुत कठिन है। ज्ञानमार्ग का पालन करने के लिए व्यक्ति को अवश्य ही

एक उच्चकोटि का विद्वान् होना चाहिए। उसे अनेकानेक ग्रन्थो का अध्ययन करना चाहिए, उसे विद्वान् प्राख्याताओं और पण्डितो के पास जाकर ज्ञानानुसन्धान करना चाहिए। उसे अवश्य ही एक ऐसे व्यक्ति की खोज करनी चाहिए जिसने प्रकाश को देख लिया हो। तो यह सब ज्ञानमार्ग सम्बन्धी विधियाँ है। ध्यान भी एक अनुमोदित विधि है। हम यह प्रश्न करे, "मैं कौन हूँ ?" जरा विचार कीजिए : क्या मैं यह शरीर हूँ ? जी नही। क्या मैं यह उँगली हूँ ? जी नही, यह मेरी उँगली है। यदि आप अपने पैर का चिन्तन करें, तो आप देखेगे कि, "अरे, यह तो मेरा पैर है।" उसी प्रकार, आप कहेगे कि प्रत्येक वस्तु 'मेरी' है। और यह 'मै' कहाँ हूँ ? प्रत्येक वस्तु मेरी तो है, परन्तु यह 'मै' कहाँ हूँ ? तब हम इस 'मै' की खोज करे, तो वह ध्यान है। सच्चे ध्यान का अर्थ है अपनी इन्द्रियो को इस प्रकार से एकाग्र करना। परन्तु यह ध्यान की विधि भी बहुत कठिन हैं। हमे अपनी इन्द्रियो पर अवश्य ही नियन्त्रण करना होगा। इन्द्रियाँ हमे बाह्य वस्तुओ की ओर खीच रही है और हमको अन्तर्दर्शन करने के लिए उनको आन्तरिक दिशा की ओर ले जाना होगा। इसलिए योग प्रणाली मे आठ विधियाँ होती है (अष्टागयोग)। पहली विधि है नियमो के द्वारा इन्द्रियो का निग्रह करना। उसके पश्चात् बैठने के विभिन्न प्रकार के आसन है—यह आसन हमे मन को एकाग्र करने मे सहायता करेंगे। यदि कोई झुक कर बैठता है तो ध्यान मे यह सहायक नही होगा, यदि कोई सीधा बैठे तो उसे सहायता मिलेगी। फिर श्वास क्रिया पर नियन्त्रण करना पड़ता है, फिर ध्यान, फिर समाधि। परन्तु आज कल ये विधियाँ बहुत ही कठिन है। कोई भी इनका पालन तत्काल नही कर सकता। तथाकथित योग की विधियाँ भी आशिक हैं—केवल कुछ आसन और श्वासो के कुछ व्यायामों का अभ्यास किया जाता है। परन्तु इनके द्वारा हम सिद्ध अवस्था नही पा सकते। जबकि योग की वास्तविक विधि भी एक अनुमोदित वैदिक विधि है, फिर भी इस युग में उसका पालन करना बहुत कठिन है। उसी प्रकार हम ज्ञानविधि के द्वारा ज्ञान पाने का प्रयत्न कर सकते हैं : "यह ब्रह्म है, यह ब्रह्म नही है, तो ब्रह्म क्या है ? आत्मा क्या है ?" इस प्रकार की ज्ञान सम्बन्धी चर्चाओ का भी अनुमोदन किया गया है, परन्तु इस युग के लिए ये चर्चाएँ भी निरर्थक है।

अतएव श्रीचैतन्य महाप्रभु—न केवल भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु, वरन् वैदिक साहित्य भी—कहते है :

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

कलौ का अर्थ है "इस युग मे" नास्त्येव, नास्त्येव, नास्त्येव—तीन बार नास्त्येव। एक का अर्थ है 'निश्चय ही' और नास्त्येव का अर्थ 'नही' है। "निश्चय ही नही है,

निश्चय ही नहीं है, निश्चय ही नहीं है।" वह क्या है जो "निश्चय ही नहीं है ?" हम कर्म के द्वारा स्वयं का साक्षात्कार नही कर सकते। यह पहला "निश्चय ही नही है" है। हम ज्ञान के द्वारा स्वयं का साक्षात्कार नही कर सकते। यह दूसरा "निश्चय ही नही है" है। हम योग के द्वारा स्वयं साक्षात्कार नही कर सकते। यह तीसरा निश्चय ही नही है। कलौ। कलौ का अर्थ है, "इस युग मे।" **कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव** इस युग में हम तीन विधियो मे से किसी के द्वारा भी निश्चय ही सफलता नही पा सकते। तब फिर अनुमोदित विधि कौन-सी है ? **हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्**। केवल हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्त्तन कीजिए। **केवलम्**। केवल हरे कृष्ण कीर्त्तन कीजिए। यह सबसे सरल और सबसे उत्कृष्ट विधि है। यह अनुमोदित, व्यवहारिक और प्रामाणिक है। तो इसको ग्रहण कीजिए। जीवन की किसी भी अवस्था मे रहते हुए भी इसको स्वीकार कर लीजिए। कीर्त्तन कीजिए। इसमें कोई व्यय (खर्च) नहीं है, न ही कोई हानि है। हम किसी रहस्यमय मन्त्र का कीर्त्तन नही कर रहे है। जी नही। यह तो खुला है। और कीर्त्तन के द्वारा आप अपने हृदय को स्वच्छ कर लेंगे।

इस भौतिक जगत् मे कोई भी दुःख नही चाहता, परन्तु यह आता है। अचानक ही, दावानल के समान जो किसी के द्वारा माचिस को जलाए बिना ही आरम्भ हो जाता है, उसी प्रकार दुःख आता है। कोई युद्ध नही चाहता, परन्तु युद्ध होते हैं। कोई दुर्भिक्ष (अकाल) नही चाहता, परन्तु अकाल पड़ता है। कोई महामारी नही चाहता, परन्तु महामारी होती है। कोई झगड़ा नही चाहता, परन्तु झगड़ा होता है। कोई भ्रम मे नही पड़ना चाहता, परन्तु भ्रम भी वर्त्तमान है। क्यो ? यह वन मे लगी दावानल के समान है। और अग्निशामक वाहन के द्वारा नही बुझाया जा सक्ता। समस्याओ की यह भयंकर आग हमारे ज्ञान के तथाकथित विकास के द्वारा नही बुझाई जा सकती। जी नही। यह सम्भव ही नही है। जिस प्रकार हम दावानल को फायर बिग्रेड भेजने के द्वारा या कुछ पानी डालने के द्वारा नही बुझा सकते, उसी प्रकार हमारे जीवन की समस्याएँ किसी भौतिक विधियो के द्वारा हल नही की जा सकती।

इसके अनेक उदाहरण है। प्रह्लाद महाराज कहते है, "प्रिय प्रभो, पिता और माता वास्तव मे अपनी सन्तान के रक्षक नही है।" माता-पिता अपनी सन्तान र्क ख-भाल करते है, यह उनका कर्त्तव्य है। परन्तु वे अपनी सन्तान के परम रक्षक नही है। जब प्रकृति का नियम शिशु को वापस बुलाता है तो पिता और माता उसकी रक्षा नही कर सकते। इसलिए यद्यपि प्रायः यह एक तथ्य माना जाता है कि पिता और माता अपनी सन्तान के रक्षक है, परन्तु वास्तव मे यह तथ्य नही है। कोई समुद्र में यात्रा कर रहा है और वह सोचे कि उसके पास बहुत

सुन्दर आसन है, तो क्या यह आसन उसकी रक्षा करेगा ? जी नही। सुन्दर आसन रहने पर भी वह समुद्र मे डूब सकता है। एक सुन्दर वायुयान आकाश में उड रहा है, सभी लोग सुरक्षित है, परन्तु अचानक ही वह वायुयान नष्ट हो जाता है। कोई भी भौतिक वस्तु हमारी रक्षा नही कर सकती। कोई रोगी है। वह भले ही एक अच्छे चिकित्सक को सलग्न कर सकता है, जो अच्छी औषधि भी देता है परन्तु यह गारण्टी नही है कि वह व्यक्ति जीवित रहेगा। तो फिर चरम गारण्टी क्या है ? प्रह्लाद महाराज कहते है, "हे प्रभो, यदि आप किसी को त्याग दे, तो कोई भी उसकी रक्षा नही कर सकता।"

यह हमारा व्यवहारिक अनुभव है हम भौतिक प्रकृति के नियमो के द्वारा प्रस्तुत समस्याओ को हल करने के लिए अनेकानेक विधियो का आविष्कार कर सकते है, परन्तु वे पर्याप्त नही होती। यह विद्या कभी भी समस्त समस्याओ को हल नही करेगी, न ही उनसे वास्तव मे कोई राहत मिलेगी। यह एक तथ्य है। इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण भगवद्गीता मे कहते है, "माया, यह बहिरंगा शक्ति, बहुत ही शक्तिशाली है। कोई भी इसको पार नही कर सकता। यह प्राय. असम्भव कार्य है।" तब हम इस भौतिक प्रकृति से कैसे मुक्त हो सकते है ?" श्रीकृष्ण कहते है, "केवल मेरी शरण मे आने के द्वारा ही, कोई भौतिक प्रकृति के आक्रमण से मुक्ति पा सकता है।" और यह एक तथ्य है। तो हमे अपने हृदय को स्वच्छ करना पड़ेगा, जिससे हम यह सीख सके कि हमारा भगवान् के साथ क्या सम्बन्ध है।

कठोपनिषद् मे आता है, **नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्**। परतत्त्व, परम सत्य अद्वय भगवान् नित्य है। भगवान् नित्य है और हम लोग भी नित्य है। परन्तु वेद सकेत देते है कि वे परम चेतन है। वे मृत नही है। यदि चेतन न होते, तो यह ससार किस प्रकार से कार्य कर रहा है ? भगवद्गीता मे भगवान् श्रीकृष्ण कहते है, "मेरी अध्यक्षता मे प्रत्येक वस्तु क्रियाशील है।" बाइबिल मे भी आता है, "भगवान् ने सृष्टि की।" यह एक तथ्य है। यह नही कि किसी समय मे एक खण्ड था, और यह हुआ और फिर वह हुआ। जी नही। वेद हमको वास्तव मे तथ्यो के विषय मे जानकारी देते है, परन्तु हमको देखने के लिए अपने नेत्र खोलने पड़ेगे। **चेतोदर्पणमार्जनम्**। अपने हृदय को स्वच्छ करने की यही विधि है। जब हम अपने हृदय को स्वच्छ कर लेते है, तब हम उसे समझ सकेगे, जो श्रीकृष्ण और वेद कहते है। हमे शुद्ध बनने की आवश्यकता है। यदि कोई पीलिया से कष्ट पा रहा है और आप उसे मिश्री का टुकड़ा दे, तो वह कहेगा कि यह बहुत कड़वा है। परन्तु क्या मिश्री कड़वी होती है ? जी नही, वह तो बहुत मीठी होती हैं। और पीलिया की औषधि ही वह मिश्री है, विज्ञान इस औषधि को निर्धारित करता है और वैदिक साहित्य में भी पीलिया के लिए औषधि के रूप मे यह निर्धारित किया गया है।

तो यदि हम पर्याप्त मात्रा मे मिश्री खाएँ, तो हम पीलिया से मुक्त हो जाएँगे और जब व्यक्ति इस रोग से मुक्त हो जाता है, तब वह कहता है, "अरे, यह तो बहुत मीठी है।" तो नास्तिक सभ्यता का आधुनिक पीलिया के रोग का इस हरे कृष्ण कीर्त्तन के द्वारा उपचार किया जा सकता है। आरम्भ मे, भले ही यह कड़ुवा लगे, परन्तु जब हम उन्नति कर लेते है तब हम देखेंगे कि यह कीर्त्तन कितना सुखद है।

जैसे ही हम अपने स्वरूप को, भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध को समझ लेते है वैसे ही हम सुखी हो जाते हैं। हम दु.खो से इतने पूर्ण है, क्योकि हमने इस भौतिक जगत् को अपनी पहचान मान लिया है। इसलिए हम दु.खी है। उत्सुकता और भय के कारण अपने को इस भौतिक जगत् से सम्बद्ध मान लेते है। अगले दिन मैं समझा रहा था कि जो इस हड्डियो और चर्म के इस झोले को अपना स्वरूप मानता है वह एक पशु है। तो हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्त्तन के द्वारा यह भ्रम दूर हो जाएगा। हृदय स्वच्छ हो जाने का अर्थ है कि यह समझ जाना कि हम इस भौतिक जगत् मे नही है। **अहम् ब्रह्मास्मि**—मैं आत्मा हूँ। जब तक हम अपने को इंग्लैण्ड, भारत अथवा अमेरिका के साथ सम्बद्ध रखेंगे, तब तक हम अज्ञानता मे ही है। आज आप भले ही एक इंग्लिश मनुष्य है, क्योकि आपका जन्म इग्लैण्ड मे हुआ था परन्तु अगले जीवन में आप इंग्लैण्ड मे जन्म न लेकर चीन, रूस या किसी अन्य देश मे जन्म ले सकते है। अथवा यह भी सम्भव है कि आपको यह मनुष्य का शरीर ही न मिल सके। आज आप राष्ट्रवादी है, अपने देश के एक अत्यन्त महान् अनुयायी हैं, परन्तु कल आप अपने देश में ही एक गाय हो सकते हैं जिसको कसाई-खाने में लाया जाता है।

तो हमको पूर्ण रूप से अपने स्वरूप को जानना है। भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु कहते हैं कि प्रत्येक जीव का वास्तविक स्वरूप यह है कि वह भगवान् का नित्य दास है। यदि कोई विचार करता है कि "मैं भगवान् के अतिरिक्त और किसी का दास नही हूँ, मेरा प्रयोजन भगवान् की सेवा करना है," तो वह व्यक्ति मुक्त है। उसका हृदय तत्काल ही स्वच्छ हो जाता है और वह मुक्त है। इस स्तर की प्राप्ति होने के पश्चात् संसार की समस्त कुण्ठा और उत्सुकता समाप्त हो जाती है, क्योकि व्यक्ति को ज्ञात हो जाता है, "मैं भगवान् का दास हूँ। भगवान् मेरी रक्षा करेंगे। मुझें किसी भी वस्तु के लिए चिन्ता क्यो करनी चाहिए।"

लोग चर्च जाते हैं और कहते है, "भगवन्! हमे हमारा दैनिक भोजन दीजिए।" वास्तव मे, यदि भगवान् हमको भोजन न दे, तो हम जीवित रहने में समर्थ न हो सकेंगे। यह एक तथ्य है। वेद भी यह कहते है कि एक परम पुरुष भगवान् प्रत्येक प्राणी की आवश्यकताओ को पूरी कर रहे है। भगवान् सभी को भोजन दे

रहे हैं। हम मनुष्यो के सामने ही आर्थिक समस्याएँ है, परन्तु मानव समाज को छोड़ कर और किस समाज मे आर्थिक समस्या है ? पक्षी समाज मे कोई आर्थिक समस्या नही है। पशुओ में कोई आर्थिक समस्या नही है। चौरासी लाख योनियाँ हैं और उनमें से मनुष्य योनि अत्यधिक कम है। तो लोगों ने अपने आप ही समस्याओ की सृष्टि की है—क्या भोजन किया जाए, कहाँ सोया जाए, किस प्रकार कामाचार किया जाए और किस प्रकार अपनी रक्षा की जाए। हमारे लिए यही समस्याएँ है, परन्तु अधिकाश प्राणियों के सामने जैसे जलचर, मछली, वनस्पति, कीटाणु, पक्षी, पशु और लाखो अनेकानेक दूसरे प्राणी—कोई ऐसी समस्या नही है। वे भी चेतन हैं। आप यह न सोचे कि वे हमसे भिन्न है। यह सत्य नही है कि मनुष्य ही केवल चेतन प्राणी है और बाकी सब मृत है। जी नही। और कौन उन लोगो को भोजन और आश्रय दे रहा है ? निश्चय ही भगवान् ऐसा कर रहे है। वृक्ष, पौधे और पशु कार्यालय में नही जा रहे है। वे धन कमाने के लिए तकनीकी शिक्षा प्राप्त करने विश्वविद्यालय में नही जा रहे है। तो उनको भोजन किस प्रकार प्राप्त हो रहा है। हाथी सैकड़ो किलो भोजन करता है। उसे कौन भोजन दे रहा है ? क्या आप लोग हाथी के लिए प्रबन्ध कर रहे है ? लाखों हाथी है। उनको कौन भोजन दे रहा है ?

तो यह स्वीकार करने की विधि कि भगवान् दे रहे है, इस विचार से श्रेष्ठ है, "भगवान् मृत हैं। हम चर्च मे क्यो जाएँ और भगवान् से भोजन के लिए क्यो प्रार्थना करें ?" भगवद्गीता मे आता है, "चार प्रकार के पुण्यात्मा लोग श्रीकृष्ण की शरण में आते है—आर्त्त (दुःखी), अर्थार्थी (जिनको धन की आवश्यकता है), ज्ञानी (बुद्धिमान्) और जिज्ञासु (जिनको इस ब्रह्माण्ड के विषय मे जिज्ञासा होती है)।" तो यह चार प्रकार के मनुष्य भगवान् का आश्रय लेते है। "प्रिय प्रभो, मैं बहुत भूखा हूँ। मेरा दैनिक भोजन दीजिए।" ऐसा तो कहना सुन्दर है। जो इस प्रकार से भी भगवान् का आश्रय लेते है उनका अनुमोदन किया गया है और उन्हे **सुकृतिनः** कहा गया है। सुकृति का अर्थ है 'पुण्यात्मा'। ऐसे लोग पुण्यात्मा है। यद्यपि वे भगवान् से धन, भोजन इत्यादि माँग रहे है। फिर भी उनको पुण्यात्मा माना जाता है क्योकि वे भगवान् का आश्रय ले तो रहे है। और कुछ लोग है जो ठीक इसके विपरीत है। वे **दुष्कृतिनः** अर्थात् विधर्मी है। कृति का अर्थ है 'बहुत पुण्यवान्', परन्तु दुष्कृति शब्द दर्शाता है कि उपद्रव करने मे ही उनकी शक्ति का दुरुपयोग होता है। ठीक उस मनुष्य के समान जिसने परमाणु अस्त्रो का आविष्कार किया। उसके पास बुद्धि तो है, परन्तु उसका दुरुपयोग किया गया। उसने ऐसी वस्तु की रचना की जो बहुत भयंकर है। एक ऐसी वस्तु की सृष्टि कीजिए, जो मनुष्य को इसकी सुरक्षा की गारण्टी दे कि उसे मरना नही पडेगा। ऐसी वस्तु की रचना करने का उपयोग ही क्या है जिससे लाखो लोगो की तत्काल मृत्यु हो जाए। उनको आज

या कल या सौ वर्षों के बाद मरना तो है ही। तो वैज्ञानिको ने कौन-सी बड़ी तोप मार दी है? किसी ऐसी वस्तु की रचना कीजिए जिससे मनुष्य की तत्काल मृत्यु न हो, जिससे और अधिक रोग न हो, जिससे वृद्धावस्था (बुढापा) न आए। तब माना जाएगा कि आपने कुछ किया है। परन्तु दुष्कृतिनः लोग कभी भी भगवान् के पास नही जाते। वे कभी भी भगवान् को समझने का प्रयत्न नही करते। इसलिए उनकी शक्ति का गलत दिशा मे प्रयोग होता है।

वे घोर विषयी है, जो भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध की उपेक्षा करते है। भगवद्गीता मे उनको मूढ कहा गया है। मूढ का अर्थ है 'गधा'। वे धन कमाने के लिए कठोर परिश्रम कर रहे है। उनकी तुलना गधो से की जाती है। उनका प्रतिदिन का भोजन चार चपाती है, परन्तु वे हजारो रुपए कमाने के चक्कर मे अनावश्यक ही कार्य करते रहते है। दूसरे प्रकार के विषयी को नराधम कहा जाता है। नराधम का अर्थ है "मनुष्यो मे सबसे नीच।" मनुष्य जीवन भगवान् का साक्षात्कार करने के लिए बनाया गया है। यह मनुष्य का अधिकार है कि वह भगवान् का साक्षात्कार करने का प्रयत्न करे। जो ब्रह्म, भगवान् को जानता है वही ब्रह्ममय है, दूसरा नही। तो इस मानव जीवन का यही कर्त्तव्य है। प्रत्येक मानव मे कोई न कोई प्रणाली है जिसे 'धर्म' कहा जाता है और जिसके द्वारा हम भगवान् को समझने का प्रयत्न कर सकते है। इससे कुछ अन्तर नही पड़ता कि वह क्रिश्चयन धर्म है, मुस्लिम धर्म या हिन्दू धर्म है। इससे कुछ भी अन्तर नही पड़ता। जो भी धर्म हो यह भगवान् को और उनके साथ अपने सम्बन्ध को समझने के लिए है। बस इसके अतिरिक्त धर्म का और कोई उद्देश्य नही है। यह मनुष्यो का कर्त्तव्य है और यदि इस कर्त्तव्य की मानव समाज मे उपेक्षा की जाती है, तो वह समाज पशु समाज है। पशुओ मे यह शक्ति नही होती कि वे समझे कि भगवान् क्या है और भगवान् के साथ उनका क्या सम्बन्ध है। उनकी एकमात्र रुचि आहार, निद्रा, भय और मैथुन मे ही रहती है। यदि हम लोग भी केवल इन्ही वस्तुओ के विषय मे चिन्तित है, तो हम क्या है? हम पशु है। इसलिए भगवद्गीता कहती है कि जो इस अवसर की उपेक्षा करता है वह नराधम है। उनको यह मनुष्य जीवन चौरासी लाख योनियो मे चक्कर काटने के पश्चात् मिला है और इस पर भी यदि वे भगवान् का साक्षात्कार करने के लिए इसका उपयोग नही करते, परन्तु केवल पशु-प्रवृत्तियो के लिए व्यर्थ करते है। अत. वे लोग नराधम है। और कुछ ऐसे भी विषयी लोग है जिनको अपने ज्ञान का अत्यन्त गर्व है। परन्तु उनका वह ज्ञान है क्या? "भगवान् नही है। मै भगवान् हूँ।" वास्तव मे उनका ज्ञान माया के द्वारा हरण कर लिया गया है—**माययापहृतज्ञाना**. यदि ऐसे लोग भगवान् है, तो वे स्वान कैसे बन चुके है? ऐसे लोगो के विरोध मे बहुत सारे तर्क है, परन्तु ये लोग केवल

भगवान् को चुनौती देते रहते है। यह नास्तिकता है। क्योकि उन्होने नास्तिकतावाद की विधि को माना है, अतः उनका वास्तविक ज्ञान हर लिया गया है। वास्तविक ज्ञान का अर्थ है यह जानना कि भगवान् क्या है और उनके साथ हमारा क्या सम्बन्ध है। यदि व्यक्ति यह नही जानता तो यह समझा जाता है कि उसका ज्ञान माया के द्वारा छीन लिया गया है।

तो इस प्रकार, यदि हम भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध को समझने का प्रयत्न करे, तो इसके लिए उपाय और साधन है। ग्रन्थ है, ज्ञान है, तो क्यो न उनका लाभ उठाया जाय? उन मनुष्यो को इस ज्ञान का लाभ उठाना चाहिए। इसको समझने का प्रयत्न तो कीजिए कि भगवद्गीता और दूसरे वैदिक साहित्य मे, प्रत्येक स्थान पर यह कहा गया है कि भगवान् महान् है और यद्यपि हम गुणात्मक दृष्टिकोण से भगवान् से अभिन्न है, फिर भी हम लघु है। समुद्र और जल के एक लघु कण मे एक ही गुण होता है, परन्तु जल की बून्द मे नमक की मात्रा और पूरे समुद्र मे नमक की मात्रा मे भेद है। यह दोनो गुग की दृष्टि से एक है, परन्तु परिमाण की दृष्टि से अलग। उसी प्रकार, भगवान् सर्वशक्तिमान् है और हममे थोडी-सी शक्ति है। भगवान् प्रत्येक वस्तु की सृष्टि करते है और हम उड़ने के लिए एक लघु यन्त्र की रचना करते है। ठीक उसी प्रकार के छोटे यन्त्र जिनसे बालक लोग खेला करते है। परन्तु भगवान् वायु मे तैरते हुए करोड़ो लोको की सृष्टि कर सकते है। भगवान् की यह योग्यता है। आप किसी भी लोक की सृष्टि नही कर सकते। और यदि आप एक लोक की रचना कर भी ले, तो उससे लाभ क्या होने वाला है? भगवान् के द्वारा करोड़ो लोको की सृष्टि की जा चुकी है। परन्तु आपमे भी रचना करने की शक्ति है। भगवान् मे शक्ति है और इसीलिए आपमें भी शक्ति है। परन्तु वे इतने महान् है कि आप उनकी महानता के साथ किसी भी प्रकार की तुलना नही कर सकते। यदि आप कहे, "मै भगवान् हूँ," तो यह मूर्खता है। आप भले ही दावा कर सकते है कि आप भगवान् है, परन्तु आपने ऐसा कौन-सा असाधारण कार्य किया है जिसके कारग आप यह दावा कर सके कि आप भगवान् है? यह केवल अज्ञानता है। जो अपने को भगवान् सोचता है उसका ज्ञान माया के द्वारा हर लिया गया है। तो भगवान् के साथ हमारा सम्बन्ध यह है कि भगवान् महान् है और हम सूक्ष्म है। भगवद्गीता मे श्रीकृष्ण स्पष्ट कहते है, "सभी जीव मेरे अंश है। गुग की दृष्टि से वे मुझसे एक है, परन्तु परिमाण की दृष्टि से वे भिन्न है।" तो हम एक ही साथ भगवान् से एक है, और अलग भी। हम उनसे एक इसलिए है, क्योकि हममे वही गुण है जो भगवान् मे है। परन्तु यदि हम स्वयं का सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करे, तो हम पाएँगे कि यद्यपि हममे कुछ महान् गुण है, फिर भी भगवान् मे वे सब गुण महानतम् मात्रा मे हैं।

हममे ऐसा कुछ नही हो सकता, जो भगवान् मे न हो। यह सम्भव ही नही है। अत. वेदान्त सूत्र मे यह आता है कि हमारे प्रत्येक गुण भगवान् मे भी पाए जाते है। वे भगवान् से ही उत्पन्न हो रहे है। तो हमारा सम्बन्ध यह है कि क्योंकि हम लघु है, हम सूक्ष्म है, इसलिए हम भगवान् के नित्य दास है। इस भौतिक जगत् मे भी, साधारण व्यवहार के अन्तर्गत भी हम देखते है कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की सेवा करता रहता है, क्योकि दूसरा मनुष्य उससे वडा है और उसको एक सुन्दर वेतन दे सकता है। तो स्वाभाविक ही निष्कर्ष निकलता है कि यदि हम लघु है, तो हमारा कर्त्तव्य भगवान् की सेवा करना है। इसके अतिरिक्त हमारा और कोई दूसरा प्रयोजन है ही नही। हम सव मौलिक पुरुष के भिन्न-भिन्न अंश हैं।

यन्त्र से सम्बद्ध एक पेंच भी मूल्यवान है, क्योकि वह सम्पूर्ण के साथ कार्य कर रहा है और यदि इस पेच (स्क्रू) को यन्त्र से अलग कर दिया जाय, अथवा यदि उसमे कुछ दोष हो, तो वह महत्वहीन है। मेरी उँगली जव तक शरीर से जुड़ी हुई है और शरीर की सेवा कर रही है, तब तक उसका मूल्य लाखों रुपए है। और यदि वह शरीर से कट जाए तो उसका क्या मूल्य रह जाता है ? कुछ भी नही। उसी प्रकार, हमारा भगवान् के साथ सम्बन्ध यह है कि हम भगवान् के अत्यधिक सूक्ष्म अश है, अत. हमारा कर्त्तव्य अपनी शक्तियो के साथ भगवान् के साथ सामंजस्य स्थापित करना और उनको सहयोग देना है। भगवान् के साथ हमारा यह सम्बन्ध है। अन्यथा हम महत्वहीन है। हम कट गए है। जव उँगली अनुपयोगी हो जाती है तो चिकित्सक कहता है, "अरे इस उँगली को काटना पड़ेगा। अन्यथा सम्पूर्ण शरीर मे विष फैल जाएगा।" उसी प्रकार, जव हम भगवद्-भावना से विहीन हो जाते है, तब भगवान् के साथ हमारे सम्बन्ध का विच्छेद हो जाता है और हम इस भौतिक जगत् में कष्ट पाते है। यदि हम भगवान् के साथ पुनः सम्मिलित होने का प्रयत्न करे, तो हमारा सम्बन्ध पुनर्जीवित हो जाता है।

सर्वोत्कृष्ट प्रेम

"आध्यात्मिक जीवन का अर्थ है भगवान् का सग प्राप्त करना और सच्चिदानन्द जीवन व्यतीत करना। इस शाश्वत सग का अर्थ हुआ कि श्रीकृष्ण के साथ क्रीडा करना, उनके साथ नृत्य करना एव श्रीकृष्ण से प्रेम करना। अथवा श्रीकृष्ण आपके पुत्र बन सकते हैं— जिस रूप मे भी आप उनको चाहे जब तक व्यक्ति श्रीकृष्ण से प्रेम नही करता, जब तक वह कुत्ते, बिल्ली, देश, राष्ट्र एव समाज के साथ प्रेम को समाप्त नही करता, अथवा उसके स्थान पर अपने प्रेम को श्रीकृष्ण पर केन्द्रीभूत नही करता, तब तक सुख का कोई प्रश्न ही नही है ।"

हम यदि कोमल भक्ति-लता की सुन्दर ढंग से रक्षा करे, तो क्रमश. उसमे विशुद्ध भगवद्-प्रेम रूपी फल की उत्पत्ति होगी। विशुद्ध भगवद्-प्रेम का अर्थ है कि उस प्रेम में किसी भी प्रकार के सासारिक लाभ, शुष्क ज्ञान अथवा सकाम कर्मो के लिए रंच-मात्र भी स्थान नही है। विशुद्ध प्रेम का अर्थ यह ज्ञान होना है, "भगवान् महान् है, मैं उनका अंश हूँ और अतएव वे मेरे परम प्रेमास्पद है।" यह भावना मानव जीवन की सर्वोच्च सिद्धि है और आत्म-साक्षात्कार की समस्त विधियो का अन्तिम लक्ष्य है। यदि कोई इस स्तर की प्राप्ति करता है—केवल भगवान् ही मेरे प्रियतम है, केवल श्रीकृष्ण ही प्रेम करने के योग्य है—तब हमारा जीवन पूर्ण है। और जब हम श्रीकृष्ण के साथ उस अप्राकृत सम्बन्ध का रसास्वादन कर लेते है, तब हम वास्तविक सुख का अनुभव करते है। उस समय भक्ति-लता चारो ओर इतनी दृढ़ता के साथ सरिक्षत हो जाएगी कि केवल भक्ति-लता को पकडे रहने मात्र से, हम परम गन्तव्य तक पहुँचने में समर्थ हो जाएँगे। यदि कोई एक वृक्ष पर निरन्तर चढ़ता रहे, तो अन्त मे वह वृक्ष के शिखर पर पहुँच जाता है। उसी प्रकार, यदि हम भक्ति-लता के सहारे भगवान् का प्रेम प्राप्त कर सके, तो इसमे कोई संदेह नही है कि हम श्रीकृष्ण के अप्राकृत धाम मे पहुँच जाएँगे और हमे व्यक्तिगत रूप से उनका संग प्राप्त होगा। ठीक उसी प्रकार जैसे हम यहाँ एक दूसरे का प्रत्यक्ष संग कर रहे है।

भगवान् न कल्प है और न ही काल्पनिक। वे उतने ही सत्य है जितने कि हम। वास्तव मे हम लोग भ्रम मे पडे हुए है। हम यह सोच कर जीवित है कि यह शरीर वास्तव मे हमारा स्वरूप है, यद्यपि यह शरीर बिल्कुल ही वास्तविक नही है, बल्कि केवल एक अस्थायी अभिव्यक्ति है। हम तो यह कल्पना करने का दुस्साहस कर बैठते है कि भगवान् है ही नही और न ही उनका कोई स्वरूप है। मन का यह अनुमान केवल अल्पज्ञान के कारण है। भगवान् श्रीकृष्ण और उनका धाम वास्तविक है और हम वहाँ जा सकते है, और भगवान् के पास पहुँच कर उनका संग लाभ कर सकते है। यह एक तथ्य है। आध्यात्मिक जीवन का अर्थ है भगवान् का संग प्राप्त करना और सच्चिदानन्द जीवन व्यतीत करना। इस शाश्वत संग का अर्थ हुआ कि श्रीकृष्ण के साथ क्रीड़ा करना, उनके साथ नृत्य करना एव श्रीकृष्ण से प्रेम करना। अथवा श्रीकृष्ण आपके पुत्र बन सकते है, जिस रूप मे भी आप उनको चाहे...।

श्री कृष्ण के साथ पाँच प्रधान सम्बन्ध (रस) है : शान्त भक्त के रूप मे, दास के रूप मे, सखा के रूप मे, माता-पिता के रूप मे और प्रेमिका के रूप में। श्रीकृष्ण के धाम मे गौएँ तक भी मुक्त आत्मा है। उनको सुरभि गाय कहा जाता है। अनेक लोकप्रिय चित्र है जो यह दर्शाते है कि श्रीकृष्ण किस प्रकार गौओ से प्रेम करते है, कैसे वह उनका आलिंगन एवं चुम्बन करते है। श्रीकृष्ण के साथ नित्य सम्बन्ध शान्त रस कहलाता है। श्रीकृष्ण के द्वारा आकर उनका स्पर्श कर देने मात्र से उन लोगो को पूर्ण सुख प्राप्त हो जाता है।

दूसरे भक्त-गण भगवान् की कुछ वास्तविक सेवा करने मे रुचिशील रहते है। वे सोचते है, "श्रीकृष्ण बैठना चाहते है। मै उनके लिए आसन की व्यवस्था कर दूंगा। श्री कृष्ण भोजन करना चाहते है। मै उनके लिए कुछ स्वादिष्ट भोजन लाऊँगा।" और वे वास्तव मे इस प्रकार का प्रबन्ध करते रहते है। दूसरे भक्त श्रीकृष्ण के साथ समता के स्तर पर मित्र के रूप मे क्रीडा करते है। वे यह नही जानते कि श्रीकृष्ण भगवान् है, उनके लिए, श्रीकृष्ण उनके प्रेमास्पद मित्र है। और वे उनको एक पल के लिए भी नही भूल सकते। सारे दिन और सारी रात वे श्री कृष्ण के विषय मे सोचते रहते है। रात मे, जब वे सोते है तो सोचते है, "अरे, प्रात. काल मै जाऊँगा और कृष्ण के साथ खेलूँगा।" और प्रातः काल होने पर वे श्री कृष्ण के भवन मे आते है और जब तक यशोदा मैया श्रीकृष्ण का शृङ्गार करती रहती है तो उनके मित्र खड़े-खडे प्रतीक्षा करते रहते है। मित्रो के साथ बाहर खेलने जाने के पहले मैया श्री कृष्ण का भली-भाँति शृङ्गार करती है। इसके अतिरिक्त कृष्ण लोक मे और कोई कार्य नही है। वहाँ न कोई उद्योग है, न कार्यालय जाने की शीघ्रता और न ही इस प्रकार के कोई निरर्थक कार्य है। वहाँ

पर्याप्त दूध और मक्खन है और सभी लोग यथेष्ट मात्रा में भोजन करते है। श्रीकृष्ण को अपने मित्र बहुत पसन्द है और कभी-कभी वे अपने सखाओ के साथ मक्खन चुराने का आनन्द लेते है। कोई वास्तव मे इस ढंग से जीवन व्यतीत कर सकता है और उसके अस्तित्व की सिद्धि यही है। हमे जीवन की उस सिद्ध अवस्था की आकांक्षा करनी चाहिए। श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति उस अवस्था को पाने की विधि है।

परन्तु जब तक हममे इस भौतिक जगत् के लिए थोडी सी भी आसक्ति है, तब तक व्यक्ति को यहाँ ही रहना पड़ता है। श्रीकृष्ण बहुत दृढ है। वे किसी भी ऐसे व्यक्ति को अपना संग-लाभ करने की अनुमति नही देते, जिसमे जीवन की थोड़ी सी भौतिक धारणा हो। भक्ति को अवश्य ही सभी प्रकार के भौतिक दोषो से मुक्त होना चाहिए। यह मत सोचिये, "मै अत्यन्त विद्वान हूँ। मै अनुमान के द्वारा ढूँढ निकालूँगा कि परम सत्य भगवान् क्या है?" यह निरर्थक है। इस प्रकार चिर-काल तक अनुमान किया जा सकता है और फिर भी सब स्रोतो के स्रोत का पता नही लगेगा। ब्रह्म सहिता मे आता है, "परम सत्य भगवान् के विषय मे कोटि (करोड़) वर्षो तक अनुमान किया जा सकता है और फिर भी वे प्रकट नही होगे। व्यक्ति इस भौतिक जगत् मे यथावत् रूप से सडता रह सकता है और अनुमान करता जा सकता है, परन्तु यह सही विधि नही है। यहाँ सही विधि है—और वह है भक्ति योग।

भगवान् श्रीचैतन्य कहते है कि श्रीकृष्ण की भक्ति करना जीवन की सर्वोच्च सिद्ध अवस्था है और इसकी तुलना मे वे और सभी वस्तुएँ जिनके लिए लोग इस भौतिक जगत् मे कामना कर रहे है, वे समुद्र मे जल के बुलबुले के समान है। प्रायः लोग लाभ के पीछे रहते है और इसीलिए वे धार्मिक बनते है। वे कहते है, "मैं हिन्दू हूँ," "मै क्रिश्चयन हूँ, "मै यहूदी हूँ," "मै मुसलमान हूँ," "मै यह हूँ, मैं वह हूँ और इसलिए मैं अपना धर्म-परिवर्त्तन नही कर सकता। मै श्रीकृष्ण को स्वीकार नही कर सकता हूँ।" यह धर्म कहलाता है। धर्म के प्रति इस प्रकार का भौतिकवादी एव सम्प्रदायिक विचार रखने के कारण इस भौतिक जगत् मे सड़ते रहेगे और अनुष्ठान आदि मे ही संलग्न रहेगे। इनका यह विचार है कि यदि वे लोग अपने धार्मिक सिद्धातो का पालन करे, तो उनको भौतिक समृद्धि प्राप्त हो जाएगी। निस्सन्देह, यदि कोई किसी भी प्रकार के धार्मिक मत का पालन करता है, तो वह सासारिक जीवन की सुविधाओ को प्राप्त कर लेता है।

ये लोग भौतिक समृद्धि चाहते ही क्यो है? इन्द्रियतृप्ति करने के लिए। वे सोच रहे है, "मेरे पास एक बहुत सुन्दर पत्नी होगी। मेरे बहुत अच्छी सन्तान होगी। मेरे पास एक बहुत अच्छा पद होगा। मै राष्ट्रपति बन जाऊँगा। मै

प्रधान मंत्री बन जाऊँगा।" यह सब इन्द्रियतृप्ति है। और जब मनुष्य निराश हो जाता है और यह देख चुका होता है कि धन अथवा राष्ट्रपति का पद उसको सुख नही दे सकता है। काम जीवन के प्रति सम्पूर्ण स्वाद को निचोड़ लेने के पश्चात् जब वह पूर्ण रूप से निराश और विक्षिप्त हो जाता है, तब संभवतया वह एल. एस डी (नशीली दवा) लेने लगता है और अपने अस्तित्व को शून्य मे विलीन कर देने का प्रयत्न करता है। परन्तु यह निरर्थकता सुख नही दे सकती। सुख यहाँ है : व्यक्ति को अवश्य ही श्रीकृष्ण का आश्रय लेना चाहिए। नही तो वह सुख एल एस डी के भ्रम मे और निराकार शून्यवादी धारणाओ में भटकते रहने मे उस सुख का अन्त होगा। लोगो को यदि सच्चा आध्यात्मिक जीवन नही मिलता तो उनको निराश होना ही चाहिए, क्योकि प्रत्येक व्यक्ति स्वभाव से चिन्मय है।

श्रीकृष्ण के बिना कोई कैसे सुखी हो सकता है ? कल्पना कीजिए कि किसी व्यक्ति को समुद्र मे फेक दिया गया है। वहाँ वह कैसे सुखी रह सकता है ? वह स्थान हमारे लिए नही है। वह व्यक्ति भले ही बहुत अच्छा तैराक हो, परन्तु कितने समय तक वह तैरने मे समर्थ होगा ? अन्ततः वह थक जाएगा और वह डूब जाएगा। उसी प्रकार, हम स्वभाव से ही चिन्मय है। हम इस भौतिक जगत् मे कैसे सुखी हो सकते है ? यह सम्भव ही नहीं है। परन्तु मनुष्य लोग यहाँ रहने का प्रयत्न कर रहे है, और जीवित रहने के लिए अनेकानेक स्थायी प्रबन्ध कर रहे है। यह जोड़-तोड सुख नही है। यदि कोई वास्तव मे सुख चाहता है, तो यहाँ उसकी विधि है, उसे अवश्य ही भगवान् का कृपा प्राप्त करनी चाहिए। जब तक व्यक्ति श्रीकृष्ण से प्रेम नही करता, जब तक वह कुत्ते, बिल्ली, देश, राष्ट्र एव समाज के साथ प्रेम को समाप्त नही करता, अथवा उसके स्थान पर अपने प्रेम को श्री कृष्ण पर केन्द्रित नहीं करता तब तक सुख का कोई प्रश्न ही नही है। श्रील रूप गोस्वामी ने इन सम्बन्ध मे एक बहुत ही सुन्दर उदाहरण दिया है, कई ऐसी औषधियाँ है जिनके द्वारा मनुष्य इन्द्रजाल मे फस जाता है। परन्तु श्रील रूप गोस्वामी कहते है कि जब तक हमको कृष्ण-प्रेम की आखिरी औषधि का स्वाद नही मिलता, तभी तक वह ध्यान, निराकार अद्वैतवाद इत्यादि दूसरे विक्षेपो से मोहित होता रहेगा।

श्री चैतन्य महाप्रभु वर्णन करते हैं कि विशुद्ध कृष्ण-प्रेम प्राप्त करने के लिए, हमे भक्ति अर्थात श्रीकृष्णभावनामृत का साधन करना पड़ेगा। हमे पूर्ण रूप से श्रीकृष्ण की सेवा मे सलग्न होना पडेगा। विशुद्ध कृष्ण-प्रेम की यह सर्वोच्च सिद्धि की अवस्था को सभी प्रकार की सांसारिक अभिलाषाओ, ज्ञान और सभी प्रकार के सकाम कर्मो से मुक्त होना चाहिए। विशुद्ध कृष्ण-प्रेम का मूल-भूत सिद्धांत यह है कि व्यक्ति मे पूर्ण रूप से कृष्ण-भक्त बनने के अतिरिक्त और कोई अभिलाषा

नही रहनी चाहिए। चाहे कोई भले ही यह जानता हो कि भगवान् के और दूसरे स्वरूप भी श्रीकृष्ण है, फिर भी उसको किसी और स्वरूप की पूजा नही करनी चाहिए, परन्तु श्रीकृष्ण के स्वरूप पर मन को एकाग्र करना चाहिए। श्रीकृष्ण के कई रूप है, परन्तु व्यक्ति को केवल बशी लिए हुए श्रीकृष्ण को, श्री राधा-कृष्ण श्री विग्रह के रूप मे ही भजन करना है। केवल उसी स्वरूप पर मन को एकाग्र करना चाहिए और जिसके फलस्वरूप सभी अनुमान और सकाम कर्म दूर हो जाएँगे। हमे श्रीकृष्णभावनामृत का अनुकूल भाव से अनुशीलन करना है और उसका अर्थ है वह सेवा करना जिससे श्रीकृष्ण प्रसन्न हो। श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति की प्राप्ति अपने मनमानी ढग से नही होती है। मै भले ही यह सोच सकता हूँ कि मै श्रीकृष्णभावना मे कुछ कार्य कर रहा हूं, परन्तु यह कार्य करने की अनुमति किसने दी है ? उदाहरण के लिए, भगवद्गीता मे कुछ नैतिक कारणो के लिए अर्जुन ने युद्ध करने मे अनिच्छा दिखाई। परन्तु वे स्थिति को सकाम कर्मो के स्तर मे देख रहे थे, जिस स्तर पर मनुष्य को अपने किए गए कर्मो के फल का आनन्द या कष्ट उठाना पड़ता है। अर्जुन सोच रहे थे कि यदि उन्होने अपने परिवार के सदस्यो के प्राण लिए, तो उनको घोर पाप होगा। किन्तु इस निष्कर्ष पर पहुँचने की श्रीकृष्ण ने अनुमति नही दी थी। भौतिक जगत् मे क्रिया प्रतिक्रिया का नियम 'कर्म' कहलाता है परन्तु भक्ति कर्म से परे है।

विशुद्ध कृष्ण-प्रेम को अवश्य ही सभी प्रकार के सकाम कर्म, अनुमान और सांसारिक अभिलाषाओ के पुट से पूर्ण रूपेण मुक्त (शून्य) होना चाहिए। उस विशुद्ध भक्ति के द्वारा श्रीकृष्ण की अनुकूल भाव से सेवा हो। 'अनुकूल भाव' का अर्थ है श्रीकृष्ण की इच्छा के अनुसार। श्रीकृष्ण ने इच्छा की थी कि कुरुक्षेत्र का युद्ध हो, यह सब व्यवस्था उनके द्वारा ही की गयी थी। अर्जुन को भगवान् ने कहा, "तुम अपने ढग से सोच रहे हो, परन्तु यदि तुम युद्ध न भी करो, विश्वास करो कि क्योकि इस युद्ध का मेरे द्वारा प्रबन्ध किया गया है, यहाँ एकत्र हुए एक भी योद्धा वापस अपने घर नही लौटने वाले हैं। इन सबकी यही मृत्यु होगी। इसकी व्यवस्था पहले से ही कर ली गई है।" भगवान् की इच्छा ऐसी होती ही है कि उसको कोई भी बदल नही सकता। श्रीकृष्ण मे वह गुण है। वे रक्षा कर सकते है और वे वध भी कर सकते है। यदि श्रीकृष्ण किसी को मारना चाहे, तो यह ससार मे ऐसी कोई शक्ति नही है जो उस व्यक्ति की रक्षा कर सके और यदि वे किसी की रक्षा करना चाहे तो इस ससार मे ऐसी कोई शक्ति नही है जो उस व्यक्ति को मार सके। **राखे कृष्णा मारे के, मारे कृष्णा राखे के**। श्रीकृष्ण की इच्छा सर्वोच्च है। इसलिए हमे अपनी इच्छाओ को श्रीकृष्ण की इच्छा के अनुरूप बना लेना है। जो कुछ भी श्रीकृष्ण इच्छा करे, कोई भी उसे अकृत्य और शून्य नही

कर सकता, क्योंकि वे परम-ईश्वर भगवान् हैं। अत., हमारा तो यही कर्त्तव्य है कि अपने समस्त कार्यो को श्रीकृष्ग की इच्छा के अनुरूप बना ले। यह नही कि हम स्वयं ही अपने कार्य की रचना कर ले और फिर घोषणा करे: "मै यह कार्य श्रीकृष्णभावनामृत मे कर रहा हूँ।" हमे इस विषय मे अत्यन्त सावधान रहना है कि क्या वास्तव मे श्रीकृष्ण इस कार्य को चाहते है या नही। ऐसे प्रामाणिक ज्ञान का उपदेश श्रीकृष्ण के प्रतिनिधि के द्वारा दिया जाता है। हम गुरु की अपनी वन्दना (श्री गुरुवाष्टक) मे प्रतिदिन गाते है, यदि गुरु सन्तुष्ट रहते है, तो भगवान् भी सन्तुष्ट हो जाएँगे और यदि कोई अपने गुरु को अप्रसन्न कर देता है, तो उसके लिए भगवान् को प्रसन्न करने का कोई भी मार्ग नही है।

अतएव, यथासम्भव, हमे अपने गुरु महाराज की आज्ञा का पालन करना चाहिए। ऐसा करने से हम उन्नति करने मे समर्थ होगे। श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति के अनुकूल साधन का यह सार तत्त्व है। वृद्धावस्था मे, मै अमेरिका आया हूँ और श्रीकृष्णभावनामृत की शिक्षा देने का प्रयत्न कर रहा हूँ, क्योकि मेरे गुरु महाराज ने आज्ञा दी थी कि यह अवश्य ही करना चाहिए। यह मेरा परम पुनीत कर्त्तव्य है। मुझे यह ज्ञात नही है कि मै सफल होऊँगा अथवा असफल। इससे कुछ अन्तर नही पड़ता, यदि मै आप लोग के सामने वही प्रस्तुत करूँ जो मैने अपने गुरु महाराज से श्रवण किया है, तो मेरा कर्त्तव्य पूर्ण हो जाता है। इसे ही श्रीकृष्णभावनामृत का अनुकूल साधन कहते है। जो भक्त वास्तव मे गम्भीर है, उनको श्रीकृष्ण के प्रतिनिधि के माध्यम से श्रीकृष्ण के आदेश को अपने जीवन सर्वस्व के रूप मे लेना चाहिए। इस सिद्धान्त पर अडिग बना रहने वाला निश्चय ही उन्नति करना है। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने भी इसी प्रकार कहा और मेरे गुरु महाराज भी कहा करते थे। उदाहरण के लिए, मै पुस्तक के अक्षरो को इस पारदर्शी चश्मे के माध्यम से बहुत सुन्दर ढग से देख सकता हूँ, इसके बिना मै नही देख सकता क्योकि मेरे नेत्र दोषपूर्ण है। उसी प्रकार हमारी इन्द्रियाँ पूर्ण रूप से दोषी है। हम भगवान् को इन नेत्रो से नही देख सकते, हम इन कानो से हरे कृष्ण नही सुन सकते, हम गुरु के माध्यम के बिना कुछ भी नही कर सकते। इस प्रकार से एक दोषपूर्ण नेत्र चश्मे के माध्यम के बिना नही देख सकते, उसी प्रकार व्यक्ति गुरु के पारदर्शी माध्यम के बिना भगवान् को प्राप्त नही कर सकता। 'पारदर्शी' का अर्थ है कि माध्यम को दोषो से अवश्य ही मुक्त होना चाहिये। यदि वह पारदर्शी है, तो व्यक्ति उसके द्वारा देख सकता है।

विशुद्ध कृष्ण-प्रेम मे हमे अपनी इन्द्रियो को कृष्ण-सेवा मे सलग्न करना पड़ता है—**सर्वेन्द्रिय-सेवा** सभी इन्द्रियो को। इसका अर्थ हुआ कि काम को भी श्रीकृष्णभावनामृत मे सलग्न किया जाता है। भगवान् को पिता या माता के रूप

मे मानने वाले व्यक्ति को यह अनुमति नही है कि वह काम को भगवान् की सेवा में लगा सके। क्योंकि पिता या माता के साथ हमारा कोई काम विपयक सम्बन्ध नही होता। परन्तु भगवान् को अपना प्रियतम मानने से, उनकी सेवा मे काम को भी संलग्न किया जा सकता। अत. श्रीचैतन्य महाप्रभु ने हमे परम-ईश्वर भगवान् की सेवा मे संलग्न होने की सर्वाधिक पूर्ण जानकारी दी है। जीवन की दूसरी धार्मिक धारणाओ मे, अधिक से अधिक भगवान् को पिता अथवा माता के रूप मे स्वीकार किया जाता है। भारत में अनेक व्यक्ति काली देवी को भगवान् का प्रतिनिधि मानते है। निस्सदेह, इसकी कभी अनुमति नही दी गई है, परन्तु लोगो मे ऐसा सेवा विश्वास है। और क्रिश्चयन धर्म मे भी भगवान् को पिता के रूप मे माना जाता है। परन्तु भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु हमे जानकारी देते है कि हम भगवान् के साथ काम का सम्बन्ध भी रख सकते है। श्री चैतन्य महाप्रभु की यह जानकारी अनुपम योगदान है। भौतिक जगत् मे मैथुन को सर्वोच्च-महानतम आनद माना जाता है, यद्यपि यहाँ इसके अस्तित्व का केवल विकृत रूप है। किन्तु, यह किसी की भी धारणा से नही आया है कि वैकुण्ठ जगत् मे भी कामाचार हो सकता है। सम्पूर्ण विश्व मे इस प्रकार की ईश्वर मीमासा का एक भी उदाहरण नही है। श्री चैतन्य महाप्रभु के द्वारा यह जानकारी भी पहली बार दी गई है. हम भगवान् को अपने पति अथवा प्रियतमा के रूप मे पा सकते हैं। यह श्री राधा-कृष्ण के भजन मे सम्भव है, परन्तु कोई भी व्यक्ति, विशेष कर निराकारवादी, श्री राधा-कृष्ण को नही समझ सकते है। निराकारवादी लोगो मे तो कोई भाव ही नही है। वे तो इसकी भी प्रतीति नही कर सकते कि भगवान् का कोई स्वरूप है। परन्तु भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु कहते है कि न केवल भगवान् का स्वरूप है, परन्तु उनमे काम भी है। श्री चैतन्य महाप्रभु का यह सर्वोच्च योगदान है।

हम विविध सम्बन्धो मे भगवान् की सेवा कर सकते है, परन्तु भौतिक जगत् मे यह सम्बन्ध केवल विकृत प्रतिबिम्ब के रूप में रहते है। और इस भौतिक जगत् मे अपने सम्बन्ध के अन्तर्गत हमारा कार्य क्या रहता है? हमारा समाज, मित्रता और प्रेम पर क्या विचार है? ये सब जीवन की भौतिक धारणा पर आधारित है। हमारे समाज मे, कोई अपने पुत्र से पिता या माता के रूप मे सम्बन्ध है, तो कोई आपस मे पति और पत्नी के रूप मे, तो कोई प्रेमी और प्रेमिका के रूप मे। दूसरे प्रकार के रस भी है, जैसे एक दूसरे के शत्रु के रूप मे सलग्न होना। बारह विभिन्न प्रकार के रस होते है, जिनमे से पाँच प्रधान है। दूसरे सात अप्रत्यक्ष सम्बन्ध है, उदाहरण के लिए, जैसे किसी का शत्रु बनना। प्राय. शत्रुओ के बीच भी एक सम्बन्ध होता है, यहाँ तक कि हत्यारे और हत्या किए जाने वाले जीव के बीच में भी एक सम्बन्ध होता है। जहाँ तक श्रीकृष्ण के साथ ९।

सम्बन्ध का प्रश्न है, यदि कोई अपने शत्रु के रूप में भी भगवान् के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लेता है, तो उसका जीवन सफल है। इसलिए, जब हम अपनी इन्द्रियो को श्रीकृष्ण की सेवा मे लगाते है, तो इन बारह प्रकार के विभिन्न सम्बन्धो से हम कोई एक सम्बन्ध स्थापित कर सकते है। इन सम्बन्धो मे पाँच प्रत्यक्ष हैं और सात सम्बन्ध अप्रत्यक्ष। श्रीकृष्ण जब कंस की रगभूमि मे प्रकट हुए, तो बहुत से बडे-बड़े पहलवान उनकी हत्या करने के लिए तैयार थे। वास्तव मे, श्रीकृष्ण को मार डालने के लिए ही उनको निमन्त्रण दिया गया था। उनके शत्रु कंस ने सोचा, "वे बालक शीघ्र ही यहाँ आएँगे। हमने बारह वर्ष तक उसको मारने का प्रयत्न किया, परन्तु वह बालक कृष्ण नही मारा जा सका। परन्तु अब मैंने उसको एक अतिथि के रूप निमन्त्रण दिया है और जब वह यहाँ आएगा एव इन पहलवानो के साथ लड़ेगा, तो वे लोग उसको मार डालेगे।" राक्षस अथवा नास्तिक लोग सदा ही श्रीकृष्ण अर्थात् भगवान् के विषय मे सोच रहे है। परन्तु उनकी हत्या करने के लिए। इसलिए वे अपने सिद्धान्त प्रस्तुत करते है कि भगवान् मृत है। वे सोचते है कि यदि भगवान् मृत हो जाता है, तो वे अपनी प्रसन्नता के अनुसार कुछ भी करने मे मुक्त हो जाएँगे। परन्तु जहाँ तक उनके वास्तविक कार्यों का सम्बन्ध है, भगवान् चाहे मृत हो, या जीवित, परन्तु भगवान् की आज्ञाकारी सेवक माया इतनी शक्तिशाली है कि वह अपने गलत कार्य के लिए फलो को भोगे बिना मुक्त नही कर सकती जैसे कि कोई व्यक्ति कुछ गलत कार्य करता है, तत्काल ही उसको दण्ड मिलता है। इसके लिए भगवान् की उपस्थिति की आवश्यकता नही पड़ती। भगवान् चाहे मृत हो, या जीवित, परन्तु माया शक्ति किसी भी ऐसे व्यक्ति को दण्ड देने के लिए पर्याप्त है जो भौतिक नियमो को थोड़ा सा भी भग करता है। भगवान् ने इन दशाओ को निर्धारित किया है, परन्तु मूर्ख लोग इसको नही समझते।

भगवान् श्रीचैतन्य, यद्यपि, कहते है कि विशुद्ध भक्तिमय जीवन व्यतीत करते हुए सभी इन्द्रियों को अनुकूल भाव से श्रीकृष्ण की सेवा मे लगाया जाए। हमे अपनी इन्द्रियो को अनुकूल भाव मे सलग्न करना है और जो कुछ भी श्रीकृष्ण चाहते है उसको करना है। इस पर भी यदि कोई अपनी इन्द्रियो को श्रीकृष्ण की इच्छा के विपरीत संलग्न करता है, परन्तु फिर भी श्रीकृष्ण के विषय में सोचता है, तो यह भी उसके लिए एक प्रकार से लाभदायक है जिस प्रकार से पूतना राक्षसी ने श्रीकृष्ण की हत्या करने के लिए सोचा। सन्तो का कार्य भगवान् की सेवा करना होता है, उसी प्रकार राक्षस और नास्तिक लोग भगवान् को मारने के लिए हमेशा तैयार रहते है। पूतना ने सोचा, "मैं कृष्ण की हत्या कर दूँगी। वह तो केवल एक शिशु है।" राक्षस लोगो की यह एक और त्रुटि है। वे श्रीकृष्ण अर्थात् भगवान्

को एक साधारण शिशु या मनुष्य मानते है। तो इस प्रकार पूतना सोच रही थी, "मैं अपने स्तनों मे विष लगा लेती हूँ और जब शिशु मेरा दुग्ध-पान करेगा, तो वह मर जायेगा।" ऐसे हम इस लीला का अध्ययन करते है, हम देखते है कि वह श्रीकृष्ण के पास उनके शत्रु के रूप मे गई और इस पर भी भगवान् ने अपना मित्र माना, क्योकि वे बहुत दयालु है। श्रीकृष्ण ने इस प्रवृत्ति के राक्षसी अश को नही देखा, परन्तु उसको स्वीकार कर लिया। प्रत्येक जीव बद्ध है, परन्तु श्रीकृष्ण ऐसे नही है। चिकित्सक या मनस् चिकित्सक (साइकाइसिस्ट) पागल लोगो की चिकित्सा करता है, परन्तु वह खुद पागल नही बनता। कभी-कभी रोगी उससे क्रोधित भी हो सकते है या उसको गाली भी बक सकते है, परन्तु चिकित्सक सौम्य हो कर केवल रोगी की चिकित्सा करने मे सलग्न रहता है। उसी प्रकार, यदि कोई श्रीकृष्ण को अपना शत्रु भी मान लेता है, फिर भी श्रीकृष्ण उसके शत्रु नही बनते।

पूतना श्रीकृष्ण को विष देने के लिए आई थी, परन्तु भगवान् ने दूसरे ढंग से ही विचार किया। उन्होने सोचा, "मैने स्तन पान किया है। इसलिए यह मेरी माँ बन चुकी है।" श्रीकृष्ण ने उसे अपनी माँ के रूप मे स्वीकार किया और इसीलिए वह मुक्त हो गई और उसने वही पद प्राप्त किया जो श्रीकृष्ण की यथार्थ माता यशोदा जी ने पाया था। निष्कर्ष यह निकलता है कि श्रीकृष्ण के साथ अनुकूल सम्बन्ध की स्थापना कर लेना ही सर्वोच्च सिद्ध है। परन्तु यदि प्रतिकूल भाव से भी संलग्न होता है, तो श्रीकृष्ण इतने दयालु है कि वे कम से कम उसको मोक्ष दे ही देते है। श्रीकृष्ण के द्वारा वध किए गए सभी शत्रु तत्काल मुक्त हो गए थे।

दो प्रकार के मनुष्य निराकार ब्रह्म ज्योति मे लीन हो सकते है : एक तो वह जो जान बूझ कर निराकार ब्रह्म ज्योति मे लीन होने की कामना कर रहा है और दूसरे भगवान् के शत्रु लोग, जिनका भगवान् के द्वारा बध किया जाता है। इसलिए, भक्त-वृन्द इस निष्कर्ष पर पहुँचते है, "मै इस अवस्था को क्यो स्वीकार करूँ जो कि भगवान् के शत्रुओ तक को मिल जाता है?"

श्रीचैतन्य महाप्रभु शुद्ध भक्ति का अनुमोदन करते है। उत्तम भक्ति मे न अपने स्वय की सासारिक अभिलाषाओ को पूरा करने की इच्छा होनी चाहिए, न श्रीकृष्ण को प्रयोग के दर्शन (ज्ञान) के द्वारा समझने का प्रयत्न करना चाहिए और न ही श्रीकृष्ण से सासरिक लाभ प्राप्त करने के लिए किसी प्रकार के सकाम कर्मो का समावेश होना चाहिए। एक मात्र अभिलाषा केवल यही है कि भगवान् की अनुकूल भाव से सेवा की जाए—भगवान् की इच्छा के अनुरूप। श्रीकृष्ण कुछ चाहते है, तो हमे उनको करना चाहिए। कल्पना कीजिए कि मैं एक शिष्य से

कहता हूँ, "प्रिय पुत्र, मुझे एक ग्लास जल ला दो।" सो यह उसका कर्त्तव्य है कि वह मुझे जल का एक ग्लास दे। यदि वह सोचता हैं, "प्रभुपाद एक ग्लास जल माँग रहे है, परन्तु क्यो न उनको इससे कुछ श्रेष्ठ वस्तु दी जाए? क्यो न उनको एक ग्लास गर्म दूध दिया जाए?" परन्तु यह सेवा नही हैं। उसके विचार के अनुसार गर्म दूध बहुत स्वादनीय है और वह जल से श्रेष्ठ है, फिर भी क्योकि मैंने जल के लिए कहा है, उसे यह जल देना चाहिए दूध नही। अनुकूल सेवा यही है। हमे यह समझना है कि श्रीकृष्ण क्या चाहते है। जब अन्तरग सम्बन्ध हो जाता है, सर्वाधिक अनुकूल भाव से श्रीकृष्ण की सेवा कर सकते हैं। जब तक श्रीकृष्ण के साथ अन्तरग सम्बन्ध न हो जाए, तब तक हमें गुरु महाराज के पारदर्शी माध्यम के द्वारा यह जानकारी प्राप्त करनी चाहिए कि श्रीकृष्ण क्या चाहते है।

वैष्णव यह कभी भी नही सोचते कि उनका श्रीकृष्ण के साथ सीधा सम्बन्ध है। भगवान् श्रीचैतन्य कहते है, "मै श्रीकृष्ण के दासो के दासो का दासनुदास हूँ।" हमे भगवान् के दास के दास का दास बनने के लिए तैयार होना पड़ेगा। गुरु परम्परा की विधि यही है। यदि कोई वास्तव मे, अप्राकृत भगवद् प्रेम प्राप्त करना चाहता है, तो उसको इस विधि का पालन करना पड़ेगा। क्योकि लोग इस विधि को स्वीकार नही करते, अत. वे यथार्थ भगवद् प्रेम का विकास नही कर पाते। वे भगवान् के विषय मे चर्चा तो करते है, परन्तु वास्तव मे वे भगवान् से प्रेम नही करते, क्योकि उनमे शुद्ध भक्ति का कोई अनुशीलन नही है, अतः वे भगवान् के स्थान पर स्वान को प्रेम करते है।

हम भले कह कहते है, "भगवान् का प्रेम," परन्तु जब तक हम इस सिद्धान्त को ग्रहण नही करेंगे, तब हमे भगवान् से नही, वरन् स्वान से प्रेम करना ही पडेगा। ऐसा करना निस्संदेह एक त्रुटि है। श्रीचैतन्य महाप्रभु कहते है कि यदि कोई वास्तव मे भगवान् का प्रेम चाहता है, तो उसको शुद्ध भक्ति के विधि का पालन करना ही पडेगा। यह नही कि श्रीचैतन्य महाप्रभु अपनी मन गढ़न्त चर्चा कर रहे है; उनके वक्तव्यो की नारद पचरात्र और श्रीमद्भागवत जैसे वैदिक साहित्य मे पुष्टि की गई है। भक्तो के लिए यह दो ग्रथ और भगवद्गीता अत्यधिक प्रामाणिक शास्त्र है। भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु नारद पंचरात्र से एक श्लोक उद्धृत करते है ....**हृषीकेण हृषीकेश-सेवनं भक्तिरुच्यते** शुद्ध भक्ति की यह परिभाषा है। **हृषीकेण...हृषीकेश सेवनम्**। **हृषीकेण** का अर्थ है, "हमारी इन्द्रियो के द्वारा।" हमे अपनी इन्द्रियो को सलग्न करना है; यह नही की हम केवल अपने मन को ही संलग्न करे। यदि कोई कहता है, "मै तो हमेशा ही श्रीकृष्ण का चिन्तन कर रहा हूँ।" परन्तु वह शुद्ध भक्ति नही है। ध्यान का अर्थ

चिन्तन है, परन्तु कोई भी श्रीकृष्ण का चिन्तन नही करता, वे लोग शून्य या किसी निराकार का चिन्तन करते है। यदि कोई श्रीकृष्ण का या श्रीनारायण या श्रीविष्णु का चिन्तन कर रहा है जैसे कि वैदिक साहित्य मे निर्धारित किया गया है, तो वह वास्तविक योग है। ध्यानयोग का अर्थ अपने मन को परमात्मा पर एकाग्र करना है। परमात्मा चतुर्भुज नारायण के रूप मे श्रीकृष्ण के ही प्रतिनिधि है। यहाँ तक कि पतञ्जलि योग साधन के एक अधिकारी, श्रीविष्णु पर ध्यान करने की सलाह देते है। परन्तु तथाकथित लोगो ने मिथ्या धार्मिक विधियो की रचना की है, उसी प्रकार आजकल के नाम-मात्र के योगियो ने भी इसी शून्य का चिन्तन करने की एक अपनी ही विधि का निर्माण कर लिया है।

परन्तु नारद पञ्चरात्र कहता है, **हृषिकेण हृषिकेश-सेवनम्** हमे अवश्य ही न केवल अपने मन को, वरन् अपनी इन्द्रियो को भी भगवान् की सेवा मे सलग्न करना है। इन्द्रियो को इन्द्रियो के स्वामी की सेवा मे सलग्न कीजिए। यह तीन शब्द बहुत महत्वपूर्ण है। हृषिकेश का अर्थ है 'इन्द्रियो के स्वामी।' तो भक्ति योग का अर्थ हुआ—इन्द्रियो के स्वामी की अपने इन्द्रियो के द्वारा सेवा करना। इन्द्रियो के स्वामी श्रीकृष्ण है। हमे यह सदा ही स्मरण रखना चाहिए कि हमको इसलिए इन्द्रियाँ दी गई है कि, क्योकि इस भौतिक जगत् को भोगना चाहते थे। इसीलिए भगवान् ने हमे एक विशेष प्रकार की इन्द्रियाँ दी है, जिससे हम आनन्द-भोग कर सके। सूकर का एक विशेष शरीर और विशेष इन्द्रियाँ है, क्योकि वह मल खाने का आनन्द लेना चाहता था। उसी प्रकार, मनुष्य का भी एक विशेष प्रकार का शरीर और इन्द्रियाँ है, क्योकि वह भी किसी और वस्तु का सुख-भोग करना चाहता था। हमारे पास बद्ध इन्द्रियो का एक विशिष्ट समूह है, जिससे हम इस भौतिक जगत् को भोग सकते है। और हमे इस प्रवृत्ति को शुद्ध करना है। हमारी इन्द्रियाँ मौलिक है। परन्तु अभी वे भौतिक कामनाओ के द्वारा ढँकी हुई है। हमे अपना उपचार करना है और ऐसी कामनाओ से मुक्त हो जाना है। जब व्यक्ति की इन्द्रियाँ भौतिक इन्द्रियतृप्ति की ओर और अधिक उन्मुख नही होती, तब उस व्यक्ति की अवस्था शुद्ध भक्ति कहलाती है।

नारद पञ्चरात्र के इस श्लोक से हम समझ सकते है कि आत्मा की भी मौलिक इन्द्रियाँ है। आत्मा चाहे कितने ही छोटे शरीर मे प्रवेश कर ले, फिर भी आत्मा निराकार नही है। उसकी इन्द्रियाँ है। सम्भव है कोई अपनी पुस्तक के ऊपर एक कीटाणु को देखे। वह बहुत छोटा है, एक सुई की नोक से भी छोटा है, परन्तु फिर भी वह चलता है, उसके उसी प्रकार की इन्द्रियाँ है। अत्यन्त लघु बैक्टीरिया भी चलता है और उसकी भी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ होती है। मूल रूप मे

सभी जीवो के इन्द्रियाँ है। यह नही कि किसी विशिष्ट भौतिक स्थिति के अन्तर्गत ही इन्द्रियो का विकास हुआ है।

यह सिद्धान्त नास्तिक है कि भौतिक स्थिति के अन्तर्गत ही हम लोगो ने इन्द्रियो का विकास किया है, कि आध्यात्मिक स्थिति मे कोई इन्द्रियाँ नही होती और हम निराकार हो जाते है। किन्तु, तर्क और विवेक के द्वारा ऐसा नही हो सकता। आध्यात्मिक शक्ति का एक सूक्ष्म कण भी, चाहे वह परमाणु से भी छोटा हो, उसके इन्द्रियाँ होती है। उसकी इन्द्रियाँ भौतिक तत्त्वो के द्वारा ढँक दिए जाने के कारण, अपने को एक विकृत ढँग मे व्यक्त करती है हमे इन्द्रियो को शुद्ध करना है और जब इन्द्रियाँ शुद्ध हो जाती है, तब हम उनको इन्द्रियो के स्वामी की प्रसन्नता के लिए सलग्न कर सकते है। श्रीकृष्ण इन्द्रियो के स्वामी है। क्योकि हम भगवान् के अश है, हमारी इन्द्रियाँ उनसे माँगी गई है, किराए पर। सर्वोत्तम वस्तु तो यही है कि हम इन्द्रियो का प्रयोग भगवान् को सन्तोष देने के लिए करे स्वय के सन्तोष के लिए नही। विशुद्ध श्रीकृष्णभावनामृत की यही विधि है।

भगवान् श्रीचैतन्य श्रीमद्‌भागवत से शुद्ध भक्ति का एक उदाहरण देते है: भागवत मे आता है कि श्रीकृष्ण सभी के हृदय मे स्थित है। इसलिए, जैसे नादियाँ बहती है तो उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति समुद्र तक पहुँचने की होती है, उसी प्रकार जैसे ही व्यक्ति भगवान का यश सुनता है, उसकी आत्मा तत्क्षण भगवान् की ओर आर्कषित हो जाती है। अशुद्ध भक्ति का यह आरम्भ है। जैसे ही हरे कृष्ण कीर्त्तन की ध्वनि होती है, वैसे ही तत्काल श्रीकृष्ण का वैशिष्टय, श्रीकृष्ण का यश, श्रीकृष्ण का धाम और श्रीकृष्ण के परिकर—प्रत्येक वस्तु—अचानक ही हमारे भीतर व्यक्त हो जाती है, क्योकि श्रीकृष्ण वहाँ उपस्थित है यह हमारी श्रीकृष्ण-भावनामृत का आरम्भ है। सन्दर्भ सहित किसी को स्मरण करने का अर्थ है कि जैसे ही व्यक्ति सकेत-शब्द सुनता है, तत्क्षण ही उसे उस संकेत मे छिपी सारी जानकारी का स्मरण हो जाता है। उसी प्रकार, जब हमारा मन श्रीकृष्ण के गुणो का थोडा-सा यश सुनने के द्वारा ही आर्कषित हो जाता है तो यह श्रीकृष्ण-भावनामृत का आरम्भ है। तब फिर मन की गति और कही नही होती।

गोपियाँ भगवान् का इसी ढंग से स्मरण करती है—जैसे ही उन्होने श्रीकृष्ण के वन्शी का शब्द सुना, उहोने प्रत्येक वस्तु त्याग दी। उनमे से कुछ सो रही थी, कुछ अपने परिवार के कार्य कर रही थी कुछ अपने शिशु की देखभाल कर रही थी, परन्तु जैसे ही उन्होने श्रीकृष्ण की वन्शी सुनी, वैसे ही सब कुछ भूल गईं और श्रीकृष्ण की ओर दौड़ पडी। उनके पति, उनके भाई और उनके पिता लोगो ने कहा "तुम लोग अपना-अपना कर्त्तव्य छोड़ कर कहाँ जा रही हो?" परन्तु उन्होने कुछ भी परवाह नही की और वे भगवान् से मिलने चल पडी। मन के

द्वारा श्रीकृष्ण मे इस प्रकार मग्न हो जाने में न कोई बाधा है और न ही कोई विघ्न। शुद्ध भक्ति का यह आरम्भ है। पुरुषोत्तम का अर्थ श्रीकृष्ण है। पुरुष का अर्थ है, "भोक्ता (आनन्द उठाने वाला)।" क्षुद्र जीव झूठे या नकली भोक्ता है। यहाँ इस भौतिक जगत् मे सभी जीव पुरुष के रूप मे कार्य कर रहे है। पुरुष का और सटीक अर्थ 'नर' होता है। नर को भोक्ता और नारी को भोग्या माना जाता है। भौतिक जगत् मे चाहे किसी पुरुष का शरीर हो या स्त्री का सभी लोगो मे भोग करने की प्रवृत्ति है और इसीलिए प्रत्येक जीव पुरुष कहलाता है। परन्तु वास्तव मे भगवान् केवल एक मात्र पुरुष है हम जीवात्मा उनकी शक्ति है और वे परम भोक्ता है। हम पुरुष नही है। शक्तियो का प्रयोग सुख-भोग करने के लिए होता है और हम शक्तियाँ है, पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के उपकरण। इसलिए पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण है, अर्थात् परम दिव्य व्यक्ति। जब भगवान् के प्रति हमारा शुद्ध प्रेम जाग्रत हो जाए और उसमे किसी प्रकार की विघ्न-बाधाएँ न हो, तो वह विशुद्ध श्रीकृष्णभावनामृत का लक्षण है।

विशुद्ध श्रीकृष्णभावनामृत मे न कोई अभिलाषा और न ही कुछ कारण होता है। और दूसरे कारण दिव्य कर्म या पूजन की विधि के पीछे कोई न कोई प्रयोजन होता है : कोई मोक्ष चाहता है, और कोई सासरिक समृद्धि चाहता है, कोई उच्च स्वर्ग लोको मे जाना चाहता है और कोई कृष्ण लोक मे जाना चाहता है। शुद्ध कृष्ण-भक्ति मे यह सब अभिलाषाएँ नही होनी चाहिए। शुद्ध भक्त मे ऐसी कोई अभिलाषा नही होती है। शुद्ध भक्त श्रीकृष्ण के परमधाम मे जाने की भी कामना नही करते। निस्सदेह, वे वहाँ जाते है, परन्तु इसकी उनके मन मे कामना नही रहती। वे तो केवल पूर्ण रूप से श्रीकृष्ण की सेवा में अपने को सलग्न रखना चाहते हैं।

मुक्ति (मोक्ष) कई प्रकार की है। सालोक्य मुक्ति का अर्थ है भगवान् के साथ एक लोक मे रहना। वैकुण्ठ लोको के निवासी भगवान् के साथ उसी लोक मे रहते हैं। सालोक्य मुक्ति मे प्राय. श्रीनारायण के समान ऐश्वर्य मिल जाता है। मुक्त हुए व्यक्तिगत जीव श्रीनारायण के समान भी दिख सकते है। चार भुजाये, चार चिह्न, प्राय. एक जैसा ही शारीरिक रूप, एक जैसा ही ऐश्वर्य, एक जैसे ही आभूषण एक जैसे ही भवन, इत्यादि। सारूप्य का अर्थ है भगवान् के समान रूप प्राप्त करना। सामीप्य मुक्ति मे भगवान् से कभी दूर नही जाया जाता, परन्तु सदा ही उसके सग मे रहने का अवसर मिलता है उदाहरण के लिए, जैसे हम लोग यहाँ बैठे हुए है, उसी प्रकार हम भगवान् के संग भी बैठ सकते है। इसे सामीप्य मुक्ति अर्थात् भगवान् के समीप लाने वाली मुक्ति कहते है। किन्तु शुद्ध भक्त, मुक्ति के इस विविध प्रकार को स्वीकार नही करते। वे तो केवल श्रीकृष्ण की सेवा मे सलग्न रहना

चाहते है। उनको किसी भी प्रकार की मुक्ति में रुचि नही है। जो वास्तव मे कृष्ण-भक्त है वे सग-लाभ करते है, परन्तु उनके मन मे ऐसा संग पाने की कोई कामना नही रहती। उनकी एकमात्र अभिलाषा यही रहती है कि भगवान् की दिव्य प्रेममयी सेवा मे सलग्न रहा जाए। श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति की सर्वोच्च सिद्धि तब व्यक्त होती है, जब भक्त भगवान् से किसी भी प्रकार का वरदान या लाभ स्वीकार करने के लिए मना कर देते है। प्रह्लाद महाराज को मन के अनुसार वरदान माँगने के लिए कहा गया था उनको केवल उसके लिए कहना भर था परन्तु उन्होने कहा, "मेरे प्रभो, मै आपका नित्य दास हूँ। आपकी सेवा करना मेरा कर्त्तव्य है, तो मै कैसे इसके द्वारा किसी प्रकार का लाभ स्वीकार कर सकता हूँ ? तब तो मै आपका दास नही, वरन् एक व्यापारी वन जाऊँगा। "प्रह्लाद महाराज ने इस प्रकार से उत्तर दिया था और यह विशुद्ध भक्ति का लक्षण है। श्रीकृष्ण इतने दयालु है कि वे भक्त की सभी कामनाओ को पूरी करते है चाहे भक्त भले ही भौतिक वरदान चाहता हो। यदि भक्त के हृदय मे कही भो किसी भी प्रकार की इच्छा है तो भगवान् उसको भी पूरी कर देते है। वे इतने दयालु है। परन्तु भक्ति की इतनी उत्कृष्ट स्थिति है कि शुद्ध भक्त भगवान् के द्वारा दिए जाने पर भी विविध प्रकार की मुक्तियो को ग्रहण करना अस्वीकार कर देते है।

किसी मे यदि सासारिक इच्छा या कोई प्रयोजन हो और वह इन इच्छाओ को पूर्ण करने के लिए भक्ति करे, तो फल यह होगा कि वह कभी भी शुद्ध भगवान् का प्रेम नही प्राप्त करेगा। यदि कोई सोच रहा है, "मै श्रीकृष्ण की भक्ति कर रहा हूँ, क्योकि मुझे इस प्रकार का वैभव चाहिए, "तो उसकी यह इच्छा भले ही पूरी हो जाए, परन्तु वह कभी भी ऐसा विशुद्ध कृष्ण-प्रेम नही प्राप्त करेगा जैसा कि गोपियो का था। यदि किसी के मन मे कोई प्रयोजन है, और वह मुक्ति-सम्बन्धी अपना कर्त्तव्य करता है, फिर भी वह शुद्ध भगवद्-प्रेम के स्तर का पहुँचने मे समर्थ नही होगा। श्रीभक्तिरसामृत सिन्धु के एक श्लोक मे श्रील् रूप गोस्वामी कहते है, "जब तक व्यक्ति भुक्ति (सासारिक लाभ) की इच्छा रखता है, अथवा वह मुक्ति भी चाहता है, तो उसको इन पिशाचियो को स्वीकार करना ही पड़ेगा।" जब तक माया रूपी वह पिशाची हमारे हृदय मे है तब तक हम शुद्ध भगवद्-प्रेम से प्राप्त हाने वाले दिव्य आनन्द का आस्वादन किस प्रकार कर सकते है ? दूसरे शब्दो मे, यदि व्यक्ति मे सासारिक इच्छाएँ है, या उसमे मुक्ति तक पाने की इच्छा भी है, तब तक वह शुद्ध भगवद्-प्रेम नही प्राप्त कर सकता। शुद्ध भक्ति इन सब अभिलाषाओ से शून्य होती है—प्रेममयी सेवा करने का उद्देश्य केवल वह सेवा ही है। श्रील रूप गोस्वामी के जीवन मे एक सुन्दर उदाहरण आता है। श्रील रूप गोस्वामी और उनके बड़े भाई श्रील सनातन गोस्वामी श्री धाम वृन्दावन मे अलग-अलग निवास

किया करते थे और और अपने भजन मे संलग्न रहते थे। श्रील रूप वन में रहा करते थे और वहाँ सुन्दर भोजन पकाने की अथवा गाँवो से मधुकरी (पका हुआ भोजन) लाने की कोई भी सुविधा नही थी। श्रील रूप गोस्वामी ने सोचा, "यदि मैं कुछ सीधा प्राप्त कर सकूँ, तो मैं सुन्दर कृष्ण-प्रसाद बनाऊँगा और बड़े भाई को प्रसाद-सेवा के लिए निमन्त्रण दूँ।" उनके मन में यह इच्छा थी। अगले ही पल, लगभग १२ वर्ष की एक सुन्दर बालिका वहाँ आई और उसने प्रयाप्त मात्रा मे दूध, आटा, घी इत्यादि दिया। यह वैदिक प्रणाली है, कभी-कभी गृहस्थ लोग साधु और सन्यासियो को सीधा देते है। तो श्रील रूप गोस्वामी अत्यन्त हर्षित हुए कि श्रीकृष्ण ने इतनी वस्तुएँ भेज दी है और वे इनसे कई प्रकार के कृष्ण-प्रसाद बना सकते है। उन्होने प्रसाद बनाया और फिर अपने बड़े भाई को निमन्त्रण दिया।

श्रील सनातन गोस्वामी जब वहाँ आए, तो बड़े आश्चर्यचकित हुए। "तुमने इतनी सारी वस्तुएँ कहाँ से एकत्रित कर ली ? तुमने इतना सुन्दर कृष्ण-प्रसाद इस वन मे तैयार किया है। यह कैसे सम्भव हुआ ?"

तो श्रील रूप गोस्वामी ने समझाया, "प्रात:काल मैने सुन्दर प्रसाद बनाने की इच्छा की थी और संयोगवश श्रीकृष्ण ने मुझे यह सब वस्तुएँ भेज दी। एक सुन्दर बालिका आई और उसने यह समाग्री दी।" वे उस बालिका का वर्णन कर रहे थे . "एक बहुत सुन्दर बालिका।"

तो श्रील सनातन ने कहा, वह सुन्दर बालिका श्रीमती राधिकारानी है। तुमने भगवान् की नित्य प्रेयसी श्रीमती राधिकारानी से सेवा ली। यह तो एक महान् अपराध है। यह उन लोगो का सिद्धान्त है। वे भगवान् से सेवा स्वीकार नही करते थे। गोस्वामी लोग तो केवल सेवा करना चाहते थे। परन्तु श्रीकृष्ण इतने चतुर है कि वे भी अपने भक्तो की सेवा करना चाहते है। वे अपने भक्तो की सेवा करने का अवसर ढूँढ़ा करते है। यह आध्यात्मिक प्रतिस्पर्धा है। शुद्ध भक्त श्रीकृष्ण से कुछ भी नही चाहते, वे केवल उनकी सेवा करना चाहते है। और श्रीकृष्ण अपने भक्तों की सेवा करने के लिए अवसर ढूँढा करते है। श्रीकृष्ण सदा ही अपने भक्तो को प्रसन्न करने के लिए उतने ही अधीर रहते है, जितने कि भक्त उनको प्रसन्न करने के लिए।

तो यह अप्राकृत जगत् है। उस अद्वै स्तर पर किसी प्रकार का शोषण नही होता। सभी लोग सेवा करना चाहते है, सेवा लेना नही। अप्राकृत जगत् मे, सभी लोग सेवा करना चाहते है। आप मेरी सेवा करना चाहते है और मै आपकी। यह कितना सुन्दर भाव है। इस भौतिक जगत् का अर्थ है कि मै आपकी जेब काटना चाहता हूँ और आप मेरी जेब काटना चाहते है। बस इसके अतिरिक्त हमारा और कोई लक्ष्य नही है। यह भौतिक जगत् है। हम इस जगत् को जरा

समझने का प्रयत्न तो करे। भौतिक जगत् मे, सभी लोग अपने मित्र, अपने पिता, अपनी माता, सभी लोगो का शोषण करना चाहते है। परन्तु आध्यात्मिक (वैकुण्ठ) जगत् मे, सभी लोग सेवा करना चाहते है। सभी लोगो की सेवा के केन्द्र श्रीकृष्ण है और सभी भक्त, चाहे वह श्रीकृष्ण के सखा हो, दास हो, माता-पिता हो या प्रेमिका हो, सभी लोग उनकी सेवा करना चाहते है। और साथ ही साथ श्रीकृष्ण भी उन सब की सेवा करना चाहते है। यह सब दिव्य सम्बन्ध है, यह क्रिया सेवा है, यद्यपि वहाॅ सेवा की कोई आवश्यकता ही नही है, क्योकि सभी लोग पूर्ण है। वहाॅ क्षुधा नही है, वहाँ भोजन करने की कोई आवश्यकता नही पडती, परन्तु फिर भी प्रत्येक व्यक्ति भोजन के लिए सुन्दर वस्तुएँ अर्पण करता है। यह अप्राकृत जगत् है। जब तक हम श्रीकृष्ण अथवा उनके भक्तो की केवल सेवा करने के स्तर की प्राप्ति नही करते, तब तक हम सेवा के अप्राकृत आनन्द का रसास्वादन नही कर सकते। यदि हमारे मे कुछ भी उद्देश्य है, तो वह भाव कदापि जाग्रत न हो सकेगा। भगवान् और उनके भक्तों की सेवा की जानी चाहिए, जो अहेतुकी एव व्यक्तिगत इन्द्रियतृप्ति की अभिलाषाओ से शून्य हो।

श्रीकृष्ण का सप्रेम आश्रय ग्रहण करना

"सूत्र यह है— हमे पृथक् रूप से अपनी इन्द्रियो को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न नही करना चाहिए, वरन् श्रीकृष्ण की इन्द्रियो को सन्तुष्ट करने का हम प्रयत्न करे। स्वाभाविक ही हम सन्तुष्ट हो जाएँगे। कृष्ण-भक्त सदैव श्रीकृष्ण को सन्तोष देने का प्रयत्न कर रहे हैं ।"

जव भगवान् श्रीकृष्ण इस पृथ्वी पर प्रकट थे, तो श्रीधामवृन्दावन के समस्त व्यक्ति उनसे अतिशय प्रेम करते थे। निस्सन्देह, श्रीकृष्ण के अतिरिक्त वे और कुछ जानते ही न थे। उनको यह ज्ञात नही था कि श्रीकृष्ण भगवान् है अथवा नही है, न ही वे ऐसे विचारो के द्वारा व्याकुल रहते थे, "मै श्रीकृष्ण से तभी प्रेम करूँगा, यदि वह भगवान् है।" वृन्दवनधाम के निवासियो का शुद्ध प्रेम का भाव था और वह सोचते थे, "वह भगवान् हो अथवा न हो—इससे कुछ अन्तर नही पडता। हमें श्रीकृष्ण से प्रेम है, इसके अतिरिक्त हमे और कुछ जानने की आवश्यकता नही।" तो यह वास्तविक और विशुद्ध प्रेम का स्तर है। जब व्यक्ति सोचता है, "यदि श्रीकृष्ण भगवान् है, तभी मैं उनसे प्रेम करूँगा," तो यह ज्ञात होना चाहिए कि यह शुद्ध प्रेम का स्तर नही, परन्तु यह प्रतिबन्धित प्रेम है। भगवान् श्रीकृष्ण जब पृथ्वी पर प्रकट थे, तो उन्होने असाधारण बल का प्रदर्शन किया फिर भी व्रजवासी प्राय सोचते थे, "अरे, कृष्ण इतना अद्भुत बालक है। हो सकता है वह कोई देवता हो।" वे लोग इसी प्रकार से सोचते थे, क्योकि लोगो की सामान्य धारणा यह थी कि देवता सब शक्तिशाली होते-है। इस भौतिक जगत् मे देवता-गण शक्तिशाली है, परन्तु लोग इससे अवगत नही है कि श्रीकृष्ण की स्थिति इन सबसे उच्च है। देवताओ मे सर्वोच्च ब्रह्माजी ने इस विषय मे अपनी सम्मति **ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द-विग्रहः**—नामक श्लोक मे दी है। अर्थात् श्रीकृष्ण परम-ईश्वर है। और उनका श्री विग्रह ज्ञान, आनन्द और नित्यता से परिपूर्ण है।" परन्तु वृन्दावन के निवासियो को परम-ईश्वर और समस्त देवताओ के स्वामी के रूप मे श्रीकृष्ण के बल का किंचित मात्र भी ज्ञान न था। इस विषय मे महत्वपूर्ण तथ्य तो यह है कि श्रीकृष्ण के प्रति उनके प्रेम मे ऐसे विचारो के लिए कोई स्थान न था।

जिस प्रकार वृन्दावन के निवासियो ने श्रीकृष्ण से अप्रतिबन्धित रूप मे प्रेम किया, उसी प्रकार श्रीकृष्ण ने भी उनसे बिना किसी शर्त के प्रेम किया था। **ब्रज जन वल्लभ गिरिवर धारी**। जब वृन्दावन के निवासियो ने देवराज इन्द्र के लिए किया जाने वाला यज्ञ रोक दिया, तो उन लोगो ने अपने लिए एक अत्यधिक खतरनाक स्थिति खडी कर दी। इन्द्र बहुत क्रोधित हुए और उन्होने शक्तिशाली मेघो को भेजा जिन्होने श्रीधाम वृन्दावन मे लगातार सात दिनो तक वर्षा की, पूरे ब्रज मण्डल में बाढ आ गई। ब्रजवासी बहुत व्याकुल हो गए। उस समय यद्यपि भगवान् केवल सात वर्ष के थे, उन्होने गोवर्धन पर्वत को उठा कर छाते के रूप में धारण कर श्रीधामवृन्दावन के निवासियो की रक्षा की। भगवान् श्रीकृष्ण ने इस प्रकार देवराज इन्द्र को शिक्षा दी कि उनके उत्पातो को केवल उनकी कनिष्ठा उगली के द्वारा ही रोका जा सकता है। यह देखकर, इन्द्र ने श्रीकृष्ण के समक्ष आकर क्षमा याचना की। इस प्रकार श्रीकृष्ण गोपीजन वल्लभ कह कर ही पुकारे जाने लगे, जो यह दर्शाता है कि उनका एक मात्र प्रयोजन गोपीजनो की रक्षा करना है। इस श्रीकृष्णभावनामृत अभियान का लक्ष्य लोगो को यह शिक्षा देना है कि किस प्रकार श्रीकृष्ण का शुद्ध प्रेमी बना जाए। जब हम शुद्ध भगवद्-प्रेम की अवस्था पर पहुँचते है, तो भगवान् किसी भी प्रकार की विपत्ति से हमारी रक्षा करेंगे, चाहे उसका अर्थ उनके द्वारा एक पर्वत को धारण करना ही क्यो न हो। कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को धारण करने के लिए किसी प्रकार का योगाभ्यास नही किया। भगवान् होने के कारण वे बालक के रूप मे भी सर्वशक्तिमान है। उन्होने बालक के समान क्रीडा की और लोगो से बालक के समान ही व्यवहार किया, परन्तु जब आवश्यकता पडी तो उन्होने अपना सर्वशक्तिमान् भगवान् के रूप को भी प्रकट किया। श्रीकृष्ण अथवा भगवान् का यही स्वभाव है. उनको भगवान् बनने के लिए किसी प्रकार का ध्यान या किसी योग प्रणाली का अभ्यास नही करना पडता। यह रचना किए जाने वाले प्रकार के भगवान् नही है, परन्तु वे नित्य रूप से भगवान् है।

यद्यपि श्रीकृष्ण भगवान् है, फिर भी वे अपने भक्तो के साथ प्रेममय सम्बन्ध का आस्वादन करते है और अपने भक्तो को सतोष देने के लिए, प्राय. ऐसा अभिनय करते है जो गौण लगे। श्रीकृष्ण प्राय. भक्तो के पुत्र बनना पसन्द करते है और इस प्रकार से यशोदा मैया के प्रिय पुत्र—यशोदा नन्दन बने। क्योकि श्रीकृष्ण भगवान् है और सभी लोग उनका पूजन करते है, इसलिए उनको कोई दण्ड नही देता। किन्तु अपने भक्त पिता-माता के द्वारा दण्ड दिए जाने पर श्रीकृष्ण को आनन्द होता है। और क्योकि श्रीकृष्ण को दण्ड मिलने पर आनन्द होता है, इसलिए भक्त भी ऐसा अभिनय करते है, "ठीक है, मैं आपका पिता बन कर

आपको दण्ड दूँगा। "उसी प्रकार, जब श्रीकृष्ण युद्ध करना चाहते है, तो उनके भक्तो मे से ही कोई एक हिरण्यकशिपु दैत्य बन कर भगवान् के साथ युद्ध करता है। उसी प्रकार, श्रीकृष्ण के समस्त कार्य-कलाप उनके भक्तो के सम्बन्ध से ही होते है। यदि हम श्रीकृष्ण के इस प्रकार पार्षद बनना चाहते है, तो हमे अवश्य ही श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् श्रीकृष्ण के बोध का अवश्य ही विकास करना पड़ेगा।

यशोदा-नन्दन-ब्रज-जन-रंजन। श्रीकृष्ण का एकमात्र प्रयोजन ब्रज-जन लोगो को सन्तोष देना है और ब्रजजनो का एकमात्र प्रयोजन श्रीकृष्ण को सन्तोष देना है। यही प्रेम का आदान-प्रदान है। **यमुना तीर वनचारी**—स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण गोपियो, गोप बालको, पक्षी, भ्रमर, गायो और बछडो को सुख देने के लिए यमुना नदी के किनारे भ्रमण करते है। यह लोग साधारण पक्षी, भ्रमर, गाय, बछडे या मनुष्य नही है, यह सब आत्म-साक्षात्कार के शिखर पर पहुँच चुके है और इस प्रकार जन्म-जन्मान्तर के पश्चात् ऐसा पद प्राप्त किया है जहाँ वे श्रीकृष्ण के साथ क्रीड़ा कर सकते है। यह श्रीकृष्णभावनामृत अभियान सभी को कृष्ण लोक मे जाने के लिए और श्रीकृष्ण के पार्षद के रूप मे मित्र, दास, पिता अथवा माता बनने के लिए समर्थ बना सकता है। श्रीकृष्ण अपने भक्तो के सम्बन्ध मे इनमे से किसी भी स्थिति को ग्रहण करने के लिए तैयार है। वे ऐसा किस प्रकार करते है इन सब का वर्णन हमारे ग्रन्थ भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत में हुआ है। श्रीकृष्ण के साथ अपने सम्बन्ध का साक्षात्कार करने के लिए, हमे भगवान् श्रीचैतन्य और उनके प्रधान पार्षद षड् गोस्वामी—श्रील रूप, श्रील सनातन, श्रील जीव, श्रील गोपाल, श्रील रघुनाथ दास और श्रील रघुनाथ भट्ट—इनके पद-चिन्हो का अनुसरण अवश्य ही करना पड़ेगा। यह गोस्वामी वृन्द हरे कृष्ण कीर्त्तन करने मे और भाव के कारण नृत्य करने मे निरन्तर ही सलग्न रहते थे। उन्होने शिक्षा दी है कि जब हम कृष्ण-कीर्त्तन अर्थात् श्रीकृष्ण के नाम-कीर्त्तन मे निमग्न हो जाते है, तो हम श्रीकृष्ण प्रेम के समुद्र मे डुबकियाँ लगाने लगते है। जैसे ही कृष्ण-नाम के शब्द का उच्चारण होता है, वैसे ही व्यक्ति प्रेम के सागर मे निमग्न हो जाता है। शुद्ध-भक्त के ये लक्षण है। इस प्रकार श्रीकृष्ण-कीर्त्तन होते ही षड् गोस्वामी वृन्द भगवद्-प्रेम के सागर मे तत्काल ही निमग्न हो जाते थे।

षड् गोस्वामी वृन्द न केवल भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु के भक्तो को प्रिय है, वरन् अभक्त लोगो को भी प्रिय है। शुद्ध-भक्त की स्थिति यह है कि उनका कोई शत्रु नही होता, क्योकि वे ईर्ष्यालु नही है। शुद्ध-भक्त सभी के प्रति सरल व्यवहार करते है और वे ऐसा कोई भेद-भाव नही रखते कि इस व्यक्ति को हरे कृष्ण कीर्त्तन करने दिया जाए और उस व्यक्ति को नही। भौतिक स्तर, जो द्वैत का स्तर है, उस

पर कुछ और निम्न स्त्री और पुरुष, यह और वह इनके बीच अन्तर बना रहता है, परन्तु आध्यात्मिक स्तर पर इस प्रकार का कोई भेद-भाव नही है। शुद्ध-भक्त समदृष्टि कोण से प्रत्येक वस्तु देखते है और इसीलिए ईर्ष्या से रहित होते है। क्योकि वे ईर्ष्या रहित है, अत. वे पूज्यनीय है। निस्सन्देह, यहाँ तक भी कहा जाता है कि एक व्यक्ति पूज्यनीय है यदि वह केवल ईर्ष्या रहित हो जाए, क्योकि ईर्ष्या रहित होना केवल आध्यात्मिक स्तर पर ही सम्भव है। भगवद्गीता का भी यही निर्णय है [५. १८ १९] .

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥
इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥

"एक विनीत पण्डित ज्ञान की दृष्टि के द्वारा विद्या-विनय से युक्त ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल मे समदर्शी होता है। जिनका मन समभाव मे स्थित है, उन्होने इसी जीवन मे जन्म-मृत्यु आदि बन्धनो पर विजय प्राप्त कर ली है। ब्रह्म के समान निर्दोष होने के कारण, वे सदा ब्रह्म मे ही स्थित है।"

ऐसी स्थिति उनके द्वारा प्राप्त की जा सकती है, जिन्होने भगवान् श्रीचैतन्य की दया स्वीकार कर ली है। उनकी दया को प्राप्त करते पर, व्यक्ति पीड़ित मानवता को भौतिक दोषो से मुक्त करा सकता है। क्योकि छह गोस्वामी ऐसे ही भक्त-वृन्द थे, अतः हम इस मन्त्र के साथ उनकी सादर वन्दना करते है—**वन्दौ रूप सनातनो रघुयुगौ श्रीजीव गोपालकौ**। षड् (छह) गोस्वामी इसी प्रकार के शास्त्रो का सूक्ष्मता पूर्वक विचार करने मे निपुण थे। शास्त्रो के आधार पर वे विश्व मे सद्धर्म की स्थापना करने वाले थे। उन्होने हमारे मार्ग दर्शन के लिए, अनेक ग्रन्थ लिखे है, जिनमे से श्रील रूप गोस्वामी का श्रीभक्तिरसामृत सिन्धु सबसे अधिक विख्यात है। यह ग्रन्थ **कनिष्ठ** भक्तो का प्रारम्भिक मार्गदर्शन करता है। गोस्वामी लोग सम्पूर्ण दिन और रात्रि अत्यधिक कठिन परिश्रम करते हुए व्यतीत करते थे और उनका प्रयोजन, केवल ग्रन्थो का लेखन, कृष्ण-कीर्त्तन और नर्त्तन। निस्सन्देह, वे लोग व्यवहारिक रूप से आहार, निद्रा, भय और मैथुन की शारीरिक आवश्यकताओ से पूर्ण रूप से मुक्त हो चुके थे। मैथुन का कोई प्रश्न ही नही था और न ही भय या आत्मरक्षा का प्रश्न था, क्योकि वे लोग श्रीकृष्ण मे पूर्ण रूप से मग्न थे। अधिक से अधिक वे प्रति दिन लगभग डेढ़ घण्टे की निद्रा लेते थे और व्यवहारिक दृष्टिकोण से भोजन करते ही नही थे जब उनको भूख लगती, तो वे किसी गृहस्थ के घर जाकर रोटी के एक या दो टुकडे भिक्षा माँग लेते थे।

ऐसे साधु व्यक्तियो का उद्देश्य केवल एक होता है और वह है सभी लोगो को आध्यात्मिक चेतना के स्तर तक उन्नत करने के लिए पीडित मानवता को सुखी करना। भौतिक जगत् मे, सभी लोग एक दूसरे का शोषण करने का प्रयत्न कर रहे है—एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का, एक समाज दूसरे समाज का और एक व्यापारी दूसरे व्यापारी का शोषण करने का प्रयत्न कर रहा है। यह अस्तित्व के लिए संघर्ष कहलाता है और इसके ही कारण सघर्ष करने वाले लोगो ने एक नियम का आविष्कार किया है, "जिसकी लाठी उसी की भैस।" परन्तु हम वास्तव मे देख सकते है कि सबसे अधिक शक्तिशाली व्यक्ति को भी सघर्ष करना पडता है। जैसे कि मनुष्य की वर्त्तमान स्थिति मे रूस, अमेरिका और चीन के बीच एक महान् सघर्ष हो रहा है। सघर्ष के कारण ही सभी लोग कष्ट पा रहे है। निस्स्सदेह, अस्तित्व के लिए सघर्ष करने का अर्थ ही कष्ट पाना है। किन्तु शुद्ध कृष्ण-भक्त दूसरो का शोषण करने मे नही, वरन् लोगो को सुखी बनाने मे सहायता करने मे रुचि रखते है और इसीलिए समस्त लोको मे उनका पूजन किया जाता है। चाणक्य पण्डित ने तो यहाँ तक कहा है कि धनवान् और विद्वान मनुष्य की तुलना नही की जा सकती, क्योकि एक धनवान् मनुष्य को भले ही अपने लोक मे सम्मान मिल सकता है, परन्तु एक विद्वान मनुष्य अर्थात् भगवान् के भक्त को जहाँ भी वह जाता है आदर मिलता है।

भक्तो के लिए स्वर्ग और नरक मे कुछ अन्तर नही है, क्योकि श्रीकृष्ण दोनो ही स्थानो पर उनके साथ है। जहाँ श्रीकृष्ण है, वहाँ नरक का कोई प्रश्न ही नही उठता, प्रत्येक वस्तु वैकुण्ठ हो जाती है। उदाहरण के लिए नामाचार्य श्री हरिदास ठाकुर, पुरी के जगन्नाथ मन्दिर मे प्रवेश नही करते थे, क्योकि उनका जन्म एक मुसलमान परिवार मे हुआ था। हिन्दू लोग मुसलमानो के द्वारा मन्दिर मे प्रवेश करने का विरोध करते थे। श्रील हरिदास ठाकुर ने उन लोगो को क्षुब्ध नही किया। उन्होने सोचा, "अरे, मै मन्दिर मे क्यो जाऊँ और उनको क्षुब्ध करूँ मै यही नाम—कीर्त्तन करूँगा।" फलस्वरूप भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु, जो स्वय भगवान् श्री जगन्नाथ है, प्रतिदिन श्रील हरिदास को देखने आते थे। शुद्ध-भक्त की यह भक्ति है: उनको श्री जगन्नाथ के दर्शन करने नही जाना पडता। श्री जगन्नाथ ही उनके पास आ जाते है। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु प्रतिदिन समुद्र-स्नान करते समय श्रील हरिदास ठाकुर को देखने आया करते थे। भगवान् श्रील हरिदास की कुटिया मे प्रवेश करते और पूछते, "हरिदास आप क्या कर रहे है?" और श्रील हरिदास उत्तर देते, "हे भगवान्, कृपया पधारिये।" तो एक भक्त की वास्तविक स्थिति यह है। इसलिए श्रीकृष्ण कहते हैं कि उनके भक्तो का पूजन उनके स्वय के पूजन से कही अधिक मूल्यवान है। भक्त-वृन्द वास्तव मे श्रीकृष्ण को देने मे समर्थ है, क्योकि वे श्रीकृष्णभावनामृत के विज्ञान

अर्थात् श्रीकृष्ण के शब्दो के श्रवण का, कृष्ण-प्रसाद भोजन का और श्रीकृष्ण को आनन्द देने के विज्ञान का जानते है। निराकारवादी और शून्यवादी भले ही अहं ब्रह्मास्मि—"मै आत्मा हूँ"—पर शुष्क दार्शनिक ग्रन्थ प्रस्तुत कर सकते है, परन्तु अन्तत. उनसे कौन आकर्षित होगा ? उन दोनो व्यक्ति मे अन्तर ही क्या रह जाता है, जिनमे से एक यह सोचता है, "मै पत्थर हूँ," और दूसरा सोचता है, "मैं शून्य हूँ ?" हम पत्थर, लकड़ी या शून्य क्यो बने ? हमारी वास्तविक स्थिति श्रीकृष्ण के साथ प्रेम का आदान-प्रदान करने की होनी चाहिए।

कृष्ण-प्रेम की जागृति गुरु महाराज के द्वारा की जाती है, जो एक शुद्ध भक्त होते है। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मेरे गुरु महाराज, गौरकरुणाशक्ति-श्रीविग्रह ओम् विष्णुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज ने मुझे आदेश दिया था कि मै पश्चिमी जगत् मे श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति का प्रसार-प्रचार करने का उत्तरदायित्व हूँ। गौरकरुणाशक्ति-श्रीविग्रह की यह प्रबल इच्छा थी कि भगवान् श्री चैतन्य के सन्देश का पश्चिम मे प्रचार किया जाए और मेरी सफलता का कारण उनकी कृपा और प्रसन्नता दोनो ही है। जब मेरी अपने गुरु महाराज से प्रथम भेट हुई, तो मै एक युवा राष्ट्रवादी था तथा एक अत्यधिक उत्तर-दायित्व पूर्ण स्तर पर कार्य करता था। परन्तु यद्यपि मै उनसे भेट करने नही जाना चाहता था, फिर भी कलकत्ता निवासी मेरे एक मित्र बल-पूर्वक मुझे गौर-करुणाशक्ति-श्रीविग्रह के दर्शन के लिए ले गए। मै उनको देखने लिए अनइच्छुक था, क्योकि हमारे घर मे हमारे पिताजी बहुत से सन्यासियो का आतिथ्य करते थे और मै उन सन्यासियो के आचरण से बहुत सन्तुष्ट न था। मैने सोचा कि श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज भी ऐसे ही साधु होगे और यदि वे ऐसे साधु है, तो मेरे द्वारा उनके दर्शन करने का क्या प्रयोजन होगा परन्तु मेरे मित्र मुझे बलपूर्वक ले गए। तुम उनके दर्शन तो करो उन्होने कहा। मै अन्ततः तैयार हो गया और उनके साथ गया तथा मुझे महान् लाभ हुआ।

मेरी प्रथम भेट मे ही, गौरकरुणाशक्ति-श्रीविग्रह ने कहा कि तुम्हारे जैसे शिक्षित युवक लोगो के लिए यह आवश्यक था कि वे विदेशो मे जाकर श्री चैतन्य महाप्रभु के सिद्धान्त का प्रचार करे। मैने उत्तर दिया कि भारत अभी एक पराधीन देश है और कोई भी हमारे सन्देश को नही सुनेगा। वास्तव मे उस समय विदेशी लोग भारतीयो को अत्यधिक नगण्य मानते थे, क्योकि इतने सारे स्वतन्त्र देशो के समक्ष ब्रिटेन के द्वारा प्रभुत्व स्थापित्व कर लेने के कारण भारत अभी भी निर्भर और परतन्त्र था। उन दिनो एक बंगाली कवि थे जो वास्तव मे शोक करते थे कि अनेक असभ्य राष्ट्र तक स्वाधीन थे, परन्तु भारत अभी तक ब्रिटिश लोगो पर निर्भर था। गौरकरुणाशक्ति-श्रीविग्रह ने मुझे प्रतीति करा दी कि स्वाधीनता और

पराधीनता केवल अस्थायी स्थिति है और उन्होने संकेत किया कि, क्योकि हम मानवता के शाश्वत लाभ से सम्बद्ध है, इसलिए हमे श्रीचैतन्य महाप्रभु के इस चुनौती पूर्ण सन्देश को अवश्य ही ग्रहण करना चाहिए। मेरे गुरु महाराज गौरकरुणाशक्ति-श्रीविग्रह से यह भेट सन् १६२२ मे हुई थी अर्थात् लगभग ५० वर्ष पूर्व।

सन् १६३३ मे अर्थात् इस भौतिक जगत् से मेरे गुरु महाराज के द्वारा अप्रकट होने के ठीक तीन वर्ष पूर्व ही मुझे विधिवत दीक्षा प्राप्त हुई। अन्तिम क्षणो मे अप्रकट होने के एक पखवारे पूर्व उन्होने मुझे एक पत्र लिखा जिसमे उन्होने अपने निर्देश को दोहराया था। गुरु महाराज ने विशेष रूप से कहा कि मै इस गौडीय सिद्धान्त का अँग्रेजी बोलने वाले लोगो के बीच प्रचार करूँ। उनका यह पत्र पाने के पश्चात्, मै कभी-कभी स्वप्न देखता था कि गुरु महाराज मुझे बुला रहे है और मैं अपना घर छोड़ कर उनका अनुसरण कर रहा हूँ। मै इस प्रकार स्वप्न देखता था। और सोचता था, "मुझे अपना घर छोडना पडेगा। मेरे गुरु महाराज चाहते है कि मैं घर छोड दूँ और सन्यास ले लूं।" उस समय मैने सोचा, "कि यह तो डरावना स्वप्न है। मै अपना घर कैसे छोड सकता हूँ? मेरी पत्नी? मेरी सन्तान? इसे माया कहते है। वास्तव मे मै अपने पारिवारिक जीवन का त्याग नही करना चाहता था, परन्तु गुरु महाराज ने मुझसे घर का त्याग करवा दिया उनके आदेश के अनुसार मैने उस सन्तान वाला घर त्याग दिया। परन्तु अब गुरु महाराज ने मुझे सम्पूर्ण विश्व मे अनेक सुन्दर सन्तान दे दी है। इस प्रकार श्रीकृष्ण की सेवा करने से किसी को भी हानि नही होती। और मेरे स्वय व्यवहारिक अनुभव से यह एक उदाहरण है।

मैंने सन् १६६५ मे जब अकेले भारत को त्यागा, तो मुझे भय था कि मुझे महान् कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। भारतीय शासन देश के बाहर धन ले जाने की मुझे अनुमति न देगी, तो मै केवल कुछ एक ग्रन्थ और चालीस रुपयो के साथ अमेरिका आया। मै इस दशा मे न्युयार्क नगर पहुँचा, परन्तु यह सब गुरु महाराज और श्रीकृष्ण की सयुक्त कृपा से ही प्रत्येक वस्तु होती है। श्री चैतन्य चरितामृत मे आता है कि श्रीकृष्ण और गुरु की कृपा संयुक्त है। इस श्रीकृष्णभावनामृत अभियान की सफलता का यही रहस्य है। श्रीकृष्ण सदैव हमारे भीतर है और फलस्वरूप वे हमारे उद्देश्य के विषय मे सब कुछ जानते है और हमारे निश्चय के अनुसार हमे कार्य करने का अवसर भी प्रदान करते है। यदि हम इस भौतिक जगत् मे सुख-भोगने का निश्चय करे, श्रीकृष्ण हमको वैसी ही बुद्धि देगे, जिससे हम एक अत्यन्त चतुर व्यापारी या लोक प्रिय राजनीतिज्ञ या चालाक मनुष्य बन सके और जिसके परिणामस्वरूप हम धन प्राप्त कर सुख

कर सके। भौतिक जीवन के आदर्श के अनुसार बहुत से लोग महान् बन रहे है। वे अत्यधिक निर्धन मनुष्य के रूप मे अपना जीवन आरम्भ करते है और बहुत शीघ्र ही, सौभाग्य के कारण लखपति बन जाते है। किन्तु हम यह न सोचे कि वे ऐसी सफलता अपने स्वय के नगण्य प्रयासो के द्वारा प्राप्त कर रहे है बुद्धि के विना, कोई भी उन्नति नही कर सकता और वह बुद्धि श्रीकृष्ण के द्वारा दी जाती है। भगवद्-गीता मे श्रीकृष्ण कहते है कि वे सभी के हृदय मे परमात्मा रूप से स्थित है और वे अपनी इच्छा के द्वारा मनुष्य को स्मृति देते है और अपनी इच्छा के द्वारा उसे विस्मृति भी। श्रीकृष्ण जीव की इच्छा के अनुसार स्मृति और विस्मृति प्रदान करते हैं। यदि हम श्रीकृष्ण को भूल कर इस भौतिक जगत् मे सुख-भोग करना चाहते है, तो श्रीकृष्ण हमको अवश्यक बुद्धि दे देगे, जिससे हम उनको सदा के लिए भूल सकते है।

अनेक लोग सोच रहे है, "मै इस भौतिक जगत् मे बहुत सुन्दर ढंग से सुख-भोग कर सकता हूँ। सभी लोग ऐसा कर रहे है, ऐसा कोई कारण नही है कि मैं भी उनके समान सुख-भोग न कर सकूं। यह विचार भ्रम है, क्योकि इस भौतिक जगत् मे कोई सच्चा सुख है ही नही। हम राष्ट्रपति कैनेडी के समान सर्वोच्च पद तक उन्नति कर सकते है। हम भले ही अत्यन्त रूपवान, अत्यन्त प्रसिद्ध, अत्यन्त बुद्धिमान सुशिक्षित, अत्यन्त धनवान् और अत्यन्त शक्तिशाली हो हमारे पास भले ही एक सुन्दर पत्नी और सन्तान हो तथा हम देश के सर्वोच्च पद पर आसीन हो— परन्तु किसी भी पल हमारी हत्या की जा सकती है। भौतिक जगत् का यही स्वभाव है: हमे पद-पद पर विपदाओ का सामना करना पड़ता है। बाधाओ के बिना आनन्द पाने का कोई प्रश्न ही नही उठता। और जब आनन्द को प्राप्त किया जाता है, वह प्राप्ति भी महान् सघर्ष और बलिदान के पश्चात् होती है। इसके अतिरिक्त हम जिस प्रकार का भी आनन्द प्राप्त करे वह स्थायी है, क्योकि इस भौतिक जगत् मे ऐसा कोई सुख नही है जो हमको निरन्तर और अनन्त आनन्द दे सके। केवल श्रीकृष्ण हमको वह आनन्द दे सकते है।

अत भगवद्गीता मे श्रीकृष्ण उपदेश देते है कि प्रत्येक प्राणी का कल्याण इसी मे है कि वह निरर्थक सासारिक कार्यो को त्याग दे और एक मात्र उनकी शरण मे चला जाए। दुर्भाग्यवश इस युग मे लोग भौतिक प्रकृति (माया) की चमक से इतने अधिक आकर्षित है कि उनकी आध्यात्मिक जीवन मे बहुत रुचि नही है। श्रीकृष्ण तो यहाँ तक घोषणा भी करते है कि यदि कोई उनकी शरण लेता है, तो वे उसकी सब प्रकार के पापो से रक्षा करेगे। परन्तु फिर भी लोग माया मे इतने अधिक आसक्त है कि वे भगवान् की शरण नही ले सकते। लोगो को सदैव यह भय रहता है कि श्रीकृष्ण की शरण लेने के कारण वे अवश्य ही कुछ न कुछ खो देगे।

जैसे कि पश्चिमी देशो मे जा कर प्रचार करने के द्वारा मुझे अपने परिवार को खो देने का भय था। परन्तु श्रीकृष्ण इतने दयालु है कि यदि वे कोई वस्तु लेते है, तो उसका हजार गुना फल देते है ।

गुरु महाराज भी बहुत दयालु है, क्योकि वे एक द्वार से दूसरे द्वार, एक देश से दूसरे देश, एक नगर से दूसरे नगर जा कर भिक्षा माँगते है। "देवियो और सज्जनो, प्रिय किशोर बालक और बालिकाओ, कृपा करके श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति को ग्रहण कर लो।" इस प्रकार वे श्रीकृष्ण की अत्यधिक गोपनीय सेवा कर रहे है। कृष्ण परम-ईश्वर भगवान् है, जो आज्ञा दिया करते हैं और गुरु महाराज उन आज्ञाओ का पालन करते है। अतः गुरु श्रीकृष्ण को अत्यन्त प्रिय है। श्रीकृष्ण उनको स्वर्ग मे भेजे या नरक मे इससे गुरु को कुछ अन्तर नही पडता। गुरु एक शुद्ध भक्त है, इसलिए उनके लिए स्वर्ग और नरक दोनों ही बराबर है। यदि वहाँ श्रीकृष्णभावनामृत हो। नरक मे लोग अनेक प्रकार से कष्ट पा रहे है और स्वर्ग मे वे अनेक प्रकार के सुख भोग रहे है परन्तु भगवान् के भक्त जहाँ कही भी श्रीकृष्ण-भावनामृत हो, वही रह सकते है। और क्योकि वे इस भावनामृत को अपने साथ लाते है, अतः वे सदैव आत्माराम होते है। यदि वे नरक भेजे जाते है, तो भी वे केवल हरे कृष्ण कीर्त्तन के सन्तुष्ट रहेगे। वास्तव मे, वे नरक मे नही, वरन् श्रीकृष्ण मे विश्वास करते है। उसी प्रकार, यदि उनको स्वर्ग मे रख दिया जाए, जहाँ इन्द्रिय-तृप्ति के लिए अनेकानेक अवसर है, तो भी वे पृथक बने रहेगे, क्योकि स्वय श्रीकृष्ण के द्वारा उनकी इन्द्रियो को सन्तोष दिया जाता है। इस प्रकार भगवान् की सेवा के लिए भक्त कही भी जाने को तैयार रहते है और इस कारण से वे श्रीकृष्ण को अत्यन्त प्रिय है।

विरक्त निराकारवादी दार्शनिक कहते है कि यह जगत् मिथ्या है और निराकार ब्रह्म सत्य है। परन्तु यदि उनसे उस समाज मे जाने को कहा जाए, जहाँ भौतिक इन्द्रियतृप्ति की प्रधानता है, तो वे वहाँ जाना अस्वीकार कर देते है, क्योकि उनको वहाँ की दशाओ से प्रभावित होने का भय रहता है। किन्तु कृष्ण भक्त के लिए ऐसी कोई कठिनाई नही है। क्योकि वह नियन्त्रित है और वह श्रीकृष्ण की शरण ले चुका है, अत. उसको कही भी जाने मे भय नही होता।

फलस्वरूप, जब भक्त-वृन्द एक ऐसे स्थान मे मिलते है, जहाँ कोई श्रीकृष्ण-भावनामृत नही है, तब भी उसमे कोई हानि नही है, क्योकि वे हरे कृष्ण कीर्त्तन करने के अवसर का लाभ उठा कर उस स्थान को श्रीकृष्णभावनामृत से पूर्ण कर देते है। ऐसे अवसर का हमेशा लाभ उठाना चाहिए। यह नही कि हम अपने को एक कमरे मे बन्द कर ले और अकेले कीर्त्तन करे। देवर्षि नारद एक अन्तरिक्ष यात्री है जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मे भ्रमण करते है। यद्यपि वे सर्वाधिक उन्नत लोक मे

निवास करते है, फिर भी वे कभी-कभी नरक मे जाते है और वहाँ भी प्रचार करते है। भगवान् के दास की यही तो सुन्दरता है—वे श्रीकृष्ण से और श्रीकृष्ण के अंश से प्रेम होने के कारण सदैव ही कार्य करते रहते है।

भक्ति का मूलभूत सिद्धान्त श्रीकृष्ण के प्रति विशुद्ध प्रेम है। एक विशिष्ट भक्ति की स्थिति चाहे जो कुछ भी हो—वे श्रीकृष्ण के सखा, दास, माता-पिता या प्रेमिका हो—उनकी सेवा विना किसी शर्त के रहती है। क्योकि श्रीकृष्णभावनामृत किसी भी भौतिक अवस्था पर निर्भर नही है। यह दिव्य है और इसको प्रकृति के गुणो से कुछ भी लेना-देना नही है। भक्त को कही जाने मे भय नही होता, क्योकि वह सभी भौतिक अवस्थाओ को समान देखता है। संसार मे हम कह सकते है कि यह अच्छा स्थान है और वह बुरा स्थान, परन्तु जैसे कि पहले सकेत किया जा चुका है, भक्त-वृन्द इन मनगढ़न्त स्थितियो से प्रभावित नही होते। उनके लिए संसार का मौलिक सिद्धान्त ही बुरा है, क्योकि ससार का अर्थ है श्रीकृष्ण को भूल जाना।

भक्ति की शान्त अवस्था मे, व्यक्ति भले ही भगवान् के निराकार ब्रह्म ज्योति को और हृदय मे स्थित परमात्मा के रूप को अधिक महत्व दे सकता है। परन्तु जब वास्तव मे श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति का विकास हो जाता है तो वह सोचता है, "श्रीकृष्ण मेरे घनिष्ठ सम्बन्धो के अत्यन्त घनिष्ठ प्रभु है।" आरम्भ मे, निस्सन्देह, निराकार साक्षात्कार और परमात्मा का साक्षात्कार श्रीकृष्णभावनामृत के अश होते है।

निराकार पक्ष या परमात्मा पक्ष के रूप मे भगवान् का आशिक साक्षात्कार व्यक्ति को भगवान् के प्रति सम्मान की भावना का विकास करने के योग्य बनाता है, परन्तु जब व्यक्ति का श्रीकृष्ण के साथ मित्र, स्वामी, पुत्र या प्रेमिका का अन्तरग सम्बन्ध हो जाता है, तब उस सम्मान की भावना का अन्त हो जाता है।

व्यक्तिगत सम्बन्ध का यह स्तर निश्चय ही निराकार स्तर या परमात्मा के स्तर से अर्थात् साक्षात्कार से निश्चय ही उच्च है। शान्त धारणा मे, व्यक्ति केवल यह अनुभूति करता है कि वह और परमसत्य गुण की दृष्टि से एक है, या वह अनुभूति करता है कि वह भगवान् का अश है। यह निश्चय ही ज्ञान है। क्योकि जब हम श्रीकृष्ण के साथ उनके दास के रूप मे व्यक्तिगत सम्बन्ध का विकास कर लेते है, तो हम भगवान् के पूर्ण ऐश्वर्य का मूल्याकन करना आरम्भ करते है। जिसको यह साक्षात्कार होता है कि भगवान् ऐश्वर्यो से परिपूर्ण है, वह वास्तव मे सेवा करना आरम्भ करता है। जैसे ही व्यक्ति श्रीकृष्ण की महानता से अवगत होता और श्रीकृष्ण की श्रेष्ठता को समझता है, उसकी सेवा आरम्भ हो जाती है। भगवान् की महानता का तब और भी अधिक बोध होता है, जब अप्राकृत की सेवा की

जाती है। तो व्यक्ति भगवान् की इन्द्रियो को सन्तुष्ट करने के लिए भगवान् की सेवा करता है, वह स्वयं भी सन्तुष्ट हो जाता है क्योंकि श्रीकृष्ण परमात्मा है और व्यक्तिगत जीवात्मा उनका अंश है। यदि भगवान् सन्तुष्ट होते है, तो जीव भी सन्तुष्ट हो जाता है। यदि उदर (पेट) सन्तुष्ट होता है, तो शरीर के सभी अग सन्तुष्ट हो जाते है, क्योकि पेट के माध्यम से उन अगो का पोषण होता है। एक बार एक अत्यन्त गर्म दिन में, मेरे एक गुरु भाई सहसा मेरे गुरु महाराज को पखा करने लगे, गुरु महाराज ने पूछा, "तुमने अचानक मुझे पखा करना क्यो आरम्भ कर दिया" उस किशोर ने उत्तर दिया, "क्योकि यदि आप सन्तुष्ट होते है, तो हम सब सन्तुष्ट हो जाते है।" तो सूत्र यही है...हमे पृथक् रूप से अपनी इन्द्रियो को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न नही करना चाहिए, वरन् श्रीकृष्ण की इन्द्रियो को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करे। स्वाभाविक ही हम सन्तुष्ट हो जाएँगे। कृष्ण-भक्त सदैव ही श्रीकृष्ण को सन्तोष देने का प्रयत्न कर रहे है और श्रीकृष्णभावनामृत का यह आरम्भ है। क्योकि निराकार धारणा मे भगवान् का कोई स्वरूप नही है, इसलिए भगवान् की इन्द्रियो को सन्तुष्ट करने का उसमे कोई अवसर नही है। किन्तु, जो व्यक्ति श्रीकृष्ण को स्वामी के रूप मे देखता है, वह सेवा कर सकता है। भगवद्गीता मे श्रीकृष्ण को हृषिकेश अर्थात् इन्द्रियो का स्वामी कहा गया है। यदि यह समझ लिया जाता है कि परम सत्य भगवान् इन्द्रियो के स्वामी है, कि हमारी इन्द्रियाँ भगवान् की इन्द्रियो से उत्पन्न हुई है और इसीलिए इन इन्द्रियो का उपयोग भगवान् की इन्द्रियो को सन्तोष देने के लिए किया जाना चाहिए, तो श्रीकृष्ण-भावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति, जो सभी के हृदय मे गुप्त अवस्था मे है, जागृत होने लगती है। एक बार श्रीचैतन्य महाप्रभु से पूछा गया, "श्रीकृष्ण के साथ शान्त रस के सम्बन्ध मे और दास्य रस के सम्बन्ध मे क्या अन्तर है," दोनो ही स्थितियो मे हम समझ सकते है कि श्रीकृष्ण महान् है, परन्तु शान्त रस मे सेवा की ओर कोई झुकाव नही होता। इसलिए श्रीकृष्ण और जीवो के बीच स्वामी और दास का सम्बन्ध अधिक उन्नत है। फिर जब हम श्रीकृष्ण की मित्रता कर लेते है, तो उस रस मे एक और दिव्य गुण जुड जाता है। उसमे यह तो धारणा रहती है कि भगवान् महान् है और उनकी सेवा अवश्य की जानी चाहिए, परन्तु उसके साथ एक अतिरिक्त भावना भी है. "कृष्ण मेरे मित्र है। अत मै उनके साथ ऐसा व्यवहार करूँगा जिससे वे सुखी होगे।" मित्र के साथ हम केवल उसकी सेवा करने से ही सन्तुष्ट नही होते, परन्तु हमारा ध्यान उसको वास्तव मे सुखी और सन्तुष्ट करने मे रहता है। ऐसे सम्बन्ध मे समता होती है, क्योकि श्रीकृष्ण और भक्त बाराबरी के आधार पर एक दूसरे से व्यवहार करते है। इस प्रकार इस स्थिति मे भक्त श्रीकृष्ण की श्रेष्ठता को वास्तव मे भूल जाता है। जब श्रीकृष्ण के सखा

लोग श्रीकृष्ण के कन्धो पर चढ कर खेला करते थे तो वे यह नही सोचते थे कि वे श्रीकृष्ण से बडे है। ऐसे सम्बन्ध मे इन्द्रियतृप्ति या आत्मप्रशसा का प्रश्न ही नही उठता, क्योकि यह सम्बन्ध शुद्ध प्रेम पर आधारित है। भक्त की एकमात्र अभिलाषा यही रहती है कि वे श्रीकृष्ण को सुख दे और श्रीकृष्ण अपने सखाओ को अपने कन्धो पर चढाते है जिससे उनको भी सखाओ के द्वारा सुख मिले। कभी-कभी व्यक्ति केवल इस तथ्य को स्वीकार कर लेता है कि उसका मित्र उसके चेहरे पर थप्पड़ मार देगा—परन्तु ऐसे कार्य मे भी निम्नता का कोई प्रश्न नही है। जब मित्रता और परस्पर का आनन्द सम्बन्ध के आधार हो, तो अपमान या निम्नता का कोई प्रश्न नही उठता।

श्रीकृष्णभावनामृत और श्रीकृष्ण के साथ सम्बन्ध का सम्पूर्ण आधार ही स्वय श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति है। श्रीमती राधिका रानी, व्रज की गोपियाँ, और श्रीकृष्ण के गोप बालक सखा गण सभी श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति के विस्तार है। सब मे आनन्द उठाने की प्रवृत्ति है, क्योकि इस स्रोत से हम उत्पन्न होते है, वह स्रोत आनन्द—लाभ करने मे पूर्ण रूप से सक्षम है। निराकारवादी इन आधार पर नही सोच सकते, क्योकि वे आह्लादिनी शक्ति को अस्वीकार करते है. इसलिए निराकारवादी दर्शन अपूर्ण और निम्न है। जो श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति मे है, वे श्रीकृष्ण मे और उनकी समस्त सामग्रियो मे आह्लादिनी शक्ति को स्वीकार करते है—भगवान् के सखा, दास, माता-पिता और प्रेमिका। श्रीकृष्ण के साथ के यह सभी सम्बन्ध, इनका लक्ष्य श्रीकृष्ण के इन्द्रियो को सन्तोष देना है, वे श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति की अभिव्यक्तियाँ है।

जहाँ तक व्यक्तिगत आत्मा का सम्बन्ध है, वह मूल रूप से इस आह्लादिनी शक्ति का अश है। आत्मा स्वय ही दु:ख का स्रोत है। किन्तु भौतिक प्रकृति के सम्पर्क के कारण, आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप को भूल कर एक शरीर से दूसरे शरीर मे भ्रमण करते हुए क्रमिक विकास की विधि मे फँस गई है। इस प्रकार अस्तित्व के लिए कठिन सघर्ष किया जाता है। अब हमे अपने सघर्ष के कष्ट से, असंख्य देहान्तर से अपने को अवश्य ही उन्मुक्त करना है। यह देहान्तर हमे बाध्य करते है कि हम जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि के कष्ट को सहन करे। हमे उन्मुक्त होकर श्रीकृष्णभावनामृत के अपने शाश्वत (नित्य) जीवन के स्तर तक आना है। वह शाश्वत जीवन सम्भव है। यदि हम इस मानव जीवन मे अपना सर्वोत्तम प्रयत्न करे, तो अगले जीवन मे हमे एक आध्यात्मिक शरीर मिलेगा आध्यात्मिक शरीर पहले से ही स्थूल भौतिक शरीर के भीतर है, परन्तु वह केवल तभी विकसित होगा, जब हम ससार के दूषण से मुक्त हो जाएँगे। मनुष्य जीवन का यही लक्ष्य है और सभी लोगो का वास्तविक स्वार्थ भी। स्वार्थ का अर्थ है कि वास्तव मे यह साक्षात्कार

कर लेना, "मै भगवान् का अंश हूँ। मुझे भगवान् के राज्य में वापस लौटना है और उनकी लीलाओ मे उनके साथ सम्मिन्लित होना है।" जिस प्रकार हमारा यहाँ सामाजिक जीवन है, उसी प्रकार भगवान् का भी सामाजिक जीवन वैकुण्ठ जगत् मे है और हम भगवान् के सामाजिक जीवन मे उनके साथ वैकुण्ठ जगत् में सम्मिलित भी हो सकते है। यह नही कि इस शरीर के समाप्त होने के पश्चात् हम शून्य बन जाते है। भगवद्गीता [२ १२] मे श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है, "न तो ऐसा ही है किसी समय मै नही था, तुम नही थे अथवा यह सब राजा नही थे और न ही ऐसा है कि भविष्य मे इसके आगे हम सब नही रहेगे।" अतएव हमारा अस्तित्व नित्य शाश्वत है और जन्म, भय, मृत्यु रूपी परिवर्तन केवल इस अस्थायी भौतिक शरीरो का परिवर्त्तन है।

शाश्वत जीवन प्राप्त करने की वास्तविक विधि किंचित् मात्र भी कठिन नही है। श्रीकृष्णभावनामृत अर्थात् कृष्ण-भक्ति की यह विधि सर्वाधिक पूर्ण पुरुष श्रीकृष्ण के द्वारा प्राप्त है। अन्य लोगो से प्राप्त ज्ञान दोषपूर्ण है, क्योकि बद्धजीव के द्वारा त्रुटियाँ करना निश्चित है, भ्रमित होना निश्चित है और अपूर्ण इन्द्रियो का होना निश्चित है। किन्तु श्रीकृष्ण से प्राप्त हुआ ज्ञान हमे वास्तव मे श्रीकृष्ण के दर्शन के के योग्य बनाता है। कोई चुनौती दे सकता है, "क्या आप मुझे भगवान् दिखा सकते हैं" हमारा उत्तर है, "जी हाँ, भगवान् पल प्रति पल देखे जा सकते हैं।" श्रीकृष्ण कहते हैं, **'रसोऽहम अप्सु कौन्तेय'** "मै जल का स्वाद हूँ।" जल हम प्रतिदिन ही पीते है और जल मे स्वाद होता है। तो यदि हम उस स्वाद को श्रीकृष्ण समझ ले, तो हम प्रतिदिन भगवान् का साक्षात्कार करना आरम्भ कर देगे। श्रीमद्भगवद्गीता मे भगवान् श्रीकृष्ण आगे कहते है, **प्रभास्मि शशि-सूर्यः**—"मै सूर्य एव चन्द्रमा का प्रकाश हूँ।" प्रतिदिन हम सूर्य का प्रकाश एव सायंकाल चन्द्रमा का प्रकाश प्राप्त करते है, तो यदि हम इन प्रकाश के स्रोत का चिन्तन करे, तो हम अन्तत भगवान् के भक्त बन जाएँगे। भगवद्गीता मे ऐसे ही अनेकानेक दृष्टान्त दिए गए है, क्योकि सभी प्रकार की सृष्टि के आरम्भ, मध्य एव अन्त तो श्रीकृष्ण ही है। यदि हम भगवान् के भक्त बनना चाहते है और स्वय के स्वरूप का साक्षात्कार करना चाहते है, तो यह कोई कठिन नही है। हमे केवल भगवान् को तत्त्वत. समझना होगा—कैसे वे प्रगट होते है, किस प्रकार वे अप्रकट होते है और उनकी लीलाये तथा कर्म क्या है—तभी हम भगवद्धाम मे प्रवेश के अधिकारी बन सकते है। जो व्यक्ति भगवान् अथात् श्रीकृष्ण को समझ लेता है वह इस भौतिक शरीर को त्यागने के पश्चात् एक दूसरा भौतिक शरीर ग्रहण करने इस पृथ्वी पर पुन. नही आता। वह कहाँ जाता है? भगवान् श्रीकृष्ण कहते है **मामेति**—"वह मेरे समीप आता है।" किसी भी बुद्धिमान् मनुष्य का लक्ष्य यही होना चाहिए।

इस ग्रंथ की विषयवस्तु में रुचिवान पाठकों को अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत संघ अपने निम्नलिखित भारतीय केन्द्रों से सम्पर्क तथा पत्र-व्यवहार करने के लिए आमंत्रित करता है—

अंतर्राष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत संघ (इस्कॉन)

1 अगरतला, त्रिपुरा — आसाम-अगरतला रोड, बनमालीपुर, 799001
2 अहमदाबाद, गुजरात—7 कैलाश सोसाइटी, आश्रम रोड, 380009 449935
3 इम्फाल, मणिपुर — हरे कृष्ण धाम, एयरपोर्ट रोड, 795001
4 कलकत्ता, प बगाल - 3 अलबर्ट रोड, 700017 443757
5 गौहाटी, आसाम — पोस्ट बैग न 127 781001
6 चडीगढ़, पजाब — हरे कृष्ण धाम, दक्षिण मार्ग, सेक्टर 36 -बी, 160036 44634
7 छायघरिया (हरिदासपुर), प बगाल — ठाकुर हरिदास श्री पटवारी सवाश्रम, पो आ छायघरिया थाना वनगाँव, जि चौबीस परगना
8 तिरुपति, आ प्र — 37 वी टाइप, टी टी डी क्वार्टर्स विनायक नगर, के टी रोड 517501 2285
9 त्रिवेन्द्रम, केरल — टी सी 24 1485 डब्ल्यू सी हॉस्पिटल रोड, थाइकाउद(Thycaud) 695014 68197
10 दार्जिलिंग, प ब — पो आ गितालपाडा सिलिगुडी, 734401
11 नागपुर, महाराष्ट्र—70 हिल रोड, रामनगर, 440010 33513
12 नयी दिल्ली— एम-19 ग्रेटर कैलाश-1 110048 6412058
13 पढरपुर, महाराष्ट्र— हरे कृष्ण आश्रम चन्द्रभागा नदी के पार, जि शोलापुर 413304
14 पटना, बिहार — राजेन्द्र नगर, रोड न 12 800016 50765
15 पेटा-ककानी, आ प्र — जि गुटुर
16 पुणे, महाराष्ट्र —4 तारापुर रोड
17 बगलोर, कर्नाटक — 210 बेलरी रोड, सदाशिव नगर 560080 361-539
18 बबई, महाराष्ट्र— हरे कृष्ण धाम, जुहू 400049 626-860
19 बडौदा, गुजरात—18, सुजाता सोसाइटी, गोत्री रोड, 390015 66499
20 बामनबोर, गुजरात— एन एच 8/ बी, सुरेन्द्रनगर (नगर कार्यालय 32 अनन्त नगर, कालवाड रोड, राजकोट 360003
21 भायदर (प), महाराष्ट्र— लोकमान्य तिलक शॉपिग सेन्टर, पहला माला, 401101 2982595
22 भुवनेश्वर, उडीसा— नेशनल हाइवे न 5 नयापल्ली, 751001 53125
23 मद्रास, तामिलनाडु—232 किल्पॅक गार्डेन रोड, 600010 662286
24 मायापुर, प बगाल— श्री मायापुर चन्द्रोदय मन्दिर, पो आ श्री मायापुर धाम, जि नदिया
25 मोहरग, मणिपुर— नौंगवन, टिडिम रोड
26 वृन्दावन, उ प्र— कृष्ण-बलराम मन्दिर, भक्तिवेदान्त स्वामी मार्ग, रमण-रेती, जि मथुरा/178
27 सिल्चर, आसाम— अम्बिका पट्टी, जि कछार, 788004
28 सुरत, गुजरात— रैंडर रोड, जहाँगीरपुरा, 3952005/84215
29 हैदराबाद, आ प्र — हरे कृष्ण धाम, नामपल्ली स्टेशन रोड, 500001 51018

गोवा हरे कृष्ण केन्द्र प्लॉट न ए/१/१ सेल्बेन अपार्टमेंट कलगुट मार्केट कलंगुट बाडम, ४०३५१६

कृपया इस्कॉन के विदेशी मंदिरों के लिए सम्पर्क कीजिए
सेक्रेटरी, हरे कृष्ण धाम जुहू, बम्बई ४०० ०४९

— सर्वाधिकार —

प्रकाशक कृष्णकृपाश्रीमूर्ति गोपालकृष्ण गोस्वामी श्रील भागवतपाद
भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, हरे कृष्ण धाम, जुहू, बम्बई - ४०० ०४९ (दूरध्वनि ६२८५|३३, ६२७७२७, ६२६८६०)